उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
तीन पानी बाय पास, ट्रांसपोर्ट नगर हल्द्वानी - 263139
फोन नंबर: (05946) - 286002, 286022,
टोल फ्री नंबर: 1800 180 4025,
फैक्स संख्या: (05946) - 264232,
ई-मेल: info@uou.ac.in, वेब साइट: http://www.uou.ac.in

ENS 502

भूमि, जल और जैव विविधता संसाधन

ENS 502

# भूमि, जल और जैव विविधता संसाधन

वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग
भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

ENS-502

# भूमि, जल और जैव विविधता संसाधन


उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विद्याशाखा

विश्वविद्यालय मार्ग, तीन पानी बाय पास, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी - 263139

फोन नंबर: (05946) - 286002, 286022, 286001, 286000

टोल फ्री नंबर: 1800 180 4025, Fax No.: (05946) - 264232,

ई-मेल: info@uou.ac.in, वेब साइट: http://www.uou.ac.in

## अध्ययन मंडल

**कुलपति**
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

**प्रो. पी. डी. पंत**
निदेशक, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

**प्रो. आर. के. श्रीवास्तव**
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग
जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर, उत्तराखंड

**प्रो. अनिल कुमार यादव**
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

**डॉ. आई. डी. भट्ट**
वैज्ञानिक–एफ, गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान (NIHE), कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

**डॉ. एच. सी. जोशी**
सह-प्राध्यापक, वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड



| **इकाई लेखन** | **इकाई** |
|---|---|
| **डॉ. सुधांशु कौशिक,** पर्यावरण विज्ञान विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड | **1, 2, 4** |
| **डॉ.अनिल बिष्ट,** प्राणी विज्ञान विभाग, उत्तराखण्ड कॉलेज ऑफ़ बायो-मेडिकल साइंसेज, देहरादून, उत्तराखंड | **3, 7, 8** |
| **डॉ. सुशील भदोला,** प्राणी विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानंद कॉलेज ऑफ एजुकेशन, रुड़की, उत्तराखंड | **5, 6, 9, 10,11** |

**ब्लाक 4** (इकाई **12, 13, 14, 15** ई-पीजी पाठशाला से ली गयी हैं।)

## हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन

**डॉ. एच.सी. जोशी, डॉ. नेहा तिवारी, डॉ. खष्टी डसीला**

वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड



**शीर्षक** : भूमि, जल और जैव विविधता संसाधन (ENS-502)
**आईएसबीएन** : XXXX-XXXX
**कॉपीराइट** : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
**संस्करण** : 2026 (सीमित वितरण)
**प्रकाशन** : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल



© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति या इसके किसी भी भाग का किसी भी रूप में पुनरुत्पादन प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

# विषयसूची


| | | |
|---|---|---|
| **इकाई 1:** | **भूमि संसाधन: विशेषता पैटर्न और महत्व** | **1-23** |
| | 1.0 सीखने का उद्देश्य | 1 |
| | 1.1 परिचय | 2 |
| | 1.2 भूमि संसाधनों की परिभाषा | 3 |
| | 1.3 भूमि उपयोग एवं वर्गीकरण | 4 |
| | 1.4 भूमि संसाधनों के प्रकार | 5 |
| | 1.5 पृथ्वी पर भूमि संसाधनों का इतिहास | 14 |
| | 1.6 भारत में भूमि संसाधन | 15 |
| | 1.7 भूमि संसाधनों का महत्व | 16 |
| | 1.8 भूमि संसाधनों को खतरा | 19 |
| **इकाई 2:** | **खनिज संसाधन** | **24-45** |
| | 2.0 सीखने का उद्देश्य | 24 |
| | 2.1 परिचय | 25 |
| | 2.2 खनिज संसाधनों की परिभाषा | 25 |
| | 2.3 खनिज संसाधनों की उत्पत्ति | 27 |
| | 2.4 खनिज संसाधनों के प्रकार | 29 |
| | 2.5 खनिज संसाधनों का खनन | 30 |
| | 2.6 भारत में खनिज संसाधन | 32 |
| | 2.7 खनिज संसाधनों का महत्व एवं उपयोग | 37 |
| **इकाई 3:** | **जल संसाधन और आर्द्रभूमि अध्ययन: सुंदरबन और भरतपुर सेंचुरी** | **46-66** |
| | 3.0 सीखने का उद्देश्य | 46 |
| | 3.1 परिचय | 46 |
| | 3.2 आर्द्रभूमियों के प्रकार एवं विशेषताएँ | 49 |
| | 3.3 आर्द्रभूमि का महत्व एवं कार्य | 52 |
| | 3.4 भारत में आर्द्रभूमियाँ | 55 |
| | 3.5 रामसर कन्वेंशन | 58 |
| **इकाई 4:** | **भू-आवरण में परिवर्तन** | **67-83** |
| | 4.0 सीखने का उद्देश्य | 67 |
| | 4.1 परिचय | 67 |
| | 4.2 भू-आवरण परिवर्तन की परिभाषा | 69 |
| | 4.3 भारत में भू-आवरण परिवर्तन | 71 |
| | 4.4 भू-आवरण परिवर्तन के कारण | 73 |
| | 4.5 भू-आवरण परिवर्तन के प्रभाव | 78 |
| **इकाई 5:** | **भू-क्षरण के कारण और परिणाम** | **84-103** |
| | 5.0 सीखने का उद्देश्य | 84 |
| | 5.1 परिचय | 84 |
| | 5.2 भू-क्षरण की परिभाषाएँ | 86 |

| | | |
|---|---|---|
| | 5.3 भू-क्षरण के प्रमुख कारण | 86 |
| | 5.4 भू-क्षरण के प्राकृतिक कारण | 87 |
| | 5.5 भू-क्षरण के मानव-निर्मित कारण | 87 |
| | 5.6 भू-क्षरण के परिणाम | 97 |
| **इकाई 6:** | **बंजर भूमि की उत्पत्ति: प्रकार, विस्तार, संरक्षण और प्रबंधन** | **104-123** |
| | 6.0 सीखने का उद्देश्य | 104 |
| | 6.1 परिचय | 104 |
| | 6.2 बंजर भूमि की परिभाषाएँ | 105 |
| | 6.3 बंजर भूमि के प्रकार | 106 |
| | 6.4 भारत में बंजर भूमि | 108 |
| | 6.5 बंजर भूमि की उत्पत्ति | 112 |
| | 6.6 भूमि का संरक्षण | 115 |
| | 6.7 बंजर भूमि का प्रबंधन | 117 |
| **इकाई 7:** | **भूमि से सम्बन्धित आपदाएँ और उनके निवारण: भूस्खलन, भूस्खल, भूकंप और सूखा** | **124-144** |
| | 7.0 सीखने का उद्देश्य | 124 |
| | 7.1 परिचय | 125 |
| | 7.2 भूमि से संबंधित आपदाएँ | 126 |
| | 7.2.2 भूकंप | 131 |
| | 7.2.3 सूखा | 137 |
| **इकाई 8:** | **भूमि प्रबंधन: मृदा सुधार; बंजर भूमि का पुनर्वास और पुनर्स्थापन** | **145-163** |
| | 8.0 सीखने का उद्देश्य | 145 |
| | 8.1 परिचय | 145 |
| | 8.2 भूमि प्रबंधन | 146 |
| | 8.3 भूमि प्रबंधन की विधियाँ | 147 |
| | 8.4 मृदा सुधार | 148 |
| | 8.5 मिट्टी और बंजर भूमि का पुनर्वास | 151 |
| | 8.6 बंजर भूमि का पुनर्स्थापन | 155 |
| **इकाई 9:** | **जल और जल संसाधन: परिचय, स्थिति, विशेषताएँ और उपयोग** | **164-191** |
| | 9.0 सीखने का उद्देश्य | 164 |
| | 9.1 परिचय | 164 |
| | 9.2 जल एक दृष्टि | 165 |
| | 9.3 जल और जल संसाधन | 166 |
| | 9.4 वैश्विक स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति | 168 |
| | 9.5 राष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति | 173 |
| | 9.6 जल संसाधनों का उपयोग | 186 |
| **इकाई 10:** | **जल संसाधन विकास** | **192-206** |
| | 10.0 सीखने का उद्देश्य | 192 |
| | 10.1 परिचय | 192 |
| | 10.2 जल संसाधन विकास | 193 |
| | 10.3 वैश्विक स्तर पर बाँध | 195 |

| | | |
|---|---|---|
| | 10.4 राष्ट्रीय स्तर पर बाँध | 196 |
| | 10.5 बाँध के सकारात्मक प्रभाव | 197 |
| | 10.6 बाँध के नकारात्मक प्रभाव | 200 |
| | 10.7 बाँध – आवश्यक दुर्भाग्य | 202 |
| **इकाई 11:** | **जल संसाधन संरक्षण, जलग्रहण प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई: एक अध्ययन – पानी पंचायत** | **207-225** |
| | 11.0 सीखने का उद्देश्य | 207 |
| | 11.1 परिचय | 207 |
| | 11.2 जल संसाधन संरक्षण | 208 |
| | 11.3 जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन | 210 |
| | 11.4 वर्षा जल संचयन | 212 |
| | 11.5 सूक्ष्म सिंचाई | 217 |
| | 11.6 प्रकरण अध्ययन – पानी पंचायत | 220 |
| **इकाई 12:** | **जैविक विविधता** | **226-247** |
| | 12.0 सीखने के उद्देश्य | 226 |
| | 12.1 परिचय | 226 |
| | 12.2 जैव विविधता के प्रकार | 227 |
| | 12.3 जैव विविधता का महत्व | 229 |
| | 12.4 भारत और विश्व की जैव विविधता | 232 |
| | 12.5. जैव विविधता के मूल्य | 234 |
| | 12.6 जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र का कार्यकरण | 236 |
| | 12.7 जैव विविधता का आकलन | 244 |
| **इकाई 13:** | **जैविक विविधता** | **248-277** |
| | 13.0 सीखने के उद्देश्य | 248 |
| | 13.1 परिचय | 249 |
| | 13.2 जैव विविधता के हॉटस्पॉट | 249 |
| | 13.4 हॉटस्पॉट्स के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य | 263 |
| | 13.5 हॉटस्पॉट्स में जैव विविधता के ह्रास के कारण | 264 |
| | 13.6 प्रजातियों का विलुप्त होना | 264 |
| | 13.7 IUCN रेड लिस्ट श्रेणियाँ | 266 |
| | 13.8 IUCN रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटन्ड स्पीशीज़ | 268 |
| | 13.9 रेड डेटा बुक; भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची | 270 |
| | 13.10 रेड डेटा बुक में सूचीबद्ध श्रेणियाँ | 271 |
| | 13.11 भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची | 273 |
| **इकाई 14:** | **जैव विविधता संरक्षण** | **278-333** |
| | 14.0 सीखने के उद्देश्य | 278 |
| | 14.1 परिचय | 279 |
| | 14.2 जैव विविधता संरक्षण विधियाँ | 281 |
| | 14.3 अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता संरक्षण का ढाँचा | 289 |
| | 14.4 जैव विविधता संरक्षण हेतु राष्ट्रीय ढांचा | 290 |

| | | |
|---|---|---|
| | 14.5 जैव विविधता संरक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका | 290 |
| | 14.6 जैव विविधता संरक्षण में स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान (ITK) की भूमिका | 294 |
| **इकाई 15:** | जैव विविधता का संरक्षण एवं सतत उपयोग: राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहल | 306 |
| | 15.0 सीखने के उद्देश्य | 306 |
| | 15.1 प्रस्तावना | 306 |
| | 15.2 जैव विविधता के सतत उपयोग हेतु अंतर्राष्ट्रीय पहलें | 308 |
| | 15.3 राष्ट्रीय जैव विविधता के सतत उपयोग पर भारत की पहलें | 320 |

# इकाई 1: भूमि संसाधन: विशेषता पैटर्न और महत्व

**इकाई संरचना**

**1.0 सीखने के उद्देश्य**
**1.1 परिचय**
**1.2 भूमि संसाधनों की परिभाषा**
**1.3 भूमि उपयोग एवं वर्गीकरण**
**1.4 भूमि संसाधनों के प्रकार**
**1.4.1 वन संसाधन**
**1.4.1.1 वनों की परिभाषा**
**1.4.2 खनिज स्रोत**
**1.4.3 जल संसाधन**
**1.4.4 मृदा संसाधन**
**1.5 पृथ्वी पर भूमि संसाधनों का इतिहास**
**1.6 भारत में भूमि संसाधन**
**1.7 भूमि संसाधनों का महत्व**
**1.7.1 कृषि**
**1.7.2 अन्य महत्व**
**1.8 भूमि संसाधनों को खतरा**
**1.8.1 विश्व में भूमि सतह की स्थितियाँ**
**सारांश**

## 1.0 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझाने में सक्षम होंगे:

- भूमि क्या है?
- भूमि का उपयोग एवं वर्गीकरण क्या है?
- भूमि संसाधन क्या हैं?
- भूमि संसाधनों के क्या क्या प्रकार हैं?
- भूमि संसाधनों का क्या महत्व है?
- भूमि संसाधनों की मांग और आपूर्ति क्या है?
- हम भूमि संसाधनों का संरक्षण कैसे कर सकते हैं?

# 1.1 परिचय

इस इकाई में हम विभिन्न प्रकार की भूमि तथा उसके संसाधनों का अध्ययन करेंगे। चूँकि हम सभी प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं, भूमि सबसे महत्वपूर्ण संसाधनों में से एक है। विभिन्न मानव निर्मित गतिविधियों के कारण सभी संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में भारी गिरावट आई है। भूमि सबसे महत्वपूर्ण संपत्ति है जो प्राकृतिक वनस्पति, वन्य जीवन, मानवीय गतिविधियों और परिवहन तथा संचार प्रणालियों में सहयोग करती है।

भूमि पृथ्वी की सतह का ठोस भाग है।" पृथ्वी को मुख्यतः जलीय (जल) और गैर-जलीय (स्थल) क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है। भूमि प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाली एक सीमित संसाधन है जो सजीव जगत के अस्तित्व को भी आधार प्रदान करती है। इसमें वह सब कुछ समाहित है जो स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का गठन करता है मानव जनसंख्या में वृद्धि और आधुनिक जीवन शैली के कारण भूमि संसाधनों की बढ़ती मांग के परिणामस्वरूप भूमि की गुणवत्ता और मात्रा में गिरावट, फसल उत्पादन में गिरावट और भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई है। भूमि पृथ्वी की स्थलीय सतह सहित स्थलीय सतह के ठीक ऊपर या नीचे निकट-सतह का एक क्षेत्र है, जिसमें जीवमंडल की सभी गुण शामिल हैं।

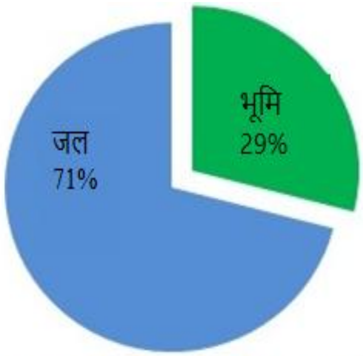

चित्र 1: विश्व में जल और भूमि क्षेत्र का प्रतिशत

खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) का अनुमान है कि 1994 तक विश्व में भूमि का क्षेत्रफल 144.8 मिलियन वर्ग किमी (या विश्व की सतह का लगभग 29%) था (चित्र 1), जिसमें से वन और जंगलीभूमि का क्षेत्रफल 30% था। हज़ारों वर्षों पूर्व, दुनिया में बड़े स्तर पर मानवीय अशांति शुरू होने से पहले, जंगल और जंगलीभूमि संभवतः लगभग 6.0 बिलियन हेक्टेयर में फैले हुए थे, जिनका 16% भाग कृषि भूमि, चारागाह, बस्तियों या अनुत्पादक बंजर भूमि में परिवर्तित हो गया है।

प्राकृतिक संसाधन पर्यावरण का घटक हैं (अर्थात् वायुमंडल, जलमंडल और स्थलमंडल), जिनका उपयोग जीवन को सहारा देने के लिए किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, प्राकृतिक संसाधन वह वस्तुएँ और सेवाएँ हैं, जिनकी आपूर्ति हमारे पर्यावरण द्वारा की जाती है। इनमें ऊर्जा, खनिज, भूमि, भोजन, वन, जल, वातावरण, पौधे और पशु, और अन्य जीवन समर्थन प्रावधान शामिल हैं।

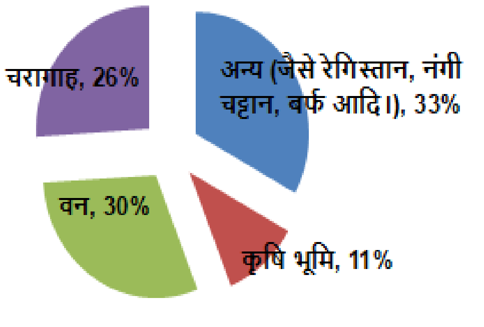

चित्र 2: विश्व में भूमि उपयोग का प्रतिरूप

विशाल और विविधतापूर्ण भारत में अधिकांश महत्वपूर्ण संसाधन पाए जाते हैं। मैदानी प्रदेशों का लगभग 43 प्रतिशत क्षेत्रफल खेती के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। पर्वतीय क्षेत्र, जो देश के सतही क्षेत्रफल का लगभग 30 प्रतिशत है,

प्राकृतिक संसाधनों के भण्डार हैं; ये अपनी प्राकृतिक सुंदरता और पारिस्थितिक सेवाओं के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त पठारी क्षेत्र में भी वन और कृषि योग्य भूमि के अलावा खनिज संसाधनों का समृद्ध भंडार है। पहाड़ों और पठारों में उपजाऊ नदी-घाटी भी है जो मानव निवास के लिए अनुकूल स्थान प्रदान करती है।

अत्यधिक जनसंख्या और इसकी बढ़ती मांग ने भूमि संसाधनों पर अत्यधिक बोझ पैदा कर दिया है, क्योंकि 1951 में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता 0.89 हेक्टेयर थी, लेकिन समय के साथ इसमें तेजी से गिरावट आई और प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता घटकर 0.37 हेक्टेयर रह गई है। भूमि क्षेत्र की उपलब्धता में लगभग 60 प्रतिशत की गिरावट आयी है। अतः यह स्पष्ट है कि बढ़ती जनसंख्या भूमि की उपलब्धता के व्युत्क्रमानुपाती है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ेगी भूमि की उपलब्धता कम होगी और विपरीतता से भी।

## 1.2 भूमि संसाधनों की परिभाषा

भूमि से उपलब्ध संसाधनों को भूमि संसाधन के रूप में जाना जाता है, उदाहरणार्थ, कृषि भूमि जिसमें बोए गए उत्पादों की वृद्धि के लिए प्राकृतिक उर्वरक, भूमिगत जल, विभिन्न खनिज जैसे कोयला, बॉक्साइट, सोना और अन्य कच्चे माल होते हैं। भूमि संसाधन का तात्पर्य शोषण के लिए उपलब्ध भूमि से भी है, जैसे इमारतों, विकासशील टाउनशिप आदि के लिए गैर-कृषि भूमि का उपयोग। भूमि संसाधन (प्रकार्तिक संसाधन) जिसे आर्थिक रूप से भूमि या भूमि में मौजूद अन्य कच्चे माल के रूप में जाना जाता है, पर्यावरण के भीतर सहजतः अपेक्षाकृत अबाधित रूप में मौजूद हैं।

एफएओ/यूएनईपी (1997) ने भूमि और भूमि संसाधनों को "पृथ्वी की स्थलीय सतह का एक क्षेत्र" के रूप में परिभाषित किया है, जिसके सतह के ठीक ऊपर या नीचे जीवमंडल की सभी विशेषताओं को शामिल हैं, जैसे कि निकट-सतह जलवायु, मिट्टी और भूभाग के स्वरूप, सतह जल विज्ञान (उथली झीलें, नदियाँ, दलदल), निकट-सतह तलछटी परतें और संबंधित भूजल और भू-हाइड्रोलॉजिकल रिजर्व, पौधे और पशु आबादी, मानव उपनिवेशण स्वरूप, अतीत और वर्तमान मानव गतिविधियों के भौतिक परिणाम (सीडीदार खेतों का निर्माण, जल भंडारण या जल निकासी की संरचनाएं, सड़कें, इमारतें, आदि)"।

एफएओ और यूएनईपी (1999) के अनुसार, मानव और अन्य स्थलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों का समर्थन करने में भूमि के बुनियादी कार्यों को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है :

- व्यक्तियों, समूहों या समुदाय के लिए वित्तीय विकास का भंडार
- मानव उपयोग के लिए भोजन, फाइबर, ईंधन, या अन्य जैविक सामग्री के उत्पादन का समर्थन करना
- पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों के लिए जैविक आवास प्रदान करना
- सतही जल और भूजल के भंडारण और प्रवाह के नियमन के लिए वैश्विक ऊर्जा संतुलन और वैश्विक जल विज्ञान चक्र में एक निर्धारक के रूप में कार्य करना
- मनुष्य के लिए खनिज एवं कच्चे माल की आवश्यकता को पूरा करना
- प्रदूषण हटाने के लिए फिल्टर, संशोधक या बफर के रूप में कार्य करना

- उद्योगों, मनोरंजन और अन्य विकासात्मक गतिविधियों के लिए भौतिक स्थान प्रदान करना
- ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक रिकॉर्ड (जीवाश्म, पिछली जलवायु के साक्ष्य, पुरातात्विक अवशेष, आदि) से साक्ष्य का भंडारण और संरक्षण।
- जानवरों, पौधों और मनुष्यों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आवाजाही के लिए एक क्षेत्र प्रदान करना।

भूमि की महत्वपूर्ण भूमिका के आधार पर, भूमि के महत्व को समझना और इसका सतत उपयोग करना भूमि उपयोगकर्ताओं, अधिकारियों, वैज्ञानिकों और योजनाकारों की अत्यावश्यक जिम्मेदारी बनती है। सभी प्रतीतयों से, मनुष्यों ने प्राकृतिक भूमि संसाधनों का उपयोग अपने अस्तित्व और आजीविका के उद्देश्यों के लिए किया है। इसलिए, भूमि उपयोग जैवभौतिकीय और मानव प्रेरक शक्तियों के बीच परस्पर क्रिया का एक उत्पाद है (Weng, 2010)। विभिन्न समयावधियों में भूमि संसाधनों के उपयोग के तरीकों को पारंपरिक से आधुनिक तरीकों में बदल दिया गया है। वास्तविक विकास में, एक उभरता हुआ मुद्दा यह है कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए भूमि संसाधनों का उपयोग कैसे किया जाए। इसके अलावा, भूमि उपयोग की विशेषता व्यवस्थाओं, गतिविधियों और लोगों के माध्यम से एक निश्चित भूमि-आवरण प्रकार का उत्पादन, परिवर्तन या रखरखाव करना है (FAO, 2005)। इस प्रकार परिभाषित भूमि उपयोग, भूमि आवरण और पर्यावरण में लोगों के कार्यों के बीच सीधा संबंध स्थापित करता है। इसलिए, इसे भूमि के मानव उपयोग के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जिसमें भूमि की जैव-भौतिकीय विशेषताओं के साथ-साथ भूमि उपयोग के उद्देश्यों को भी शामिल हैं (Weng, 2010)।

## 1.3 भूमि उपयोग एवं वर्गीकरण

भारत में भूमि उपयोग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक कृषि के लिए उपयुक्त प्रमुख क्षेत्र है जिसे पहले ही खेती के लिए उपयोग में लाया जा चुका है। कुल भौगोलिक क्षेत्र (3287.3 लाख हेक्टेयर) के लगभग 93% भाग के लिए भूमि उपयोग के आँकड़े उपलब्ध हैं। किसी भी भूमि का वर्गीकरण मूलतः इस बात पर निर्भर करता है कि वह क्षेत्र चरागाह है, वन है या खेती योग्य है । भारत में भूमि क्षेत्र को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है

- कुल बोया गया क्षेत्र
- वन
- वर्तमान परती भूमि
- अन्य परती भूमि
- खेती योग्य बंजर भूमि
- विविध वृक्ष फसलें और उपवन
- स्थायी चारागाह
- गैर-कृषि उपयोग के अंतर्गत भूमि
- बंजर एवं कृषि कृषि-अयोग्य भूमि

कुल बोया गया क्षेत्र: कुल बोया गया क्षेत्र फसलों को उगाने और बगीचे के रखरखाव के लिए उपयोग किए गए क्षेत्र को संदर्भित करता है। बंजर और बंजर भूमि के सुधार हेतु हाल के वर्षों में कुल बोए गए क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। वन: बहुसंख्यक वृक्षों के समूह को वन कहते हैं. जिस भूमि पर अधिकांश वृक्ष हों, उस भूमि को वन भूमि कहते हैं।

वर्तमान परती भूमि: इस वर्ग में फसली क्षेत्र शामिल हैं, जिन्हें केवल वर्तमान वर्ष के दौरान फसल-मुक्त रखा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी फसली क्षेत्र में उसी वर्ष दोबारा फसल नहीं उगाई जाती है, तो उसे वर्तमान परती भूमि माना जा सकता है। अन्य परती भूमि: अन्य परती भूमि में 1-5 वर्षों के लिए अस्थायी रूप से खेती की जाने वाली भूमि शामिल है। इस तरह की परती भूमि अपर्याप्त जल आपूर्ति, नदी और नहरों में गाद जमा होने के कारण उत्पन्न हुई है और यह भारत के तमिलनाडु, बिहार, मेघालय, मिजोरम, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली और राजस्थान राज्य में पाई जाती है।

खेती योग्य बंजर भूमि: इस प्रकार की भूमि या तो परती होती है या झाड़ियों और जंगलों से ढकी होने के कारण किसी उपयोग की नहीं होती हैं। ऐसी भूमियाँ जिन पर एक बार खेती की गई लेकिन लगातार पाँच वर्षों तक खेती नहीं की गई है, उन्हें भी इस श्रेणी में शामिल किया गया है। भारत में, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और कई अन्य राज्यों में रेह, भूर, उसर और खोला क्षेत्र हैं जो अतीत में खेती योग्य थे लेकिन मिट्टी में कुछ पोषक तत्वों की कमी के कारण अब अनुपयुक्त हो गए हैं। विविध वृक्ष फसलें और उपवन: इस वर्ग में सभी खेती योग्य भूमि शामिल है जो शुद्ध बोए गए क्षेत्र में शामिल नहीं है लेकिन इन्हें कुछ कृषि उपयोगों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ऐसी भूमि देश के सूचित क्षेत्र का 1.21% है । राज्य स्तर पर, विविध वृक्ष फसलों और उपवनों के अंतर्गत भूमि का अनुपात त्रिपुरा में अधिक है।

स्थायी चारागाह: इस श्रेणी में सभी चरागाह भूमि, घास के मैदान, गांव के सार्वजनिक क्षेत्र आदि शामिल हैं। रिपोर्टिंग क्षेत्र के लगभग 4% में ऐसी भूमि शामिल है। गैर-कृषि उपयोग के अंतर्गत भूमि: इस वर्ग में इमारतों, सड़कों और रेलवे द्वारा कवर की गई सभी भूमि या पानी के नीचे की भूमि यानी नदियाँ और नहरें तथा कृषि के अलावा अन्य उपयोग की जाने वाली भूमि शामिल हैं। बंजर एवं कृषि-अयोग्य भूमि: बंजर और बंजर भूमि में वे सभी भूमि शामिल हैं जिन्हें उच्च लागत के अलावा खेती के तहत नहीं लाया जा सकता है। ऐसी भूमि अलग-अलग ब्लॉकों में या खेती योग्य संपत्ति के भीतर हो सकती है। अधिकतर ये पहाड़ी या शुष्क क्षेत्र होते हैं।

## 1.4 भूमि संसाधनों के प्रकार

किसी क्षेत्र में संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर भूमि संसाधनों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- वन संसाधन
- खनिज स्रोत
- फसल संसाधन
- जल संसाधन
- मृदा संसाधन

## 1.4.1 वन संसाधन

वन संसाधन भूमि के बहुत महत्वपूर्ण संसाधन हैं जो लोगों की जरूरतों को पूरा करने के साथ पारिस्थितिकी कर्तव्यों का पालन करते हैं। वन पारिस्थितिकी तंत्र को विभिन्न सेवाएँ प्रदान करते हैं जैसे मानव समाज को भोजन, आश्रय, आवरण, चारा, लकड़ी के रेशे प्रदान करना। फॉरस्ट शब्द लैटिन शब्द "फोरिस" से लिया गया है जिसका अर्थ है बाहर। वन पृथ्वी के सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में से एक हैं। पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल का लगभग 1/3 भाग वनों से आच्छादित है। भारत में, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 21.02% अब हरित आवरण के अंतर्गत है (2009 के आंकड़ों के अनुसार)। भारत में कुल वन क्षेत्र 6,90,899 किमी है । भारत में वन आवरण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "एक हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल वाली सभी भूमि जिनका वृक्ष छत्र घनत्व 10% से अधिक है "।

"संसाधनों" के बारे में बात करना तभी सार्थक है जब वे मानव जाति के अस्तित्व और आजीविका के लिए कुछ लाभकारी भूमिका निभाते हों"। इस प्रकार, वन भूमि संसाधन वनों की वे सभी विशेषताएँ हैं जिनका मानव जाति के लिए किसी भी प्रकार का वर्तमान या संभावित मूल्य है। कुछ संसाधन अप्रचलित हो जाते हैं और दूसरी ओर, कुछ संसाधन नई आवश्यकताओं और ज्ञान के साथ उभरते और विकसित होते हैं। 1992 में रियो डी जनेरियो में आयोजित पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यू एन कान्फरन्स ऑन एन्वाइरन्मन्ट ऐन्ड डिवेलप्मन्ट) ने सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में वनों को एक महत्वपूर्ण भूमिका दी है। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी देशों द्वारा स्थायी वन प्रबंधन की अवधारणा को एक मौलिक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में मान्यता दी है। वन अपनी विभिन्न पोषक तत्वों से युक्त पत्तियाँ गिराकर मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त वन वनस्पतियों की जड़ों की सहायता से मिट्टी के कणों को बांधने में भी सहायक होते हैं। अत: वनों के कटने से मिट्टी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

### 1.4.1.1 वनों की परिभाषा

वे सभी भूमि "जो स्वामित्व और कानूनी स्थिति के बावजूद क्षेत्रफल में 1 हेक्टेयर से अधिक है और जिनका छत्र घनत्व 10% से अधिक है, वन आवरण कहलाती है"। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वन मानव जाति को अनेक संसाधन और सेवाएँ प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वनों से प्राप्त संसाधनों और सेवाओं को तालिका 1 में ' फॉरस्ट (Forest)' शब्द के अक्षरों के माध्यम से दर्शाया गया है।

**तालिका 1: वन संसाधन**

| एफ (F) | ओ (O) | आर (R) | इ (E) | एस (S) | टी (T) |
|---|---|---|---|---|---|
| फ्यूल | आक्सिजन | रेन | एनर्जी | सॉइल | टिम्बर |
| फूड | ऑइल्सीड | रेज़िन | इम्प्लॉइमन्ट | स्लीपर | टुरिज़म |
| फाइबर | ऑइल्ड रेज़िन | रेयान | एन्टर्टैन्मन्ट | सेरीकल्चर | ट्रैन्स्पॉर्ट |
| फाडर | ऑर्नमेन्टैशन | रबर | इन्वाइरन्मन्ट | शिप बिल्डिंग | टर्पन्टाइन |
| फर्टलाइज़र | ऑर्गैनिक मैटर | रेक्रीऐशन | इरोश़न कन्ट्रोल | स्पॉर्ट्स गुड्ज़ | टूल |

## 1.4.1.2 वनों के प्रकार

भारत में कुल वन एवं वृक्ष आवरण लगभग 79.42 मिलियन हेक्टेयर है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 24.16% है। देश के जंगल में कुल कार्बन स्टॉक 7,044 मिलियन टन है, जिसमें पिछले आकलन की तुलना में 103 मिलियन टन (1.48 प्रतिशत) की वृद्धि दर्ज की गई है। वन क्षेत्र में सबसे अधिक वृद्धि तमिलनाडु में -2,501 वर्ग किमी, इसके बाद केरल -1,317 वर्ग किमी और जम्मू और कश्मीर -450 वर्ग किमी में देखी गई है। देश में सबसे बड़ा वन क्षेत्र मध्य प्रदेश में 77,462 वर्ग किमी है, इसके बाद अरुणाचल प्रदेश है, जहां वन क्षेत्र 67,248 वर्ग किमी और छत्तीसगढ़ में 55,586 वर्ग किमी है। प्रतिशत के संदर्भ में, मिजोरम में अधिकतम वन क्षेत्र 88.93% है, इसके बाद लक्षद्वीप में 84.56% है। हालाँकि, मिज़ोरम, तेलंगाना, उत्तराखंड, नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश ऐसे राज्य हैं जहाँ वन क्षेत्र में काफी कमी आई है।

## 1.4.1.3 वनों के प्रकार

वन मानव जीवन और प्राकृतिक जगत के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में वन संसाधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वन अत्यधिक जटिल, बदलते परिवेश हैं जो सजीव और निर्जीव चीजों से बने हैं। सजीव चीजों में वृक्ष, झाड़ियाँ, वन्य जीवन आदि शामिल हैं तथा निर्जीव चीजों में पानी, पोषक तत्व, चट्टानें, सूरज की रोशनी और हवा शामिल हैं। वन अपनी संरचना और घनत्व में भिन्न होते हैं और ये घास के मैदानों और चरागाहों से भी भिन्न होते हैं। वन मनुष्य और प्राकृतिक जगत के लिए महत्वपूर्ण हैं। मनुष्यों के लिए, वनों के पास कई सौंदर्यशास्त्र, मनोरंजक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्य हैं। वन ईंधन, लकड़ी, इमारती लकड़ी, वन्य जीवन, आवास, उद्योगों के लिए कच्चा माल, औषधियाँ, वन उत्पाद आदि प्रदान करते हैं और जलवायु और मिट्टी को भी नियंत्रित करते हैं। भौगोलिक संरचना के आधार पर वनों को निम्नलिखित में वर्गीकृत किया जा सकता है:

**A. उष्णकटिबंधीय आर्द्र सदाबहार वन**

ये भारत के विशिष्ट वर्षा वन हैं, जहाँ वार्षिक वर्षा 250 सेमी से ऊपर होती है और औसत वार्षिक तापमान 27°C होता है। इन वनों में शुष्क मौसम बहुत ही संक्षिप्त अवधि का होता है। भारत के कुछ हिस्से जैसे पश्चिमी घाट, कर्नाटक के कुछ हिस्से (अनामलाई पहाड़ियाँ, कूर्ग, मैसूर पठार), असम की कछार और ब्रह्मपुत्र घाटी और भारत के अंडमान-निकोबार द्वीप समूह इस श्रेणी में आते हैं।

**B. उष्णकटिबंधीय नम अर्ध-सदाबहार वन**

ये वन सदाबहार और पर्णपाती वनों के बीच के हैं जहां वार्षिक वर्षा 200-250 से.मी के बीच होती है और औसत वार्षिक तापमान 26°C होता है। कुछ पेड़ सर्दियों और वसंत ऋतु में थोड़े समय के लिए अपनी पत्तियाँ गिराते हैं। भारत के कुछ हिस्से जैसे पश्चिमी घाट, ऊपरी असम के हिस्से, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और अंडमान इस श्रेणी में आते हैं।

**C. उष्णकटिबंधीय नम-पर्णपाती वन**

उष्णकटिबंधीय नम पर्णपाती वन उन स्थानों पर पाए जाते हैं जहां वार्षिक वर्षा 150-200 सेमी और सूखे की अवधि 1-2 महीने होती है। ये वन पश्चिमी घाट के पूर्वी हिस्से, छोटा नागपुर, खासी पहाड़ियों और हिमालय की

तलहटी के साथ एक संकीर्ण बेल्ट में वितरित हैं। प्रमुख प्रजातियों के आधार पर, वे आम तौर पर 3 प्रकार के होते हैं: चंदन, सागौन और साल वन।

**D. तटीय एवं दलदली वन**

इन वनों को 3 श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: समुद्र तट, ज्वारीय और मीठे पानी के दलदली वन। समुद्रतटीय वन: ये वन रेतीले समुद्री तटों और नदी डेल्टा के रेतीले मैदानों के पास पाए जाते हैं। ज्वारीय वन: ये वन विभिन्न नदियों के डेल्टाओं, तट के किनारे खाड़ियों और द्वीपों के दलदली किनारों पर उगते हैं। मीठे पानी के दलदली वन: ये वन गड्ढों में उगते हैं जहाँ वर्षा का पानी या उफनती नदी का पानी कुछ अवधि के लिए एकत्र हो जाता है। इन जंगलों में हाथी घास (टाइफा प्रजाति) काफी आम है।

**E. उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन**

ये भारत की कुल भूमि का लगभग 40% भाग कवर करते हैं, जहाँ वार्षिक वर्षा 75-125 सेमी पाई जाती है। शुष्क मौसम लगभग 6 महीने तक चलता है। ये हिमालय की तलहटी से लेकर सुदूर दक्षिण तक (पश्चिमी घाट, राजस्थान, कश्मीर, बंगाल और अन्य पूर्वी राज्यों को छोड़कर) फैले हुए हैं।

**F. उष्णकटिबंधीय कांटेदार वन**

ये वन चट्टानी धरातल पर पाए जाते हैं जहाँ वार्षिक वर्षा 25-75 सेमी तक होती है। इन वनों की वनस्पति में बबूल और यूफोर्बिया जैसे कांटेदार पौधों का प्रभुत्व है । ये वन पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, दिल्ली, उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड भाग, मध्य प्रदेश के कुछ भागों, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में बहुतायत में हैं।

**G. उष्णकटिबंधीय शुष्क सदाबहार वन**

इन वनों में लौटते मानसून के कारण वर्षा होती है। ये वन आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में पाए जाते हैं।

**H. मोंटेन उपोष्णकटिबंधीय वन**

ये उष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण वनों के बीच मध्यवर्ती हैं और इसलिए, दोनों प्रकार की मिश्रित वनस्पति प्रदर्शित करते हैं। ये तीन उप-प्रकारों में विभाजित हैं।

**चौड़ी पत्तियों वाले पर्वतीय वन:** दक्षिण की नीलगिरि और पलनी पहाड़ियाँ, महाबलेश्वर और महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्र, राजस्थान में माउंट आबू, मध्य प्रदेश में पचमढ़ी, बिहार में पारसनाथ, पश्चिम बंगाल में कलिम्पोंग और दार्जिलिंग।

**चीड़ के जंगल:** हिमालय की तलहटी और पूर्व में खासी, नागा, मणिपुर और लुशाई पहाड़ियाँ।

**शुष्क सदाबहार वन:** शिवालिक पहाड़ियाँ, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और जम्मू और कश्मीर।

**I. मोंटेन शीतोष्ण वन**

ये वन उत्तर और दक्षिण भारत की पहाड़ियों में 1700 मीटर की ऊंचाई पर विकसित होते हैं। ये आर्द्र वन नहीं हैं और तीन प्रकार के होते हैं:

**पर्वतीय आर्द्र शीतोष्ण वन:** ये उत्तर और दक्षिण दोनों क्षेत्रों में पाए जाते हैं। दक्षिणी आर्द्र शीतोष्ण वनों को शोल कहा जाता है। ये तमिलनाडु और केरल दोनों की नीलगिरि, अन्नामलाई, पलनी, तिन्नवेल्ली पहाड़ियों में होते हैं।

**हिमालयी नम शीतोष्ण वन:** पश्चिमी और मध्य हिमालय.

**हिमालयी शुष्क शीतोष्ण वन:** हिमालयी शुष्क शीतोष्ण वन

**J. उप-अल्पाइन वन**

ये पूरे हिमालय में टिम्बर लाइन तक पाए जाते हैं। ये पश्चिम में लद्दाख से लेकर पूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक फैले हुए हैं। यहां वार्षिक वर्षा 65 सेमी से कम होती है। वर्ष में कई सप्ताह तक बर्फबारी होती है। इनमें दो प्रकार के वन हैं: सिल्वर फ़िर-बिर्च वन और बिर्च-रोडोडेंड्रोन वन।

**K. अल्पाइन वन**

ये हिमालय में टिम्बर लाइन के ऊपर और हिम रेखा तक पाए जाते हैं। इन वनों में वर्षा लगभग अनुपस्थित होती है तथा हिमपात आम बात है। वनस्पति को आमतौर पर एल्फिन स्क्रब (छोटे तने; शाखाएं मिट्टी से निकलती हैं और जमीन के साथ रेंगती हैं और उलझे हुए समूह बनाती हैं) के रूप में जाना जाता है। इस वनस्पति को चार प्रकारों में विभाजित किया गया है: नम अल्पाइन स्क्रब, शुष्क अल्पाइन स्क्रब, अल्पाइन पथरीले रेगिस्तान और अल्पाइन घास के मैदान।

**L. रेगिस्तानी वनस्पति**

ये वन ऐसे क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ वर्षा कम, असामान्य और अनियमित (10 सेमी) होती है। वनस्पति आवरण बहुत विरल होता है और वनस्पति कांटेदार प्रकार की होती है। प्राकृतिक वनस्पति खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरिया) जैसे पेड़ों की उत्पादकता में योगदान करती है।

## 1.4.2 खनिज स्रोत

जैसा कि हम जानते हैं कि खनिज प्रकृति में उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण भूमि संसाधन हैं, जो न केवल पृथ्वी का आवश्यक हिस्सा हैं बल्कि विभिन्न जीवों के लिए ऊर्जा का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं। खनिजों के बिना इस ग्रह पर जीवन संभव नहीं है। खनिज संसाधनों को मोटे तौर पर उन तत्वों, रासायनिक यौगिकों, खनिजों या चट्टान के रूप में परिभाषित किया जाता है जो एक स्थायी वस्तु प्राप्त करने के लिए निकाले जा सकते हैं। खनिजों की उत्पत्ति और वितरण का जीवमंडल के इतिहास और संपूर्ण भूगर्भिक चक्र से गहरा संबंध है। भूगर्भिक चक्र का लगभग हर पहलू और प्रक्रिया कुछ हद तक खनिजों की स्थानीय सांद्रता के उत्पादन में शामिल है। कुछ खनिज तत्व मानव सहित सभी जीवों, पौधों और जानवरों के शरीर के निर्माण और कार्यकरण के लिए आवश्यक हैं। आप इकाई 2 में खनिज संसाधनों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

## 1.4.3 कृषि भूमि/कृषि संसाधन

कृषि भूमि एक और सबसे महत्वपूर्ण भूमि संसाधन है जो लाखों लोगों की आवश्यकता को पूरा करती है। लोग भोजन, चारे और आर्थिक विकास के लिए सीधे फसलों पर निर्भर हैं। कृषि भूमि में अनुकूलित फसलों के उत्पादन के लिए उपयोग किए जाने वाले क्षेत्र शामिल हैं। फसल भूमि को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: खेती योग्य और गैर खेती योग्य। खेती योग्य फसल भूमि में पंक्तिबद्ध फसलें या पास-पास उगाई जाने वाली फसलें और साथ ही अन्य खेती वाली फसल भूमि शामिल होती है, उदाहरण के लिए, घास भूमि या चरागाह भूमि जो पंक्तिबद्ध या पास-पास उगाई जाने वाली फसलों के साथ चक्र में होती है। गैर-खेती वाली फसल भूमि में स्थायी चारा भूमि और बागवानी भूमि शामिल हैं। 2007 की राष्ट्रीय संसाधन सूची के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में

357,023,500 एकड़ फसल योग्य भूमि है, जिसमे फैली फसल से अमेरिका के लिए अधिकांश भोजन और फाइबर का उत्पादन होता है और अन्य देशों को निर्यात किया जाता है। "आहार का लगभग 80% भाग, एक दर्जन से भी कम पौधों की प्रजातियों के बीजों द्वारा प्रदान किया जाता है।" पिछले कुछ वर्षों में मनुष्य ने फसल उत्पादन की मात्रा और विविधता बढ़ाने के लिए नई मशीनों और तकनीकों का आविष्कार किया है। भूमि संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार भूमि को उनकी गुणवत्ता के आधार पर निम्नानुसार (तालिका 2) वर्गीकृत किया जा सकता है।

**तालिका 2: फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त भूमि संसाधनों की वैश्विक उपलब्धता और गुणवत्ता**

| **क्र.सं.** | **भूमि की गुणवत्ता** | **खेती योग्य भूमि (अरब हेक्टेयर)** | **घास का मैदान और वुडलैंड पारिस्थितिकी तंत्र (अरब हेक्टेयर)** | **वन भूमि (अरब हेक्टेयर)** | **अन्य भूमि (अरब हेक्टेयर)** | **कुल (अरब हेक्टेयर)** |
|---|---|---|---|---|---|---|
| **1** | प्रधान भूमि | 0.4 | 0.4 | 0.5 | 0.0 | 1.3 |
| **2** | अच्छी भूमि | 0.8 | 1.1 | 1.1 | 0.0 | 3.1 |
| **3** | सीमांत भूमि | 0.3 | 0.5 | 0.3 | 0.0 | 1.1 |
| **4** | अनुपयुक्त | 0.0 | 2.6 | 1.8 | 3.4 | 7.8 |
| **कुल** | | 1.5 | 4.6 | 3.7 | 3.4 | 13.3 |

आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अप्रैल 2000).

भारतीय संदर्भ में 2004-2010 के दौरान, कुल सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 2004-05 में 15.90%, 2005-06 में 15.30%, 2006-07 में 14.50%, 2007-08 में 13.90%, 2008-09 में 13.20%, और 2009-10 में 12.80% था। अतः भारत की जीडीपी में कृषि व्यवस्था का बड़ा योगदान दिखता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 118.8 मिलियन कृषक थे (ऐग्रिकल्चरल स्टटिस्टिक्स  ऐट ए ग्लैन्स-2022, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अप्रैल 2000)। यह भी अनुमान लगाया गया कि, कुल जनसंख्या में से लगभग 54.6% अपनी वित्तीय वृद्धि के लिए फसल भूमि संसाधनों पर निर्भर हैं।

## 1.4.4 जल संसाधन

यह सर्वविदित है कि पानी जीवन का आवश्यक स्रोत है, मानव शरीर में लगभग 70% पानी होता है। जल जीवन का अमृत है और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जल संसाधनों पर बहुत संकट है। इस ग्रह पर पीने का पानी प्रचुर मात्रा में नहीं है। अतः भूमि संसाधनों में जल सबसे महत्वपूर्ण है। भूमि सभी जीवित और निर्जीव घटकों को आधार प्रदान करती है, संपूर्ण जीवित घटकों को परिवारों और समूहों के रूप में स्थापित किया गया है जो आसपास की भूमि का बिल्कुल निःशुल्क उपयोग करते हैं। कोई भी प्राकृतिक भूमि संसाधनों का शुल्क नहीं देता। जीवित प्राणियों को सतह क्षेत्र प्रदान करने के साथ, भूमि अपनी गोद में निर्जीव घटक के रूप में विभिन्न प्रकार के संसाधन जैसे पानी, खनिज, मिट्टी आदि रखती है। जल संसाधन भूमि की सतह के साथ-साथ भूमि के अंदरूनी हिस्से में भी भूजल के

रूप में प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। इस ग्रह पर भूमि के अस्तित्व के कारण सभी नदियाँ स्वतंत्र रूप से बह रही हैं। जैसा कि हम अच्छी तरह से जानते हैं कि ताजे पानी के रूप में पानी की बहुत कम मात्रा मौजूद होती है, जिसका सेवन सीधे मनुष्य करता है। पृथ्वी की सतह का लगभग 70.8% भाग मुख्यतः महासागर के रूप में पानी से ढका हुआ है। अनुमान है कि जलमंडल में लगभग 1360 मिलियन घन किमी पानी है। इसमें से लगभग 97% महासागरों और अंतर्देशीय समुद्रों में है, जहां उच्च नमक मात्रा इसे मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त बनाती है।

चूंकि पानी भूदृश्य से होकर बहता है, इसलिए, भूमि की सतह की स्थिति पानी के प्रवाह और गुणवत्ता को प्रभावित करती है। भूमि की सतह की स्थिति को किसी भी स्थान पर भूमि उपयोग के प्रकार, मिट्टी, वहां मौजूद जलवायु और इलाके की स्थितियों के आधार पर पहचाना जा सकता है। जल संसाधनों पर प्रभाव को जल उपज (औसत वार्षिक प्रवाह), बाढ़ (चरम निर्वहन और पानी की सतह की ऊंचाई), भूजल (रिचार्ज और पंपिंग), प्रदूषण (घटक सांद्रता और भार), और तलछट (कटाव की दर, तलछट परिवहन और जमाव) द्वारा मापा जा सकता है। इस प्रकार भूमि और जल संसाधनों के बीच संबंध को दो अक्षों यानी भूमि विशेषताओं और जल विशेषताओं पर देखा जा सकता है। ये दोनों विशेषताएँ आपस में जुड़ी हुई हैं। भूमि की विशेषताएँ समय में अपेक्षाकृत निश्चित और स्थानिक रूप से व्यापक होती हैं। पानी की विशेषताएँ स्थानिक रूप से केंद्रित होती हैं, जैसे धारा प्रवाह या पानी की गुणवत्ता के माप के बिंदुओं पर।

## 1.4.5 मृदा संसाधन

आधार-स्तर (सब्सट्रेटम) महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह जीवों को रहने के लिए स्थान, संलग्न होने के लिए आधार, भोजन प्राप्त करने के क्षेत्र, आश्रय स्थल आदि प्रदान करता है। आधार-स्तर रंगों को प्रभावित करता है, जिससे अनुकरण (मिमिक्री) उत्पन्न होता है – यह एक पारिस्थितिक-सुरक्षात्मक घटना है। यह सामान्य अवलोकन का विषय है कि जीवित जीव एक विशेष प्रकार के आधार-स्तर के प्रति बहुत विशिष्ट पसंद, नापसंद, प्राथमिकताएं या एक प्रकार का विकर्षण दिखाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश मामलों में आधार-स्तर (सब्सट्रेटम) जीवों के आवास का मूलभूत हिस्सा है; इसलिए सब्सट्रेटम जीवों की अधिकांश जैविक और व्यवहारिक गतिविधियों से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह केवल खड़े होने का आधार नहीं है, बल्कि सामान्य रूप से अस्तित्व का आधार है।

मिट्टी पृथ्वी की अत्यधिक सामान्यीकृत ऊपरी सतह या परत का एक सामान्य नाम है, जो सभी जीवित स्थलीय जैविक घटकों के सबसे घनिष्ठ संपर्क में आती है। यह एक गतिशील प्रणाली है जो विशेष रूप से हमारे पारिस्थितिकी तंत्र के अभिन्न अंग के रूप में जीवमंडल के उत्पादकों और उपभोक्ताओं को बनाए रखने में सक्षम है।

a) **परिभाषा:** मिट्टी हमारे स्थलीय पर्यावरण की सबसे ऊपरी परत है, जो चट्टानों के अपक्षय से बनती है। यह ह्यूमस, अकार्बनिक सामग्री और कार्बनिक मलबे का मिश्रण है जो वनस्पति के विकास और जीवित जानवरों के लिए आवास के लिए भूमि पर एक सतह प्रदान करता है। यह जैविक और अजैविक कारकों के तुरंत संपर्क में आता है। एक प्रसिद्ध रूसी मृदा वैज्ञानिक/पेडोलॉजिस्ट, डोकुचायेव, (1889) के

अनुसार, "मिट्टी मूल चट्टानों, जलवायु, स्थलाकृति, पौधों, जानवरों और भूमि की उम्र के कार्यों तथा पारस्परिक प्रभावों का परिणाम है।" इसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है:

मृदा = (भूविज्ञान + पर्यावरण + जैविक क्रियाएँ) x समय

b) **मृदा निर्माण:** प्रकृति को मूल चट्टान प्रणाली से मिट्टी की ऊपरी परत का एक इंच बनाने में लगभग दो सौ साल लगते हैं। मृदा निर्माण काफी जटिल प्रक्रिया है। यह जैविक और अजैविक दोनों घटकों द्वारा साझा किया जाता है, जिसमें अजैविक कारक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। भूमि की सतह पर प्रकाश, तापमान, पानी, हवा, टूट-फूट, भूवैज्ञानिक गतिविधियों की सह-क्रिया और अंतर-क्रिया संचयी रूप से विखंडन की प्रक्रिया को जन्म देती है। इसे बढ़ती वनस्पति, जीव-जंतु, उनके क्षय और उत्तराधिकार द्वारा जोड़ा जा सकता है, इन सभी से मिट्टी का निर्माण होता है। इस दूसरे चरण को संक्षारण कहा जाता है। यह ऑक्सीकरण, अपचयन, जल अपघटन, जलयोजन, सल्फोनेशन, कार्बोनेशन आदि की प्रक्रिया है। तीसरा चरण इसमें कार्बनिक पदार्थ जोड़ना है। इस प्रकार धीरे-धीरे मिट्टी अपना सर्वोत्तम स्वरूप प्राप्त कर लेती है। हालाँकि, व्यवस्थित रूप से कहें तो मिट्टी निर्माण की प्रक्रिया को आमतौर पर दो प्रमुख चरणों में विभाजित किया जाता है।

c) अपक्षय- यह बड़ी जटिल चट्टानों को छोटी इकाइयों और धूल में तोड़ना है। अपक्षय प्रक्रिया भौतिक के साथ-साथ रासायनिक भी हो सकती है और वास्तव में यह शीतलन, हिमीकरण और हिमनद, क्षरण और संक्षारण और विघटन का संयोजन है। इन गतिविधियों को जलयोजन, हाइड्रोलिसिस, ऑक्सीकरण-अपचयन, कार्बोनेशन, केलेशन आदि जैसी रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा साथ-साथ मदद मिलती है।

d) पेडोजेनेसिस या मृदा विकास– इसमें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं, सह-क्रियाओं, अंतःक्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के माध्यम से जलवायु संबंधी, जैविक और अन्य अजैविक कारकों के संयुक्त प्रभाव के कारण चट्टान सामग्री के कच्चे रूपों में परिवर्तन शामिल हैं। वास्तव में पेडोजेनेसिस मूल रूप से लाइकेन, शैवाल, कवक, बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ, कीड़े, मोलस्क, एनेलिड्स आदि की जैविक गतिविधियों का लेखा-जोखा है जो अपनी विभिन्न जैविक आवश्यकताओं जैसे कि भोजन संश्लेषण, ट्रेस सूक्ष्म पोषक तत्व की व्युत्पत्ति और प्रजनन गतिविधियों के लिए बड़े मूल चट्टान सामग्री या भागों का उपयोग करते हैं। ये सभी गतिविधियाँ धीरे-धीरे कच्ची मिट्टी के अवयवों की भौतिक और रासायनिक प्रकृति को बदल देती हैं।

अंततः ह्यूमस निर्माण जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ जोड़ने से यह एक पूर्ण संतुलित मिट्टी में परिवर्तित हो जाती है, जिसकी हमें अपने बुनियादी कृषि उद्देश्य के लिए आवश्यकता होती है। कोलाइडल कॉम्प्लेक्स का जुड़ना मिट्टी के निर्माण की वह घटना है जो उसमें रहने वाले जीवों द्वारा की जाती है। इस दौरान आंशिक रूप से विघटित पदार्थ जिसे ह्यूमस के नाम से जाना जाता है, बनता है और भूमि की सतह के साथ सजातीय रूप से मिश्रित हो जाता है। वैक्समैन (1936) के अनुसार, ह्यूमस और कोलाइडल कॉम्प्लेक्स के मिश्रण के परिणामस्वरूप मिट्टी अपने सर्वोत्तम रूप में बनती है। यही कारण है कि मिट्टी के ह्यूमस और कोलाइडल परिसरों को मिट्टी का हृदय और आत्मा कहा जाता है।

ये सभी गतिविधियाँ कोलाइडल मृदा परिसर बनाती हैं । मृदा परिसर के विभिन्न घटकों को इस प्रकार समूहीकृत किया जा सकता है:

(i) खनिज, (ii) मृदा जल, (iii) मृदा वायु, (iv) मृदा कार्बनिक पदार्थ और (v) मृदा जीव (मिट्टी का बायोटा) मिट्टी की भौतिक प्रकृति उसके घटकों के आकार, उसकी बनावट और संरचनापर निर्भर करती है। बनावट कणों के आकार से निर्धारित होती है और संरचना इन कणों के एकत्रीकरण और उनके वितरण पर निर्भर करती है। आकार के आधार पर मिट्टी में निम्नलिखित प्रकार के कण होते हैं:

**तालिका 3: मिट्टी के कण और उनका आकार**

| क्र.सं. | कण | कण आकार |
|---|---|---|
| **1** | पत्थर और बजरी का आकार | 2.0 मिमी से अधिक |
| **2** | मोटा रेत | 0.20 –2.00 mm |
| **3** | महीन रेत | 0.02 –0.20 mm |
| **4** | गाद | 0.002 –0.02 mm |
| **5** | चिकनी मिट्टी | 0.02 |

**a)** मृदा प्रोफ़ाइल: मृदा प्रोफ़ाइल मिट्टी का एक ऊर्ध्वाधर क्रॉस-सेक्शन है, जो सतह के समानांतर चलने वाली परतों से बना होता है। यह अलग-अलग गहराई पर मिट्टी की विभिन्न परतों/स्तरों को दर्शाता है। परत/प्रोफ़ाइल निर्माण की यह प्रक्रिया अधुनातन, कुछ दशक या बहुत प्राचीन कहें तो हजारों वर्षों की सकती है । यह मुख्य रूप से जलवायु, विशिष्ट भूवैज्ञानिक उन्नयन और मिट्टी के जैविक समुदायों की गतिविधियों से प्रभावित होता है। मिट्टी की रूपरेखा केवल कुछ फीट गहरी परत प्रणाली है जिसमें अलग-अलग रंग और कभी-कभी विभिन्न घटक भी होते हैं। मृदा प्रोफ़ाइल कवर की गई विभिन्न मिट्टी परतों (क्षितिज) का क्रम और प्रकृति है। मृदा प्रोफ़ाइल को आम तौर पर निम्नलिखित पाँच क्षितिजों में विभाजित किया गया है:

| | |
|---|---|
| O- क्षितिज | अवक्रमित जैविक मलबा (जैविक क्षितिज) |
| Oi- जोन | अविघटित पदार्थ |
| Oe- जोन | आंशिक रूप से विघटित |
| A- क्षितिज | खनिज मिट्टी की परत |
| A1- जोन | ह्यूमस से भरपूर गहरे रंग की परत |
| A2- जोन | खनिज एवं ह्यूमस की कमी वाली परत |
| B- क्षितिज | खनिज परत |
| C- क्षितिज | अपक्षयित/टूटी हुई चट्टान और इसमें कोई जैविक सामग्री |
| R- क्षितिज | जनक चट्टान |

**O- क्षितिज:** इसमें ताजा या केवल आंशिक रूप से विघटित कार्बनिक पदार्थ होते हैं और इसकी अधिकांश भौतिक-रासायनिक विशेषताएं अत्यधिक परिवर्तनशील होती हैं. यह क्षितिज अत्यंत गतिशील एवं जैविक गतिविधियों से परिपूर्ण है। O-क्षितिज में निम्नलिखित उपविभाग शामिल हैं:

**Oi जोन:** यह सबसे ऊपरी परत है जिसमें ताजी गिरी हुई पत्तियाँ, मृत जानवर, फल आदि होते हैं। इसमें कोई भी विघटित पदार्थ नहीं होता है।

**Oe जोन:** यह Oi जोन के ठीक नीचे है, जिसमें कार्बनिक पदार्थ का अपघटन शुरू हो गया है। इसलिए इस परत में आंशिक रूप से विघटित कार्बनिक पदार्थ और छोटे कीट, कवक और बैक्टीरिया आदि की जैविक आबादी शामिल है जो कार्बनिक पदार्थ के अपघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह परत अपघटन की विभिन्न चरणों में मलबे और डफी पदार्थों से बनी होती है।

**A-क्षितिज:** यह पहली खनिज परत है और संचित कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध है। यह क्षेत्र विभिन्न घुलनशील लवणों, चिकनी मिट्टी, लोहे आदि की गिरावट को भी दर्शाता है और आमतौर पर इस क्षेत्र की निचली परतें सिलिका जैसे घटकों से समृद्ध होती हैं। इस परत को निक्षालन क्षेत्र या अधोमुखी हानि की परत भी कहा जाता है। इस क्षेत्र को निम्नलिखित दो उप क्षेत्रों में विभाजित किया गया है:

**A1 जोन:** यह परत गहरे रंग की और कार्बनिक पदार्थों से भरपूर होती है । इस क्षेत्र में अनाकार और सूक्ष्म रूप से विभाजित कार्बनिक पदार्थ खनिज पदार्थ के साथ मिश्रित हो जाते हैं। यह सबसे समृद्ध ह्यूमस पदार्थ का क्षेत्र है। कभी-कभी इसे ह्यूमिक परत भी कहा जाता है।

**A2 जोन:** इस क्षेत्र में आमतौर पर हल्के रंग का कच्चा खनिज पदार्थ पाया जाता है और इसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम होती है।

**B- क्षितिज:** यह मिट्टी का खनिज परत है, जो - ए होराइजन के ठीक नीचे है और यह मिट्टी और ह्यूमस के साथ-साथ लौह, एल्यूमीनियम यौगिकों आदि से समृद्ध है।

**C- क्षितिज:** यह मुख्य रूप से अपक्षयित या टूटी हुई मूल चट्टान सामग्री से बना है और बनावट में ढीला है।

**R- क्षितिज:** यह परत कठोर आधारशिला (अपरिवर्तित मूल चट्टान) से बनी है जिससे मिट्टी का निर्माण हुआ है।

**जानवरों के संबंध में मिट्टी:** जानवरों के वितरण और उनके अनुकूलन में महान विविधता मुख्य रूप से मिट्टी की प्रकृति के कारण है। उदाहरण के लिए, एक कठोर सब्सट्रेटम कृंतकों, चूहों, खरगोशों, केंचुओं आदि के लिए बेहतर चलने की जगह प्रदान करता है, लेकिन बिल बनाने में बाधा उत्पन्न करता है। इसमें जल धारण क्षमता और ह्यूमस कम होता है।

## 1.5 पृथ्वी पर भूमि संसाधनों का इतिहास

ऋग्वेद के अनुसार उर्वरता के आधार पर मिट्टी दो प्रकार की होती है पहली उत्पादक और दूसरी अनुत्पादक मिट्टी (Sharma, 1991)। अमरकोश (लगभग 400 ईसा पूर्व) (Jha, 1999) ने भूमिवर्ग पर अपनी विषयवस्तु में मिट्टी की उर्वरता, सिंचाई और भौतिक विशेषताओं के आधार पर 12 प्रकार की भूमि का वर्णन किया है। अमरकोष ने मिट्टी का वर्गीकरण इस प्रकार किया है: उर्वरा (उपजाऊ), उषारा (बंजर), मरू (रेगिस्तान), अप्रहता (परती), शादवला (घासयुक्त), पनकीकला (कीचड़युक्त), जलप्रयाह (पानीदार), कच्चाहा (पानी से सटी हुई भूमि), शार्करावती ( रेतीली), शरकारा (कंकड़ों और चूना पत्थर के टुकड़ों से भरी हुई), नदीमात्रुका (नदी से सिंचित भूमि), और देवमात्रुका (वर्षा आधारित)। वैश्यवर्ग अध्याय में विशिष्ट फसलों के लिए उपयुक्तता के आधार पर

मिट्टी का उल्लेख किया गया है। सुरपाल के वृक्षायुर्वेद (लगभग 1000 ई.) (Sadhale, 1996) में तीन प्रकार की भूमि का उल्लेख है - जांगला (शुष्क), अनुपा (दलदली), और समान्य (साधारण) - जिसे रंग के आधार पर काले, सफेद, हल्के, लाल, पीला गहरे लाल, और स्वादानुसार मीठा, खट्टा, नमकीन, तीखा, कड़वा और कसैला में विभाजित किया गया है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कौटिल्य के दिनों से ही पूरे भारत में क्यूकर्बिट (खीरे, कद्दू) की खेती के लिए नदी तल का उपयोग पूरे भारत में सबसे सतत भूमि उपयोग प्रथाएँ में से एक रहा है।.

## 1.6 भारत में भूमि संसाधन

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 328 मिलियन हेक्टेयर है। एग्रीकल्चरल स्टैटिस्टिक्स एट ए ग्लासेंस, 2022 (कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार) में रिपोर्ट किए गए आंकड़ों के अनुसार, 2019-20 में भूमि उपयोग के लिए लगभग 306.54 मिलियन हेक्टेयर की सूचना दी गई है। 306.54 मिलियन हेक्टेयर भूमि में से, 71.75 मिलियन हेक्टेयर वनभूमि के रूप में घोषित है, 44.32 मिलियन हेक्टेयर खेती के लिए उपलब्ध नहीं है (27.78 मिलियन हेक्टेयर गैर-कृषि उपयोग के लिए और 16.54 मिलियन हेक्टेयर बंजर और गैर-कृषि योग्य भूमि)। अन्य बंजर भूमि में, परती भूमि यानी 25.56 मिलियन हेक्टेयर को छोड़कर, 10.48 मिलियन हेक्टेयर स्थायी चारागाह और अन्य चरागाह भूमि है, 3.13 मिलियन हेक्टेयर का उपयोग विविध वृक्ष फसलों और खांचों के लिए किया जा रहा है जबकि 11.95 मिलियन हेक्टेयर का उपयोग सांस्कृतिक बंजर भूमि के लिए किया जा रहा है। । उपलब्ध परती भूमि 25.01 मिलियन हेक्टेयर है, इस भूमि क्षेत्र में से 11.24 मिलियन हेक्टेयर भूमि का उपयोग वर्तमान परती के अलावा परती भूमि के रूप में किया जा रहा है और 13.77 मिलियन हेक्टेयर भूमि का उपयोग वर्तमान परती के रूप में किया जा रहा है, इस प्रकार 139.90 मिलियन हेक्टेयर शुद्ध बोया गया क्षेत्र है और सीधे फसल उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है। भारत का कुल भूमि क्षेत्रफल विश्व का 2.43% है, लेकिन यह विश्व की 17.81% से अधिक जनसंख्या का समर्थन करता है। इस प्रकार प्रति व्यक्ति भूमि उपलब्धता केवल 0.48 हेक्टेयर है, जबकि पूर्व यूएसएसआर में 8.43 हेक्टेयर और चीन में 0.98 हेक्टेयर है । प्रमुख भूमि उपयोग श्रेणियां और बंजर भूमि का आकाशीय अनुमान इस प्रकार है:

**तालिका 4: भारत में बंजर भूमि का आकाशीय अनुमान**

| क्र.सं. | श्रेणियाँ | क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर) |
|---|---|---|
| 1 | नमक प्रभावित भूमि | 3.99 |
| 2 | ऊबड़-खाबड़ या बीहड़ भूमि | 6.73 |
| 3 | झाडियों सहित या बिना झाडियों वाली अप्रयुक्त भूमि | 11.74 |
| 4 | झूम और वन रिक्त क्षेत्र | 6.24 |
| 5 | रेतीला इलाका | 13.94 |
| 6 | बंजर पहाड़ी चोटी | 2.70 |
| 7 | बर्फ से ढका या हिमाच्छादित क्षेत्र | 10.07 |
| | कुल | 55.41 |
| | राज्य क्षेत्रफल का % - | 16.85% |

## 1.7 भूमि संसाधनों का महत्व

भूमि कोई 'उत्पादित' या मानव निर्मित संसाधन नहीं है; इसलिए, हमें इसका उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य प्रकृति को सुधारने और संशोधित करने का प्रयास करता है, लेकिन वह इस पर पूरी तरह से कब्ज़ा नहीं कर सकता। खराब मिट्टी और खराब जलवायु औद्योगिक और वाणिज्यिक समृद्धि के रास्ते में बड़ी बाधाएं हैं। उत्पादन के कारक के रूप में भूमि का अत्यधिक महत्व है। हम जो कुछ भी उपयोग करते हैं वह अंततः जमीन पर पाया जा सकता है। भूमि को उचित ही समस्त भौतिक संपदा का मूल स्रोत कहा जा सकता है। किसी देश की आर्थिक समृद्धि उसके प्राकृतिक संसाधनों की समृद्धि से गहराई से जुड़ी होती है। सामान्यतः यह कहना सत्य है कि कोई भी देश वैसा ही होता है जैसा प्रकृति ने उसे बनाया है। यह संभव है कि प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध कोई देश कुछ प्रतिकूल कारकों के कारण गरीब रह सकता है (उदाहरण के लिए, भारत)। लेकिन अगर प्रकृति निर्दयी रही है और उसने किसी देश को समृद्ध संसाधन नहीं दिए हैं, तो उसे समृद्ध बनाना आसान नहीं होगा।

जाहिर है, किसी देश में कृषि संपदा की गुणवत्ता और मात्रा मिट्टी की प्रकृति, जलवायु और वर्षा पर निर्भर करती है। कृषि उत्पाद, बदले में, व्यापार और उद्योग का आधार बनते हैं। औद्योगिक समृद्धि समृद्ध कोयला-खदानों या झरनों की उपस्थिति पर निर्भर करती है जिनसे बिजली उत्पन्न की जा सकती है। उद्योग का स्थानीयकरण बिजली और कच्चे माल की निकटता पर निर्भर करता है और वे काफी हद तक प्रकृति द्वारा निर्धारित होते हैं। परिवहन के सस्ते और कुशल साधनों की उपस्थिति काफी हद तक किसी देश की स्थलाकृति पर निर्भर करती है। इस प्रकार, आर्थिक जीवन के सभी पहलू-कृषि, व्यापार और उद्योग-आम तौर पर प्राकृतिक संसाधनों से प्रभावित होते हैं जिन्हें अर्थशास्त्री 'भूमि' कहते हैं। लोगों के जीवन, व्यवसाय और जीवन स्तर को आकार देने में भूमि या प्रकृति का निर्णायक प्रभाव होता है।

### 1.7.1 कृषि

दशकों से, कृषि आवश्यक खाद्य फसलों के उत्पादन से जुड़ी रही है। वर्तमान में कृषि से ऊपर एवं परे खेती में वानिकी, डेयरी, फलों की खेती, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम और मनमानी आदि शामिल हैं। आज, फसलों और पशुधन उत्पादों का प्रसंस्करण, विपणन और वितरण आदि सभी को वर्तमान कृषि के हिस्से के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार, कृषि को कृषि उत्पादों के उत्पादन, प्रसंस्करण, प्रचार और वितरण के रूप में संदर्भित किया जा सकता है। किसी भी अर्थव्यवस्था के संपूर्ण जीवन में कृषि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ होती है। भोजन और कच्चा माल उपलब्ध कराने के अलावा, कृषि जनसंख्या के बहुत बड़े प्रतिशत को रोजगार के अवसर भी प्रदान करती है। भूमि संसाधन के रूप में कृषि का मूल्य नीचे दिया गया है:

- आजीविका का स्रोत
- राष्ट्रीय राजस्व और सकल घरेलू उत्पाद में योगदान।
- भोजन के साथ-साथ चारे की भी आपूर्ति
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए महत्व
- विपणन योग्य अधिशेष

- कच्चे माल का स्रोत
- विदेशी मुद्रा संसाधन
- रोजगार के बेहतरीन अवसर
- खाद्य सुरक्षा

## 1.7.2 खनिज पदार्थ

खनिज संसाधन सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में से हैं जो किसी देश के औद्योगिक और आर्थिक विकास को निर्देशित करते हैं क्योंकि ये अर्थव्यवस्था के प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक क्षेत्रों को कच्चा माल प्रदान करते हैं। खनिज का उपयोग सभ्यता के युग जितना ही पुराना । खनिज मानव जाति को बुनियादी ज़रूरतें - भोजन, वस्त्र, आश्रय और ऊर्जा प्रदान करते हैं। "खनिज मनुष्य के लिए अपरिहार्य हैं। वह जो भोजन खाता है, जो कपड़े पहनता है, यहां तक कि उसका अपना शरीर भी विभिन्न प्रकार के खनिजों और या उनके लवणों से बना है। आप इकाई II में खनिज संसाधनों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

## 1.7.3 बायोमास

यूरोपीय संघ ऊर्जा पहल 2006 की एक रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया में बायोमास ऊर्जा का सबसे बड़ा उपभोक्ता अफ्रीका है। बायोमास ऊर्जा पर निर्भरता, विशेष रूप से खाना पकाने और हीटिंग के लिए, उप-सहारा अफ्रीका में सबसे मजबूत है, जहां अधिकांश आबादी के पास आधुनिक जीवाश्म ईंधन या बिजली जैसे विकल्पों तक पहुंच नहीं है, या वे इसके लिए भुगतान नहीं कर सकते हैं। जबकि बायोमास बुनियादी ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इसमें सतत विकास और ग्रामीण आजीविका में योगदान करने की क्षमता है।

## 1.7.4 जल

जल भूमि का एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन है। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि जीवन के अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है। पानी के कई उपयोगों में कृषि, औद्योगिक, घरेलू, मनोरंजक और पर्यावरणीय गतिविधियाँ शामिल हैं। वस्तुतः इन सभी मानव उपयोगों के लिए ताजे पानी की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर केवल 2.5% पानी ही ताज़ा पानी है, और इसका दो तिहाई से अधिक हिस्सा ग्लेशियरों और ध्रुवीय बर्फ की चोटियों में जमा हुआ है। दुनिया के कई हिस्सों में पानी की मांग पहले से ही आपूर्ति से अधिक है, और निकट भविष्य में कई और क्षेत्रों में इस असंतुलन का अनुभव होने की आशंका है। ऐसा अनुमान है कि दुनिया भर में पानी का 70% उपयोग कृषि में सिंचाई के लिए होता है। जलवायु और जल विज्ञान चक्र के बीच घनिष्ठ संबंध के कारण जलवायु परिवर्तन का दुनिया भर के जल संसाधनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। बढ़ती मानव आबादी के कारण पानी के लिए प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ रही है कि दुनिया के कई प्रमुख जलभृत ख़त्म होते जा रहे हैं। कई प्रदूषक जल आपूर्ति को खतरे में डालते हैं, लेकिन सबसे व्यापक, विशेष रूप से अविकसित देशों में, प्राकृतिक जल में कच्चे सीवेज का निर्वहन है।

## 1.7.5 संस्कृति

किसी भी स्थान की संस्कृति हमेशा भूमि संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करती है क्योंकि संसाधन किसी भी समाज के आसपास उपलब्ध होंगे और संस्कृति इन संसाधनों के आधार पर विकसित होती है। भूमि संसाधनों और मनुष्य के सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक, शारीरिक, आध्यात्मिक कल्याण के बीच गहरा संबंध है। ये सभी चीजें समाज में सद्भाव और संतुलन प्रदान करती हैं और परिणामस्वरूप संस्कृति का विकास होता है।

## 1.7.6 जैव विविधता

जैव विविधता भूमि का एक और अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन है। जैव विविधता को जीवित जीवों के बीच विविधता और परिवर्तनशीलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ये जैविक किस्में और परिवर्तनशीलता पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। चूँकि पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न घटक अपना व्यावसायिक कार्य कर रहे हैं और उनके बिना प्राकृतिक चक्रों को चलाने की कोई संभावना नहीं है। प्रकृति में जैव विविधता के विभिन्न महत्व हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- जैव विविधता खाद्य सुरक्षा, आहार स्वास्थ्य, आजीविका स्थिरता का समर्थन करती है।
- जैव विविधता चिकित्सा अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण संसाधन प्रदान करती है।
- जैव विविधता संक्रामक रोगों के नियमन और नियंत्रण में भूमिका निभाती है।
- समुदायों के भीतर जैव विविधता का सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व है।

## 1.7.7 अन्य महत्व

पृथ्वी का भूमि क्षेत्रफल लगभग 140 मिलियन वर्ग किमी है, जो इसकी सतह के एक तिहाई से भी कम है, फिर भी यह हमारे अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भूमि है जो:

- स्थलीय जैव विविधता और आनुवंशिक पूल को संरक्षित करता है
- जल और कार्बन चक्र को नियंत्रित करता है
- भूजल, खनिज और जीवाश्म ईंधन जैसे बुनियादी संसाधनों के भंडार के रूप में कार्य करता है
- ठोस और तरल कचरे का डंप बन जाता है
- मानव बस्तियों और परिवहन गतिविधियों का आधार बनता है
- इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ऊपरी मिट्टी, केवल कुछ सेंटीमीटर मोटी, सभी पौधों के विकास का समर्थन करती है और इसलिए मानव जाति सहित सभी जीवों के लिए जीवन समर्थन प्रणाली है।

# 1.8 भूमि संसाधनों को खतरा

भूमि हमें हमारी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के संसाधन प्रदान करती है, लेकिन अतिभारित इच्छाओं में हम भूल गए कि भूमि की एक विशिष्ट वहन क्षमता होती है। हम भूमि संसाधनों के क्षरण के बारे में सोचे बिना लापरवाही से सभी संसाधनों का उपभोग कर रहे हैं। लियोपोल्ड भूमि नीतिशास्त्र में लियोपोल्ड ने कहा कि पृथ्वी ग्रह एक नाव के रूप में कार्य कर रहा है और इसमें अमीर और गरीब दो प्रकार की नावें हैं। ये नावें अमीर और गरीब देशों की हैं और लोग नाव/देश की वहन क्षमता के आधार पर एक तरफ से दूसरी तरफ जा रहे हैं।

## 1.8.1 विश्व में भूमि सतह की स्थितियाँ

संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन का अनुमान है कि सभी उपयोग योग्य भूमि (पहाड़ों और रेगिस्तान को छोड़कर) का 23% इस हद तक खराब हो गया है कि उत्पादकता प्रभावित हुई है। इस गिरावट के मुख्य कारण हैं वनों की कटाई, ईंधन लकड़ी की खपत, अत्यधिक चराई कृषि कुप्रबंधन (अनुपयुक्त फसलें लगाना, खराब फसल चक्र, खराब मिट्टी और जल प्रबंधन, रसायनों का अत्यधिक उपयोग, ट्रैक्टर आदि भारी मशीनरी का लगातार उपयोग) उद्योगों की स्थापना और शहरीकरण.

हरित आवरण के नष्ट होने, तेज़ हवाओं, रासायनिक प्रदूषण आदि के कारण होने वाले मिट्टी के कटाव और क्षरण का पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। वे मिट्टी की प्रदूषकों के बफर और फिल्टर, जल और नाइट्रोजन चक्र के नियामक, जैव विविधता के आवास आदि के रूप में कार्य करने की क्षमता को भी प्रभावित करते हैं।

लगभग एक चौथाई भूमि अत्यधिक निम्नीकृत हो चुकी है। अन्य 8 प्रतिशत मध्यम रूप से अवक्रमित हैं, 36 प्रतिशत स्थिर या थोड़ा अवक्रमित हैं और 10 प्रतिशत को "सुधार" के रूप में स्थान दिया गया है। पृथ्वी की भूमि सतह का शेष हिस्सा या तो खाली है (लगभग 18 प्रतिशत) या अंतर्देशीय जल निकायों (लगभग 2%) से ढका हुआ है। सभी महाद्वीपों के बड़े हिस्से भूमि क्षरण का अनुभव कर रहे हैं, विशेष रूप से अमेरिका के पश्चिमी तट पर, दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के भूमध्यसागरीय क्षेत्र में, साहेल और अफ्रीका के हॉर्न में और पूरे एशिया में उच्च घटनाएं दर्ज की गई हैं। सबसे बड़ा खतरा मिट्टी की गुणवत्ता का नुकसान है, इसके बाद जैव विविधता का नुकसान और जल संसाधनों की कमी है। दुनिया की सबसे अच्छी, सबसे अधिक उत्पादक भूमि में से लगभग 1.6 बिलियन हेक्टेयर भूमि का उपयोग वर्तमान में फसलें उगाने के लिए किया जाता है। इन भूमि क्षेत्रों के कुछ हिस्सों को कृषि पद्धतियों के माध्यम से ख़राब किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप पानी और हवा का क्षरण, कार्बनिक पदार्थों की हानि, ऊपरी मिट्टी का संघनन, लवणीकरण और मिट्टी प्रदूषण और पोषक तत्वों की हानि होती है।

## सारांश

- एफएओ/यूएनईपी, (1997) या एफएओ और यूएनईपी (1997) ने भूमि और भूमि संसाधनों को पृथ्वी की स्थलीय सतह के एक क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें इस सतह के ठीक ऊपर या नीचे जीवमंडल की सभी विशेषताएं शामिल हैं, जिसमें निकट-सतह की जलवायु, मिट्टी और इलाके के स्वरूप, सतही जल

विज्ञान (उथली झीलों, नदियों, दलदलों और दलदलों सहित), निकट-सतह तलछटी परतें और संबंधित भूजल और भू-हाइड्रोलॉजिकल रिजर्व, पौधे और जानवरों की आबादी, मानव निपटान पैटर्न और भौतिक अतीत और वर्तमान मानव गतिविधि के परिणाम (छत, जल भंडारण या जल निकासी संरचनाएं, सड़कें, भवन, आदि) भी शामिल है।

- इस प्रकार परिभाषित भूमि उपयोग भूमि आवरण और उनके पर्यावरण में लोगों के कार्यों के बीच सीधा संबंध स्थापित करता है। इस प्रकार, इसे भूमि के मानव उपयोग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें भूमि की जैव-भौतिकीय विशेषताओं और भूमि के उपयोग के उद्देश्यों को शामिल करने के दोनों तरीके शामिल हैं (वेंग, 2010)।
- उपयोग के आधार पर भूमि को कुल बोया गया क्षेत्र, वन, वर्तमान परती, अन्य परती भूमि, खेती योग्य बंजर भूमि, विविध वृक्ष फसलें और उपवन, स्थायी चारागाह और चरागाह भूमि, गैर-कृषि उपयोग के तहत भूमि और बंजर और अनुपयोगी भूमि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- उपलब्धता के आधार पर, भूमि संसाधनों को वन संसाधन, खनिज संसाधन, फसल संसाधन, जल संसाधन और मृदा संसाधन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- वन संसाधन भूमि के बहुत महत्वपूर्ण संसाधन हैं और लोगों की जरूरतों को पूरा करने के साथ पारिस्थितिक कर्तव्यों का पालन करते हैं। वन मानव समाज को भोजन, आश्रय, आवरण, चारा, लकड़ी के रेशे देने के साथ पारिस्थितिकी तंत्र को विभिन्न सेवाएँ प्रदान करते हैं। वन शब्द लैटिन शब्द "फोरिस" से लिया गया है जिसका अर्थ है बाहर।
- सभी भूमि जिनका क्षेत्रफल 1 हेक्टेयर से अधिक है और जिनका छत्र घनत्व स्वामित्व और कानूनी स्थिति के बावजूद 10% से अधिक है, वन आवरण कहलाती है।
- खनिज संसाधनों को मोटे तौर पर ऐसे तत्वों, रासायनिक यौगिकों, खनिजों या चट्टान के रूप में परिभाषित किया जाता है जिन्हें एक स्थायी वस्तु प्राप्त करने के लिए निकाला जा सकता है।
- कृषि भूमि में फसल के लिए अनुकूलित फसलों के उत्पादन के लिए उपयोग किए जाने वाले क्षेत्र शामिल हैं। कृषि भूमि को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: खेती योग्य और गैर खेती योग्य।
- पानी जीवन का आवश्यक स्रोत है, मानव शरीर में लगभग 70% पानी होता है। जल जीवन का अमृत है और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जल संसाधनों पर बहुत संकट है। इस ग्रह पर पीने योग्य पानी प्रचुर मात्रा में नहीं है। अत: जल भूमि संसाधनों में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। भूमि सभी जीवित और निर्जीव घटकों को आधार प्रदान कर रही है।
- मिट्टी हमारे स्थलीय पर्यावरण की सबसे ऊपरी परत है, जो चट्टानों के अपक्षय के कारण बनती है और ह्यूमस, अकार्बनिक सामग्री और कार्बनिक मलबे का मिश्रण है जो वनस्पतियों के विकास और जीवित जानवरों के लिए आवास के लिए भूमि पर एक सतह प्रदान करती है और जैविक एवं अजैविक कारकों के तत्काल संपर्क में आता है।

- अमरकोश ने मिट्टी को उर्वरा (उपजाऊ), उषारा (बंजर), मरू (रेगिस्तान), अप्रहता (परती), शादवला (घासयुक्त), पनकीकला (कीचड़युक्त), जलप्रयाह (पानीदार), कच्चाहा (पानी से सटी हुई भूमि), शार्करावती ( रेतीली), शरकारा (कंकड़ों और चूना पत्थर के टुकड़ों से भरी हुई), नदीमात्रुका (नदी से सिंचित भूमि), और देवमात्रुका (वर्षा आधारित) में वर्गीकृत किया है। वैश्यवर्ग अध्याय में विशिष्ट फसलों के लिए उपयुक्तता के आधार पर मिट्टी का उल्लेख किया गया है।
- भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 328 मिलियन हेक्टेयर है। एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार लगभग 305.67 मिलियन हेक्टेयर भूमि उपयोग के लिए बताई गई है। 305.67 मिलियन हेक्टेयर भूमि में से, 71.75 मिलियन हेक्टेयर भूमि को वनभूमि के रूप में घोषित किया गया है, 44.32 मिलियन हेक्टेयर खेती के लिए उपलब्ध नहीं है (27.78 मिलियन हेक्टेयर गैर कृषि उपयोग के लिए और 16.54 मिलियन हेक्टेयर बंजर और बंजर भूमि)।
- अन्य बंजर भूमि में, परती भूमि यानी 25.56 एमएचए को छोड़कर, 10.48 एमएचए स्थायी चारागाह और अन्य चरागाह भूमि है, 3.13 एमएचए का उपयोग विविध वृक्ष फसलों और खांचों के लिए किया जा रहा है जबकि 11.95 एमएचए का उपयोग सांस्कृतिक बंजर भूमि के लिए किया जा रहा है। उपलब्ध परती भूमि 25.01 एमएचए है, इस भूमि क्षेत्र में से 11.24 एमएचए भूमि का उपयोग वर्तमान परती के अलावा परती भूमि के रूप में किया जा रहा है और 13.77 एमएचए भूमि का उपयोग वर्तमान परती के रूप में किया जा रहा है, इस प्रकार 139.90 एमएचए शुद्ध बोया गया क्षेत्र है और सीधे फसल उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है।
- भूमि कोई 'उत्पादित' या मानव निर्मित एजेंट नहीं है। इसलिए, इसका तात्पर्य यह है कि हमें इसे वैसे ही स्वीकार करना होगा जैसे यह है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य प्रकृति को सुधारने और संशोधित करने का प्रयास करता है। लेकिन वह इस पर पूरी तरह से महारत हासिल नहीं कर सकता. खराब मिट्टी और खराब जलवायु औद्योगिक और वाणिज्यिक समृद्धि के रास्ते में बड़ी बाधाएं हैं। उत्पादन के कारक के रूप में भूमि का अत्यधिक महत्व है।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1 रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

भारत का विशाल और विविध आकार इसका सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है। लगभग …….. भूमि क्षेत्र, जो कि मैदानी है, खेती के अवसर प्रदान करता है। पर्वतीय क्षेत्र, जो देश के सतही क्षेत्रफल का लगभग .............. है, प्राकृतिक संसाधनों के भण्डार हैं; वे अपनी प्राकृतिक सुंदरता और ……………… के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। पठारी क्षेत्र में वन और कृषि योग्य भूमि के अलावा ……………… का समृद्ध भंडार है। पहाड़ों और पठारों में उपजाऊ नदी घाटी भी है जो ……………… के लिए अनुकूल स्थान प्रदान करती है। जनसंख्या के भारी बोझ और उसकी बढ़ती मांग ने भूमि संसाधनों पर बहुत अधिक बोझ पैदा कर दिया है क्योंकि …………. में, प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता ……………… थी लेकिन समय के साथ इसमें तेजी से गिरावट आई है और अब

प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता केवल ………….. है। भूमि क्षेत्र की उपलब्धता में लगभग …………… गिरावट आ रही है। अतः यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि बढ़ती जनसंख्या भूमि की उपलब्धता के व्युत्क्रमानुपाती है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ेगी भूमि की उपलब्धता कम होगी और इसके विपरीत भी।

**2 (a)** भूमि संसाधन से आप क्या समझते हैं?

**(b)** भूमि के वर्गीकरण एवं उपयोग पैटर्न का वर्णन करें।

**3 (a)** भारत के वन संसाधनों का वर्णन करें।.

**(b)** भारत के फसल संसाधनों पर चर्चा करें।.

**4 (a)** मृदा संसाधन क्या हैं? मिट्टी की रूपरेखा को उपयुक्त चित्र सहित समझाइये।

**5 (a)** भारत के विशेष संदर्भ में भूमि संसाधनों की मात्रा एवं गुणवत्ता की व्याख्या करें।

(b) वैश्विक स्तर पर भूमि संसाधनों के महत्व पर चर्चा करें।

(c) भूमि से कृषि को होने वाले लाभों का वर्णन कीजिये।

**6 रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल ………….है, भूमि उपयोग के बारे में ………….बताया गया है। 305.67 एमएचए भूमि में से …………. वनभूमि के रूप में घोषित किया गया है, 44.32 मिलियन हेक्टेयर खेती के लिए उपलब्ध नहीं है (27.78 मिलियन हेक्टेयर गैर कृषि उपयोग के लिए और ……..बंजर और बंजर भूमि) खेती के लिए उपलब्ध नहीं है। ……………… को छोड़कर अन्य अकृषित भूमि में। 25.56 एमएचए (10.48 एमएचए ……………….. और अन्य चरागाह भूमि है और 3.13 एमएचए विविध वृक्ष फसलों और खांचे के लिए उपयोग किया जा रहा है जबकि 11.95 एमएचए सांस्कृतिक बंजर भूमि के लिए उपयोग किया जा रहा है)। उपलब्ध परती भूमि ………… है, इस भूमि क्षेत्र में से 11.24 एमएचए भूमि का उपयोग वर्तमान परती के अलावा अन्य परती भूमि के रूप में किया जा रहा है और 13.77 एमएचए भूमि का उपयोग वर्तमान परती के रूप में किया जा रहा है, इस प्रकार, ......... .. एमएचए एक शुद्ध बोया गया क्षेत्र है और इसका उपयोग सीधे फसल उत्पादन के लिए किया जाता है।

**(b)** 1951 में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता 0.89 प्रति हेक्टेयर थी (हाँ/नहीं)

**(c)** श्रेणी जिसमें सभी चरागाह भूमि-घास के मैदान शामिल हैं; रिपोर्टिंग क्षेत्र का लगभग 4% ग्राम कॉमन्स आदि के नाम से जाना जाने वाली भूमि शामिल है। (स्थायी चारागाह एवं चरागाह भूमि/अन्य परती भूमि)

**(d)** भारत के किस राज्य में सबसे बड़ा वन क्षेत्र है? (मध्य प्रदेश/तमिलनाडु)

**(e)** विश्व भूमि सतह की स्थिति स्पष्ट करें?

**7(a)**. बंजर भूमि का वर्णन करें।

**(b)** भूमि संसाधनों के इतिहास पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

**टर्मिनल प्रश्न के उत्तर**

**1(ए)** 43 %/30 प्रतिशत/पारिस्थितिकी पहलू/खनिज संसाधन/मानव सघनता/1951/0.89 प्रति हेक्टेयर/0.37 हेक्टेयर/60%

**2 (ए)** अनुभाग 1.2 देखें

**(बी)** खंड 1.1 देखें

**3 (ए)** अनुभाग 1.3.1 देखें

**(बी)** अनुभाग 1.3.3 देखें

**4 (ए)** अनुभाग 1.3.5 देखें

**5 (ए)** अनुभाग 1.5 देखें

**(बी)** खंड 1.6 देखें

**(सी)** अनुभाग 1.6.1 देखें

**6 (ए)** 328 एमएचए./305.67 एमएचए/71.75 एमएचए/44.32 एमएचए/16.54 एमएचए/ परती भूमि/स्थायी चारागाह/25.01 एमएचए/139.90 एमएचए

**(बी)** हाँ

**(सी)** स्थायी चारागाह और चरागाह भूमि

**(डी)** मध्य प्रदेश

**(ई)** अनुभाग 1.1 देखें

**7 (ए)** अनुभाग 1.5 देखें

**(बी)** खंड 1.4 देखें

# इकाई 2: खनिज संसाधन

इकाई संरचना


2.0 सीखने का उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 खनिज संसाधनों की परिभाषा

2.3 खनिज संसाधनों की उत्पत्ति

2.3.1 मैग्मैटिक अयस्क डिपाज़िट

2.3.2 जलतापीय अयस्क डिपाज़िट

2.3.3 स्ट्रेटा बाउंड अयस्क डिपाज़िट

2.3.4 तलछटी अयस्क डिपाज़िट

2.3.5 प्लेसर अयस्क डिपाज़िट

2.3.6 अवशिष्ट अयस्क डिपाज़िट

2.4 खनिज संसाधनों के प्रकार

2.4.1 धात्विक खनिज संसाधन

2.4.2 अधात्विक खनिज संसाधन

2.4.3 ईंधन/ऊर्जा खनिज संसाधन

2.5 खनिज संसाधनों का खनन

2.5.1 खनन के कारण पर्यावरणीय समस्याएँ

2.6 भारत में खनिज संसाधन

2.6.1 भारत की खनिज पेटियाँ

2.7 खनिज संसाधनों का महत्व एवं उपयोग

2.7.1. वैश्विक खनिज आवश्यकताएँ

2.7.2 खनिज संसाधनों को खतरा

2.7.3 खनिज संसाधनों द्वारा उत्पन्न समस्याएँ

2.7.4 सतत खनिज खनन

सारांश


## 2.0 सीखने का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझाने में सक्षम होंगे:

- खनिज क्या है?
- खनिजों का उपयोग एवं वर्गीकरण क्या है?
- खनिज संसाधन क्या हैं?
- खनिज संसाधन कितने प्रकार के होते हैं?

- खनिज संसाधनों का क्या महत्व है?
- खनिज संसाधनों के लिए खतरे क्या हैं?
- हम खनिज संसाधनों का संरक्षण कैसे कर सकते हैं?

## 2.1 परिचय

जैसा कि आप इकाई 1 के अपने अध्ययन से जानते हैं कि भूमि संसाधन मानव अस्तित्व के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं और खनिज भूमि संसाधनों का अविभाज्य हिस्सा हैं। खनिज संसाधन भूमि के विभिन्न स्थानों पर पाए जाते हैं और मानव के जीवन स्तर को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस इकाई में आपको खनिज संसाधनों के बारे में कुछ निश्चित नियम और अवधारणाएँ मिलेंगी। खनिज बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन हैं। वे कई बुनियादी उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण कच्चे माल का निर्माण करते हैं और विकास के लिए एक प्रमुख संसाधन हैं। भारत में खनिज निष्कर्षण का इतिहास हड़प्पा सभ्यता के दिनों का है। खनिजों की व्यापक उपलब्धता भारत में खनन क्षेत्र की वृद्धि और विकास के लिए आधार प्रदान करती है। देश कई धात्विक और अधात्विक खनिजों के विशाल संसाधनों से संपन्न है। खनन क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। स्वतंत्रता के बाद से, मात्रा और मूल्य दोनों के संदर्भ में खनिज उत्पादन में स्पष्ट वृद्धि हुई है।

पृथ्वी की लगभग सभी सामग्रियों का उपयोग मनुष्य द्वारा विभिन्न रूपों में किया जाता है। हमें मशीनें बनाने के लिए धातुओं की आवश्यकता होती है; सड़कें और इमारतें बनाने के लिए रेत और बजरी; कंप्यूटर चिप्स बनाने के लिए सिलिकॉन, निकल; कंक्रीट बनाने के लिए चूना पत्थर और जिप्सम; चीनी मिट्टी की चीज़ें बनाने के लिए मिट्टी; विद्युत परिपथ बनाने के लिए सोना, चाँदी, तांबा और एल्युमीनियम; और हीरे और कोरन्डम (नीलम, माणिक, पन्ना) अपघर्षक और आभूषण बनाने के लिए।

खनिज संसाधन एक या अधिक उपयोगी सामग्रियों से समृद्ध चट्टान की मात्रा है। इस अर्थ में खनिज का तात्पर्य उपयोगी सामग्रियों से है। यहाँ खनिज शब्द का अर्थ कोई भी पदार्थ हो सकता है जिसे पृथ्वी से निकाला जा सके।

## 2.2 खनिज संसाधनों की परिभाषा

जैसा कि आपने इकाई प्रथम में विभिन्न प्रकार के भूमि संसाधनों और उनके महत्व का अध्ययन किया है, खनिज संसाधन उनमें से एक हैं और मानव समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि मानव अधिक सभ्य हो गया है। कुछ खनिज मानव सहित सभी जीवों, पौधों और जानवरों के शरीर के निर्माण और कामकाज के लिए आवश्यक हैं। आज के संदर्भ में, मनुष्य अपनी उद्योग आधारित सभ्यता को बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार के खनिजों का उपयोग करता है, जिनमें से कई बड़ी मात्रा में होते हैं। खनिज संसाधनों की उपलब्धता सीधे तौर पर आधुनिक समाज पर निर्भर करती है, जिसे भूगर्भिक अतीत से एक गैर-नवीकरणीय विरासत माना जा सकता है। हालाँकि पृथ्वी की प्रक्रियाओं से अभी भी नए भंडार बन रहे हैं, लेकिन ये प्रक्रियाएँ नए खनिज भंडार का निर्माण इतनी धीमी गति से कर रही हैं कि वे आज हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकते हैं। किसी दिए गए खनिज का भंडार कितना भी बड़ा क्यों न हो, निरंतर खनन से अयस्क समाप्त हो जाएंगे, इसलिए खनिज एक सीमित और घटते संसाधन हैं।

जैसा कि आपने इकाई प्रथम में विभिन्न प्रकार के भूमि संसाधनों और उनके महत्व का अध्ययन किया है, खनिज संसाधन उनमें से एक हैं और मानव समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि मानव अधिक सभ्य हो गया है। कुछ खनिज मानव सहित सभी जीवों, पौधों और जानवरों के शरीर के निर्माण और कामकाज के लिए आवश्यक हैं। आज के संदर्भ में, मनुष्य विभिन्न प्रकार के खनिजों का उपयोग करता है, जिनमें से कई का उपयोग उसकी उद्योग आधारित सभ्यता को बनाए रखने के लिए बड़ी मात्रा में किया जाता है। खनिज संसाधनों की उपलब्धता सीधे तौर पर आधुनिक समाज पर निर्भर करती है, जिसे भूगर्भिक अतीत से एक गैर-नवीकरणीय विरासत माना जा सकता है। हालाँकि पृथ्वी की प्रक्रियाओं से अभी भी नए भंडार बन रहे हैं, लेकिन ये प्रक्रियाएँ नए खनिज भंडार का निर्माण इतनी धीमी गति से कर रही हैं कि वे आज हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकते हैं। किसी दिए गए खनिज का भंडार कितना भी बड़ा क्यों न हो, निरंतर खनन से उनके अयस्क समाप्त हो जाएंगे, इसलिए खनिज एक सीमित और घटते संसाधन हैं।

प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले ठोस अकार्बनिक पदार्थ खनिज कहलाते हैं। खनिज वह पदार्थ है जो प्राकृतिक रूप से पृथ्वी की पपड़ी में मौजूद होता है और पशु या वनस्पति पदार्थ से नहीं बनता है। विकास के दौरान, पृथ्वी ग्रह विभिन्न भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से गुज़रा है। इन प्रक्रियाओं से लाखों से अरबों वर्षों में खनिजों का निर्माण हुआ और इसलिए वे अनवीकरणीय हैं। खनन खनिजों को निकालने और संसाधित करने की प्रक्रिया है। 100 से अधिक खनिजों का खनन किया जाता है और इनमें सोना, लोहा, तांबा और एल्यूमीनियम जैसी धातुएं और पत्थर, रेत और नमक जैसी अधातुएं शामिल हैं। खनिजों के अलावा, कोयला एक अन्य प्रमुख सामग्री है जिसका खनन किया जाता है।

खनिज संसाधन प्राकृतिक रूप से पृथ्वी पर या उसके अंदर पर्याप्त मात्रा में पाए जाने वाले आवश्यक पदार्थ या वस्तु हैं जिनका उनके संभावित उपयोग या उनके आंतरिक मूल्यों के लिए खनन किया जा सकता है।खनिज संसाधन विभिन्न आकृतियों और आकारों में आते हैं और इन्हें दो प्रमुख श्रेणियों जैसे धात्विक और अधात्विक खनिज संसाधनों में विभाजित किया जाता है। धात्विक संसाधनों के उदाहरणों में सोना, चांदी, टिन, तांबा, सीसा, जस्ता, लोहा, निकल, क्रोमियम और एल्युमीनियम जैसे खनिज शामिल हैं। गैर-धातु संसाधनों के उदाहरणों में रेत, बजरी, जिप्सम, हेलाइट, यूरेनियम, रत्न और पत्थर जैसे खनिज शामिल हैं।

**तालिका 1: 2014 में प्रमुख खनिजों और धातुओं के विश्व उत्पादन में भारत का योगदान और रैंक**

| **कमोडिटी** | **इकाई** | **उत्पादन** | | **योगदान (%)** | **भारत की रैंक** |
|---|---|---|---|---|---|
| | | विश्व | भारत | | |
| **खनिज ईंधन** | | | | | |
| कोयला और लिग्नाइट | मिलियन टन | 8,085 | 659 | 8.0 | 3 |
| पेट्रोलियम क्रूड | मिलियन टन | 4197 | 38 | 0.9 | 24 |
| **धात्विक खनिज** | | | | | |
| बाक्साइट | टन | 2,60,000 | 22,226 | 8.5 | 4 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| क्रोमाइट | टन | 30,000 | 2164 | 7.2 | 4 |
| लौह अयस्क | मिलियन टन | 3378 | 129 | 3.8 | 4 |
| मैंगनीज अयस्क | टन | 54,700 | 2,345 | 4.3 | 7 |
| **औद्योगिक खनिज** | | | | | |
| बेराइट | टन | 9,300 | 910 | 9.8 | 3 |
| कायनाइट, और एलुसाइट और सिलिमेनाइट | टन | 403 | 72 | 17.8 | 3 |
| ग्नेसाइट | टन | 47,700 | 276 | 0.5 | 12 |
| एपेटाइट और रॉक फॉस्फेट | टन | 2,45,000 | 1580 | 0.6 | 17 |
| टैल्क/स्टीटाइट/पाइरोफिलाइट | टन | 8,300 | 774 | 9.3 | 3 |
| कच्चा अभ्रक | टन | 3,43,000 | 636 | 0.2 | 17 |
| **धातुएँ** | | | | | |
| अल्युमीनियम | टन | 53,000 | 2027 | 3.8 | 5 |
| तांबा (परिष्कृत) | टन | 22,600 | 766 | 3.4 | 6 |
| स्टील (कच्चा/तरल) | मिलियन टन | 1667 | 81.7 | 5.3 | 4 |
| लेड | टन | 10,600 | 127 | 1.2 | 15 |
| जस्ता | टन | 13,600 | 733 | 5.4 | 3 |

*स्रोत: विश्व खनिज उत्पादन डेटा, विश्व खनिज उत्पादन, 2010-2014, ब्रिटिश भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण से संकलित*

जैसा कि आप अच्छी तरह से जानते हैं, खनिज विभिन्न तत्वों का संयोजन हैं। आठ तत्व {ऑक्सीजन (O), सिलिकॉन (Si), पोटेशियम (K), कैल्शियम (Ca), सोडियम (Na, एल्युमिनियम (Al), आयरन (Fe) और मैग्नीशियम (Mg)} पृथ्वी की पपड़ी और मेंटल में मौजूद हैं और उपरोक्त पृथ्वी परत के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाता है। ये आठ तत्व अलग-अलग तरीकों से एक-दूसरे से मिलकर विभिन्न खनिज बनाते हैं। इन खनिजों को सिलिकेट खनिज कहा जाता है।

## 2.3 खनिज संसाधनों की उत्पत्ति

खनिज संसाधनों को उनके संचय के लिए जिम्मेदार प्रक्रियाओं के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। इन प्रक्रियाओं को खनिजों के जमाव के आधार पर निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है:

## 2.3.1 मैग्मैटिक अयस्क डिपाज़िट

जैसा कि इस डिपाज़िट के नाम से पता चलता है, ये पदार्थ मैग्मा के रूप में आग्नेय चट्टान के भीतर जमा होते हैं। मैग्मैटिक अयस्क जमाव में, खनिज उन तत्वों को लेकर एकत्रित होंगे जो कभी मैग्मा में कम सांद्रता पर व्यापक रूप से दबे हुए थे। दबे हुए पदार्थ मैग्मा से बाहर निकलेंगे और इन विशेष पदार्थों की सांद्रता बढ़ाएँगे। इस परिघटना को मैग्मैटिक अयस्क डिपाज़िट के रूप में जाना जाता है।

उदाहरण: पेगमाटाइट- क्योंकि आंशिक क्रिस्टलीकरण में पानी और अन्य पदार्थ/तत्व मैग्मा से अलग किए गए खनिजों में प्रवेश नहीं करते हैं। इस प्रक्रिया में अवशेष (बचे हुए पदार्थ) बनेंगे और यह अवशेष सिलिका और पानी के साथ-साथ अन्य दुर्लभ पृथ्वी तत्वों से भरपूर होंगे। इस अवशेष से लिथियम, टैंटलम, नाइओबियम, बोरोन, बेरिलियम, गोल्ड और यूरेनियम जैसे कुछ तत्व रंगीन टीवी के फॉस्फोरसेंट पिक्चर ट्यूब बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

क्रिस्टलीकरण: भारी वजन के कारण मैग्मा पिंड से खनिज क्रिस्टलीकृत हो जाएंगे और कुछ भारी खनिज मैग्मा मण्डल के नीचे डूब जाएंगे। परिणामस्वरूप, ये तत्व मैग्मा कक्ष के नीचे बनी परत में उच्च्व सांद्रता प्राप्त करेंगे।

## 2.3.2 जलतापीय अयस्क डिपाज़िट

चट्टानों में केंद्रित गर्म जलीय (पानी युक्त) तरल पदार्थ फ्रैक्चर और छिद्र स्थान के माध्यम से बहता है। जब भूजल गहराई तक फैलता है और आग्नेय पिंड के संपर्क में आकर गर्म हो जाता है, तो किसी विशेष स्थान पर हाइड्रोथर्मल अयस्क का जमाव हो सकता है। आग्नेय पिंड के संपर्क में आने से यदि शीतलता तेजी से होती है तो इसके परिणामस्वरूप चट्टानों में तत्वों का संचय होता है।

**उदाहरण: विशाल सल्फाइड डिपाज़िट:** यह निक्षेपण समुद्री प्रसार केन्द्रों पर होता है। पृथ्वी में गर्म तरल पदार्थ मैग्मा कक्ष के ऊपर समुद्री कटक पर घूमते हैं और जिन चट्टानों से होकर गुजरते हैं, वहां से विभिन्न तत्वों जैसे Cu, S. Zn आदि को हटा देते हैं। ये गर्म तरल पदार्थ समुद्र तल पर वापस आते हैं, ठंडे भूजल या समुद्री पानी के संपर्क में आते हैं और अचानक सल्फाइड खनिज (जिंक सल्फाइड) और च्लोकोपाइराइट (Cu, Fe और सल्फाइड) जैसी धातुओं को अवक्षेपित कर देते हैं।

## 2.3.3 स्ट्रेटा बाउंड अयस्क डिपाज़िट

इस प्रकार का निक्षेप झीलों तथा समुद्री तलछटों में पाया जाता है। इस प्रकार के खनिज में सीसा, जस्ता और तांबा अधिक मात्रा में हो सकते हैं। इस अवधारणा को स्तरबद्ध निक्षेपण के रूप में जाना जाता है।

## 2.3.4 तलछटी अयस्क डिपाज़िट

झील या समुद्री जल में, पदार्थ रासायनिक वर्षा द्वारा केंद्रित होते हैं, जिन्हें तलछटी अयस्क जमाव के रूप में जाना जाता है।

**उदाहरण: वाष्पीकरण डिपाज़िट-** जैसा कि आप जानते हैं कि वाष्पीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें पानी अपने प्राकृतिक स्थान से वाष्पीकृत हो जाता है। वाष्पीकृत जमाव झील या समुद्र से पानी के वाष्पीकरण का परिणाम है। पानी के वाष्पीकरण के बाद बचा हुआ पदार्थ किसी विशेष स्थान पर एकत्रित या जमा हो जाता है। इस प्रक्रिया को वाष्पीकरण निक्षेपण के रूप में जाना जाता है। उदाहरण हैं हेलाइट (टेबल नमक), जिप्सम (प्लास्टर और दीवार बोर्ड में प्रयुक्त) और बोरेक्स।

## 2.3.5 प्लेसर अयस्क डिपाज़िट

इस प्रकार का जमाव या तो नदी के किनारे या समुद्र तट के किनारे बहते पानी में पाया जाता है। इस जमाव में पानी के वेग के अनुसार जमाव होगा, गति धीमी होने पर बड़े खनिज या अधिक घनत्व वाले खनिज जमा हो जाते हैं। इस प्रकार भारी खनिज पानी की निचली धारा वेग में जमा हो जायेंगे। इस अवधारणा को प्लेसर अयस्क जमा के रूप में जाना जाता है।

## 2.3.6 अवशिष्ट अयस्क डिपाज़िट

अवशिष्ट को शेष भाग कहते हैं। अपक्षय प्रक्रिया के बाद पदार्थों का एक बड़ा हिस्सा हटा दिया जाता है और शेष पदार्थ सांद्रित रूप में होता है। इस अवधारणा को अवशिष्ट अयस्क डिपाज़िट के रूप में जाना जाता है।

रासायनिक अपक्षय के दौरान लीचिंग की प्रक्रिया के कारण चट्टान के मूल शरीर का आयतन बहुत कम हो जाता है जो मूल चट्टान से आयनों को हटा देता है। जो तत्व चट्टान से निक्षालित नहीं होते, वे अवशिष्ट चट्टान में उच्च सांद्रता में पाए जाते हैं। एल्युमीनियम का सबसे महत्वपूर्ण अयस्क बॉक्साइट उष्णकटिबंधीय जलवायु में बनता है।

# 2.4 खनिज संसाधनों के प्रकार

खनिज संसाधनों को तीन प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया गया है जैसे:

- धात्विक खनिज संसाधन
- अधात्विक खनिज संसाधन
- ईंधन/ऊर्जा खनिज संसाधन

## 2.4.1 धात्विक खनिज संसाधन

धात्विक खनिज संसाधन वे खनिज संसाधन हैं जिनमें धातुएँ कच्चे रूप में होती हैं, उनकी उपस्थिति में धात्विक चमक होती है और उन्हें नए उत्पाद प्राप्त करने के लिए पिघलाया जा सकता है। उनकी रासायनिक संरचना में धातुएँ भी होती हैं; खनन के माध्यम से ही आप उन्हें निकाल सकते हैं। धात्विक खनिज संसाधन के कुछ उदाहरणों में सोना, चांदी, तांबा, टिन, लोहा, सीसा, जस्ता, निकल, क्रोमियम और एल्युमीनियम शामिल हैं।

### 2.4.2 अधात्विक खनिज संसाधन

अधात्विक खनिज संसाधन वे खनिज हैं जिनकी रासायनिक संरचना में निकालने योग्य धातुएँ नहीं होती हैं; उनके स्वरूप में अधात्विक चमक या आभा होती है। गैर-धातु खनिज संसाधनों के उदाहरणों में रेत, पत्थर, बजरी, मिट्टी, जिप्सम हेलाइट और यूरेनियम शामिल हैं। इन खनिजों को मध्यवर्ती उपयोग के लिए पीसने, मिश्रण करने, काटने, आकार देने के माध्यम से पुन: संसाधित किया जा सकता है।

### 2.4.3 ईंधन/ऊर्जा खनिज संसाधन

ईंधन खनिज संसाधन दुनिया में बुनियादी खनिज संसाधन हैं, इनके कुछ उदाहरणों में कोयला, कच्चा तेल (पेट्रोलियम) और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधन शामिल हैं; ये मुख्य रूप से मृत पौधों और जानवरों के अवशेषों से प्राप्त होते हैं, इन्हें अक्सर जीवाश्म ईंधन के रूप में जाना जाता है और ये हाइड्रोकार्बन से बनते हैं। जब जीवाश्म ईंधन को जलाया जाता है तो वे विशेष रूप से ऊष्मा ऊर्जा का एक बड़ा स्रोत उत्पन्न करते हैं। जीवाश्म ईंधन के उचित उपयोग ने बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास को सक्षम किया है और बड़े पैमाने पर पानी से चलने वाली मिलों के साथ-साथ गर्मी के लिए लकड़ी या पीट के दहन को भी प्रतिस्थापित किया है।

## 2.5 खनिज संसाधनों का खनन

जमीन या समुद्र में जमाव की खोज हो जाने के बाद खनिज संसाधनों का खनन किया जाता है; यह प्रक्रिया आम तौर पर खुली खदान या भूमिगत खनन विधि या पंपिंग का उपयोग करके विभिन्न तरीकों से की जाती है। खनन प्रक्रिया खोजे गए खनिज के प्रकार पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, नमक आमतौर पर पंप करके निकाला जाता है; इस मामले में, नमक पानी में घुल जाता है और तेल और गैस की तरह ही भूमिगत से पंप किया जाता है। इन खनिजों को जमीन से निकाले जाने के बाद, उन्हें संसाधित किया जाता है और एक उपयोगी सामग्री के रूप में शुद्ध किया जाता है जिसका हम दैनिक आधार पर उपयोग करते हैं। खनन प्रक्रिया में आमतौर पर किसी भी अवांछित अशुद्धियों को हटाना और आर्थिक खनिज की सांद्रता बढ़ाने के लिए आगे की प्रक्रिया शामिल होती है। खदान के नजदीक धातु का उत्पादन करने के लिए धात्विक खनिजों को गलाया या परिष्कृत किया जा सकता है, या आगे की प्रक्रिया के लिए सांद्रण को किसी अन्य साइट पर ले जाया जा सकता है।

उपयोग से पहले तेल और गैस को भी और अधिक परिष्कृत किया जाता है। अंततः, एक बार खनिज भंडार मिल जाने के बाद इसमें मौजूद मूल्यवान खनिजों तक पहुंचने के लिए इसे जमीन से निकालना पड़ता है। खनिजों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का तरीका उनके मूल्य और भारीपन पर निर्भर करता है। भारी कम लागत वाले खनिजों जैसे समुच्चय को लंबी दूरी तक ले जाना आर्थिक नहीं है, जबकि धातु या तेल जैसे महंगे खनिजों को जहाज (जल परिवहन) या हवाई परिवहन का उपयोग करके अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ले जाया जा सकता है।

### 2.5.1 खनन के कारण पर्यावरणीय समस्याएँ

सतही खनन क्षेत्र की सभी वनस्पतियों को नष्ट कर देता है और उड़ने वाली धूल से परिदृश्य को प्रदूषित करता है। एक बार जब उपलब्ध सामग्री का खनन कर लिया जाता है, तो बड़े गड्ढे पीछे छूट जाते हैं। जब जल विभाजक के

रूप में कार्य करने वाली पहाड़ियों का खनन किया जाता है, तो जल स्तर नीचे चला जाता है, जैसा कि राजस्थान में अरावली के मामले में हुआ है।

राजस्थान की राजसमंद झील कम से कम 300 वर्षों से नहीं सूखी थी। हालाँकि, अंततः 2001 में ऐसा हुआ। संभावित कारण: राजनगर क्षेत्र में एक दशक से चला आ रहा संगमरमर का खनन। हरियाणा, राजस्थान और गुजरात में फैली अरावली पहाड़ियाँ तीन राज्यों की जीवन रेखा हैं क्योंकि वे क्षेत्र की जलवायु और जल निकासी प्रणाली को नियंत्रित करती हैं। पहाड़ियाँ इस क्षेत्र के लिए जल विभाजक के रूप में कार्य करती हैं। दुर्भाग्य से पहाड़ियाँ टाल्क, संगमरमर और ग्रेनाइट सहित विशाल खनिज संपदा का भंडार भी हैं। खनन और अन्य संबंधित उद्योग लगभग 1,75,000 श्रमिकों को रोजगार देते हैं और 600,000 अन्य अप्रत्यक्ष रूप से खनन कार्यों पर निर्भर हैं। अकेले राजस्थान में 9700 औद्योगिक इकाइयाँ खनन से जुड़ी हैं।

बड़े पैमाने पर खनन शुरू होने के बाद से पिछले 20 वर्षों में वन क्षेत्र 90% कम हो गया है। जब खदानें भूमिगत जल स्तर से नीचे पहुंच जाती हैं, तो अवसाद का एक शंकु बनता है जो आसपास के क्षेत्रों से पानी खींच लेता है, जिससे कुएं सूख जाते हैं और कृषि प्रभावित होती है। कई अध्ययनों से पता चला है कि पूरे क्षेत्र की प्राकृतिक जल निकासी प्रणाली और भूजल स्तर पिछले कुछ वर्षों में बुरी तरह प्रभावित हुआ है। प्रदूषण का स्तर भी बढ़ गया है.

खनन सामग्री का प्रसंस्करण अक्सर मौके पर ही किया जाता है, जिसमें कई स्थिति में पारा, साइनाइड और बड़ी मात्रा में पानी का उपयोग होता है, जो नदी और अन्य जल निकायों को प्रदूषित करता है। स्लैग जैसी अपशिष्ट सामग्री अक्सर प्रयोग करने योग्य सामग्री की तुलना में कहीं अधिक मात्रा में होती है और भद्दे अस्थिर और खतरनाक ढेर के रूप में पीछे छोड़ दी जाती है। कीमती धातुओं का खनन आज सदियों पहले की तुलना में अधिक गहन और व्यापक है, जिसके दूरगामी परिणामों में विशेष चिंता का विषय ढेर लीच सोने का खनन है, जिसमें धातु निकालने के लिए निम्न श्रेणी के अयस्क के विशाल ढेर पर साइनाइड की नदियाँ डाली जाती हैं। ढेर लीच खनन बढ़ रहा है और पहले ही कई गंभीर दुर्घटनाओं का कारण बन चुका है। दो उदाहरण हैं:

न्यू गुएनिया में 1984 में ओके टेडी द्वीप पर 1000 घन मीटर सांद्र साइनाइड एक नदी में छोड़ा गया और पारिस्थितिकी तंत्र तबाह हो गया। यह सोने और तांबे की परियोजना, जो पूरे पहाड़ को तोड़ रही है, पहले ही व्यापक पर्यावरणीय क्षति पहुंचा चुकी है। इसने मूल निवासियों की संस्कृति और जीवनशैली को भी नष्ट कर दिया है।

रोमानिया में 2000 में बाया मारे सोने की खदान में, लीच कचरे के ढेर को रखने वाला बांध टूट गया, जिससे 80 मिलियन लीटर साइनाइड टिस्ज़ा नदी में गिर गया। साइनाइड हंगरी और सर्बिया में 500 किमी तक बह गया।

खनिज संसाधन मूल्यवान वस्तुएँ बनाने के लिए उपयोगी और प्राकृतिक सामग्री हैं; ये संसाधन हमारे आर्थिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, दुनिया के अधिकांश देश अपनी आर्थिक वृद्धि और विकास के लिए पूरी तरह से खनिज संसाधनों पर निर्भर हैं। हमारे समाज में रेलवे, सड़क, कार, कंप्यूटर, प्लास्टिक, बर्तन, डिब्बे, धातु, सिक्के और उर्वरक आदि जैसे अधिकांश औद्योगिक उत्पादों का उपयोग करने के लिए खनिजों को परिष्कृत करके तैयार माल बनाया जाता है। खनिज संसाधन दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पृथ्वी की पपड़ी में पाए जाते हैं, लेकिन आमतौर पर कम मात्रा में और उन्हें केवल तभी निकाला जा सकता है, जब वे कुछ भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की मदद से पाए जाते हैं।

हालाँकि, खनिज संसाधनों को उनकी रासायनिक संरचना, रंग, कठोरता, संबद्धता और तात्विकता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। विभिन्न खनिज संसाधनों को पृथ्वी से अलग-अलग तरीके से निकाला जाता है और अन्वेषण से पहले कुछ खनिज भंडार और उपलब्धता का सर्वेक्षण करने के लिए आमतौर पर मिट्टी या पानी में कुछ गतिविधियाँ की जाती हैं; ऐसी गतिविधियों में रिमोट सेंसिंग (हवाई फोटोग्राफी और उपग्रह इमेजरी), गुरुत्वाकर्षण मीटर, मैग्नेटोमीटर और भू-रासायनिक सर्वेक्षण शामिल हैं।

## 2.6 भारत में खनिज संसाधन

जैसा कि आप जानते हैं कि भारत पौधों, जानवरों और खनिजों के संदर्भ में एक विशाल विविधता वाला देश है, इसलिए हम कह सकते हैं कि भारत स्वाभाविक रूप से एक समृद्ध देश है। भारत में विभिन्न भाषाएँ, सांस्कृतिक एवं अन्य सामाजिक गतिविधियाँ होती हैं। सभी राज्य खनिज संसाधनों में भिन्नता दर्शाते हैं और खनिज उत्पादन में अलग-अलग योगदान देते हैं। जैसे आंध्र प्रदेश, असम, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, अन्य राज्य और अपतटीय क्षेत्र खनिज संसाधनों के उत्पादन के मामले में क्रमशः 4%, 8%, 7%, 7%, 6%, 12%, 13%, 16% और 21% का योगदान करते हैं (चित्र: 1)

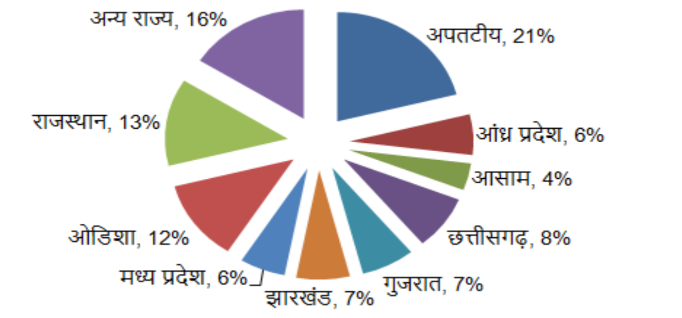


**चित्र 1: 2016-17 के दौरान खनिज उत्पादन में राज्यों की हिस्सेदारी(स्रोत: खान मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2016-17)**

देश कई धात्विक और अधात्विक खनिजों के विशाल संसाधन से संपन्न है। खनन क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। स्वतंत्रता के बाद से, मात्रा और मूल्य दोनों के संदर्भ में खनिज उत्पादन में स्पष्ट वृद्धि हुई है। देश में लगभग 95 खनिजों का उत्पादन होता है, जिसमें 4 ईंधन, 10 धात्विक, 23 अधात्विक, 3 परमाणु और 55 लघु खनिज (भवन और अन्य सामग्री सहित) शामिल हैं। भारतीय खनन उद्योगों की विशेषता बड़ी संख्या में छोटी परिचालन वाली खदानें हैं। भारत में खनिज उत्पादन (परमाणु, ईंधन और लघु खनिजों को छोड़कर) दर्ज करने वाली खदानों की संख्या 2017-18 में 1531

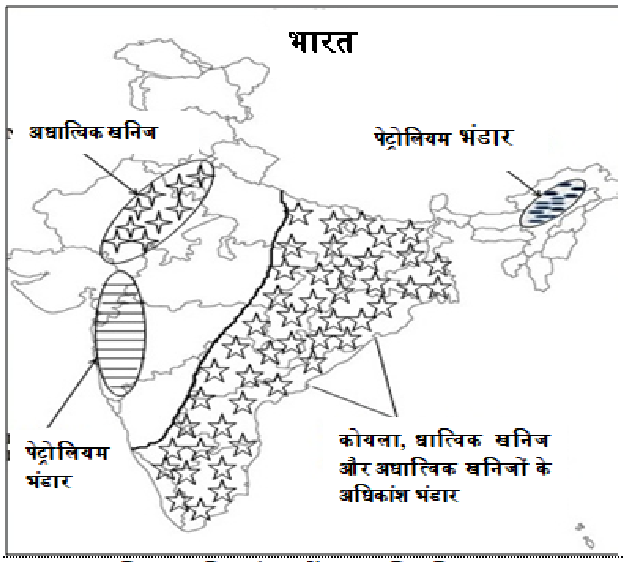


**चित्र 2: खनिज संसाधनों का स्थानिक वितरण**

थी, जबकि पिछले वर्ष यह 1508 थी। 1531 रिपोर्टिंग खदानों में से 230 तमिलनाडु में स्थित थे, इसके बाद मध्य प्रदेश (197) गुजरात (191) कर्नाटक (142), ओडिशा (132), आंध्र प्रदेश (129), छत्तीसगढ़ (112), गोवा (87), राजस्थान (85), महाराष्ट्र (75) और झारखंड (58) में स्थित थे। 2017-18 में देश में खनन की कुल संख्या का 94% हिस्सा इन 10 राज्यों का था। रिपोर्ट की गई खदानों की संख्या इस प्रकार है:

**तालिका 2: 2015-2018 के दौरान भारत में रिपोर्ट की गई खदानों की संख्या**

| क्र.सं. | क्षेत्र | 2015-16 | 2016-17 | 2017-18 |
|---|---|---|---|---|
| 1 | सभी खनिज | 1619 | 1508 | 1531 |
| 2 | धात्विक खनिज | 715 | 644 | 657 |
| 3 | अधातु खनिज | 904 | 864 | 874 |

अपनी विविध भूवैज्ञानिक संरचना के कारण भारत में खनिज संसाधनों की प्रचुर विविधता है। रासायनिक और भौतिक गुणों के आधार पर खनिजों को दो मुख्य श्रेणियों (i) धात्विक और (ii) अधात्विक में वर्गीकृत किया जा सकता है। धात्विक खनिज धातुओं के स्रोत हैं जैसे लौह अयस्क, तांबा, सोना धातु इस श्रेणी में शामिल हैं। धात्विक खनिजों को लौह और अलौह धात्विक खनिजों में विभाजित किया गया है। वे सभी खनिज जिनमें लौह की मात्रा होती है वे लौह होते हैं जैसे लौह अयस्क और जिनमें लौह की मात्रा नहीं होती वे अलौह होते हैं जैसे तांबा, बॉक्साइट आदि। गैर-धात्विक खनिज या तो मूल रूप से कार्बनिक होते हैं जैसे जीवाश्म ईंधन जिन्हें अन्य खनिजों के रूप में भी जाना जाता है। खनिज ईंधन जो दफनाए गए जानवरों और पौधों के जीवन से प्राप्त होते हैं जैसे कोयला और पेट्रोलियम। अन्य प्रकार के गैर-धात्विक खनिज मूल रूप से अकार्बनिक होते हैं जैसे अभ्रक, चूना पत्थर और ग्रेफाइट आदि।

## 2.6.1 भारत की खनिज पेटियाँ

**उत्तर-पूर्वी प्रायद्वीपीय बेल्ट**: इस बेल्ट में झारखंड, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में छोटानागपुर पठार और उड़ीसा पठार शामिल हैं। इसमें भारत की खनिज बेल्ट की समृद्ध विविधता शामिल है। खनिजों की समृद्धि के कारण छोटानागपुर पठार को भारत की खनिज हृदय भूमि के रूप में जाना जाता है, और इसमें बड़ी मात्रा में कोयला, लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट, तांबा, क्रोमाइट्स और कायनाइट शामिल हैं।

(i) **सेंट्रल बेल्ट:** यह भारत का दूसरा सबसे बड़ा खनिज बेल्ट है, जिसमें छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र शामिल हैं। इस बेल्ट में मैंगनीज, बॉक्साइट, चूना पत्थर, संगमरमर, कोयला, रत्न (पन्ना), अभ्रक, लौह अयस्क, ग्रेफाइट आदि के बड़े भंडार हैं।

(ii) **दक्षिणी बेल्ट:** इसमें ज्यादातर कर्नाटक पठार और निकटवर्ती तमिलनाडु ऊपरी भूमि शामिल है। नेवेली (तमिलनाडु) में लिग्नाइट को छोड़कर कोयले के भंडार का अभाव है। यह बेल्ट काफी हद तक उत्तरपूर्वी प्रायद्वीपीय बेल्ट के समान है।

**(iii)** **दक्षिण-पश्चिमी बेल्ट:** दक्षिणी कर्नाटक और गोवा शामिल हैं। इसमें लौह-अयस्क और मिट्टी के भंडार हैं।

**(iv)** **उत्तर-पश्चिम बेल्ट:** इस बेल्ट में राजस्थान की अरावली और गुजरात के निकटवर्ती हिस्से शामिल हैं। इस बेल्ट के महत्वपूर्ण खनिज तांबा, सीसा, जस्ता, यूरेनियम, अभ्रक, बॉक्साइट, जिप्सम, मैंगनीज और नमक हैं।

**(v)** **हिंद महासागर:** अपतटीय क्षेत्रों में पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस की उपलब्धता के साथ-साथ समुद्र तल में मैंगनीज नोड्यूल, फॉस्फोराइट नोड्यूल और बेरियम सल्फेट की सांद्रता होती है।

**(vi)** भारत में विभिन्न खनिज संसाधनों का वितरण तालिका 3 में दिया गया है।

**तालिका 3: भारत में खनिज संसाधनों के प्रकार और वितरण**

| क्र.सं. | खनिजों का नाम | वितरण |
|---|---|---|
| **1.** | लोहा | उड़ीसा- मयूरभंज, क्योंझर, सुंदरगढ़, कटक, करापुट।<br>झारखंड- सिंहभूम- नोटू- बुरू, नोआमुंडी, अंसिराबारू, ब्रजमदा, गुआ, सासंगदा।<br>मध्य प्रदेश-बस्तर-बैलाडीला, रावघाट, अरिडोंगरी; दुर्ग-ढल्ली-राजहरा.<br>गोवा (काला लोहा/मैग्नेटाइट)-उत्तरी गोवा: पिरना-अडोलपेल-असनोरा; मध्य गोवा: तोल्साई- डोंगरवाडो; दक्षिण- गोवा: बोर्गाडोंगर, नेतरलिम,।<br>कर्नाटक- बेल्लारी (संदूर-होसपेट क्षेत्र), चिकमंगलूर, केम्मनगुंडी (बाबाबुदन पहाड़ियों में), कुद्रेमुख, शिमोंगा।<br>आंध्र प्रदेश-जग्गयपेटा, रामल्लाकोटा, वेलदुर्ती, नायडूपेट्टा, बेगार्म।<br>तमिलनाडु- कोयंबटूर- मदुरै, तिरुनेलवेली, रामनाथपुरम जिले।<br>महाराष्ट्र- चंद्रपुर, रत्नागिरी। |
| **2.** | मैंगनीज | ओडिशा-सुंदरगढ़, कालाहांडी (निशिखाल), कोरापुट (कुटिंगा), बोलांगीर, क्योंझर, मयूरभंज।<br>महाराष्ट्र-नागपुर (कोडरगांव, गुमगांव, रामडोनगिरी), भंडारा, रत्नागिरी।<br>कर्नाटक-शिमोगा, चित्रदुर्ग, तुमकुर, बेल्लारी, एन. कनारा।<br>आंध्र प्रदेश-श्रीकाकुलम, विशाखापत्तनम<br>मध्य प्रदेश-बालाघाट, छिंदवाड़ा, झाबुआ, जबलपुर।<br>गुजरात-पंचमहल।<br>झारखंड-सिंहभूम |

| | | |
|---|---|---|
| **3.** | क्रोमाइट | उड़ीसा-देश के कुल उत्पादन में 90% योगदान देता है, मुख्य केंद्र कटक में सुकिंडा (दैतेरी और महागिरी रेंज के बीच), क्योंझर में नौसाही हैं।<br>कर्नाटक-दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक।<br>महाराष्ट्र<br>झारखंड-सिंहभूम<br>तमिलनाडु- 96% क्रोमाइट जापान को और शेष ऑस्ट्रेलिया को निर्यात किया जाता है। |
| **4.** | पाइराइट | झारखंड-साहाबाद (अमझोर, कासिसियाकोह, कुरियारी)।<br>तमिलनाडु - अरकोट (पोलूर), नीलगिरि (पंडालूर- देवला- नादघानी क्षेत्र)।<br>कर्नाटक - एन. कनारा (कैगा), चित्रदुर्ग (इंदलधल)।<br>हिमाचल प्रदेश - अश्मी नदी।<br>राजस्थान-सीकर।<br>मेघालय-खासी, जयन्तिया। |
| **5.** | निकल | उड़ीसा के कटक और मयूरभंज जिलों में निकेल के प्रमुख भंडार हैं। कुल भंडार 5.8% करोड़ टन है, जिसमें से 4.08 करोड़ टन कौसा ब्लॉक में और 1.5% करोड़ टन सरुआबिल-सुकरगी क्षेत्र में है। सिरकिंडा एक और प्रसिद्ध खदान है।<br>कुछ मात्रा में उत्पादन महाराष्ट्र, जम्मू-कश्मीर, मध्य प्रदेश में भी होता है।<br>भारत अपनी घरेलू मांग को पूरा करने के लिए निकल का आयात करता है। |
| **6.** | टंगस्टन | डेगनाल जो राजस्थान में रावत पहाड़ियों के पास है। |
| **7.** | बॉक्साइट | मध्य प्रदेश-अमरकंटक पठार-सरगुजर, रायगढ़, बिलासपुर; मैकाला रेंज - बालाघाट; कटनी रेंज - जबलपुर।<br>झारखंड- पलामू, लोहरदग्गा, रांची, साहाबाद (नेतरहाट पठार)।<br>गुजरात- जामनगर, खैरा, कच्छ।<br>महाराष्ट्र- कोल्हापुर, कोलाबा, सतारा, रत्नागिरी,<br>कर्नाटक- बेलगाम (कार्ले हिल्स, जंबोटी, बाकुर- नेवगे- रिज)<br>तमिलनाडु- सेलम, नीलगिरि, मदुरै (पलनी हिल्स, कोडाइकनाल हिल्स), कोयम्बटोन (संदाबकुली)।<br>गोवा-क्यूपेम, कैनाकोरा |
| **8.** | ताँबा | झारखंड- सिंहभूम (मोसाबनी, राखा, धोबनी, राजदह, सूरदाह, पथरगरा, तामापहाड़, तुरामडीह में देश के कुल भंडार का 50%), लोटा- पहाड़-फाल्ट।<br>राजस्थान- खेतड़ी- सिंघाना क्षेत्र (कोलिहान, मंधान, अकवाली, बेरखेरा), खो- दरीबा क्षेत्र, देलवाड़ा- केरोवले क्षेत्र।<br>मध्य प्रदेश- बालाघाट (मलंजखंड, मदारखंड) |

| | | |
|---|---|---|
| **9.** | जस्ता, सीसा | राजस्थान - उदयपुर का जावर जमा (मोचिया-मोगरा, बलरिया, जावरमाला, बरोई, बाबा-हिल), तारागढ़ पहाड़ी क्षेत्र (सीसा अयस्क), अजमेर (तारागढ़, गणेशपुरा, सावर), अलवर (जोधावास)।<br>आंध्र प्रदेश - ज़ंगमाराजुपल्ले (चुड्डापा जिले में)<br>बिहार-भागलपुर (डुडियार, गौरीपुर)<br>झारखंड-हजारीबाग (हतासु, परासिया), संथाल। परगना (पंचपहाड़, भैरकुही, सांकेरा) |
| **10.** | सोना | कर्नाटक- कोलार गोल्ड फील्ड/केजीएफ (1871 से जब ऊरेगम खदानों में पहली बार खनन शुरू हुआ, मारीकुप्पम क्वार्ट्ज नस जिसमें सोना होता है, चैंपियन, नंदीद्रूग, मैसूर), हुट्टी, टोपुलडेडी, वोंडाल्ली।<br>आंध्र प्रदेश- रामगिरि स्वर्ण क्षेत्र (अनंतपुरम जिला)।<br>झारखंड- सिंहभूम जिले में गर्रा-नदी, एस-कोयल, संजई, सोना-नदी, उबर्णरेखा नदियों के तल में जलोढ़ सोना।<br>कोलार और हट्टी गोल्डफील्ड्स मिलकर देश के कुल उत्पादन का 98% उत्पादन करते हैं। |
| **11.** | चाँदी | गैलाना के गलाने के दौरान उप-उत्पाद के रूप में उत्पादित, आंध्र के कुरनूल, कडप्पा और गुंटूर, झारखंड के सिंहभूम और रांची और गुजरात के वडोदरा के सीसा अयस्क से भी उत्पादित किया जाता है। मैसूर स्वर्ण क्षेत्र के क्वार्टजाइट और चित्रदुर्ग के कप्रिफेरस पाइराइट से भी कुछ मात्रा में चांदी प्राप्त होती है। |
| **12.** | अभ्रक | झारखंड- पश्चिम में गया से लेकर पूर्व में हज़ारीबाग और मुंगर जिलों से होते हुए भरगलपुर जिलों तक 150 किमी से अधिक लंबाई और 20-22 किमी चौड़ाई में विद्यमान एक बेल्ट; कोडरमा, दमचांच, मेनोडिल्स, परसाबाद, तिसरी, मोहेसरी, चकाई प्रमुख केंद्र हैं। कोडरमा दुनिया की सबसे बड़ी अभ्रक मंडी है. रूबी - अभ्रक और बंगाल - अभ्रक, जो उच्च गुणवत्ता का है, झारखंड में पाया जाता है।<br>आंध्र प्रदेश-गुदुर, संगम और नेल्लोर ग्रीन-अभ्रक के मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं, जिन्हें इलेक्ट्रिकल-अभ्रक (सभी प्रकार में सबसे हल्का) भी कहा जाता है।<br>राजस्थान- प्रमुख खनन केंद्र बरला, नौखंड हैं। टोंक और जयपुर जिलों में सोहनवाड़ा, बारानी, पामिन। भीलवाड़ा भी महत्वपूर्ण केन्द्र है। राजस्थान में हरा या गुलाबी रंग का उच्च गुणवत्ता वाला अभ्रक पाया जाता है। |

| | | |
|---|---|---|
| **13.** | चूना पत्थर | आंध्र प्रदेश - (कुल भंडार का 13) - कडप्पा, गुंटूर, कृष्णा, खम्मम, कुरनूल, गोदावरी<br>कर्नाटक-(कुल भंडार का 1/3) गुलबर्गा, बीजा-पुर, शिमोगा।<br>गुजरात - (कुल भंडार का 13%) - जूनागढ़, अमरेली, कच्छ, बनास - कांथा, सूरत।<br>राजस्थान - (कुल भंडार का 6%) - अजमेर, जयपुर, पाली, माधोपुर, बांसवाड़ा, जोधपुर, बूंदी<br>फ्लक्स-ग्रेड चूना पत्थर<br>मध्य प्रदेश-(कुल भंडार का 36%)-बेलासपुर, जबलपुर, रीवा, सतना, रायपुर।<br>मेघालय- (कुल भंडार का 30%) खासी और जैनतिया हिल्स। |
| **14.** | अदह (एस्बेस्टोस) | राजस्थान-अजमेर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, पाली, सिरोही, उदयपुर।<br>कर्नाटक-गोपालपुर, माविनहल्ली, हसन, मांड्या, शिमोगा, चिकमंगलूर।<br>आंध्र प्रदेश-कुडापा, अनंतपुर, मेहबूबनगर।<br>झारखंड-सिंहभूम, पश्चिम बंगाल, पुरुलिया। |
| **15.** | सिलिमनाइट | मेघालय-सोनपहाड़, नागपुर, नोंगटोइन क्षेत्र में नांगबैन।<br>मध्य प्रदेश - सीधी और रीवा।<br>महाराष्ट्र-भवरा, नागपुर।<br>तमिलनाडु-कोयंबटूर, साउथ आरकोट।<br>केरल-पालघाट, कोट्टायम |
| **16.** | कायनाइट | झारखंड-सरायकला में लापसा बुरू से खरसावां तक फैली एक बेल्ट। लापसा-बुरु, घागीडीह, बाचिया- बकरो और मौयालुका में महत्वपूर्ण खदानों के साथ।<br>महाराष्ट्र-सकोही तहसील में पहेरगांव और पीपलगांव और भंडारा जिलों में गोरखा-बुरंगा और असवालपैन। |
| **17.** | नमकt | समुद्री नमक- गुजरात में मीठापुर, जामनगर, धरसाना, ओखा, बुलसर; महाराष्ट्र में भंडरूप, उरण, भयंदर; तमिलनाडु में मद्रास और टैटिकोरिन।<br>नमक की झीलें- राजस्थान में सांभर, डीडवाना, पचभद्रा, लंकेसरा झीलें।<br>सेंधा नमक- वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले के द्रंग और गुना में खनन किया जाता है। |
| **18.** | दुर्लभ-पृथ्वी तत्व | भारत के दक्षिण-पश्चिमी सिरे पर केरल और तमिलनाडु में इल्मेनाइट और मोनाज़ाइट जैसे अत्यंत समृद्ध खनिज हैं।<br>इल्मेनाइट- क्विलोन से कन्याकुमारी तक |

## 2.7 खनिज संसाधनों का महत्व एवं उपयोग

जैसा कि आप जानते हैं कि खनिज मनुष्य के अस्तित्व में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। उनकी रासायनिक संरचना और उपयोग के आधार पर, खनिजों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है - धात्विक, अधात्विक और ऊर्जा संसाधन (जैसा कि इस अध्याय में 2.4 में बताया गया है)। धात्विक खनिज बहुत महत्वपूर्ण

हैं और विभिन्न तरीकों से उपयोग किए जाते हैं, जैसे एल्यूमीनियम, तांबा, सोना, लोहा, सीसा, निकल, थोरियम, यूरेनियम, जस्ता आदि का उपयोग निर्माण सामग्री, मिश्र धातु और विद्युत उत्पाद, मौद्रिक उद्देश्यों, आभूषण, परमाणु बम, बिजली उत्पादन आदि में किया जाता है। गैर-धातु समूह में एस्बेस्टस, कोरंडम, फेल्डस्पार, फ्लोरस्पार, नाइट्रेट, फॉस्फेट, सल्फर आदि शामिल हैं जिनका उपयोग छत बनाने के लिए, इन्सुलेशन, अपघर्षक, उर्वरक, रसायन, इस्पात उद्योग आदि में किया जाता है। खनिजों का उपयोग विभिन्न वाहनों के लिए डीजल, पेट्रोल, संपीड़ित प्राकृतिक गैस (सीएनजी) ईंधन जैसे ऊर्जा संसाधन के रूप में किया जाता है। कोयले का उपयोग बिजली उत्पादन और इस्पात उत्पादन, तेल का उपयोग हीटिंग, बिजली उत्पादन और वाहनों के लिए किया जाता है (तालिका 4)।

**तालिका 4: महत्वपूर्ण खनिज और उनके उपयोग**

| खनिज स्रोत | उपयोग |
|---|---|
| **ए) धात्विक संसाधन** | |
| अल्युमीनियम | भवन निर्माण सामग्री, बिजली के तार, बर्तन, हवाई जहाज, रॉकेट |
| फीरोज़ा | अपवर्तक, तांबा मिश्र धातु |
| क्रोमियम | दुर्दम्य, धातु विज्ञान, रसायन |
| कोबाल्ट | मिश्र धातु, रेडियोग्राफी, उत्प्रेरक, चिकित्सीय |
| कोलंबियम | स्टेनलेस स्टील, परमाणु रिएक्टर |
| ताँबा | मिश्र धातु और विद्युत उत्पाद |
| सोना | मौद्रिक उद्देश्य, आभूषण, दंत चिकित्सा |
| लोहा | इस्पात, निर्माण सामग्री, अनेक औद्योगिक उपयोग |
| नेतृत्व करना | बैटरी, पेंट, मिश्रधातु, सार्वजनिक स्वास्थ्य फिटिंग, गैसोलीन |
| मैगनीशियम | संरचनात्मक अपवर्तक |
| मैंगनीज | मिश्र धातु इस्पात, कीटाणुनाशक |
| मोलिब्डेनम | अलॉय स्टील |
| निकल | 8000 से अधिक मिश्रधातुओं में उपयोग किया जाता है |
| थोरियम | परमाणु बम, बिजली उत्पादन |
| टिन | सोल्डरिंग, रसायन, टिन प्लेट |
| टंगस्टन | मिश्र धातु, रसायन |
| टाइटेनियम | मिश्र धातु, रंगद्रव्य और विमान |
| यूरेनियम | परमाणु बम, बिजली उत्पादन |
| वैनेडियम | मिश्र |
| जस्ता | गैल वैनिशिंग, रसायन, सोल्डरिंग और डाई कास्टिंग |

| गैर धात्विक संसाधन | |
|---|---|
| अदह | छत, इन्सुलेशन, चीनी मिट्टी की चीज़ें, कपड़ा, गैसोलीन |
| कोरन्डम | अब्रेसिव्स |
| फेल्डस्पार | सिरेमिक फ्लक्स, कृत्रिम दांत |
| फ्लोरस्पार | फ्लक्स, रेफ्रिजरेंट, प्रणोदक, एसिड |
| नाइट्रेट | उर्वरक, रसायन |
| फॉस्फेट | उर्वरक, रसायन |
| पोटेशियम | उर्वरक, रसायन |
| नमक | रसायन, कांच, धातु विज्ञान |
| सल्फर | उर्वरक, अम्ल, लोहा और इस्पात उद्योग |
| **ऊर्जा संसाधन** | |
| कोयला | बिजली उत्पादन, इस्पात उत्पादन |
| तेल | हीटिंग, बिजली उत्पादन और वाहन के लिए |
| प्राकृतिक गैस | वाहनों को सी.एन.जी, खाना पकाने, हीटिंग |

जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है, खनिज संसाधनों का बहुत महत्व है, सभी महत्वों के साथ, खनिज संसाधन देश की अर्थव्यवस्था में योगदान करते हैं और निश्चित रूप से देश की वित्तीय स्थिति को बढ़ाते हैं। जैसा कि आप तालिका 5 में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि भारत के विभिन्न राज्यों द्वारा वित्तीय योगदान की प्रवृत्ति बढ़ रही है। 2013-2017 के दौरान छत्तीसगढ़, ओडिशा और राजस्थान प्रमुख योगदानकर्ता हैं क्योंकि इन राज्यों का योगदान 1,07,364/- रुपये, 3,41,343/- रुपये और 2015-16 के वर्ष में 1,86,575/- रुपये था।

**तालिका 5: प्रमुख खनिजों (गोदाम खनिजों कोयला, लिग्नाइट और भंडारण के लिए रेत के अलावा) की पिछले चार वर्षों की रॉयल्टी में वृद्धि (मूल्य ₹ लाख में)**

| राज्य | 2013-14 | 2014-15 | 2015-16 | 2016-17 |
|---|---|---|---|---|
| आंध्र प्रदेश | 48,784.20 | 33,571.00 | 26,650 | 29,527 |
| असम | 44.87 | 139.67 | 248 | 512 |
| बिहार | 128.17 | 107.31 | - | - |
| छत्तीसगढ़ | 1,14,535.52 | 1,55,634.52 | 1,07,364 | 1,11,517 |
| गोवा | 3,650.62 | 4,838.24 | 4,288 | 31,475 |
| गुजरात | 35,031 | 43,476 | - | - |
| हरियाणा | 8 | 40.3 | - | - |
| हिमाचल प्रदेश | 6,625 | 9,740 | - | - |
| झारखंड | 62,706.56 | 82,870.25 | - | - |
| जम्मू एवं कश्मीर | 914.49 | 1,182.14 | - | - |
| कर्नाटक | 74,304 | 92,594 | 79,766 | 1,01,534 |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| केरल | 1,239.31 | 1,390.53 | 757 | - |
| मध्य प्रदेश | 36,527 | 46,697 | 39,185 | 37,735 |
| महाराष्ट्र | 16,825.87 | 14,100 | 16,241 | 16,925 |
| मेघालय | 2,465.59 | 2,199.58 | 2,998 | - |
| ओडिशा | 3,76,765 | 3,44,338 | 3,41, 343 | 2,47,678 |
| राजस्थान | 1,59,147 | 1,97,024 | 1,86,575 | - |
| तेलंगाना | -- | 19,702.72 | 19,015 | 20,126 |
| तमिलनाडु | 16,741.50 | 18,087.4 | - | - |
| उत्तराखंड | 1,522 | 1619 | - | - |
| उत्तर प्रदेश | 1,410 | 1037 | - | - |

***स्रोत: खान मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2017-18***

## 2.7.1. वैश्विक खनिज आवश्यकताएँ

जब हम कुछ चयनित तत्वों की वार्षिक विश्व खपत पर विचार करते हैं, तो निम्नलिखित चित्र सामने आते हैं: सोडियम और आयरन का उपयोग प्रति वर्ष लगभग 0.1 से 1.0 बिलियन मीट्रिक टन की दर से किया जाता है। प्रति वर्ष लगभग 10 से 100 मिलियन मीट्रिक टन की दर से नाइट्रोजन, सल्फर, पोटेशियम और कैल्शियम का उपयोग मुख्य रूप से उर्वरक के रूप में किया जाता है। जस्ता, तांबा, एल्यूमीनियम और सीसा का उपयोग प्रति वर्ष लगभग 3 से 10 मिलियन मीट्रिक टन या उससे भी कम की दर से किया जाता है; और उपभोग किए गए सभी धात्विक खनिजों में से लोहे की खपत 95% है। चूँकि अयस्कों को बनाने वाली प्रक्रियाएँ भूगर्भिक समय के पैमाने पर संचालित होती हैं, अधिकांश आर्थिक खनिज संसाधन अनिवार्य रूप से गैर-नवीकरणीय होते हैं। मानव काल-मान में नये निक्षेप उत्पन्न नहीं किये जा सकते। लेकिन, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जैसे-जैसे सामग्रियों के भंडार समाप्त होते जाते हैं, अन्य स्रोतों को ढूंढना संभव होता है जिनका दोहन करना अधिक महंगा होता है। इसके अलावा, खनिज संसाधन समान रूप से वितरित नहीं हैं। कुछ देश खनिज-समृद्ध हैं; कुछ खनिज-हीन हैं। यह रणनीतिक खनिज संसाधनों के लिए एक विशेष मुद्दा है। ये रणनीतिक धातुएँ वे हैं जिनके लिए आर्थिक स्रोत अमेरिका में मौजूद नहीं हैं और इन्हें अन्य संभावित गैर-मैत्रीपूर्ण देशों से आयात किया जाना चाहिए, लेकिन राष्ट्रीय सुरक्षा, रक्षा, या एयरोस्पेस अनुप्रयोगों जैसे अत्यधिक विशिष्ट अनुप्रयोगों के लिए इनकी आवश्यकता होती है। इन धातुओं में मैंगनीज, कोबाल्ट, प्लैटिनम और क्रोमियम शामिल हैं, जिन्हें आपूर्ति बंद होने की स्थिति में अमेरिकी सरकार द्वारा भंडारित किया जाता है। वर्तमान खनिज संसाधन कितने समय तक चलेंगे यह उपभोग दर और आरक्षित मात्रा पर निर्भर करता है। कुछ खनिज संसाधन जल्द ही ख़त्म हो जायेंगे, उदाहरण के लिए Pb, Zn, और Au के वैश्विक संसाधनों की लगभग 30 वर्षों में ख़त्म होने की संभावना है। Pt, Ni, Co, Mn और Cr के अमेरिकी संसाधनों की 1 वर्ष से भी कम समय में समाप्त होने की संभावना है। इस प्रकार, दुर्लभ खनिजों के निरंतर उपयोग के लिए नए स्रोतों की खोज, कठिन-से-प्राप्त स्रोतों को अधिक लाभदायक बनाने के लिए कीमत में वृद्धि, बढ़ी हुई दक्षता, संरक्षण या पुनर्चक्रण, नई सामग्रियों के प्रतिस्थापन की आवश्यकता होगी।

## 2.7.2 खनिज संसाधनों को खतरा

पहली नज़र में, स्थिरता और खनिज संसाधन विकास संघर्ष में प्रतीत होते हैं। खनन से सीमित संसाधनों का ह्रास होता है और इसलिए, सही अर्थों में, यह स्वाभाविक रूप से टिकाऊ नहीं है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की पपड़ी में तांबे की केवल एक सीमित मात्रा होती है, और निकाले गए तांबे की प्रत्येक इकाई उपयोग में आने वाले कुल तांबा संसाधन आधार के अंश को बढ़ाती है। इस प्रकार, यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि हम खनन जारी रखेंगे तो अंततः हम खनिजों की उपलब्ध आपूर्ति समाप्त कर देंगे। हालाँकि, यह परिप्रेक्ष्य खनिज आपूर्ति की गतिशीलता को नजरअंदाज करता है। व्यवहार में खनिजों का गैर-नवीकरणीय चरित्र जितना लगता है उससे कम अवरोधक हो सकता है। पाँच कारक खनन के लाभों को आरंभिक प्रतीत होने की तुलना में कहीं अधिक टिकाऊ बनाते हैं। सबसे पहले, अन्वेषण और विकास की प्रक्रिया के माध्यम से, खनन कंपनियाँ अपने भंडार को लगातार पुनर्जीवित, बढ़ाती या "बनाए" रखती हैं। वर्तमान भंडार पृथ्वी की पपड़ी में शेष खनिज संसाधनों का केवल एक छोटा सा हिस्सा दर्शाते हैं। अन्वेषण और विकास से पहले के अज्ञात खनिज भंडारों की खोज और प्रमाणन होता है और शायद यह मौजूदा खदानों और ज्ञात भंडारों के अतिरिक्त भंडार जितना ही महत्वपूर्ण है। अन्वेषण में तकनीकी सुधार से खनिज भंडार की खोज दर में वृद्धि होती है और साथ ही खोज लागत भी कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, बड़े पैमाने पर सल्फाइड जमाव के लिए पूर्वानुमानित मॉडल, ज्वालामुखीय चट्टानों में संरचनात्मक अनुमानों और अनुकूल स्ट्रैटिग्राफिक क्षितिज के संयोजन का उपयोग करके पूरी तरह से दबे हुए जमाव को लक्षित करने की अनुमति देते हैं।

## 2.7.3 खनिज संसाधनों द्वारा उत्पन्न समस्याएँ

- खनिजों का ह्रास
- तेजी से बढ़ती खनन गतिविधि ने बड़े कृषि क्षेत्रों को लगभग बेकार बना दिया है।
- खनिकों को सबसे खतरनाक परिस्थितियों में काम करना पड़ता है।
- कई खनिज उत्पादक क्षेत्र वायु और जल प्रदूषण का कारण बनते हैं।
- आदिवासियों का भारी विस्थापन।

## 2.7.4 सतत खनिज खनन

सतत खनन को ऐसे खनन के रूप में परिभाषित किया गया है, "जो वित्तीय रूप से व्यवहार्य है; सामाजिक रूप से जिम्मेदार है; पर्यावरण की दृष्टि से, तकनीकी रूप से और वैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ है; विकास के दीर्घकालिक दृष्टिकोण के साथ है; खनिज संसाधनों का इष्टतम उपयोग करता है; और, बंद होने के बाद स्थायी भूमि उपयोग सुनिश्चित करता है।" साथ ही सरकार, समुदायों और खनिकों के बीच अखंडता, सहयोग और पारदर्शिता के आधार पर दीर्घकालिक, वास्तविक, पारस्परिक रूप से लाभकारी साझेदारी बनाने पर आधारित है।

इसमें शामिल है:

- ऐसे खनन कार्य जिनके संचालन के लिए एक व्यापक-आधारित सामाजिक लाइसेंस है - स्थायी सामाजिक और आर्थिक संपत्ति का निर्माण करना जो खदान के जीवन काल तक चलेगा।
- पर्यावरण, तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टि से सही, जिसका अर्थ है प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रबंधन। और अंतिम खनिज संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करता है।

## 2.8 सारांश

- इस इकाई में हमने खनिज संसाधनों के विभिन्न पहलुओं की जांच की है, अब तक आपने सीखा है कि खनिज संसाधन एक या अधिक उपयोगी सामग्रियों से समृद्ध चट्टान की मात्रा है। इस अर्थ में खनिज का तात्पर्य उपयोगी पदार्थ से है, यहाँ खनिज शब्द पृथ्वी से आने वाला कोई भी पदार्थ हो सकता है
- खनिज वह पदार्थ है जो प्राकृतिक रूप से पृथ्वी की पपड़ी में मौजूद होता है और पशु या वनस्पति पदार्थ से नहीं बनता है।
- धात्विक खनिज संसाधन- वे खनिज संसाधन हैं जिनमें धातु कच्चे रूप में होती है, उनकी उपस्थिति में धात्विक चमक होती है और उन्हें नए उत्पाद प्राप्त करने के लिए पिघलाया जा सकता है।
- अधात्विक खनिज संसाधन वे खनिज हैं जिनकी रासायनिक संरचना में निकालने योग्य धातुएँ नहीं होती हैं; उनके स्वरूप में अधात्विक चमक या आभा होती है।
- ईंधन खनिज संसाधन दुनिया के बुनियादी खनिज संसाधन हैं; उदाहरण में कोयला, कच्चा तेल (पेट्रोलियम) और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधन शामिल हैं।
- जमीन या समुद्र में जमाव की खोज हो जाने के बाद खनिज संसाधनों का खनन किया जाता है; यह प्रक्रिया आम तौर पर खुली खदान या भूमिगत खनन विधि या पंपिंग का उपयोग करके विभिन्न तरीकों से की जाती है। खनन प्रक्रिया खोजे गए खनिज के प्रकार पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, नमक आमतौर पर पंप करके निकाला जाता है; इस मामले में, नमक को पानी में घोल दिया जाता है और तेल और गैस की तरह ही जमीन से पंप किया जाता है।
- सतही खनन क्षेत्र की सभी वनस्पतियों को नष्ट कर देता है और उड़ने वाली धूल से भूदृश्य को प्रदूषित कर देता है। एक बार जब उपलब्ध सामग्री का खनन कर लिया जाता है, तो बड़े गड्ढे पीछे छूट जाते हैं। जब जल विभाजक के रूप में कार्य करने वाली पहाड़ियों का खनन किया जाता है, तो जल स्तर नीचे चला जाता है, जैसा कि राजस्थान में अरावली के मामले में हुआ है।
- खनिज संसाधनों के उत्पादन के मामले में आंध्र प्रदेश, असम, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, अन्य राज्य और अपतटीय क्षेत्र का क्रमशः 4%, 8%, 7%, 7%, 6%, 12%, 13%, 16% और 21% योगदान है (चित्र: 1)।
- भारत में खनिज उत्पादन (परमाणु, ईंधन और लघु खनिजों को छोड़कर) दर्ज करने वाली खदानों की संख्या 2017-18 में 1531 थी, जबकि पिछले वर्ष यह 1508 थी। 1531 रिपोर्टिंग खदानों में से 230

तमिलनाडु में स्थित थे, इसके बाद मध्य प्रदेश (197) गुजरात (191) कर्नाटक (142), ओडिशा (132), आंध्र प्रदेश (129), छत्तीसगढ़ (112), गोवा (87), राजस्थान (85), महाराष्ट्र (75) और झारखंड (58) में स्थित थे। 2017-18 में देश में खनन की कुल संख्या का 94% हिस्सा इन 10 राज्यों का था।

- धात्विक खनिज बहुत महत्वपूर्ण हैं और विभिन्न प्रकार से उपयोग किए जाते हैं, जैसे एल्यूमीनियम, तांबा, सोना, लोहा, सीसा, निकल, थोरियम, यूरेनियम, जस्ता आदि।
- अधातु समूह में एस्बेस्टस, कोरंडम, फेल्डस्पार, फ्लोरस्पार, नाइट्रेट, फॉस्फेट, सल्फर आदि शामिल हैं जिनका उपयोग छत, इन्सुलेशन, अपघर्षक, उर्वरक, रसायन, इस्पात उद्योग आदि में किया जाता है।
- खनिजों का उपयोग विभिन्न वाहनों के लिए डीजल, पेट्रोल, संपीड़ित प्राकृतिक गैस (सीएनजी) ईंधन जैसे ऊर्जा संसाधन के रूप में किया जाता है।
- खनन सीमित संसाधनों को ख़त्म कर देता है और इसलिए, यह स्वाभाविक रूप से टिकाऊ नहीं है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की पपड़ी में तांबे की केवल एक सीमित मात्रा होती है, और निकाले गए तांबे की प्रत्येक इकाई उपयोग में आने वाले कुल तांबा संसाधन आधार के अंश को बढ़ाती है।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1 (a) रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

भारत कई धात्विक और अधात्विक खनिजों के विशाल संसाधन से संपन्न है। खनन क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। स्वतंत्रता के बाद से, मात्रा और मूल्य दोनों के संदर्भ में खनिज उत्पादन में स्पष्ट वृद्धि हुई है। देश ………….. का उत्पादन करता है, जिसमें …………. ईंधन, ………….धात्विक, 23 अधात्विक, 3 परमाणु और ………. लघु खनिज (भवन और अन्य सामग्री सहित) शामिल हैं। भारतीय खनन उद्योगों की विशेषता बड़ी संख्या में छोटी ………….. हैं। 2017-18 में भारत में खनिज उत्पादन (परमाणु, ईंधन और लघु खनिजों को छोड़कर) रिपोर्ट करने वाली खदानों की संख्या ………… थी। 1531 रिपोर्टिंग खदानों में से, ……..तमिलनाडु में स्थित थे, इसके बाद मध्य प्रदेश (197) गुजरात (191) कर्नाटक (142), ओडिशा (132), आंध्र प्रदेश (129), छत्तीसगढ़ (112), गोवा ( 87), राजस्थान (……..), महाराष्ट्र (75) और झारखंड (……..)। 2017-18 में देश में खनन की कुल संख्या में इन 10 राज्यों का हिस्सा ……….% था।

**2.** (a) खनिज संसाधनों के प्रकारों पर चर्चा करें।

(b) खनिज संसाधनों का खनन कैसे किया जाता है?

**3.** (a) खनन के कारण होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं का वर्णन करें।

(b) भारत की खनिज बेल्टों पर चर्चा करें।

**4.** a) खनिज संसाधनों के वितरण से आपका क्या तात्पर्य है? भारत में खनिज संसाधनों के प्रकार एवं वितरण की व्याख्या करें?

**5.** (a) वित्तीय विकास में खनिज संसाधनों की भूमिका की व्याख्या करें।

(b) वैश्विक स्तर पर खनिज संसाधनों की आवश्यकता पर चर्चा करें??

(c) खनिज संसाधनों पर खतरे पर चर्चा करें।

**6.** (a) रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

जब हम कुछ चयनित तत्वों की वार्षिक विश्व खपत पर विचार करते हैं, तो निम्नलिखित तस्वीर उभरती है: सोडियम और लोहे का उपयोग प्रति वर्ष लगभग ………… अरब मीट्रिक टन की दर से किया जाता है। नाइट्रोजन, …………,………., पोटेशियम और कैल्शियम का उपयोग प्रति वर्ष लगभग …………… मिलियन मीट्रिक टन की दर से मुख्य रूप से उर्वरकों के रूप में किया जाता है। ………., ………., ……….. और सीसा का उपयोग लगभग ……… से ……… मिलियन मीट्रिक टन प्रति वर्ष या उससे भी कम की दर से किया जाता है; और सभी धात्विक खनिजों में से, लोहा उपभोग की जाने वाली सभी धातुओं का …………% बनाता है। चूँकि अयस्कों को बनाने वाली प्रक्रियाएँ भूगर्भिक समय के पैमाने पर संचालित होती हैं, सबसे अधिक आर्थिक खनिज संसाधन अनिवार्य रूप से …………………… होते हैं। मानव काल-मान में नये निक्षेप उत्पन्न नहीं किये जा सकते। लेकिन, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जैसे-जैसे सामग्रियों का भंडार समाप्त होता जाता है, अन्य स्रोतों को ढूंढना संभव होता है जो अधिक महंगे होते हैं। इसके अलावा, ………………… समान रूप से वितरित नहीं होते हैं। कुछ देश खनिज-समृद्ध हैं; कुछ खनिज-हीन हैं। यह रणनीतिक के लिए एक विशेष मुद्दा है... ये रणनीतिक धातुएं वे हैं जिनके लिए आर्थिक स्रोत मौजूद नहीं हैं... इन्हें अन्य संभावित गैर-मित्र राष्ट्रों से आयात किया जाना चाहिए, लेकिन हैं राष्ट्रीय सुरक्षा, रक्षा, या एयरोस्पेस अनुप्रयोगों जैसे अत्यधिक विशिष्ट अनुप्रयोगों के लिए आवश्यक है।

(b) भारी वजन के कारण मैग्मा पिंड से खनिज क्रिस्टलीकृत हो जाएंगे (हां/नहीं)

(c) नदी के किनारे या समुद्र तट के किनारे बहते पानी में पाए जाने वाले जमाव को (प्लेसर अयस्क जमा/स्ट्रेटा अयस्क जमा) कहा जाता है।

(d) भारत की खनिज हृदय भूमि कौन सी है (छोटानागपुर/नेवेली/झारखंड)

(e) खनन से आप क्या समझते हैं?

**7.** (a) धात्विक और अधात्विक खनिज संसाधनों का वर्णन करें।

(b) भारत में सोना, अभ्रक, एस्बेस्टस, चांदी और बॉक्साइट का उपयोग और वितरण बताएं

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

**1** (a) 95 खनिज, 4 ईंधन, 10 धात्विक, 55 लघु परिचालन खदानें। 1531 230, (85), (58), 94%

**2** (a) अनुभाग 2.4 देखें

(b) खंड 2.5 देखें

**3** (a) अनुभाग 2.5.1 देखें

(b) अनुभाग 2.6.1 देखें

**4** (a) अनुभाग 2.6 देखें (तालिका 1)

**5** (a) अनुभाग 2.7 देखें

(b) अनुभाग 2.7.1 देखें

(c) खंड 2.8 देखें

**6** (a) .1 से 1.0 बिलियन/सल्फर/10 से 100 मिलियन/जस्ता, तांबा, एल्यूमीनियम/3 से 10/95% गैर-नवीकरणीय/शोषण। खनिज संसाधन/खनिज संसाधन/ यू.एस.

(b) हाँ

(c) प्लेसर अयस्क जमा

(d) छोटानागपुर

(e) खंड 2.5 देखें

**7** (a) अनुभाग 2.7 देखें

(b) अनुभाग 2.6 देखें (तालिका)

# इकाई 3: जल संसाधन और आर्द्रभूमि अध्ययन: सुंदरबन और भरतपुर सेंचुरी

इकाई संरचना

**3.0 सीखने के उद्देश्य**
**3.1 परिचय**
**3.2 आर्द्रभूमियों के प्रकार एवं विशेषताएँ**
**3.2.1 प्राकृतिक आर्द्रभूमियाँ**
**3.2.2 पीट भूमि वर्गीकरण**
**3.3 आर्द्रभूमि का महत्व एवं कार्य**
**3.4 भारत में आर्द्रभूमियाँ**
**3.5 रामसर कन्वेंशन**
**3.5.1 सुंदरबन की केस स्टडी**
3.5.2 **केस स्टडी: भरतपुर सेंचुरी**
**सारांश**

## 3.0 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझाने में सक्षम होंगे:

- आर्द्रभूमि को परिभाषित करने में
- आर्द्रभूमियों की विशिष्ट विशेषताएं क्या हैं?
- भारत में आर्द्र भूमियों के बारे में वर्णन करें
- रामसर कन्वेंशन क्या है?
- भारत में कितने रामसर संरक्षणस्थल हैं?
- भरतपुर अभयारण्य
- भरतपुर अभयारण्य की वनस्पति एवं जीव

## 3.1 परिचय

भूमि पर विभिन्न प्राकृतिक संसाधन हैं जैसे वन संसाधन, जल संसाधन, भूमि संसाधन, खनिज संसाधन, ऊर्जा संसाधन आदि। जल संसाधन सभी संसाधनों में से एक महत्वपूर्ण संसाधन है और यह न केवल मनुष्य के लिए बल्कि सभी जीवित प्राणियों, जीव-जंतु और सभी पारिस्थितिकतंत्रों के लिए भी महत्वपूर्ण है। लगभग 97.5% पानी समुद्र और महासागरों में होता है जिसे खारा पानी कहा जाता है, दूसरी ओर शेष 2.5% पानी मीठा पानी माना जाता है।अधिकांश ताज़ा पानी जलस्रोतों के रूप में कार्य करता है और इन संसाधनों में नदियाँ, झीलें, तालाब, आर्द्रभूमि, भूजल आदि शामिल हैं।आर्द्रभूमि एक भूमिक्षेत्र है जो पानी से संतृप्त है।आर्द्रभूमियाँ अंटार्कटिका को छोड़कर पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर पाई जाती हैं। ये आर्द्रभूमियाँ पारिस्थितिक, सामाजिक और

आर्थिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं।आर्द्रभूमियाँ भूजल को रिचार्ज करती हैं, बाढ़ नियंत्रण दीवार के रूप में कार्य करती हैं, जैविक विविधता को बढ़ाती हैं आदि। इसलिए, स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर इन आर्द्रभूमियों का रक्षण, सुरक्षा और संरक्षण करना आवश्यक है। आर्द्रभूमियों के महत्व के बारे में व्यापक जागरूकता फैलाने के लिए हरसाल 2 फरवरी को विश्वआर्द्रभूमि दिवस मनाया जाता है।

आर्द्रभूमियाँ न केवल मनुष्य के लिए बल्कि पारिस्थितिकस्थिरता के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण जलाशय हैं। इस इकाई में आप भारत में आर्द्रभूमियों, आर्द्रभूमियों के विभिन्न प्रकारों और महत्व, सुंदरवन और भरतपुर अभयारण्य के मामले के अध्ययन के बारे में जानेंगे।

**परिभाषाएं:** मनुष्य के पास आर्द्रभूमियों का लंबा इतिहास है।मानव सभ्यता का विकास जलस्रोतों अथवा आर्द्रभूमियों के निकट हुआ है। इनमें से अधिकांश सभ्यताएँतटोंपर, नदियों के किनारे या प्रमुख कृषि भूमि और समृद्ध जंगलों में स्थापित की गईं, जिनमें से सभी में ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें "आर्द्रभूमि" कहा जा सकता है। हाल के वर्षोंमें , विशेष रूप से 1960 के आस पास, "आर्द्रभूमि" शब्द व्यापक रूप से उपयोग में आयाहै और इसका अर्थ सभी प्रकार के भूमि क्षेत्र हैं जिनमें पानी की मात्रा विशेष रूप से अधिक है। विभिन्न एजेंसियों ने आर्द्रभूमि को परिभाषित किया है, आर्द्रभूमि की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ नीचे दी गई हैं:

- रामसर कन्वेंशन के अनुसार आर्द्रभूमियों को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, "दलदल (marsh), पंकभूमि (fen), पीट भूमियाजल, कृत्रिमया प्राकृतिक, स्थायीया अस्थायी, स्थिर यागतिमान जलताजा, खारा व लवण युक्त जलक्षेत्रों को आर्द्रभूमि कहते है।
- ज्वारीय आर्द्रभूमि अधिनियम (1969) के अनुसार, "आर्द्रभूमि" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "आर्द्रभूमि" का अर्थ है वे क्षेत्र जो ज्वारीयजल की सीमा पर हैं या उसके नीचे स्थित हैं, जैसेकि, लेकिन इन्हीं तक सीमित नहीं हैं, तट, दलदल, नमकदलदल, घास के मैदान या अन्य निचली भूमि जो ज्वारीय कार्रवाई के अधीन हैं, जिन में वे क्षेत्र भी शामिल हैं जो अब या पहले ज्वारीयजल से जुड़े हुए हैं; और जिसकी सतहस्थानीय अत्यधिक ऊंचे पानी से एक फुट की ऊंचाई पर या उससे नीचे है; और जिस पर विकास हो सकता है, या बढ़ने में सक्षम है।
- रामसर कन्वेंशन में कहा गया है कि "आर्द्रभूमि में आर्द्रभूमियों और द्वीपों या आर्द्रभूमियों के भीतर कम ज्वारपर 6 मीटर से अधिक गहरे समुद्री जल के निकायों से सटे तटवर्ती और तटीय क्षेत्र शामिल हो सकते हैं।
- अंतर्देशीय आर्द्रभूमि और जलस्रोतों के अनुसार "आर्द्र भूमि वह भूमि है, जिसमें जलमग्न भूमि भी शामिल है, जिसमें खराब जल निकासी वाली, बहुत खराब जल निकासी वाली, जलोढ़ और बाढ़ के मैदान जैसी किसी भी प्रकार की मिट्टी शामिल होती है।

**"आर्द्रभूमि" से संबंधित शब्द"**

**(i)** **दलदल:** दलदल ऐसी जमीन का एक क्षेत्र या विस्तार है जो गीली, स्पंजी होती है जिसमें मिट्टी सड़े हुए वनस्पति पदार्थ से बनी होती है।बोग में आमतौर पर खराब जल निकासी वाला अम्लीय क्षेत्र होता है, जो पौधों के अवशेषों से भर पूर होता है, जो अक्सर खुले पानी के शरीर के आसपास होता है, और इसमें विशिष्ट वनस्पतियां होती हैं। दलदल में मुख्य वनस्पतियाँसेज, हीथ और स्फाग्नम हैं।

(ii) तली: किसी जलीय पिंड के नीचे की ज़मीन; आमतौर पर बॉटम्स, जिसे बॉटम लैंड भी कहा जाता है।

(iii) एवरग्लेड: एवरग्लेड दलदली भूमि है जिसकी विशेषता लंबी घास के झुरमुट और असंख्य शाखाओं वाले जलमार्ग हैं। एवरग्लेड आमतौर पर, आरा-घास युक्त होता है औ रन्यू नातिन्यून मौसमी रूप से धीरे-धीरे बहने वाले पानी से ढका होता है।

(iv) फेन: फेन तराई क्षेत्र है जो पूरी तरह या आंशिक रूप से पानी से ढका होता है।

(v) फेनलैंड: दलदली भूमि का निचला क्षेत्र।

(vi) हीथ:हीथ खुली और बंजर भूमि, झाड़ियों से उगी बंजर भूमिका एक पथ है। बंजर भूमि का पथ समतल खुली बंजर भूमिका एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें आम तौर पर खराब मोटी मिट्टी, निम्न जल निकासी और पीट या पीटह्यूमस से समृद्ध सतह होती है।

(vii) दलदल: दलदल कम आर्द्र भूमिका एक पथ है, जो आमतौर पर पेड़ रहित होता है और आवधिक तौर पर जल मग्न रहता है: इसमें घास, सेज और झाड़ियाँ पाई जाती हैं।

(viii) मार्शलैंड: एकक्षेत्र, जिला, आदि जो कच्छ, दलदल, पंक भूमि या इसी तरह की विशेषता रखते हैं।

(ix) तृणभूमि (चारागाह): तृणभूमि चरागाह के लिए उपयोग किए जाने वाले घास के मैदान हैं। ये लकड़ी की लाइन के पास एक ऊंचे क्षेत्र में घास के मैदान हैं। इन घास के मैदानों में घास की प्रधानता होती है; विशेष रूप से नमनिचले इलाकों का एक पथ जो आमतौर पर समतल घास का मैदान होता है।

(x) कीचड़: कीचड़ गीली, दलदली जमीन का एक भाग है; दलदल; दलदल; इस प्रकार की भूमि कुछ गहराई की गीली, चिपचिपी मिट्टी के समान होती है; गहरी मिट्टी, आदि।

(xi) मूर: मूरखुली, पीटयुक्त, बंजर भूमि का एक पथ है, जो अक्सर हीथ के साथ ऊंचा हो जाता है; यह उच्च अक्षांशों और ऊंचाई पर आम है जहां जल निकासी खराब है। ये आमतौर पर पीट युक्त होते हैं और इनमें घास और सेज का प्रभुत्व होता है।

(xii) मूरलैंड: यह दलदलों का क्षेत्र है, विशेष रूप से हीथर से भरपूर देश।

(xiii) मोरास: मोरास निचली, नरमगीली भूमि, दलदल या दलदली भूमि का एक पथ है।

(xiv) मस्केग: उत्तरी उत्तर अमेरिका का एक दलदल, जिसमें आमतौर पर स्पैगनम मॉस, सेज और कभी-कभी कम कद वाले का लेस्प्रूस और इमली के पेड़ होते हैं।

(xv) दलदल: दलदली या दलदली जमीन का एक क्षेत्र जिसकी सतह चलने से नीचे झुकती है।

(xvi) क्विकसैंड: क्विकसैंड नरम या ढीली रेत का एक बिस्तर है जो पानी से संतृप्त होता है और इसमें काफी गहराई होती है, इसका वजन कम होता है और इसलिए यह इस पर आने वाले व्यक्तियों, जानवरों आदि को निगलने के लिए उपयुक्त होता है।

(xvii) नमकदलदल: नमकदलदल एक दलदली पथ है जो खारे पानी से गीला होता है या महासागरों या समुद्रों से जलमग्न होता है।

(xviii) स्लाउ: स्लाउ नरम, कीचड़ युक्त भूमि, दलदल या दलदल जैसा क्षेत्र है।

(xix) नाबदान: नाबदान एक दलदल या कीचड़ युक्त तालाब है।

(xx) स्वाले: स्वाले भूमि के एक हिस्से में निचला स्थान है, जो आमतौर पर नम होता है और इसमें अक्सर निकटवर्ती ऊंची भूमि की तुलना में अधिक रैंकर वनस्पति होती है।

(xxi) दलदल:. दलदल गीली, स्पंजी भूमि का एक पथ है; दलदली भूमि, नरम, गीली भूमि का एक पथ जिसमें कुछ प्रकार के पेड़ और अन्य वनस्पतियाँ उगती हैं, लेकिन खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं।

(xxii) स्वैम्पलैंड: स्वैम्पलैंड दलदल से ढका हुआ क्षेत्रयाभूमि है।

(xxiii) वेटलैंड: वेटलैंड आमतौर पर भूमि का एक हिस्सा है जिसमें गीली और स्पंजी मिट्टी होती है, जैसे दलदल।

# 3.2 आर्द्रभूमियों के प्रकार एवं विशेषताएँ

## 3.2.1 प्राकृतिक आर्द्रभूमियाँ

विभिन्न प्राकृतिक आर्द्रभूमि का वर्णन नीचे दिया गया है:

(i) **समुद्री:** समुद्री और तटीय आर्द्र भूमियाँ आमतौर पर भूमि और समुद्र के बीच के क्षेत्रों में पाई जाती हैं। ये आर्द्रभूमियाँ नदियों से प्रभावित नहीं होती हैं।समुद्री आर्द्रभूमि के उदाहरण खुलेमहासागर, महाद्वीपीय शेल्फ हैं, जिनमें समुद्रतट, चट्टानीतट, लैगून और उथली मूंगा चट्टानें शामिल हैं। इन समुद्री आर्द्रभूमियों में अत्यधिक खारा जल रसायन होता है और नदियों या मुहल्लों का प्रभाव न्यूनतम होता है। इन आर्द्रभूमियों में मैंग्रोव, मडफ्लैट या सबखा मौजूद हो सकते हैं।

(ii) **एस्टुरीन:** एस्टुरीन आर्द्रभूमियाँ वहाँ पाई जाती हैं जहाँ मीठा पानी (विशेषकर नदियाँ) समुद्र के खारे पानी से मिलता है और उसमें मिल जाता है। ईस्टुरीन आर्द्रभूमियों में मैंग्रोव, साल्टमार्श आर्द्रभूमि आदिशा मिल जाता हैं। ये ताजे-खारे-समुद्री जल रसायन और दैनिक ज्वारीय चक्रों की एक श्रृंखला के साथ गहरे पानी के ज्वारीय आवास हैं। एस्टुरीन आर्द्रभूमि के उदाहरण हैं: नमक और खारे दलदल, अंतर्ज्वारीय कीचड़, मैंग्रोव दलदल, खाड़ियाँ, ध्वनियाँ और तटीय नदियाँ।

(iii) **नदीतटीय:** नदीतटीय आर्द्रभूमियाँ नदियों और झरनों जै से बहते पानी से जुड़ी होती हैं। मीठे पानी की, बार हमासीजलधाराएँ जिसमें एक चैनल के भीतर मौजूद गहरे पानी के आवासशा मिल होते हैं, इस प्रतिबंधात्मक प्रणाली में चैनल से सटे बाढ़ के मैदानों के साथ-साथ 0.5% से अधिक लवणता वाले आवासों को शामिल नहीं किया जाता है।

(iv) **लैक्स्ट्रिन:** लैक्स्ट्रिन आर्द्रभूमियाँ झीलों और तालाबों से संबंधित हैं।इन आर्द्रभूमियों पर मुख्य रूप से जलमग्नमैक्रोफाइट्स, डायटम्स, शैवाल, जड़ी-बूटियाँ और तैरते फ़र्न का कब्जा है।इन आर्द्रभूमियों में अंतर्देशीय जलनिकाय शामिल हैं जो स्थलाकृतिक अवसादों में स्थित हैं, जिनमें उभरे हुए पेड़ों औ रझाड़ियों की कमी है, जिनमें 30% से कम वनस्पति आवरण है, और कम से कम 20 एकड़ (8 हेक्टेयर) पर कब्जा है। इस प्रकार की आर्द्रभूमियों के उदाहरण झीलें, बड़ेतालाब, स्लॉज़, झीलें, खाड़ी आदि हैं।

(v) **पैलुस्ट्रिन:**"पैलुस्ट्रिन" शब्द लैटिन शब्द "पालुस" से लिया गया है जिसका अर्थ है मार्श।पलुस्ट्रिन आर्द्रभूमि में कोई भी अंतर्देशीय आर्द्रभूमि शामिल हो सकती है जिसमें बहते पानी की कमी हो।इन आर्द्रभूमियों में समुद्र से प्राप्त लवण (0.5 पीपीएमसेकम) होते हैं। ये आर्द्रभूमियाँ गैर-ज्वारीय आर्द्रभूमियाँ हैं जो काफी हद तक उभरती हुई वनस्पतियों जैसे: पेड़, झाड़ियाँ, काई, आदि से ढकी हुई हैं। अधिकांश दलदल, और बाढ़ के मैदान दलदल को पलुस्ट्रिन आर्द्रभूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया है।इन आर्द्रभूमियों का जल रसायन सामान्यतःताज़ा होता है, लेकिन लवणीय और खारा तक हो सकता है।

उपरोक्त सभी आर्द्रभूमियाँ एक-दूसरे के साथ इंटरफेस कर सकती हैं, ताकि पृथ्वी की सतह पर एक पर्यावरणीय सातत्य मौजूद रहे। आर्द्रभूमियों से संबंधित विभिन्न प्रकार के शब्द हैं और उनकी विशेषताएँ तालिका-1 में दी गई हैं।

**तालिका 1. विभिन्न प्रकार की आर्द्रभूमियाँ और उनकी विशेषताएँ**

| **आर्द्रभूमि का प्रकार** | **विशेषताएँ** |
|---|---|
| दलदल | पीट में आम तौर पर काई का प्रभुत्व होता है। बोग में केवल सीधी वर्षा होती है; इसकी विशेषता अम्लीय पानी, कम क्षारीयता और कम पोषक तत्व हैं। |
| फेन | फेन पीट संचय में सेज, ईख, झाड़ी या जंगल का प्रभुत्व है। फेन को कुछ सतही अपवाह और भूजल प्राप्त होता है। फेन में तटस्थ पीएच होता है और इसमें मध्यम से उच्च पोषक तत्व होते हैं। |
| कीचड़ | इस शब्द का उपयोग मुख्य रूप से यूरोप में किसी भी पीट बनाने वाली आर्द्रभूमि (दलदल या फेन) को शामिल करने के लिए किया जाता है। |
| मार्श (दलदल) | स्थायी रूप से या समय-समय पर जलमग्न स्थल जिसकी विशेषता पोषक तत्वों से भरपूर आर्द्रभूमि हो। |
| प्लाया | प्लाया उथले, अल्पकालिक तालाब या लैगून हैं जो अर्ध-शुष्क से शुष्क जलवायु में सार्थक मौसमी परिवर्तनों का अनुभव करते हैं। आम तौर पर इनमें लवणता अधिक होती है और ये पूरी तरह सूखे भी हो सकते हैं। |
| स्लाउ | इस शब्द का उपयोग किसी चैनल या उथली झीलों की श्रृंखला में आर्द्रभूमि पर्यावरण के लिए किया जाता है। यहाँ, पानी स्थिर है या मौसमी आधार पर धीरे-धीरे बह सकता है।. |
| दलदल (स्वॅाम्प) | दलदल की विशेषता जंगल, झाड़ी और ईख का आवरण है। ये विशेष रूप से उत्तरी अमेरिका में वनयुक्त आर्द्रभूमि हैं। यह पोषक तत्वों से भरपूर भूजल पर निर्भर करता है जो खनिज मिट्टी से प्राप्त होता है। |
| गीली तृणभूमि | गीली तृणभूमि जलयुक्त मिट्टी वाले घास के मैदान या सवाना हैं। इनमें वर्ष के अधिकांश समय पानी जमा नहीं रहता। |

| | |
|---|---|
| खुला जलीय आर्द्रभूमि | आर्द्रभूमियों और झीलों और नदियों के उथले भागों के भीतर गहरे, सामान्यतः बारहमासी तालाब। आमतौर पर जलमग्न मैक्रोफाइट्स को आवास प्रदान करते हैं।. |

*मित्श और गोसेलिंक (1993)*

## 3.2.2 पीट भूमि वर्गीकरण

चार्मन के अनुसार, (2002) पीटलैंड शब्द उन आर्द्रभूमियों को इंगित करता है जिनमें पर्याप्त पीट संचय हुआ है यानी कम से कम एक फुट (30 सेमी). पीटलैंड सब्सट्रेट जैविक गतिविधि द्वारा निर्मित एक जैविक संरचना है। पीट दुनिया भर में कई आर्द्रभूमियों का अभिन्न अंग है। पीट पौधों का आंशिक रूप से विघटित अवशेष है जिसमें 65% से अधिक कार्बनिक पदार्थ होते हैं। काई, घास, जड़ी-बूटियाँ, झाड़ियाँ और पेड़ जैविक अवशेषों के निर्माण में योगदान कर सकते हैं। समय के साथ, पीट का संचय सब्सट्रेट बनाता है, भूजल की स्थिति को प्रभावित करता है, और आर्द्रभूमि की सतह आकृति विज्ञान को संशोधित करता है।

चार्मन (2002), के अनुसार, विभिन्न प्रकार की पीटलैंड के वर्गीकरण के लिए कई कारकों को महत्वपूर्ण माना जाता है। ये कारक हैं फ्लोरिस्टिक्स, फिज़ीआग्नमी, मॉर्फोलॉजी, हाइड्रोलॉजी, स्ट्रैटिग्राफी, रासायनिक और पीट लक्षण। इन पात्रों का वर्णन नीचे दिया गया है:

(i) **फ्लोरिस्टिक्स:** फ्लोरिस्टिक्स लक्षणों में शामिल हैं: वनस्पति समुदायों की पौधों की संरचना, जिसका उपयोग पर्यावरणीय कारकों के विकल्प या संकेतक के रूप में किया जा सकता है.

(ii) **फिज़ीआग्नमी:** फिज़ीआग्नमी आम तौर पर प्रमुख पौधों की संरचना, आकारिकी है।

(iii) **मॉर्फोलॉजी:** पीट के चरित्र को परिभाषित करने में यह भी महत्वपूर्ण कारक है। यह पीट जमाव और आर्द्रभूमि सतह की भू-आकृति विज्ञान का त्रि-आयामी आकार है।.

(iv) **हाइड्रोलॉजी:** हाइड्रोलॉजी में सतह और भूजल के लिए आपूर्ति और प्रवाह व्यवस्था का स्रोत शामिल है।

(v) **रासायनिक:** इसमें सतही जल की रासायनिक विशेषताएं, विशेष रूप से जल निकायों में अम्लता और पोषक तत्व शामिल हैं।

(vi) **पीट लक्षण:** इसमें शामिल हैं: वानस्पतिक संरचना, पोषक तत्व सामग्री और संरचना। यह मानव अनुप्रयोगों के लिए भी महत्वपूर्ण गुण है।

कारकों के आधार पर, पीट भूमि को वर्गीकृत करने के लिए जल आपूर्ति और पोषक तत्वों की सांद्रता सबसे बुनियादी तत्व हैं। चार्मन (2002) के अनुसार, पीट भूमि को दो वर्गों में विभाजित किया गया है:

(a) **ओम्ब्रोट्रोफिक:** ओम्ब्रोट्रॉफ़िक को प्रत्यक्ष वर्षा से सारा पानी और पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। न तो भूजल और न ही आसपास की भूमि से अपवाह दलदल की सतह तक पहुंचता है। बारिश और बर्फ जल स्रोत प्रदान करते हैं, और पोषक तत्व धूल, पत्तियों, पक्षियों की बीट और पंखों, मकड़ी के जालों,

जानवरों के फर आदि से प्राप्त होते हैं। जल रसायन अम्लीय होता है, और पौधों की वृद्धि के लिए पोषक तत्वों की कमी होती है। स्पैगनम और पाइन जैसे कुछ पौधे ऐसी चरम स्थितियों में जीवित रह सकते हैं।

(b) **मिनरोट्रोफिक:** अवसादों में स्थित बाड़ें जो आसपास के खनिज-मिट्टी स्रोतों से सतही अपवाह और/या भूजल पुनर्भरण प्राप्त करती हैं। इसमें पोषक तत्व अधिक मात्रा में मौजूद होते हैं और पानी अधिक क्षारीय होता है। ये स्थितियाँ पौधों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए उपयुक्त हैं और ओम्ब्रोट्रॉफ़िक की तुलना में अधिक पुष्प विविधता को जन्म देती हैं।

आर्द्रभूमियाँ गीली होती हैं। चूंकि वे आर्द्रभूमि हैं, इसलिए वे जमीन की सतह के सापेक्ष जल स्तर की स्थिति के कारण उप-सतही जल प्रवाह का अनुसरण करते हैं। एमओईएफसीसी के अनुसार 'वेटलैंड' विभिन्न प्रकार के जल निकायों के लिए एक सामान्य शब्द है, और इसमें विभिन्न हाइड्रोलॉजिकल इकाइयाँ शामिल हैं, जैसे झीलें, दलदल, मुहाना, ज्वारीय समतल, नदी बाढ़ के मैदान और मैंग्रोव। ताज़ा पानी, जो मनुष्य और सभी जीवित जीवों के लिए जीवन-रेखा रखता है, एक तेजी से सिकुड़ता हुआ संसाधन है और संभवतः प्रतिस्पर्धी दावों और परिणामी संघर्षों का कारण बन सकता है।

## 3.3 आर्द्रभूमि का महत्व एवं कार्य

आर्द्रभूमियाँ महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र हैं जो लोगों, जलीय जीवन और वन्य जीवन के लिए कई लाभ प्रदान करती हैं। इनमें से कुछ लाभों में पानी की गुणवत्ता की रक्षा करना और उसमें सुधार करना, वन्यजीवों को आवास प्रदान करना, पानी का भंडारण करना, बाढ़ नियंत्रण और भूजल का पुनर्भरण करना आदि शामिल हैं। ये मूल्यवान कार्य आर्द्रभूमि की अनूठी और विशिष्ट विशेषताओं का परिणाम हैं।

दूसरी ओर, आर्द्रभूमियाँ दुनिया में सबसे अधिक उत्पादक पारिस्थितिक तंत्रों में से हैं। ये आर्द्रभूमियाँ वर्षा वनों और प्रवाल भित्तियों के बराबर हैं। सूक्ष्मजीवों, पौधों, कीड़ों, उभयचरों, सरीसृपों, पक्षियों, मछलियों और स्तनधारियों की प्रजातियों की एक विशाल विविधता इन आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी प्रणालियों का हिस्सा हो सकती है। जलवायु, परिदृश्य आकार, भूविज्ञान और पानी की आवाजाही और प्रचुरता प्रत्येक आर्द्रभूमि में रहने वाले पौधों और जानवरों को निर्धारित करने में मदद करती है। आर्द्रभूमि पर्यावरण में रहने वाले जीवों के बीच जटिल, गतिशील संबंधों को खाद्य जाल कहा जाता है।

आर्द्रभूमियों को "जैविक सुपरमार्केट" माना जा सकता है। वे ऐसा भोजन प्रदान करते हैं जो कई पशु प्रजातियों को आकर्षित करता है। ये जानवर अपने पूरे जीवन-चक्र के लिए या अपने जीवन-चक्र के एक हिस्से के लिए आर्द्रभूमि का उपयोग करते हैं । मृत पौधों की पत्तियाँ और तने पानी में टूटकर कार्बनिक पदार्थ के छोटे-छोटे कण बनाते हैं जिन्हें "डिटरिटस" कहा जाता है। यह समृद्ध सामग्री जलीय कीड़ों, शेलफिश और छोटी मछलियों को पोषित करती है जो शिकारी मछलियों, उभयचर, सरीसृप, जलीय पक्षियों और स्तनधारियों जैसे उच्च उष्णकटिबंधीय स्तर के जानवरों के लिए भोजन हैं। आर्द्रभूमि के कार्य और मनुष्यों के लिए इन कार्यों के मूल्य आर्द्रभूमि और वाटरशेड में अन्य पारिस्थितिक तंत्रों के बीच संबंधों की एक संयुक्त स्थिति पर निर्भर करते हैं। वाटरशेड एक भौगोलिक क्षेत्र है जिसमें पानी, तलछट और घुले हुए पदार्थ उच्च ऊंचाई से एक आम निचले आउटलेट या नदी, झील, अंतर्निहित जलभृत या मुहाना के बेसिन तक बहते हैं। आर्द्रभूमियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं और जलसंभर की पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। स्थिर पानी, पोषक तत्वों की उच्च सांद्रता और प्राथमिक

उत्पादकता का संयोजन पौधों और जानवरों के विकास के लिए महत्वपूर्ण है जो भोजन का आधार बनते हैं। पक्षियों और स्तनधारियों की कई प्रजातियाँ भोजन, पानी और आश्रय के लिए आर्द्रभूमि पर निर्भर होती हैं, विशेष रूप से प्रजनन के मौसम के दौरान, वे इन आर्द्रभूमियों की ओर पलायन करते हैं

सूक्ष्मजीव विविधता, पौधों की विविधता और पशु विविधता पानी, नाइट्रोजन और सल्फर के वैश्विक चक्र का हिस्सा हैं। वैज्ञानिकों ने पाया कि वायुमंडलीय रखरखाव आर्द्रभूमि का एक अतिरिक्त कार्य हो सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, आर्द्रभूमियाँ कार्बन को कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में वायुमंडल में छोड़ने के बजाय अपने पादप समुदायों और मिट्टी के भीतर संग्रहीत करती हैं। इस प्रकार आर्द्रभूमियाँ ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में मदद करती हैं। उनकी सेवाओं और कार्यों की विविधता के कारण उनका बहुत महत्व है। आर्द्रभूमियों के कार्यों का सारांश तालिका 2 और चित्र 1 में संक्षेपित किया गया है।

**तालिका 2. आर्द्रभूमियों का महत्व एवं कार्य**

| कार्य | परिभाषा |
|---|---|
| भूजल पुनर्भरण | आर्द्रभूमि में पानी की मात्रा और भूजल और सतही जल प्रणाली के बीच इसके प्रवाह की दर को प्रभावित करने की प्रक्रियाओं की क्षमता |
| बाढ़ नियंत्रण | विशेषकर बाढ़ के दौरान बड़ी मात्रा में पानी जमा करने की आर्द्रभूमि की क्षमता। आर्द्रभूमियाँ चरम निर्वहन को कम करके और सांद्रता के समय को बढ़ाकर (वर्षा/बाढ़ की घटना और धाराओं में पानी छोड़ने के बीच का समय) धाराओं में प्रवाह को संशोधित करती हैं। |
| जल की गुणवत्ता में सुधार | कुल घुलित और पोषक तत्वों को हटाना और अन्य कम विषैले रूपों, जैसे पौधे और पशु बायोमास या गैसों में परिवर्तित करना। |
| तलछट स्थिरीकरण और प्रतिधारण | आर्द्रभूमि की भौतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से पानी से अकार्बनिक और कार्बनिक तलछट के जमाव और अवधारण का कारण बनने की क्षमता। |
| जलीय जीवों को आवास प्रदान करना | आर्द्रभूमि की हाइड्रोफाइटिक पुष्प प्रजातियों और समुदायों की विविधता और जानवरों के लिए जलीय आवास उत्पन्न करने की क्षमता |
| वन्यजीव विविधता और पर्यावास | आर्द्रभूमियाँ उन जानवरों की प्रजातियों और समुदायों को आवास प्रदान करती हैं जो अपने जीवन चक्र का कुछ या पूरा हिस्सा आर्द्रभूमि में बिताते हैं |

(a) **जल शोधन:** आर्द्रभूमियाँ मनुष्यों के लिए परिवर्तनशील होती हैं क्योंकि उनका पानी की गुणवत्ता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः, आर्द्रभूमियाँ पृथ्वी पारिस्थितिकी तंत्र की किडनी हैं। वे लीचिंग, अंतःस्राव आदि के माध्यम से भूजल को रिचार्ज करते हैं। आर्द्रभूमियाँ जल निस्पंदन के रूप में कार्य करती हैं, ये आर्द्रभूमियाँ सतही अपवाह को भी रोकती हैं और पानी से विषाक्त पदार्थों को निकालती हैं।

(b) **जल भंडारण और आपूर्ति:** आर्द्रभूमियाँ स्थानीय समुदायों को जल आपूर्ति प्रदान करती हैं। जैसा कि आप जानते हैं ये आर्द्रभूमियाँ प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र हैं और इनमें पर्याप्त मात्रा में पानी जमा होता है। आर्द्रभूमियों की पानी की गुणवत्ता अच्छी है और इसका उपयोग पीने, सिंचाई, जलविद्युत उत्पादन आदि जैसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है। आर्द्रभूमियाँ पानी छोड़ती हैं और वर्षा या वर्षा जल से अपना जल स्तर बनाए रखती हैं।

(c) **बाढ़ नियंत्रण:** आर्द्रभूमियाँ भारी मात्रा में पानी जमा करती हैं और धीरे-धीरे पानी को पृथ्वी की सतह पर छोड़ती हैं। आर्द्रभूमि की वनस्पति पानी की गति को धीमा कर देती है और बाढ़ के मैदानों पर पानी को अधिक धीरे-धीरे वितरित और प्रवाहित करती है। अतः ये आर्द्रभूमियाँ बाढ़ नियंत्रण के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

(d) **पौधों और जानवरों के लिए आवास:** मछलियों, पक्षियों और अन्य जंगली जानवरों की कई प्रजातियाँ आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र पर निर्भर हैं। वेटलैंड जंगली जानवरों को विभिन्न स्थूल और सूक्ष्म आवास, भोजन, पानी, आवरण और अन्य महत्वपूर्ण घटक प्रदान करता है। कई प्रजातियाँ जैसे प्रवासी जलपक्षी, वुड डक, कैटेल स्वैंप, गीत पक्षी, ऊदबिलाव, कस्तूरी, गीस, हंस आदि आर्द्रभूमि के मुख्य निवासी हैं।

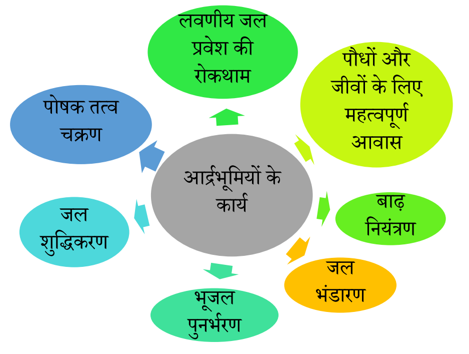


**चित्र 1. आर्द्रभूमियों के विभिन्न कार्य**

(e) **मनोरंजन, अनुसंधान और पर्यटन:** वेटलैंड्स स्थानीय लोगों और शोधकर्ताओं को मनोरंजन और अनुसंधान के अवसर प्रदान करता है। इसलिए आर्द्रभूमियाँ पृथ्वी का सुंदर पारिस्थितिकी तंत्र हैं; ये पारिस्थितिकी तंत्र पर्यटकों के लिए आकर्षण बिंदु हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि पर्यटन उद्योग दुनिया का सबसे तेजी से बढ़ने वाला उद्योग है। पर्यावरण-अनुकूल या प्राकृतिक आधारित मनोरंजन पर्यटन उद्योग में सबसे तेजी से बढ़ती गतिविधि है। अतः आर्द्रभूमियाँ आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

(f) **खाद्य संसाधन:** आर्द्रभूमियाँ भोजन के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र न केवल जंगली प्रजातियों को बल्कि मनुष्यों को भी भोजन प्रदान करते हैं। मीठे पानी की मछली की कई प्रजातियाँ जैसे लेबियो रोहिता, कैटला कैटला, सिरहिनस मृगाला, चन्ना पंक्टेटस, चन्ना मारुलियस, हेटेरोपनेस्टियस फॉसिल्स, मिस्टस कैवसियस, मिस्टस एओआर, मिस्टस तेंगारा, मिस्टस मिस्टस, क्लारियास बत्राचस, रीटा रीटा, ज़ेनेटोडोन कैन्सिला इन पारिस्थितिक तंत्रों की मुख्य खाद्य मछली प्रजातियाँ हैं । दूसरी ओर आर्द्रभूमियों में कई समुद्री प्रजातियाँ भी पाई जाती हैं। ये प्रजातियाँ खाने योग्य भी हैं और दुनिया के कई हिस्सों में भोजन के रूप में उपयोग की जा रही हैं।

## 3.4 भारत में आर्द्रभूमियाँ

भारत अनेक आर्द्रभूमियों से भी संपन्न है। आर्द्रभूमि का महत्वपूर्ण लक्षण जलीय पिंड के अंदर और उसके आसपास की वनस्पति है। आर्द्रभूमियों का पानी मीठा या खारा हो सकता है। भारत में लगभग 94 आर्द्रभूमियाँ हैं जो नीचे तालिका-3 में दी गई हैं।

**तालिका-3: भारत में आर्द्रभूमियों की राज्यवार सूची**

| राज्य | आर्द्रभूमि का नाम |
|---|---|
| आंध्र प्रदेश | कोल्लेरू |
| असम | दीपर बील, उरपाद बील |
| बिहार | काबर, बरैला, कुशेश्वरस्थान |
| गुजरात | नलसरोवर, कच्छ का महान रण, थोल पक्षी अभयारण्य, खिजड़िया पक्षी अभयारण्य, कच्छ का छोटा रण, पारिज, वाधवाना, नानी काकराड |
| हरयाणा | सुल्तानपुर, भिंडावास |
| हिमाचल प्रदेश | रेणुका, पौंग बांध, चंद्रताल, रिवालसर, खजियार |
| जम्मू एवं कश्मीर | वुलर झील, त्सो मोरारी, टिसगुल त्सो और चिसुल दलदल, होकरसर, मानसर-सुरिंसर, रंजीतसागर, पैंगोंग ज़ार |
| झारखंड | उधवा, तिलैया डैम |
| कर्नाटक | मगधी, गुडावी पक्षी अभयारण्य, बोनाल, हिडकल और घटप्रभा, हेग्गेरी, रंगनथिट्टू, के.जी. कोप्पा वेटलैंड |
| केरल | अष्टमुडी, सस्थमकोट्टा, कोट्टुली, कडुलंडी, वेम्बनाड कोल |
| मध्य प्रदेश | बारना, यशवंत सागर, केन नदी का वेटलैंड, राष्ट्रीय चंबल अभयारण्य, घाटीगांव, रातापानी, देनवा तवा वेटलैंड, कान्हा टाइगर रिजर्व, पेंच टाइगर रिजर्व, साख्यसागर, दिहैला, गोविंदसागर |
| महाराष्ट्र | उजानी, जयकवाड़ी, नलगंगा आर्द्रभूमि |
| मणिपुर | लोकतक |
| मिजोरम | तामदिल, पालक |
| उड़ीसा | चिल्का झील, कुआंरिया आर्द्रभूमि, कंजिया आर्द्रभूमि, दाहा आर्द्रभूमि |
| पंजाब | हरिके, रोपड़, कांजली |
| राजस्थान | सांभर |
| सिक्किम | खेचुपेरी पवित्र झील, तमज़े वेटलैंड, टेम्बाओ वेटलैंड कॉम्प्लेक्स, फेंडांग वेटलैंड कॉम्प्लेक्स, गुरुडोकमर वेटलैंड, त्सोमगो वेटलैंड |
| तमिलनाडु | प्वाइंट कैलिमर, कालीवेली, पल्लैकर्णी |
| त्रिपुरा | रूद्रसागर |
| उत्तर प्रदेश | नवाबगंज, सांडी, लाख बहोसी, समसपुर, अलवर वेटलैंड, सेमराई झील-नगरिया झील परिसर, कीठम झील, शेखा वेटलैंड, समान पक्षी अभयारण्य और सरसई नावर परिसर |
| उत्तराखंड | बाणगंगा, झिलमिल ताल |
| पश्चिम बंगाल | पूर्वी कलकत्ता वेटलैंड, सुंदरबन, अहिरोन बील, रसिक बील, संतरागाछी |

| | |
|---|---|
| केंद्र शासित प्रदेश (चंडीगढ़) | सुखना |

***(स्रोत: पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय)***

भारत भी रामसर कन्वेंशन का एक हस्ताक्षरकर्ता है। जैसा कि आप जानते हैं रामसर कन्वेंशन वैश्विक स्तर पर आर्द्रभूमियों के संरक्षण के लिए एक अंतरराष्ट्रीय संधि है। विशेष रूप से जलीय पक्षियों के आवास के लिए अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियों पर रामसर कन्वेंशन, आर्द्रभूमियों के संरक्षण के लिए एक अंतरराष्ट्रीय संधि है। रामसर का नाम ईरान के रामसर शहर के नाम पर रखा गया है। इस सम्मेलन पर वर्ष 1971 में हस्ताक्षर किये गये थे। भारत में 47 रामसर आर्द्रभूमि स्थल स्थित हैं जो तालिका-4 में सूचीबद्ध हैं।

**तालिका-4: भारत में रामसर साइटों की सूची**

| क्र.सं.. | साइट का नाम | राज्य का स्थान | घोषणा की तिथि | क्षेत्र (वर्ग किमी में) |
|---|---|---|---|---|
| **1** | कोल्लेरु झील | आंध्र प्रदेश | 19.8.2002 | 901 |
| **2** | दीपोर बील | असम | 19.8.2002 | 40 |
| **3** | कबरताल वेटलैंड | बिहार | 21.07.2020 | 26.20 |
| **4** | नलसरोवर पक्षी अभयारण्य | गुजरात | 24.09.2012 | 120 |
| **5** | थोल झील वन्यजीव अभयारण्य | गुजरात | 05.04.2021 | 6.99 |
| **6** | वाधवाना वेटलैंड | गुजरात | 05.04.2021 | 6.30 |
| **7** | सुल्तानपुर राष्ट्रीय उद्यान | हरयाणा | 25.05.2021 | 1.425 |
| **8** | भिंडावास वन्यजीव अभयारण्य | हरयाणा | 25.05.2021 | 4.12 |
| **9** | चंद्रताल वेटलैंड | हिमाचल प्रदेश | 8.11.2005 | 0.49 |
| **10** | पोंग बांध झील | हिमाचल प्रदेश | 19.8.2002 | 156.62 |
| **11** | रेणुका वेटलैंड | हिमाचल प्रदेश | 8.11.2005 | 0.2 |
| **12** | वुलर झील | जम्मू-कश्मीर | 23.3.1990 | 189 |
| **13** | होकरा वेटलैंड | जम्मू-कश्मीर | 8.11.2005 | 13.75 |
| **14** | सुरिंसर-मानसर झीलें | जम्मू-कश्मीर | 8.11.2005 | 3.5 |
| **15** | त्सोमोरीरी झील | जम्मू-कश्मीर | 19.8.2002 | 120 |
| **16** | अष्टमुडी आर्द्रभूमि | केरल | 19.8.2002 | 614 |
| **17** | सस्थमकोट्टा झील | केरल | 19.8.2002 | 3.73 |
| **18** | वेम्बनाड कोल वेटलैंड | केरल | 19.8.2002 | 1512.5 |
| **19** | त्सो कार वेटलैंड कॉम्प्लेक्स | लद्दाख | 17.11.2020 | 95.77 |
| **20** | भोज आर्द्रभूमि | मध्य प्रदेश | 19.8.2002 | 32.01 |
| **21** | लोनार झील | महाराष्ट्र | 22.7.2020 | 4.27 |
| **22** | नंदुर मदमहेश्वर | महाराष्ट्र | 21.6.2019 | 14.37 |
| **23** | लोकतक झील | मणिपुर | 23.3.1990 | 266 |
| **24** | भितरकनिका मैंग्रोव | ओडिशा | 19.8.2002 | 650 |
| **25** | चिल्का झील | ओडिशा | 1.10.1981 | 1165 |
| **26** | ब्यास कंजर्वेशन रिजर्व | पंजाब | 26.9.2019 | 64.289 |
| **27** | हरिके झील | पंजाब | 23.3.1990 | 41 |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| **28** | कांजली झील | पंजाब | 22.1.2002 | 1.83 |
| **29** | केशोपुर-मियानी सामुदायिक रिजर्व | पंजाब | 26.9.2019 | 3.439 |
| **30** | नंगल वन्यजीव अभयारण्य | पंजाब | 26.9.2019 | 1.16 |
| **31** | रोपड़ झील | पंजाब | 22.1.2002 | 13.65 |
| **32** | केवलादेव घाना राष्ट्रीय उद्यान | राजस्थान | 1.10.1981 | 28.73 |
| **33** | सांभर झील | राजस्थान | 23.3.1990 | 240 |
| **34** | प्वाइंट कैलिमेरे वन्यजीव और पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | 19.8.2002 | 385 |
| **35** | रुद्रसागर झील | त्रिपुरा | 8.11.2005 | 2.4 |
| **36** | हैदरपुर वेटलैंड | उत्तर प्रदेश | 8.12.2021 | 69.08 |
| **37** | नवाबगंज पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 19.9.2019 | 2.246 |
| **38** | पार्वती आगरा पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 2.12.2019 | 7.22 |
| **39** | समन पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 2.12.2019 | 52.63 |
| **40** | समसपुर पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 3.10.2019 | 79.94 |
| **41** | सांडी पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 26.9.2019 | 30.85 |
| **42** | सरसई नावर झील | उत्तर प्रदेश | 19.9.2019 | 16.13 |
| **43** | सुर सरोवर | उत्तर प्रदेश | 21.8.2020 | 4.31 |
| **44** | ऊपरी गंगा नदी (बृजघाट से नरोरा विस्तार) | उत्तर प्रदेश | 8.11.2005 | 265.9 |
| **45** | आसन संरक्षण रिजर्व | उत्तराखंड | 21.7.2020 | 4.444 |
| **46** | पूर्वी कोलकाता वेटलैंड्स | पश्चिम बंगाल | 19.8.2002 | 125 |
| **47** | सुंदरबन आर्द्रभूमि | पश्चिम बंगाल | 30.1.2019 | 4230 |

***(स्रोत: पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार)***

## 3.5 रामसर कन्वेंशन

रामसर कन्वेंशन एक अंतर-सरकारी संधि है जो आर्द्रभूमि के संरक्षण के लिए रूपरेखा प्रदान करती है। इस सम्मेलन में आर्द्रभूमियों के स्थायी तरीकों से उपयोग पर भी जोर दिया गया। यह वैश्विक प्रकृति संरक्षण संधि है जो 1971 में शुरू हुई और 1975 में लागू हुई। रामसर कन्वेंशन को ईरानी शहर रामसर में अपनाया गया था। यह सबसे पुराना अंतर-सरकारी संरक्षण सम्मेलन है। यह जलपक्षियों की आबादी में गंभीर गिरावट और प्रवासी जलपक्षियों के आवासों के संरक्षण की आवश्यकता के कारण अस्तित्व में आया। यह सम्मेलन आर्द्रभूमियों और जैव विविधता सहित इसके संसाधनों के संरक्षण और बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग के लिए राष्ट्रीय कार्रवाई और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की रूपरेखा प्रदान करता है। रामसर कन्वेंशन ने आर्द्रभूमि को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, "दलदल (marsh), पंकभूमि (fen), पीट भूमि या जल, कृत्रिम या प्राकृतिक, स्थायी या अस्थायी, स्थिर या गतिमान जल ताजा, खारा व लवण युक्त जल क्षेत्र जिसमें समुद्री पानी के क्षेत्र भी शामिल हैं जिनकी गहराई कम ज्वार पर 6 मीटर से अधिक नहीं होता।

## 3.5.1 सुंदरबन की केस स्टडी

मैंग्रोव विविध और अत्यधिक उत्पादक पारिस्थितिक समुदायों में से एक हैं। मैंग्रोव विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्र कार्य करते हैं। ये भूमि, समुद्र और भूमि-समुद्र इंटरफेस पर स्थित हैं। ये चक्रवात और सुनामी जैसे प्राकृतिक खतरों के खिलाफ अवरोधक के रूप में भी कार्य करते हैं। मैंग्रोव स्थलीय तलछट को बनाए रखते हैं और पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण करते हैं, इस प्रकार साफ अपतटीय जल का समर्थन करते हैं, जो बदले में फाइटोप्लांकटन की प्रकाश संश्लेषक गतिविधि के साथ-साथ प्रवाल भित्तियों की वृद्धि और मजबूती को बढ़ावा देता है। वे एक महत्वपूर्ण आवास के रूप में कार्य करते हैं, जो मनुष्यों सहित कई जीवों के लिए भोजन प्रदान करते हैं। ये पारिस्थितिकी तंत्र कार्बन सिंक के रूप में भी कार्य करते हैं, या तो कार्बन का भंडारण करते हैं। इन सामूहिक पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के कारण, मैंग्रोव भी महान आर्थिक मूल्य के हैं। मानवजनित और प्राकृतिक दोनों कारकों के कारण, दुनिया भर में मैंग्रोव गंभीर रूप से खतरे में हैं, और वर्तमान वैश्विक वार्षिक हानि दर 1%-2% है। मानवजनित और प्राकृतिक दोनों कारकों के कारण, दुनिया भर में मैंग्रोव गंभीर रूप से खतरे में हैं और वर्तमान वैश्विक वार्षिक हानि दर 1%-2% है।

सुंदरबन बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में एक विशाल जंगल है और इसे दुनिया के प्राकृतिक आश्चर्यों में से एक माना जाता है। सुंदरबन बांग्लादेश के जिलों और भारत में पश्चिम बंगाल के जिलों तक फैला हुआ है। सुंदरबन बंगाल की खाड़ी में गंगा, ब्रह्मपुत्र और मेघना नदियों द्वारा बनाए गए डेल्टा पर स्थित हैं। इसमें संचित तलछट भार द्वारा निर्मित कीचड़ और द्वीपों का एक नेटवर्क शामिल है, जो ये नदियाँ एनास्टोमोटिक चैनलों और ज्वारीय जलमार्गों द्वारा अलग किए गए अपने हिमालयी हेडवाटर से ले जाती हैं। सुंदरबन, 21°32′ से 22°40′N और 88°05′ से 89°51′E के निर्देशांक पर स्थित है। ये वन 10,000 कि. मी. 2 के क्षेत्र में फैले हुए हैं, जिनमें से 62% बांग्लादेश में और 38% भारत में हैं। सुंदरबन की विशेषता नवंबर और अप्रैल के बीच शुष्क मौसम के साथ उष्णकटिबंधीय जलवायु है। सुंदरबन में वर्षा की कुल वार्षिक मात्रा 1500 से 2000 मि. मी के बीच है। मानसून के दौरान, इन क्षेत्रों में उष्णकटिबंधीय चक्रवात और छोटी ज्वारीय घटनाएं नियमित रूप से आते हैं, जिससे गंभीर बाढ़ और हवा से क्षति होती है। मौसमी औसत न्यूनतम और अधिकतम तापमान क्रमशः 12°C से 35°C तक भिन्न हो सकते हैं।

सुंदरबन की वनस्पति और जीव: सुंदरबन विश्व के सबसे बड़े हेलोफाइटिक मैंग्रोव वन हैं। वस्तुतः, सुंदरबन का अनुवाद "सुंदर जंगल" या "सुंदर वन" के रूप में किया जा सकता है। यह नाम संभवतः सुंदरी पेड़ों से लिया गया है जो सुंदरबन में बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। सुंदरबन गंगा नदी के तल पर स्थित है और बांग्लादेश और भारत के क्षेत्रों में फैला हुआ है, जो डेल्टा के समुद्री किनारे का निर्माण करता है। मौसमी बाढ़ वाले सुंदरवन मैंग्रोव वनों के अंतर्देशीय क्षेत्र में स्थित हैं। सुंदरबन को 21 मई 1992 को रामसर कन्वेंशन साइट नामित किया गया था। सुंदरबन को 1997 में यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल के रूप में भी नामित किया गया था। दोनों देशों (बांग्लादेश और भारत) के सुंदरबन को UNESCO की विश्व धरोहर स्थलों में अलग से सूचीबद्ध किया गया है। इन वनों का मुख्य और महत्वपूर्ण विशिष्ट वृक्ष सुंदरी (हेरिटिएरा लिटोरेलिस) है, जिससे संभवतः सुंदरवन का नाम पड़ा है। सुंदरबन की वनस्पतियों की विशेषता बड़ी संख्या में हेरिटिएरा फोम्स, एक्सोएकेरिया एगैलोचा, सेरियोपस डेकेंड्रा और सोनेरटिया एपेटाला हैं। डेविड प्रैन (1903) ने सुंदरबन में पौधों की 245 प्रजातियों और 334 प्रजातियों का दस्तावेजीकरण किया। 1903 के बाद से सुंदरबन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, हालाँकि इन परिवर्तनों को ध्यान में

रखते हुए सुंदरबन की पौधों की विविधता की बहुत कम खोज की गई है। सुंदरबन जंगली जानवरों विशेषकर लुप्तप्राय बंगाल बाघ को भी उत्तम आवास प्रदान करता है। अनुमान है कि इस क्षेत्र में अब 500, बंगाल बाघ और लगभग 30,000 चित्तीदार हिरण हैं। डेल्टा की उच्च उत्पादक मिट्टी सदियों से गहन मानव उपयोग के अधीन रही है, और ये पर्यावरण-क्षेत्र ज्यादातर जंगल के कुछ शेष परिक्षेत्रों के साथ, गहन कृषि भूमि में परिवर्तित हो गए हैं। सुंदरवन मैंग्रोव सहित शेष जंगल, लुप्तप्राय बाघ के लिए महत्वपूर्ण निवास स्थान हैं।

**तालिका 5. सुंदरबन की महत्वपूर्ण पुष्प विविधता**

| **प्रजाति का नाम** | **साधारण नाम** |
|---|---|
| हेरिटिएरा फ़ोम्स | सुंदरी |
| एक्सोएकेरिया एगैलोचा | गेवा |
| सेरियोपस डिसकंड्रा | गोरान |
| सोनेरेतिया एपेटाला | Keora |
| जाइलोकार्पस ग्रैनटम | ढुंडुल या पासुर |
| ब्रुगुएरा जिम्निरिज़ा | कांकरा |
| निपा फ्रूटिकन्स | गुल्गा, निपा पाम |
| इम्पेराटा सिलिंड्रिका | दाभा, सिरु, उलू |
| फ्राग्माइट्स कर्क | खगरा |
| पोर्टेरेसिया कोर्क्टाटा | जंगली चावल |

**तालिका 6. सुंदरबन की महत्वपूर्ण जीव विविधता**

| **प्रजाति का नाम** | **साधारण नाम** |
|---|---|
| **a) स्तनधारी** | |
| पैंथेरा टाइग्रिस टाइग्रिस | बंगाल टाइगर |
| प्रियोनेलुरस विवेरिनस | फिशिंग कैट |
| प्रियोनेलुरस बेंगालेंसिस | तेंदुआ बिल्ली |
| एक्सिस एक्सिस | चीतल हिरण |
| मुंतियाकस मुंतजक | भारतीय मुंतजैक |
| सुस स्क्रोफ़ा | जंगली सूअर |
| प्लैटनिस्टा गैंगेटिका | गैंगेटिक डॉल्फिन (भारत का राष्ट्रीय जलीय जीव) |
| मकाका मुलत्ता | रीसस मकाक |
| **b) पक्षी** | |
| पेलार्गोप्सिस अमाउरोप्टेरा | भूरे पंखों वाले किंगफिशर |
| लेप्टोपटिलोस जावनिकस | लेस्सेर एडजुटेंट |

| | |
|---|---|
| हेलिओपैस व्यक्तित्व | मास्क्ड फिनफ़ुट |
| पांडियन हलियाएटस | ऑस्प्रे |
| हलियाएटस ल्यूकोगास्टर | सफेद पेट वाले समुद्री चील |
| इचथ्योफगा इचथियेटस | ग्रे-हेडेड फिश ईगल्स |
| एनास्टोमस ऑसिटैन्स | ओपन बिल्ड स्टॉर्क |
| थ्रेसकोर्निस मेलानोसेफालस | ब्लैक हेडिड आइबिस |
| एनाउरोर्निस फ़ोनिकुरस | वॉटर हेन |
| फुलिका अत्रा | कूट |
| हाइड्रोफैसियनस चिरुर्गस | तीतर- टैल्ड जकाना |
| कॉर्वस क्लमिनैटस | जंगल क्रो |
| टर्डोइड्स स्ट्रेटा | जंगल बैब्लर |
| प्लुवियलिस फुलवा | गोल्डन प्लोवर |
| अनस एक्यूटा | पिनटेल |
| अयथ्या न्यरोका | ह्वाइट आइड पोचार्ड |
| डेंड्रोसाइग्ना जावानिका | लेस्सेर व्हिस्लिंग डक |
| **c) सरीसृप** | |
| लेपिडोचिल्स ओलिवेसिया | ओलिव रिडले टर्टल |
| एरेतमोचेलीस इम्ब्रिकाटा | हॉक्सबिल टर्टल |
| चेलोनिया माइडास | ग्रीन टर्टल |
| सेर्बेरस रिंचोप्स | डॉग फैस्ड वॉटर स्नेक, |
| क्रोकोडायलस पोरोसस | एस्ट्राइन क्राकडाइल |
| ओफियोफैगस हन्ना | किंग कोबरा |
| दबोइया रुसेली | रसेल वाइपर |
| वारनस स्पीशीज़ | मॉनीटर लिज़र्ड |
| पाइथान स्पीशीज़ | पायथन |
| **d) उभयचर** | |
| बुफो बुफो | कामन टोड |
| हाइला स्पीशीज़ | ट्री फ्राग |
| **e) मछलियाँ** | |
| प्रिस्टिस स्पीशीज़ | सॉफ़िश |
| टॉरपीडो | इलेक्ट्रिक रे |
| हाइपोफथाल्मिचथिस मोलिट्रिक्स | सिल्वर कार्प |

सुंदरबन पौधों और जानवरों को एक विशेष और अनोखा पारिस्थितिकी तंत्र और एक अच्छा आवास प्रदान करता है। सुंदरबन लगभग 500 बंगाल बाघों का घर है, जो बाघों की सबसे बड़ी आबादी में से एक है। सुंदरबन में बाघ के हमले आम हैं, बाघ के हमले से प्रति वर्ष लगभग 100 और 250 लोग मारे जाते हैं। हालाँकि, सुरक्षा के लिए उठाए गए विभिन्न कदमों के बावजूद, 2004 के बाद से सुंदरबन के भारतीय हिस्से में बाघ के हमले के कारण मौत की कोई आधिकारिक रिपोर्ट नहीं आई है। हाल के अध्ययनों के अनुसार बांग्लादेश में सुंदरवन विविध जैविक संसाधनों का समर्थन करता है जिसमें व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण मछलियों की कम से कम 120 प्रजातियाँ, पक्षियों की 275 प्रजातियाँ, स्तनधारियों की 40 प्रजातियाँ, सरीसृपों की 35 प्रजातियाँ और उभयचरों की 08 प्रजातियाँ शामिल हैं। यह बांग्लादेश में मौजूद प्रजातियों के एक महत्वपूर्ण अनुपात का प्रतिनिधित्व करता है (यानी लगभग 30% सरीसृप, 37% पक्षी और 34% स्तनधारी)।

**सुन्दरबन का महत्व:** मैंग्रोव भूमि-समुद्र क्षेत्र में विविध और उत्पादक पारिस्थितिकी तंत्र हैं। सुंदरबन के जंगल दुनिया में सबसे बड़े हैं और महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान करते हैं, उनका बहुत महत्व है और सुंदरबन के कुछ महत्व नीचे दिए गए हैं:

- वे अपने लाखों निवासियों को भोजन और पानी उपलब्ध कराते हैं;
- वे चक्रवात और सुनामी जैसे प्राकृतिक खतरों के सबसे बुरे प्रभावों से सुरक्षा प्रदान करते हैं;
- उनमें विशाल दीर्घकालिक कार्बन सिंक के रूप में कार्य करने की क्षमता होती है; स्थलीय तलछट को बनाए रखने में मदद करते हैं; और दुर्लभ और संरक्षित रॉयल बंगाल टाइगर सहित कई प्रजातियों के लिए आवास के रूप में कार्य करते हैं।
- सुंदरबन का महत्व स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर तक फैला हुआ है।

पिछली 2-3 शताब्दियों के दौरान, सुंदरबन मानवजनित गतिविधियों, जलवायु परिवर्तन और चरम मौसम की घटनाओं से प्रभावित हुआ है। सुंदरबन में मानवीय गतिविधियों का वनों पर महत्वपूर्ण वृद्धिशील प्रभाव पड़ता है। ऐसी गतिविधियाँ लवणता बढ़ा सकती हैं, समुद्र के स्तर में वृद्धि और भूमि क्षरण आदि कर सकती हैं। जलवायु कारकों, पथ-निर्भर विकास व्यवस्थाओं और पर्यावरणीय घटकों के प्रभाव के कारण सुंदरबन का संरक्षण बेहद जटिल है।

सुंदरवन न केवल पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण हैं बल्कि वे राष्ट्र के लिए सामाजिक-आर्थिक रूप से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह देश में वन संसाधन का सबसे बड़ा स्रोत है। जैसा कि आप जानते हैं कि वन उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं। लकड़ी, ईंधन की लकड़ी, गूदा लकड़ी आदि जैसे पारंपरिक वन उत्पादों के अलावा, गैर-लकड़ी वन उत्पाद जैसे छप्पर सामग्री, शहद, मोम, मछली, और सुंदरबन के क्रस्टेशियन और मोलस्क संसाधनों की नियमित रूप से बड़े पैमाने पर कटाई होती है। सुंदरबन की वनस्पतियुक्त ज्वारीय भूमि एक आवश्यक निवास स्थान के रूप में कार्य करती है, पोषक तत्व पैदा करती है और पानी को शुद्ध करती है। ये वन पोषक तत्वों और तलछट को फँसाते हैं, तूफान अवरोधक, तट स्थिरीकरणकर्ता और ऊर्जा भंडारण इकाई के रूप में भी कार्य करते हैं। अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि सुंदरवन स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर पर्यटकों के लिए एक सौंदर्यपूर्ण आकर्षण प्रदान करता है।

कई उद्योग जैसे: अखबारी कागज मिल, माचिस फैक्ट्री, हार्डबोर्ड, नाव निर्माण, फर्नीचर निर्माण पूरी तरह से सुंदरबन पारिस्थितिकी तंत्र से प्राप्त कच्चे माल पर आधारित हैं। विभिन्न उत्पाद लगभग आधे मिलियन गरीब तटीय लोगों के लिए महत्वपूर्ण रोजगार और आय के अवसर पैदा करने में मदद करते हैं।

## 3.5.2 केस स्टडी: भरतपुर अभयारण्य

भरतपुर अभयारण्य या केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, जिसे भरतपुर पक्षी अभयारण्य के नाम से जाना जाता है, भारत के राजस्थान राज्य के भरतपुर जिले में स्थित है। इस भरतपुर अभयारण्य की उत्पत्ति एक प्राकृतिक अवसाद की कृत्रिम बाढ़ के कारण हुई है। 250 साल पहले भरतपुर अभयारण्य से लगभग 1 किमी दूर एक अस्थायी जलाशय, अजान बंध के विकास के कारण इस अवसाद में बाढ़ आ गई, जिससे जलपक्षी निवास स्थान का निर्माण हुआ। इसके बाद, पानी को नियंत्रित करने के लिए कई मिट्टी के बांध और स्लुइस गेट विकसित किए गए। भरतपुर अभयारण्य को बांध से नहर के माध्यम से पानी मिलता है। इसे 1985 में विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी गई है। यह आर्द्रभूमि 1 अक्टूबर, 1981 को रामसर साइट बन गई। भरतपुर अभयारण्य के तीन मानदंड हैं और इन मानदंडों के आधार पर यह अभयारण्य 1981 में रामसर कन्वेंशन स्थल बन गया। ये मानदंड इस प्रकार हैं:

- यह संकटग्रस्त पारिस्थितिक समुदायों का समर्थन करता है।
- भरतपुर अभयारण्य नियमित रूप से लगभग 20,000 जलपक्षियों को सहारा देता है।
- भरतपुर अभयारण्य नियमित रूप से एक प्रजाति या उप-प्रजाति की आबादी में 1% व्यक्तियों का समर्थन करता है।.

भरतपुर अभयारण्य 27°10'N, 77°31'E पर स्थित है, जो राजस्थान में स्थित एक विश्व धरोहर स्थल है। भरतपुर अभयारण्य भरतपुर से 2 किमी दक्षिण-पूर्व और आगरा से 55 किमी पश्चिम में है। भरतपुर अभयारण्य लगभग 29 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला हुआ है। भरतपुर अभयारण्य केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान का हिस्सा है। यह आर्द्रभूमि प्रणाली है जिसमें विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म आवास होते हैं जिनमें पेड़, टीले, बांध और जलमग्न या उभरे हुए पौधों के साथ या उनके बिना खुला जल होता है।

भरतपुर अभयारण्य को 10 मार्च 1982 को एक राष्ट्रीय उद्यान के रूप में स्थापित किया गया था। इससे पहले यह 1850 के दशक से भरतपुर के महाराजा का निजी बतख शूटिंग संरक्षित क्षेत्र था; इस क्षेत्र को 13 मार्च 1976 को एक पक्षी अभयारण्य और अक्टूबर 1981 में वेटलैंड कन्वेंशन के तहत एक रामसर कन्वेंशन स्थल के रूप में नामित किया गया था। यह राजस्थान वन अधिनियम, 1953 के तहत एक आरक्षित वन भी है और इसलिए, राजस्थान राज्य की संपत्ति है। 1982 में, भरतपुर अभयारण्य में चराई पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दी गई थी; इससे किसानों और सरकार के बीच हिंसक झड़पें हुईं।

केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान या भरतपुर अभयारण्य एक मानव-प्रबंधित आर्द्रभूमि है और देश के महान राष्ट्रीय उद्यानों में से एक है। यह भरतपुर अभयारण्य भरतपुर को बाढ़ से बचाता है, गाँव के मवेशियों को चरागाह उपलब्ध कराता है। 29 किमी 2 रिज़र्व को स्थानीय रूप से घाना के रूप में जाना जाता है, और यह शुष्क घास के मैदानों, वुडलैंड्स, वुडलैंड दलदलों और आर्द्रभूमियों का मिश्रण है। ये विविध आवास 366 पक्षी प्रजातियों, 379 फूलों की प्रजातियों, मछलियों की 50 प्रजातियों, सांपों की 13 प्रजातियों, छिपकलियों की 5 प्रजातियों, 7 उभयचर

प्रजातियों, 7 कछुओं की प्रजातियों और कई अन्य अकशेरुकी जीवों को घर प्रदान करते हैं । हर साल हजारों प्रवासी पक्षी सर्दियों और प्रजनन के लिए पार्क में आते हैं। यह अभयारण्य दुनिया के सबसे समृद्ध पक्षी क्षेत्रों में से एक है और यह निवासी पक्षियों के घोंसले बनाने और जल पक्षियों सहित प्रवासी पक्षियों के लिए जाना जाता है। दुर्लभ साइबेरियन सारस इस पार्क में शीतकाल बिताते थे लेकिन यह केंद्रीय आबादी अब विलुप्त हो गई है। विश्व वन्यजीव कोष के संस्थापक पीटर स्कॉट के अनुसार भरतपुर अभयारण्य विश्व के सर्वोत्तम पक्षी क्षेत्रों में से एक है।
यह अभयारण्य 250 साल पहले स्थापित किया गया था और इसका नाम इसकी सीमाओं के भीतर केवलादेव (भगवान शिव) मंदिर के नाम पर रखा गया है। प्रारंभ में, यह एक प्राकृतिक अवसाद था; और राजा सूरजमल द्वारा अजान बांध के निर्माण के बाद इसमें बाढ़ आ गई थी। यह अजान बांध दो नदियों गंभीर और बाणगंगा के संगम पर स्थापित किया गया है। यह एक बड़ा पर्यटन स्थल भी है

भरतपुर अभयारण्य पक्षियों की लगभग 400 प्रजातियों का समर्थन करता है। अभयारण्य विशेष रूप से सर्दियों में प्रवासी पक्षियों के विशाल झुंडों का भी समर्थन करता है। बत्तखों और हंसों की 25 से अधिक प्रजातियाँ जैसे कि कूट, ग्रेलैग गूज, मैलार्ड, पिन्टेल बत्तख, शॉवेलर, ब्राह्मणी बत्तख, गडवाल, विजियन, बार-हेडेड गूज और अन्य यहाँ वार्षिक रूप से सर्दियाँ बिताने के लिए जानी जाती हैं। यह अभयारण्य साइबेरियन क्रेन के लिए एकमात्र शीतकालीन प्रवास स्थल है। अभयारण्य में अन्य महत्वपूर्ण जीव सांभर, चीतल, ब्लू-बुल, गोल्डन जैकेल, जंगली सूअर आदि हैं। इसके अलावा, मानसून के मौसम के दौरान पनपने वाली जलीय वनस्पतियों में से, अन्य वनस्पति अर्ध-शुष्क क्षेत्र की विशेषता है, जिसमें बबूल निलोटिका, ज़ायज़िफ़स मॉरिटियाना, प्रोसोपिस सिनेरिया, साल्वाडोरा आदि का प्रभुत्व है। भरतपुर अभयारण्य सिनोडोन डैक्टिलॉन और डिकैन्थियम एनुलैटम को भी आवास प्रदान करता है। विशाल नियोलामार्किया कैडम्बा (कदम के पेड़) के घने जंगल वाले जंगल बिखरे हुए टुकड़ों में वितरित हैं। अभयारण्य शुष्क घास के मैदानों के साथ मिश्रित उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती जंगलों से ढका हुआ है। जिन स्थानों पर जंगल नष्ट हो गए हैं, वहां का अधिकांश भाग झाड़ियों और मध्यम आकार के पौधों से ढका हुआ है।

**भरतपुर अभयारण्य की वनस्पति और जीव:** एक अर्ध-शुष्क जैव-प्रकार, यह पार्क महत्वपूर्ण वनस्पति वाला एकमात्र क्षेत्र है, इसलिए 'घाना' शब्द का अर्थ 'घास' है। प्रमुख वनस्पति प्रकार उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन हैं, जो उन क्षेत्रों में शुष्क घास के मैदान के साथ मिश्रित होते हैं जहां वन नष्ट हो गए हैं। कृत्रिम रूप से प्रबंधित दलदलों के अलावा; अधिकांश क्षेत्र मध्यम आकार के पेड़ों और झाड़ियों से ढका हुआ है।

**तालिका-7: भरतपुर अभयारण्य की महत्वपूर्ण वनस्पतियाँ**

| **प्रजाति का नाम** | **साधारण नाम** |
|---|---|
| मित्राग्यना परविफोलिया | कलाम या कदम |
| सियाजियम क्यूमिनी | जामुन |
| बबूल निलोटिका | बबूल |
| प्रोसोपिस सिनेरिया | कंडी |
| ज़िज़िफ़स जुजुबा | बेर |
| कैपेरिस डिकिडुआ | कैरा |
| साल्वाडोरा ओलियोइड्स | पीलू, पीलू |

भरतपुर अभयारण्य में बेर और कैरा के पेड़ों की बहुतायत है। यह संभावना नहीं है कि यह साइट इतनी संख्या में जलपक्षी का समर्थन करेगी जितनी यह अजान बांध से पानी मिलाए बिना करती है। अभयारण्य की मिट्टी मुख्यतः जलोढ़ है। भरतपुर अभयारण्य की औसत वार्षिक वर्षा/वर्षा लगभग 662 मि.मी है।

# सारांश

इस इकाई में हमने आर्द्रभूमि क्षरण के प्रकार और महत्व के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। अब तक आपने सीखा है कि:

- आर्द्रभूमि "दलदल (marsh), पंकभूमि (fen), पीट भूमि या जल, कृत्रिम या प्राकृतिक, स्थायी या अस्थायी, स्थिर या गतिमान जल ताजा, खारा व लवण युक्त जल क्षेत्र है जिसमें समुद्री पानी के क्षेत्र भी शामिल हैं जिनकी गहराई कम ज्वार पर 6 मीटर से अधिक नहीं होता।
- अद्वितीय लक्षणों के आधार पर बोग, बॉटम, एवरग्लेड, फेन, फेनलैंड, हीथ, मार्श, मार्शलैंड, मीडो, मायर, मूरलैंड, मोरास, मस्केग, क्वाग्मायर, क्विकसैंड, साल्ट मार्श, स्लो, सम्प , स्वेल, स्वैम्प और स्वैम्पलैंड आर्द्रभूमि से संबंधित महत्वपूर्ण शब्द हैं।
- विभिन्न प्रकार की आर्द्रभूमियाँ हैं जैसे समुद्री और तटीय आर्द्रभूमियाँ, एस्टुरीन आर्द्रभूमियाँ, नदी आर्द्रभूमियाँ, लैक्स्ट्रिन आर्द्रभूमियाँ और पलुस्ट्रिन आर्द्रभूमियाँ।
- चार्मन 2002 के अनुसार, पीट भूमि के प्रकारों के वर्गीकरण के लिए कई कारकों को महत्वपूर्ण माना जाता है। ये कारक हैं फ्लोरिस्टिक्स, फिज़ीआग्नमी, मॉर्फोलॉजी, हाइड्रोलॉजी, स्ट्रैटिग्राफी, रासायनिक और पीट लक्षण।
- आर्द्रभूमियों के विभिन्न कार्य और महत्व हैं जैसे भूजल पुनर्भरण, बाढ़ नियंत्रण, पानी की गुणवत्ता में सुधार, तलछट स्थिरीकरण और प्रतिधारण, जलीय और तटवर्ती जीवों को आवास प्रदान करना।
- भारत में विभिन्न आर्द्रभूमियाँ पाई जाती हैं और भारत की कुछ महत्वपूर्ण आर्द्रभूमियाँ हैं दीपर बील, उरपाद बील, थोल पक्षी अभयारण्य, खिजड़िया पक्षी अभयारण्य, कच्छ का छोटा रण, पारिज, वाधवाना, नानिकक्राड, वुलर झील, बोनाल, हिडकल और घटप्रभा, हेगेरी, रंगनथिट्टू, के.जी. कोप्पा वेटलैंड, तमज़े वेटलैंड, टेम्बाओ वेटलैंड कॉम्प्लेक्स, फेंडांग वेटलैंड कॉम्प्लेक्स, गुरुडोकमार वेटलैंड, त्सोमगो वेटलैंड, बान गंगा झिलमिल ताल, लोकताल झील, सुखना झील, आदि।
- भारत भी रामसर कन्वेंशन का हस्ताक्षरकर्ता है और भारत में 47 रामसर कन्वेंशन स्थल हैं।
- सुंदरबन बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में एक विशाल जंगल है और इसे दुनिया के प्राकृतिक आश्चर्यों में से एक माना जाता है। सुंदरबन बांग्लादेश के जिलों और भारत में पश्चिम बंगाल के जिलों तक फैला हुआ है। सुंदरबन बंगाल की खाड़ी में गंगा, ब्रह्मपुत्र और मेघना नदियों द्वारा बनाए गए डेल्टा पर स्थित हैं।
- सुंदरबन की मुख्य पुष्प विविधता हैं: हेरिटिएरा फोम्स, एक्सोएकेरिया एगैलोचा, सेरियोपस डेस्कैंड्रा, सोनेराटिया एपेटाला, जाइलोकार्पस ग्रैनटम, ब्रुगुएरा जिम्निरिज़ा, निपा फ्रुटिकंस, इम्पेराटा बेलनाकार, फ्राग्माइट्स कर्का, पोरेसिया कोराक्टाटा, मायरियोस्टाच्या वाइटियाना हैं।

- सुंदरबन की मुख्य जीव विविधता हैं: पैंथेरा टाइग्रिस टाइग्रिस, प्रियोनेलुरस विवेरिनस, प्रिओनेलुरस बेंगालेंसिस, एक्सिस एक्सिस, मुंटियाकस मुंतजाक, सस स्क्रोफा, प्लैटनिस्टा गैंगेटिका गैंगेटिका, मकाका मुलट्टा, पेलार्गोप्सिस अमाउरोप्टेरा, लेप्टोप्टिलोस जावनिकस, हेलिओपैस पर्सनटा, पांडियन हलियाएटस, हलिया ईटस ल्यूकोगास्टर, इचथ्योफगा इचथियेटस, एनास्टोमस ओस्सिटंस, थ्रेसकोर्निस मेलानोसेफालस, एनाउरोर्निस फोनीकुरस, फुलिका अत्रा, हाइड्रोफैसियनस चिरुर्गस, कॉर्वस कल्मिनैटस, टर्डोइड्स स्ट्रेटा, प्लुवियलिस फुलवा, अनास एक्यूटा, अयथ्या निरोका, डेंड्रोसाइग्ना जावनिका, लेपिडोचेलिस ओलिवेसिया, एरेटमो चेलिस इम्ब्रिकेट, चेलोनिया मायडास, सेर्बेरस रिंचॉप्स, क्रोकोडायलस पोरोसस , ओफियोफैगस हन्ना, डाबोइया रुसेली, वरानस प्रजाति, बुफो बुफो, हाइला प्रजाति, प्रिस्टिस प्रजाति, टॉरपीडो, हाइपोफथाल्मिचथिस मोलिट्रिक्स ।
- भरतपुर अभयारण्य या केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, जिसे भरतपुर पक्षी अभयारण्य के नाम से जाना जाता है, भारतीय राज्य राजस्थान के भरतपुर जिले में स्थित है, इस भरतपुर अभयारण्य की उत्पत्ति प्राकृतिक अवसाद की कृत्रिम बाढ़ के कारण हुई है।
- भरतपुर अभयारण्य की मुख्य पुष्प विविधता है: मित्राग्यना परविफोलिया, साइज़ियम क्यूमिनी, बबूल निलोटिका, प्रोसोपिस सिनेरिया, ज़िज़िफ़स, कैपेरिस डेसीडुअस, साल्वाडोरा ओलियोइड्स।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

भरतपुर अभयारण्य या …….., जिसे लोकप्रिय रूप से भरतपुर पक्षी अभयारण्य के रूप में जाना जाता है, भारतीय राज्य के ………… जिले में स्थित है। इस भरतपुर अभयारण्य की उत्पत्ति प्राकृतिक अवसाद की कृत्रिम बाढ़ के कारण हुई है। 250 साल पहले भरतपुर अभयारण्य से लगभग 1 किमी दूर एक अस्थायी जलाशय, अजान बांध के विकास के कारण इस अवसाद में बाढ़ आ गई, जिससे ………….. इसके बाद, इसे नियंत्रित करने के लिए कई मिट्टी के बांध और स्लुइस गेट विकसित किए गए। पानी। भरतपुर अभयारण्य को बांध से नहर के माध्यम से पानी मिलता है। इसे ………… में विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी गई है। यह आर्द्रभूमि ………….. को रामसर साइट बन गई। भरतपुर अभयारण्य के तीन मानदंड हैं और इन मानदंडों के आधार पर यह अभयारण्य 1981 में रामसर कन्वेंशन स्थल बन गया।

**2 (a)** आर्द्रभूमि को परिभाषित करें.

**(b)** आर्द्रभूमि से संबंधित शब्द बताइये

**3 (a)** आर्द्रभूमियों के प्रकार एवं विशिष्ट विशेषताओं का वर्णन करें।

**(b)** आर्द्रभूमियों का पीट भूमि वर्गीकरण दीजिए

**4 (a)** आर्द्रभूमियों के महत्व एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।

**5 (a)** भारत में आर्द्रभूमियों की सूची दीजिए।

**(b)** रामसर कन्वेंशन के बारे में लिखें।

**(c)** सुंदरवन के बारे में लिखें।

**6 (a)** रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

सुंदरबन दुनिया का सबसे बड़ा …………..जंगल है। वस्तुतः, सुंदरबन का अनुवाद "…………" के रूप में किया जा सकता है। यह नाम संभवत: ...... से लिया गया है जो सुंदरबन में बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। सुंदरवन वन गंगा नदी के तल पर स्थित है और डेल्टा के समुद्री किनारे का निर्माण करते हुए ………….. और …….. के क्षेत्रों में फैला हुआ है। मैंग्रोव वनों से अंतर्देशीय मौसमी बाढ़ वाले सुंदरबंसली। सुंदरबन के वन क्षेत्र ……..जिनमें से लगभग …….बांग्लादेश में हैं और ……..भारत में हैं। सुंदरबन को रामसर कन्वेंशन साइट नामित किया गया था। सुंदरबन को 1997 में ……………….के रूप में नामित किया गया। दोनों देशों के सुंदरबन को यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थलों में अलग से सूचीबद्ध किया गया है। जंगल का मुख्य और महत्वपूर्ण विशिष्ट वृक्ष सुंदरी (हेरिटिएरा लिटोरेलिस) है, जिससे संभवतः सुंदरवन का नाम पड़ा है। सुंदरबन की वनस्पतियों की विशेषता बड़ी संख्या में हेरिटिएरा फोम्स, एक्सोएकेरिया एगैलोचा, सेरियोपस डेकेंड्रा और सोनेरटिया एपेटाला हैं। …………..ने सुंदरबन में पौधों की 245 प्रजातियों और 334 प्रजातियों का दस्तावेजीकरण किया है।

**(b)** विश्व वेटलैंड दिवस मनाया जाता है (2 फरवरी/5 जून/21 मई/21 जून)

**(c)** लोकटक झील भारतीय राज्य (मणिपुर/मिजोरम/उत्तराखंड/उत्तर प्रदेश) में स्थित है

**(d)** अधिकतम रामसर संरक्षण स्थल (जम्मू और कश्मीर/उत्तर प्रदेश/पंजाब/बिहार) में स्थित हैं।

**(e)** सुंदरबन की वनस्पतियों और जीवों के बारे में लिखें।

**7 (a)** भरतपुर अभयारण्य पर वर्णनात्मक निबंध लिखिए।

**(b)** भारत में रामसर कन्वेंशन स्थलों की सूची दें।

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

**1 (a)** केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, भरतपुर, राजस्थान, जलपक्षी आवास, 1985, 1 अक्टूबर, 1981

**2 (a)** अनुभाग 3.2 देखें

**(b)** खंड 3.2 देखें

**3 (a)** अनुभाग 3.3 देखें

**(b)** खंड 3.3 देखें

**4 (a)** अनुभाग 3.4, तालिका-2, चित्र-1 और चित्र-2 देखें

**5 (a)** अनुभाग 3.5 और तालिका-3 देखें

**(b)** अनुभाग 3.6 देखें

**(c)** खंड 3.7 देखें

**6 (a)** हेलोफाइटिक मैंग्रोव, सुंदर जंगल, सुंदरी पेड़, बांग्लादेश भारत, 10,000 किमी, 6,000 किमी, 4000 किमी, 21 मई 1992, यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल

**(b)** 2 फरवरी

**(c)** मणिपुर

**(d)** उत्तर प्रदेश

**(e)** अनुभाग 3.7.1 देखें

**7 (a)** अनुभाग 3.8 देखें

**(b)** अनुभाग 3.5 और तालिका-4 देखें

# इकाई-4: भू-आवरण में परिवर्तन

**इकाई संरचना**

4.0 सीखने के उद्देश्य
4.1 परिचय
4.2 भू-आवरण परिवर्तन की परिभाषा
  4.2.1 भू-आवरण परिवर्तन क्या है?
4.3 भारत में भू-आवरण परिवर्तन
4.4 भू-आवरण परिवर्तन के कारण
  4.4.1 शहरीकरण
  4.4.2 औद्योगीकरण
  4.4.3 कृषि
  4.4.4 बढ़ती जनसंख्या
4.5 भू-आवरण परिवर्तन के प्रभाव
  4.5.1 जैव विविधता
  4.5.2 जलवायु परिवर्तन
  4.5.3 प्रदूषण
  4.5.4 ओज़ोन परत
  4.5.5 अन्य प्रभाव
  सारांश

## 4.0 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह समझने में सक्षम होंगे:

- भू-आवरण परिवर्तन क्या है?
- भू-आवरण परिवर्तन के क्या कारण हैं?
- बढ़ती जनसंख्या और भूमि आवरण परिवर्तन के बीच क्या संबंध है?
- भू-आवरण और जलवायु परिवर्तन के बीच क्या संबंध है?

## 4.1 परिचय

जैसा कि हमने पिछले अध्याय में सीखा है, भूमि संसाधन मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक हैं और सभ्यता की शुरुआत से ही मानव ने भूमि पर बहुत सारी गतिविधियाँ कीं और हम इसका परिणाम बांध, भवन और सड़क निर्माण के रूप में देख सकते हैं। जैसे-जैसे मानव आबादी बढ़ रही है, मूलभूत मानवीय ज़रूरतें प्रदान करने के लिए कई भूमि उपयोग योजनाएँ विकसित की जा रही हैं। मानव इन संसाधनों का अलग -अलग तरीकों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। हालाँकि, तेजी से विकास के क्रम में, मनुष्य

अपनी कल्याणकारी गतिविधियों को पूरा करने में अपने नैतिक कर्तव्य को भूल गया है, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी ग्रह पर बहुत अधिक बोझ पैदा हो गया है, और यदि हम वर्तमान जैव विविधता की तुलना 18 वीं शताब्दी से करते हैं तो भूमि आवरण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा जा सकता है। पूर्व में भूमि का उपयोग कृषि, वन कालोनियों, बाग-बगीचों आदि के लिए किया जा रहा था। बढ़ती जनसंख्या की भारी मांग के कारण, हमने भूमि संसाधनों को तेजी से समाप्त कर दिया है और अब स्थिति सबसे खराब हो गई है क्योंकि कृषि भूमि का बड़ा हिस्सा मानव कल्याण के लिए निर्माण गतिविधियों में परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार, उचित भविष्य की योजना बनाए बिना हमने इस विकासात्मक प्रक्रिया में अपनी अधिकांश उपजाऊ भूमि को नष्ट कर दिया है। इसलिए, अब प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के बारे में पुनर्विचार करने का समय आ गया है।

देशभर में इंफ्रास्ट्रक्चर तेजी से फेल रहा है। विशेषकर विनिर्माण पर आधारित औद्योगीकरण में भी तेजी आई है। शहरीकरण अपरिहार्य है जिसके लिए भूमि एक अनिवार्य आवश्यकता है। सरकार को भी विभिन्न सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि अधिग्रहण की आवश्यकता होती है। 1990 से 2021 के दौरान विश्व की जनसंख्या लगभग पाँच गुना बढ़कर 1.6 बिलियन से 7.9 बिलियन हो गई (संयुक्त राष्ट्र, 2022)। अकाल से संबंधित मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर में कमी आना आंशिक रूप से इस तीव्र जनसंख्या वृद्धि के लिए जिम्मेदार है। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा में प्रगति ने दुनिया भर के देशों में जीवन प्रत्याशा को बढ़ा दिया है। औद्योगीकरण ने बेहतर अर्थव्यवस्था प्रदान की है और मानव विकास को बनाए रखा है। हालाँकि, यह तीव्र जनसंख्या वृद्धि और विकास विश्व स्तर पर असमान रूप से हुआ है और साथ ही यह प्राकृतिक संसाधनों के अस्थिर दोहन और पर्यावरण पर इसके प्रतिकूल प्रभाव के साथ जुड़ा हुआ है। भूमि उपयोग मुख्य रूप से मानव कार्यों और भूमि पर लिए गए निर्णयों का परिणाम होता है। वास्तव में, सामाजिक उद्देश्यों की विविधता से उत्पन्न मानव गतिविधियाँ भूमि आवरण परिवर्तन का तात्कालिक स्रोत हैं। इन सामाजिक उद्देश्यों को समझने के लिए उन मूलभूत प्रेरक कारकों का विश्लेषण करना आवश्यक है जो इन मानव गतिविधियों को प्रेरित या प्रतिबंधित करते हैं। जैव-भौतिकीय प्रेरक कारक और भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ, वैश्विक और स्थानीय जलवायु परिवर्तन/अस्थिरता आदि भी भूमि आवरण में परिवर्तन और अंततः भूमि उपयोग में बदलाव के लिए जिम्मेदार होते हैं। पिछले दो दशकों में दिल्ली में तीव्र आर्थिक और औद्योगिक विकास हुआ है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) होने के कारण, दिल्ली उत्तरी भारत में वाणिज्य, व्यापार और उद्योगों के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र है। वास्तव में, दिल्ली और इसके आस-पास के क्षेत्रों में औद्योगिक विकास कुछ हद तक अव्यवस्थित और अनियोजित तरीके से हुआ है, जिससे जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। वास्तव में, इसकी लगभग 60% सबसे उपजाऊ कृषि भूमि को गैर-कृषि उपयोगों में बदल दिया गया है। अनुमान के अनुसार, 1970-71 और 1993-94 के बीच औद्योगिक इकाइयों की संख्या लगभग 26,000 से बढ़कर 93,000 हो गई, जबकि शुद्ध बोई गई भूमि 85,000 हेक्टेयर से घटकर 46,000 हेक्टेयर रह गई। इन समस्याओं से निपटने के लिए, भारत सरकार ने एक अंतरराज्यीय राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) का गठन किया, जिसमें केंद्र मे दिल्ली और इसके आसपास हरियाणा के छह जिले, उत्तर प्रदेश के तीन जिले और राजस्थान का अलवर जिला शामिल किया गया। इस क्षेत्रीय योजना का मुख्य उद्देश्य बड़े पैमाने पर जनसंख्या और पर्यावरण संबंधी समस्याओं से जुड़ी आर्थिक गतिविधियों को दिल्ली क्षेत्र के बाहर स्थानांतरित करना था।

# 4.2 भू-आवरण परिवर्तन की परिभाषा

मानव गतिविधियाँ पृथ्वी की सतह को अभूतपूर्व गति से परिवर्तित कर रही हैं, जिससे जैविक और अजैविक संसाधनों का व्यापक रूप से दोहन हो रहा है। भूमि उपयोग परिवर्तन के सामूहिक प्रभाव से वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न होते हैं, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। भू-आवरण, ऊर्जा विनिमय और जैव-भू-रासायनिक चक्रों के बीच मजबूत संबंध होने के कारण, ये परिवर्तन जलवायु प्रणाली को भी प्रभावित कर सकते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र प्रक्रियाओं की दीर्घकालिक गतिशीलता को देखते हुए, भूमि में होने वाले परिवर्तन वर्षों से लेकर सदियों तक पारिस्थितिकी तंत्र और जलवायु प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकते हैं।

भूगरमीय समयमान में सूर्य के चारों ओर पृथ्वी में जलवायु परिवर्तन के कारण अत्यधिक वनस्पति परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए, 1700 के दशक में समाप्त हुई लघु हिमयुग (Little Ice Age) ने आइसलैंड के वनों को नष्ट कर दिया, और लगभग 6000 वर्ष पहले, जो क्षेत्र हरा-भरा नज़र आता था वह आज के शुष्क सहारा मरुस्थल में परिवर्तित हो गया। लघु समयमान में, तीव्र मौसमीय घटनाएँ, आग, शाकाहारी जीवों की गतिविधियाँ और मानव हस्तक्षेप पृथ्वी के परिदृश्य को बदलकर नए पारिस्थितिक तंत्रों में परिवर्तित कर देते हैं। प्राचीन काल में मानव गतिविधियों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से  दिखता है, जिसमें खुले परिदृश्य बनाए रखने के लिए आग का उपयोग और उत्तर अमेरिका में मानव के आगमन के बाद विशाल प्लीइस्टोसीन स्तनधारियों का विलुप्त होना शामिल है।

विगत 300 वर्षों में, वैश्विक स्तर पर भूमि पर मानव प्रभाव व्यापक और तीव्र हो गया है। वनों की कटाई और कृषि विस्तार आज के महत्वपूर्ण वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे हैं। विश्व की लगभग 40% भूमि कृषि के लिए उपयोग की जा रही है, और विशेष रूप से अमेज़न बेसिन और दक्षिणपूर्व एशिया में उष्णकटिबंधीय वनों की कटाई निरंतर जारी है। भूमि उपयोग और भूमि आवरण में इस प्रकार के बड़े पैमाने पर परिवर्तन क्षेत्रीय और वैश्विक जलवायु को प्रभावित कर सकते हैं, मीठे जल संसाधनों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, वायु प्रदूषण बढ़ा सकते हैं, आवास विखंडन कर सकते हैं, प्रजातियों के विलुप्त होने और जैव विविधता हानि को बढ़ावा दे सकते हैं, और इसके अतिरिक्त संक्रामक रोगों के उभरने का कारण बन सकते हैं। यह स्पष्ट है कि भूमि उपयोग और भूमि आवरण परिवर्तन वैश्विक परिवर्तन के प्रमुख कारकों में से एक है।

भू-आवरण पृथ्वी की सतह की भौतिक विशेषताओं को दर्शाता है, जिसमें वनस्पति, जल, मिट्टी और अन्य भौतिक तत्वों का वितरण शामिल होता है। भू उपयोग उस तरीके को दर्शाता है, जिसमें मनुष्यों द्वारा भूमि का उपयोग किया गया है। हालांकि भू उपयोग आमतौर पर भूमि आवरण के आधार पर अनुमानित किया जाता है, फिर भी ये दोनों शब्द एक-दूसरे से निकटता से जुड़े होने के कारण अक्सर परस्पर विनिमेय होते हैं।

भू उपयोग/आवरण और इसकी गतिशीलता पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिति और कार्यों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं। पिछले 40 वर्षों में, भूमि उपयोग और आवरण में परिवर्तन की गतिशीलता ने जैव-भू-रासायनिक चक्र को काफी हद तक बदल दिया है, जिससे सतही वायुमंडलीय ऊर्जा विनिमय, कार्बन और जल चक्र, मिट्टी की गुणवत्ता, जैव विविधता, जैविक प्रणालियों की मानव आवश्यकताओं को पूरा करने की

क्षमता और अंततः जलवायु पर प्रभाव पड़ा है। भूमि आवरण में छतें, पक्की सतहें, घास और पेड़ शामिल होते हैं। वर्षा-प्रवाह विशेषताओं के जल-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए, छतों, पक्की सतहों, घास और पेड़ों की मात्रा और वितरण को जानना महत्वपूर्ण होगा।

भू-आवरण परिवर्तन, जिसे भूमि परिवर्तन भी कहा जाता है, पृथ्वी की स्थलाकृतिक सतह में मानव द्वारा किए गए संशोधनों के लिए एक सामान्य शब्द है। भूमि आवरण परिवर्तन की तीव्रता सीधे मानव सभ्यता के विकास से जुड़ी होती है। मनुष्यों ने खाद्य पदार्थों और अन्य आवश्यक चीजों को प्राप्त करने के लिए भूमि के बड़े हिस्से को संशोधित किया है, जिससे पर्यावरण पर प्रभाव पड़ा है, जिसमें जनसंख्या वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि और मिट्टी, जल तथा वायु प्रदूषण शामिल हैं।

## 4.2.1 भू-आवरण परिवर्तन क्या है?

**(a) भू-आवरण (Land Cover):** वह वनस्पति और संरचना जो भूमि क्षेत्र को ढकती है, भू-आवरण कहलाती है।

**(b) भू-उपयोग (Land Use):** भूमि पर होने वाली मानव गतिविधियाँ भू उपयोग कहलाती हैं। विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में मनुष्य भू-आवरण को बदलता है। इन परिवर्तनों से पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों प्रभावित होते है। भूमि आवरण को छह श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **रेंज लैंड (Rangeland)**
2. **वन भूमि (Forest Land)**
3. **कृषि भूमि (Cropland)**
4. **उद्यान और संरक्षित क्षेत्र (Parks and Reserves)**
5. **आर्द्रभूमि, पर्वत एवं रेगिस्तान (Wetland, Mountain, Desert)**
6. **शहरी भूमि (Urban Land)** इन भूमि क्षेत्रों का उपयोग मनुष्यों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है, जैसे कि पशु चराई, लकड़ी का संग्रह, पौधों की खेती, मनोरंजन, मूल पशु-पौधों का संरक्षण और निवास स्थान आदि (तालिका 1)।

**तालिका 1: भू-आवरण प्रकार और भूमि का मानव उपयोग**

| **भू-आवरण प्रकार** | **भूमि का मानव उपयोग** |
|---|---|
| i) रंगभूमि | पशुधन चराना |
| ii) वन भूमि | लकड़ी, वन्य जीवन, मछलियों और अन्य संसाधनों की कटाई |
| iii) कृषि भूमि | भोजन और फिल्टर के लिए पौधे उगाना |
| iv) पार्क और संरक्षण | मनोरंजन, देशी पौधों और पशु संचार और पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण |
| v) वेटलैंड्स, पर्वतीय रेगिस्तान और अन्य | देशी पशु और पौधे संचार और पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण |
| vi) शहरी भूमि | आवास, अन्य भवन और सड़कें |

# 4.3 भारत में भू-आवरण परिवर्तन

सन् 1947 में भारतवर्ष की स्वतंत्रता के समय देश की कुल जनसंख्या लगभग 345 मिलियन थी। यहाँ तक कि सबसे गरीब लोगों की जीवन स्तर में भी कुछ सुधार हुआ। उदाहरण के लिए, औसत कैलोरी उपलब्धता और आय के स्तर में वृद्धि हुई। जल आपूर्ति, स्वच्छता सुविधाएँ और ग्रामीण विद्युतीकरण में भी अच्छी प्रगति हुई। इसके अतिरिक्त, कुछ संक्रामक रोगों पर नियंत्रण महत्वपूर्ण रहा। सन् 1947 के बाद मृत्यु दर में गिरावट आई, जिससे जनसंख्या वृद्धि दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जो 1951-61 के दौरान लगभग 2 प्रतिशत तक पहुँच गई। इस संदर्भ में, स्वतंत्रता के बाद भारत की जनसंख्या वृद्धि को दो चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- **1951-1981:** तीव्र उच्च विकास
- **1981-2001:** ऊंची वृद्धि के साथ विकास दर धीमी होने के निश्चित संकेत

यह ध्यान देने योग्य है कि 1981-91 के दशक के दौरान, भारत की जनसंख्या में 23.86 प्रतिशत की वृद्धि हुई और वार्षिक औसत घातांकीय वृद्धि दर 2.14 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। यह 1971-81 की अवधि की तुलना में कम थी। आगे यह भी देखा गया कि 1991-2001 के दौरान जनसंख्या वृद्धि दर में और गिरावट आई, और इस अवधि में वार्षिक औसत घातांकीय वृद्धि दर 1.93 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। ग्रामीण भारत की जनसंख्या 1951 -२००१ में बढ़कर 298.7 -741.7 मिलियन हो गई, जो लगभग ढाई गुना वृद्धि है, जबकि शहरी जनसंख्या इसी अवधि में चार गुना से अधिक बढ़ी, अर्थात 1951 में केवल 62.4 मिलियन से बढ़कर 2001 में 285.3 मिलियन हो गई। जनसंख्या घनत्व 1951 में 117 व्यक्तियों प्रति वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 2001 में 312 व्यक्तियों प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। हालाँकि जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट आई है, लेकिन जनसंख्या में कुल वृद्धि अभी भी काफी अधिक है। इसका मुख्य कारण जनसंख्या की आयु संरचना है, जो अब भी अपेक्षाकृत युवा है। Dyson, 2004 के अनुसार मानक प्रक्षेपण के तहत, भारत की जनसंख्या 2001 में 1027 मिलियन से बढ़कर 2026 तक 1419 मिलियन तक पहुँचने की संभावना है, जो कुल 38 प्रतिशत या 1.3 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि दर्शाता है। इसके अलावा, 2026 तक भारत का औसत जनसंख्या घनत्व 448 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर होने का अनुमान है। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों का घनत्व 900 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक होने की संभावना है, जो 2001 में केरल और पश्चिम बंगाल के घनत्व से भी अधिक होगा।

**तालिका 2: भारत में बड़ती जनसंख्या का रुझान**

| Census Year | Population in million | | | Growth rate |
|---|---|---|---|---|
| | Total | Rural | Urban | |
| 1951 | 361.1 | 298.7 | 62.4 | -- |
| 1961 | 436.4 | 360.3 | 77.8 | 1.96 |
| 1971 | 547.9 | 439.1 | 109.0 | 2.20 |
| 1981 | 685.1 | 523.9 | 159.7 | 2.22 |
| 1991 | 838.5 | 628.7 | 215.7 | 2.14 |
| 2001 | 1028.6 | 741.7 | 285.3 | 1.93 |

1950-51 में भूमि के लिए रिपोर्ट की गई कुल क्षेत्रफल 284.32 मिलियन हेक्टेयर थी। कुल क्षेत्रफल में से 14.21% क्षेत्र जंगलों से आच्छादित था, 16.7% क्षेत्र खेती के लिए उपलब्ध नहीं था, और 17.39% क्षेत्र अन्य असंवर्धित भूमि के रूप में था। इसके अलावा, 9.9% क्षेत्र परती भूमि थी, और कुल बोया गया शुद्ध क्षेत्र 41.77% था। दूसरी ओर, 2000-2001 में यह आँकड़े 1950 की तुलना में अलग थे। 2001 में रिपोर्ट की गई भूमि का कुल क्षेत्रफल 306.54 मिलियन हेक्टेयर था, जो 1950 की तुलना में 22.22 मिलियन हेक्टेयर अधिक था। इस अवधि में जंगलों से आच्छादित भूमि 22.51% हो गई, जो 1950 की तुलना में 28.54 मिलियन हेक्टेयर अधिक थी। 13.83% भूमि खेती के लिए उपलब्ध नहीं थी, जबकि अन्य असंवर्धित भूमि 9.29% थी। 2000-2001 के कुल क्षेत्रफल में परती भूमि 8.12% और कुल बोया गया शुद्ध क्षेत्र 46.07% था। भारत में 1950 से 2000 के बीच भूमि उपयोग और भूमि आवरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया। समय के साथ हमारे देश में जंगलों का क्षेत्रफल बढ़ रहा है, क्योंकि जंगलों के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं। वहीं, बंजर भूमि कम देखी गई, जो संभवतः मानव गतिविधियों या अन्य कारणों से हुई। साथ ही, गैर-कृषि भूमि में भी वृद्धि देखी गई, क्योंकि मानव आबादी दिन-ब-दिन बढ़ रही है, और इसके साथ ही आवास, चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजन जैसी सुविधाओं के विस्तार के कारण भू उपयोग में परिवर्तन आ रहा है।

**तालिका 3: भारत में पिछले दशकों का भू उपयोग पैटर्न**

| **वर्गीकरण** | **एन मिलियन हेक्टेयर (एमएचए) में** | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | **1950-51** | **1960-61** | **1970-71** | **1980-81** | **1990-91** | **2000-01** |
| भू उपयोग आँकड़ों के लिए रिपोर्ट किया गया क्षेत्र | 284.32 | 298.46 | 303.76 | 304.15 | 304.86 | 306.54 |
| 1) जंगल | 40.48 | 54.05 | 63.91 | 67.47 | 67.80 | 69.02 |
| 2) खेती के लिए उपलब्ध नहीं है | 47.52 | 50.75 | 44.64 | 39.62 | 40.48 | 42.40 |
| a) गैर-कृषि उपयोग | 9.36 | 14.84 | 16.48 | 19.66 | 21.09 | 22.40 |
| b) बंजर एवं अनुपयोगी भूमि | 38.16 | 35.91 | 28.16 | 19.66 | 19.39 | 19.31 |
| 3) अन्य बंजर भूमि (परती भूमि को छोड़कर) | 49.45 | 37.64 | 35.06 | 32.31 | 30.22 | 28.47 |
| a) स्थायी चरागाह और अन्य चरागाह भूमि | 6.68 | 13.97 | 13.26 | 11.97 | 11.40 | 11.04 |
| b) विविध वृक्ष फसलों और उपवनों के अंतर्गत आने वाली भूमि, शुद्ध बोए गए क्षेत्र में शामिल नहीं है | 19.38 | 4.46 | 4.30 | 3.60 | 3.82 | 3.61 |
| c) कृषि योग्य बंजर भूमि | 22.94 | 19.21 | 17.50 | 16.74 | 15.00 | 13.82 |
| 4) परती भूमि | 28.12 | 22.82 | 19.88 | 24.75 | 23.36 | 24.89 |
| a) वर्तमान परती भूमि के अलावा अन्य परती भूमि | 17.44 | 11.18 | 8.76 | 9.92 | 9.66 | 10.10 |
| b) वर्तमान परती | 10.68 | 11.68 | 11.12 | 14.83 | 13.70 | 14.79 |
| 5) शुद्ध बोया गया क्षेत्र | 118.75 | 133.20 | 140.27 | 140.0 | 143.0 | 141.23 |

## 4.4 भू-आवरण परिवर्तन के कारण

भू-आवरण परिवर्तन समय की आवश्यकता है और यह समय और बढ़ती जनसंख्या के साथ बदल रहा है। भू-आवरण परिवर्तन के विभिन्न कारण हो सकते हैं, जैसे औद्योगीकरण, कृषि, शहरीकरण, बढ़ती जनसंख्या और अन्य कारक।

चित्र 1. भूमि आवरण परिवर्तन के

### 4.4.1 शहरीकरण

विकसित देशों की तुलना में अधिकांश विकासशील देश बहुत तेजी से शहरीकरण कर रहे हैं, क्योंकि विकसित देश पहले से ही मुख्य रूप से शहरीकृत हैं। दक्षिण एशियाई देशों का अधिकांश हिस्सा अब भी ग्रामीण चरित्र वाला है, लेकिन वे तेजी से शहरीकरण का अनुभव कर रहे हैं। Squires (2002) और Yuan (2005) के अनुसार, तेजी से शहरीकरण नए शहरी विकास के लिए अवसर लेकर आता है, लेकिन इसके साथ ही कृषि भूमि, जंगलों और जल निकायों की भारी क्षति भी होती है। शहरी वृद्धि, विशेष रूप से आवासीय और व्यावसायिक भूमि का ग्रामीण क्षेत्रों की ओर विस्तार, क्षेत्रीय आर्थिक जीवंतता का प्रतीक माना जाता रहा है लेकिन, इसके लाभ अब पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ने वाले प्रभावों के साथ संतुलित किए जा रहे हैं, जिसमें वायु और जल गुणवत्ता की गिरावट, कृषि भूमि और जंगलों का नुकसान तथा आर्थिक असमानताओं, सामाजिक विघटन और बुनियादी ढांचे की लागत जैसी सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ शामिल हैं। शहरीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें लोग अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास करते हैं, जो ग्रामीण इलाकों के आसपास उपलब्ध नहीं होती हैं। कोई संदेह नहीं कि शहरी क्षेत्र यदि नियंत्रित, समन्वित और सुव्यवस्थित तरीके से विकसित किए जाएँ तो वे मानव समाज के लिए एक वरदान साबित हो सकते हैं। लेकिन, अनियोजित शहरीकरण पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा बन सकता है। वर्ष 2008 में दुनिया की आधी से अधिक जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रह रही थी, और 2030 तक यह संख्या 81% तक पहुँचने की संभावना है। वैश्विक स्तर पर शहरीकरण की गति और क्षेत्र दोनों में वृद्धि के कारण, यह समझने की आवश्यकता है कि इसका कृषि भूमि के हानि, प्राकृतिक आवास के विनाश, प्राकृतिक वनस्पति आवरण की कमी और स्थानीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन जैसे पर्यावरणीय कारकों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

विकासात्मक गतिविधियों ने या तो ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी बना दिया है या फिर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को शहरी क्षेत्रों में आकर्षित किया है। ये दोनों ही स्थितियाँ पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं, क्योंकि लोग अपने गाँव के घर छोड़कर शहरी क्षेत्रों में नए घर बना रहे हैं, जिससे कभी-कभी छोड़े गए गाँव के घर उपयोग में भी नहीं आते। अंततः जनसंख्या का अत्यधिक दबाव शहरीकरण को जन्म देता है, जिससे किसी विशेष क्षेत्र में पर्यावरण पर भारी दबाब पड़ता है। आजकल ये क्षेत्र इतनी भीड़भाड़ वाले हो चुके हैं कि वे मानव आवश्यकताओं की पूर्ति तक नहीं कर पा रहे हैं जिसका मुख्य कारण प्रदूषण एवं भूजल स्तर में तेजी से कमी होना है।

इस प्रकार, शहरी क्षेत्रों में पारिस्थितिकी तंत्र मानवीय गतिविधियों से अत्यधिक प्रभावित हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप शहरी भू उपयोग/भू आवरण (LULC) में हो रहे परिवर्तनों की निगरानी पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। विकासशील देशों में, जहाँ शहरीकरण की दर अधिक है, वहाँ शहरी फैलाव भू-उपयोग परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण है। तेजी से विकासशील देशों जैसे भारत में, बड़े पैमाने पर ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर और छोटे शहरी क्षेत्रों से महानगरों जैसे दिल्ली, बैंगलोर, मुंबई आदि की ओर प्रवास हो रहा है। भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया सन 1970 के दशक में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत के साथ गति पकड़ने लगी और 1990 के दशक में वैश्वीकरण के बाद इसमें और वृद्धि हुई। शहरों के विस्तार के कारण जंगलों को काटा गया, घास के मैदानों को समतल किया गया, आर्द्रभूमियों को सुखाया गया और कृषि भूमि पर अतिक्रमण किया गया, लेकिन पिछले एक दशक में यह प्रक्रिया पहले की तुलना में कहीं अधिक तेज हो गई।

सन् 1991 में भारत में 23 महानगर थे, जो 2001 में बढ़कर 35 हो गए। इनमें प्रमुख रूप से दिल्ली (13.82 मिलियन), मुंबई (11.90 मिलियन) और चेन्नई (4.21 मिलियन) शामिल हैं। दिल्ली मानव जनसंख्या और यातायात घनत्व के मामले में देश के सबसे अधिक आबादी वाले महानगरों में से एक है, जो मुंबई को भी टक्कर दे रहा है। दिल्ली उन कई महानगरों में से एक है जो तेजी से शहरीकरण और औद्योगिक, आवासीय और परिवहन स्रोतों से उत्पन्न उच्च्च प्रदूषण स्तर से जूझ रहा है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार, दिल्ली की जनसंख्या 1991-2001 के दशक में 47.02% बढ़ी (1991 में 9.4 मिलियन से 2001 में 13.82 मिलियन)। दिल्ली की जनसंख्या में वृद्धि का मुख्य कारण राजधानी में बेहतर जीवन स्तर की तलाश में लोगों का पलायन है। सन् 2009 तक दिल्ली की जनसंख्या 21.7 मिलियन तक पहुँच गई, जिसमें 2001-2008 के बीच 57% की वृद्धि थी। स्वतंत्रता के बाद, जब दिल्ली में प्रवासियों की बड़ी संख्या में आमद हुई, तो बहुत कम समय में यहाँ की जनसंख्या लगभग दोगुनी हो गई। इतनी बड़ी प्रवासी आबादी को बसाने के लिए शहर का अनियोजित और अनियंत्रित तरीके से विस्तारित हुआ। इस प्रकार के अनियोजित विस्तार का शहरी पर्यावरण की गुणवत्ता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा, जिससे लोगों की कार्यक्षमता और समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। अपने पिछले अनुभवों और वर्तमान विकास प्रवृत्तियों के आलोक में, दिल्ली का भविष्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन गया है, जिस पर अधिकारियों को ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार किया जा सके। भू-उपयोग, जो स्वभाव से अत्यधिक गतिशील इकाई है, विकास को मात्रात्मक रूप से आंकने के प्रमुख मानकों में से एक है।

दुनिया की 50 प्रतिशत आबादी शहरी क्षेत्रों में रहती है और यह संख्या भविष्य में और बढ़ने की संभावना है। शहरी क्षेत्रों को लगातार आवास, बुनियादी ढांचे, उद्योगों और मनोरंजन जैसी गतिविधियों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती है, जिससे भूमि पर दबाव बढ़ता जाता है। अधिक से अधिक कृषि भूमि को शहरी कॉलोनियों में बदला जा रहा है। बड़े शहर अपने आसपास के और भी बड़े क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं।

हम देखते हैं कि कई शहरी सड़कों पर ठोस कचरे के ढेर लगे होते हैं। शहरों के बाहर, शहरों से लाया गया कचरा बड़े डंपिंग ग्राउंड में फेंका जाता है। अनुमान है कि कचरा निस्तारण और लैंडफिल के कारण लगभग 20 लाख हेक्टेयर भूमि बंजर हो चुकी है। पिछले 25 वर्षों में शहरी कृषि वैश्विक स्तर पर तेजी से बढ़ी है। उदाहरण के लिए, ब्राजील के साओ पाउलो और क्यूबा के हवाना में शहरी होम गार्डनिंग बहुत सफल रही है। शहरी कृषि स्थानीय स्तर पर उगाए गए खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराती है और जैविक कचरे को पुनः उपयोग में लाने में मदद करती है। हालांकि, यदि इसमें रसायनों का उपयोग किया जाए, तो यह मिट्टी और जल प्रदूषण का कारण बन सकती है।

## 4.4.2 औद्योगीकरण

Kuskovaa, Gingrichb और Kraus (2008) के अनुसार, औद्योगीकरण समाज और उसके पर्यावरण के बीच संबंधों में व्यापक परिवर्तन लाता है। एक कृषि प्रधान समाज से औद्योगिक समाज में बदलाव के दौरान सामाजिक चयापचय (social metabolism) की प्रक्रिया में मौलिक परिवर्तन होते हैं, जिसे "सामाजिक-चयापचय संक्रमण" (socio-metabolic transition) कहा जाता है। औद्योगीकरण देशों के विकास में एक प्रमुख कारक रहा है और इसने शहरी जनसंख्या में वृद्धि करके शहरी फैलाव (urban sprawl) को बढ़ावा दिया है। Kavzoglu (2008) के अनुसार, विकासशील देशों में औद्योगीकरण और शहरीकरण अक्सर अनियंत्रित और अव्यवस्थित रूप से आगे बढ़ते हैं, जिससे पर्यावरण पर विनाशकारी प्रभाव पड़ सकते हैं, विशेष रूप से मौलिक पारिस्थितिकी तंत्र, वन्यजीव आवास और वैश्विक जैव विविधता गंभीर रूप से प्रतिदिन कम हो रही हैं। भू-उपयोग परिवर्तन न तो समान रूप से होता है और न ही एक निश्चित समय या स्थान पर सीमित रहता है। वास्तव में, यह स्पष्ट हो गया है कि दुनिया के कुछ हिस्सों में प्राकृतिक भूमि आवरण के बड़े पैमाने पर परिवर्तन की प्रक्रिया रुक गई है या यहाँ तक कि उलट गई है, जिसे "वन संक्रमण" (forest transition) कहा जाता है।

## 4.4.3 कृषि

Makowski (2013) के अनुसार, वैश्विक स्तर पर कृषि को खाद्य, जैव-आधारित ऊर्जा और फाइबर उत्पादों की बढ़ती मांग का सामना करना पड़ रहा है। कई अध्ययन यह भविष्यवाणी करते हैं कि कृषि तकनीकें इस बढ़ती मांग के अनुसार खुद को अनुकूलित करेंगी। हालांकि, यह अनुकूलन पर्यावरणीय और सामाजिक-सांस्कृतिक सेवाओं को कृषि उत्पादन में एकीकृत करने के लिए एक चुनौती भी प्रस्तुत करता है।

किसान इस बढ़ती मांग के अनुसार अपनी फसलों के चयन, फसल चक्र, फसल उपयोग और उत्पादन की तीव्रता में बदलाव कर सकते हैं। इसके अंतर्गत उन तकनीकी समाधानों को अपनाने की प्रवृत्ति शामिल है जो पैदावार को सीमित करने वाले कारकों, जैसे जल उपलब्धता, को दूर करने में मदद करें। इसके अलावा, कृषि

बायोमास को नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत के रूप में उपयोग करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है, जिसे अक्सर सरकारी नीतियों का समर्थन मिलता है। उदाहरण के लिए, जर्मनी में सन् 2000 में अक्षय ऊर्जा को प्रोत्साहन देने के बाद, मकई (*Zea maize*) और रैपसीड (*Brassica napus*) के बायो-ऊर्जा उत्पादन के लिए खेती का क्षेत्र तीन गुना बढ़ गया और 2012 तक यह जर्मनी के कुल कृषि क्षेत्र का 17.5% हो गया (FNR, 2012)। इसके अतिरिक्त, सिंचाई का उपयोग बढ़ती पैदावार और उसे स्थिर बनाए रखने के लिए अधिक आकर्षक होता जा रहा है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां वर्षा सीमित होती है या मिट्टी में जल धारण क्षमता कम होती है। इसके अन्य कारणों में अधिक उपज देने वाली नई किस्मों की जल आवश्यकता और जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के अनियमित स्वरूप की संभावना शामिल हैं। उदाहरण के लिए, वर्तमान कृषि बाजार मूल्यों के अनुसार, जर्मनी के ब्रैंडेनबर्ग राज्य में सिंचाई आर्थिक रूप से व्यावहारिक बनने की कगार पर है (Münch et al., 2014)। कृषि एक बहुउद्देश्यीय गतिविधि है, जिसका अर्थ है कि यह केवल आर्थिक उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण परिदृश्य और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं जैसे सार्वजनिक लाभों में भी योगदान देती है (Wiggering et al., 2006; Van Zanten et al., 2013)। हालांकि, यदि कृषि प्रबंधन का एकमात्र लक्ष्य आर्थिक लाभ को अधिकतम करना हो, तो यह भूजल संसाधनों की कमी, मृदा क्षरण, जल गुणवत्ता में गिरावट, जैव विविधता की हानि और सामाजिक-सांस्कृतिक सेवाओं में कमी का कारण बन सकता है। हालांकि, ये प्रभाव दीर्घ स्तर पर स्पष्ट होते हैं, लेकिन इनका मूल कारण खेत भूमि स्तर पर किए गए निर्णय होते हैं। इसलिए, सतत विकास के लिए आवश्यक है कि कृषि के आर्थिक उत्पादन, कार्यों और पर्यावरणीय व सामाजिक सेवाओं के मध्य संतुलन बना रहे। सरकारें किसानों को इस संतुलन का सम्मान करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए नीतियां लागू कर रही हैं, जिनमें सार्वजनिक सेवाओं के प्रावधान के लिए उन्हें आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाता है।

### 4.4.4 बढ़ती जनसंख्या

हमारे देश के लिए 1951, 1961, 1971, 1981 और 1991 के जिला स्तर के डेटा का उपयोग करके जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक-आर्थिक विकास और कृषि तीव्रीकरण (एग्रीकल्चरल इंटेंसिफिकेशन) के बीच संबंधों पर अध्यन किया गया इसके परिणाम स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि जनसंख्या दबाव का कृषि तीव्रीकरण के प्रत्येक आयाम (फसल चक्र, कृत्रिम सिंचाई और रासायनिक उर्वरक उपयोग) पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सन् 1961-1991 की अवधि के विश्लेषण के परिणाम दर्शाते हैं कि जनसंख्या वृद्धि का इन तीनों कृषि तीव्रीकरण आयामों में परिवर्तन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ये परिणाम क्षेत्रीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों और सामाजिक-आर्थिक विकास स्तरों के प्रभावों को नियंत्रित करने के बाद भी मान्य रहते हैं। सामाजिक-आर्थिक कारकों के प्रभाव आमतौर पर नगण्य पाए गए और वे जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को परिवर्तित नहीं करते। पिछले कुछ दशकों में वैश्विक भूमि उपयोग (ग्लोबल लैंड यूज) में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। अक्सर जनसंख्या वृद्धि को भूमि उपयोग परिवर्तन का कारक माना जाता है, लेकिन स्थानीय स्तर पर जटिल कारण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्य मांग में वृद्धि हुई है, जिससे भूमि संसाधनों पर अधिक दबाव पड़ा है। अत्यधिक जनसंख्या (ओवरपॉपुलेशन) एक ऐसी स्थिति है जहां निरंतर बढ़ती मानव आबादी पृथ्वी की वहन क्षमता (कैरीइंग कैपेसिटी) को प्रभावित करती है। अत्यधिक जनसंख्या तब होती है जब जन्म दर (नैटेलिटी) मृत्यु दर (मॉर्टैलिटी) से अधिक होती है।

पर्यावरणीय क्षरण (एनवायर्नमेंटल डिग्रेडेशन) केवल जनसंख्या वृद्धि के कारण ही नहीं, बल्कि अन्य कारकों के प्रभावों के कारण भी होता है। विकासशील देशों, जैसे भारत में जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में देखे जाते हैं:

- भू-उपयोग में परिवर्तन
- पर्यावरण में हानिकारक कचरे का निपटान
- प्राकृतिक संसाधनों की कमी

जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है, यह वृद्धि पर्यावरण को प्रभावित करने लगती है। इस अवधारणा के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति की कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के साथ-साथ अपशिष्ट उत्पन्न होता है और उसका निपटान किया जाता है। इसलिए, संसाधनों के दुरुपयोग, अपशिष्ट उत्पादन और पर्यावरणीय क्षति समाज की जीवनशैली और उपभोग पैटर्न पर निर्भर करते हैं। जनसंख्या वृद्धि उन व्यक्तियों की संख्या से निर्धारित होती है जो जन्म (नैटेलिटी) और बाहरी प्रवास (इमिग्रेशन) के माध्यम से बढ़ते हैं और मृत्यु दर (मॉर्टैलिटी) व पलायन (एमिग्रेशन) से कम होते हैं। इससे जनसंख्या आकार में वृद्धि होती है, जबकि मृत्यु दर और प्रवासन से जनसंख्या आकार में कमी आती है। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार, भारत की जनसंख्या घनत्व 2001 में 325 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 2011 में 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गई। यह ग्रामीण से शहरी प्रवास (रूरल-टू-अर्बन माइग्रेशन) के कारण हो सकता है। पर्यावरणीय तनाव, जैव विविधता की हानि, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या को प्रभावित करता है। विभिन्न सर्वेक्षणों के अनुसार, दुनिया की कुल जनसंख्या पहले से ही अत्यधिक हो चुकी है, फिर भी मानव जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है। सन् 2009 में विश्व जनसंख्या 6.8 अरब थी और इसके सन् 2050 तक 9.2 अरब तक पहुंचने का अनुमान है। वर्ल्ड पॉपुलेशन प्रॉस्पेक्ट्स के अनुसार, यह वृद्धि मुख्य रूप से विकासशील देशों में होगी (संयुक्त राष्ट्र, आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग, जनसंख्या प्रभाग, 2015)। स्थायी संसाधनों की उपलब्धता, जो जैव विविधता और जीवन स्तर का समर्थन करती है, जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित नहीं करती। अत्यधिक जनसंख्या भूमि उपयोग पैटर्न को प्रभावित करती है और लोगों के उपभोग व्यवहार और उत्पादन गतिविधियों को बदलती है। "मानव उपभोग ने उपलब्ध संसाधनों को बहुत अधिक पार कर लिया है, और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पृथ्वी से 1/3 अधिक भूमि की आवश्यकता होगी" (संयुक्त राष्ट्र, 1992)।

**जनसंख्या विकास और पर्यावरण शोषण**

मानव जनसंख्या द्वारा जनसंख्या विकास और पर्यावरणीय शोषण के कुछ प्रभाव नीचे सूचीबद्ध हैं:

- औद्योगिक विस्तार और खनिजों के दोहन के लिए कृषि भूमि, वन भूमि और आर्द्रभूमि (वेटलैंड्स) का नुकसान।
- जैव विविधता और वन्यजीव आवासों का विखंडन।
- अभेद्य सतहों (impermeable surfaces) में वृद्धि से बाढ़ की संभावना बढ़ना।

- संसाधनों के अधिक दोहन, विनिर्माण और उपभोग में वृद्धि।
- तापमान परिवर्तन और खाद्य श्रृंखला में अनुकूलन के कारण आवास का विनाश।
- विभिन्न क्षेत्रों की वनस्पति और जीव-जंतुओं का विलुप्त होना, कुछ प्रजातियों का संकटग्रस्त (endangered) होना, और पर्यावरणीय लाभों (जैसे औषधीय पौधों, जलाऊ लकड़ी, चंदन आदि) की उपलब्धता में कमी।
- वैश्विक जलवायु परिवर्तन से पृथ्वी का तापमान बढ़ना, जिससे ध्रुवीय बर्फ पिघलना, समुद्र स्तर में वृद्धि, बर्फीली चोटियों का पिघलना, जैव विविधता में कमी और जलवायु असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
- जीवाश्म ईंधन (fossil fuel) के जलने से वायु प्रदूषण और उपलब्ध संसाधनों का अत्यधिक दोहन।

## 4.5 भू-आवरण परिवर्तन के प्रभाव

भू-आवरण (Land Cover) भौतिक और जैविक परिवर्तनों से संबंधित एक प्रक्रिया है, जो मानव जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ भूमि उपयोग के पैटर्न में भी बदलाव लाती है। भूमि प्रत्यक्ष रूप से मानव गतिविधियों के कारण होने वाले परिवर्तनों की शिकार होती है। भूमि आवरण पर जनसंख्या वृद्धि और कमी, दोनों का प्रभाव पड़ता है, लेकिन वर्तमान संदर्भ में यह मुख्य रूप से बढ़ती जनसंख्या के कारण बदल रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भोजन, वस्त्र और आवास जैसी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भू-उपयोग में बदलाव आज की आवश्यकता बन गई है। भूमि उपयोग और भू-आवरण में परिवर्तन प्राचीन काल से होते आ रहे हैं और यह मानव द्वारा आवश्यक संसाधनों को सुरक्षित करने के लिए किए गए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कार्यों का परिणाम हैं। यह परिवर्तन संभवतः पहली बार तब हुआ जब मानव ने जंगली शिकार की उपलब्धता बढ़ाने के लिए जंगलों को जलाना शुरू किया। यह प्रक्रिया कृषि के जन्म के साथ तीव्र हो गई, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर वन क्षेत्रों की सफाई (वनों की कटाई) और पृथ्वी की स्थलाकृतिक सतह का प्रबंधन किया जाने लगा, जो आज भी जारी है। औद्योगीकरण के कारण वैश्विक स्तर पर, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, जनसंख्या घनत्व तेजी से बढ़ा है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ रही है, भूमि आवरण बहुत तेज़ी से बदल रहा है, जिससे भूमि पर गंभीर प्रभाव पड़ रहे हैं।

### 4.5.1 जैव विविधता

जैव विविधता (Biodiversity) जीवित जीवों की विविधता और भिन्नता को दर्शाने वाली एक प्रक्रिया है। जैसे-जैसे भूमि को कंक्रीट के जंगल में बदला गया है, एक बड़ा हिस्सा जैव विविधता खो चुका है। आवास का विनाश और आवास का ह्रास (habitat degradation) भू-आवरण परिवर्तन के मुख्य प्रभाव हैं। मानव ने भू-आवरण में बड़े पैमाने पर परिवर्तन किया है और भूमि की विभिन्न सतहों पर कब्जा किया है। वन भूमि को या तो कृषि भूमि में बदल दिया गया है या आवासीय उपयोग के लिए उपयोग किया गया है। विविध वनस्पतियों और जीव-जंतुओं का आवास समाप्त हो चुका है। बढ़ती जनसंख्या जैव विविधता के नुकसान का

मुख्य कारण है, क्योंकि मानव को इस ग्रह पर जीवित रहने के लिए बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता होती है और इन सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जैव विविधता का उपयोग किया जा रहा है। वनों और अन्य पारिस्थितिकी प्रणालियों के आसपास के आवास की उपयुक्तता भी प्रभावित होती है, जब मौजूदा आवास छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित हो जाते हैं (आवास का विखंडन), जिससे वन के किनारे बाहरी प्रभावों से प्रभावित होते हैं और मुख्य आवास क्षेत्र में कमी आती है। छोटे आवासीय क्षेत्र सामान्य रूप से कम प्रजातियों का समर्थन करते हैं (आइलैंड बायोजियोग्राफी), और उन प्रजातियों के लिए जो बिना किसी विघ्न के मुख्य आवास की आवश्यकता रखते हैं, विखंडन स्थानीय और यहां तक कि सामान्य विलुप्तता का कारण बन सकता है।

## 4.5.2 जलवायु परिवर्तन

भू-आवरण परिवर्तन (Land Cover Change - LCC) वैश्विक, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। वैश्विक स्तर पर, भू-आवरण परिवर्तन ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार है क्योंकि भूमि आवरण परिवर्तन से ग्रीनहाउस गैसों का वायुमंडल में उत्सर्जन होता है। भू-आवरण परिवर्तन पृथ्वी की मिट्टी और वनस्पतियों के विघटन के कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन बढ़ा सकता है, और इस परिवर्तन का प्रमुख कारण वनों की कटाई है, विशेष रूप से कृषि कार्य के बाद, जो हल चलाने के कारण मिट्टी से कार्बन के और अधिक उत्सर्जन का कारण बनता है। भू-आवरण परिवर्तन अन्य ग्रीनहाउस गैसों, विशेष रूप से मीथेन (संवर्तित सतही जलविज्ञान: आर्द्रभूमि का निकासी और चावल के खेत; मवेशियों की चराई) और नाइट्रस ऑक्साइड (कृषि: अजैविक नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग; सिंचाई; नाइट्रोजन को स्थिर करने वाले पौधों की खेती; जैविक ईंधन जलाना) के उत्सर्जन में बड़े बदलावों का कारण भी है। भू-आवरण परिवर्तन सूर्य के प्रकाश की परावृत्ति को भी प्रभावित करता है (जिसे एल्बीडो कहा जाता है), जो वैश्विक जलवायु के एक अन्य महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करता है। यह प्रक्रिया मुख्य रूप से भू-आवरण पर निर्भर करती है। यदि भूमि वनस्पति, जल, भवन और अन्य निर्माण गतिविधियों से ढकी होती है, तो वह क्षेत्र एक अलग एल्बीडो परावर्तित करेगा क्योंकि वनस्पति का एल्बेडो पानी और अन्य बंजर भूमि से अलग होता है। ये परिवर्तन सतही तापमान संतुलन में महत्वपूर्ण बदलाव लाते हैं, न केवल सतही एल्बीडो को बदलकर, बल्कि वनस्पति से वाष्पन उष्मा हस्तांतरण (जैसे कि बंद कैनोपी वन में उच्चतम) को बदलकर और सतही खुरदरापन में बदलाव करके, जो पृथ्वी की सतह पर हवा की स्थिर परत (सीमा परत) और ट्रोपोस्फीयर के बीच उष्मा हस्तांतरण को प्रभावित करता है। इसका एक उदाहरण यह है कि शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक गर्मी महसूस की जाती है, जिसे शहरी ताप द्वीप प्रभाव (Urban Heat Island Effect) कहा जाता है।

## 4.5.3 प्रदूषण

भू-उपयोग और भू-आवरण में परिवर्तन पानी, मिट्टी और वायु प्रदूषण के महत्वपूर्ण कारण हैं। इनमें से शायद सबसे पुराना कारण कृषि के लिए भूमि की सफाई और पेड़ों और अन्य जैविक सामग्री की कटाई है। वनस्पति का उन्मूलन मिट्टी को वायु और जल के माध्यम से होने वाले विशाल मृदा अपरदन (soil erosion) के प्रति संवेदनशील बना देता है, विशेष रूप से ढलान वाले क्षेत्रों में, और जब इसमें आग जुड़ी होती है, तो यह

वायुमंडल में प्रदूषक तत्व भी छोड़ता है। यह न केवल समय के साथ मिट्टी की उर्वरता को घटाता है, बल्कि भविष्य में कृषि उपयोग के लिए भूमि की उपयुक्तता को भी कम करता है और फास्फोरस, नाइट्रोजन और अवक्षेपों (sediments) की विशाल मात्रा को जलधाराओं और अन्य जल पारिस्थितिकी प्रणालियों में छोड़ता है, जिससे कई नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न होते हैं (जैसे कि बढ़ी हुई तलछट, धुंधलापन और यूरोफिकेशन)।

खनन (mining) और भी बड़े प्रभाव पैदा कर सकता है, जिसमें प्रक्रिया के दौरान निकले जहरीले धातु प्रदूषण भी शामिल होते हैं। आधुनिक कृषि पद्धतियाँ, जो नाइट्रोजन और फास्फोरस उर्वरकों के तीव्र उपयोग को शामिल करती हैं, ने सतही जल में बहाव और अपरदन के कारण प्रदूषण में भारी वृद्धि की है और भूजल में अत्यधिक नाइट्रोजन के रिसाव (नाइट्रेट के रूप में) के कारण भी प्रदूषण बढ़ा है। अन्य कृषि रसायन, जैसे कि हर्बीसाइड्स और कीटनाशक (herbicides and pesticides), भी कृषि के माध्यम से भूमि और सतही जल में छोड़े जाते हैं और कुछ मामलों में मिट्टी में प्रदूषक के रूप में बने रहते हैं। कृषि क्षेत्रों को साफ करने के लिए वनस्पति जैविक सामग्री (फसल अवशेष, घास-फूस) को जलाने की प्रक्रिया क्षेत्रीय वायु प्रदूषण में एक शक्तिशाली योगदान देती है, जहां भी यह होती है, और अब इसे कई क्षेत्रों में प्रतिबंधित कर दिया गया है।

## 4.5.4 ओज़ोन परत

ओजोन पृथ्वी के वातावरण में स्थित एक परत है, जो स्ट्रैटोस्फीयर में पाई जाती है, और यह आमतौर पर 20-50 किमी के बीच होती है। जैसा कि आप जानते हैं, ओजोन परत का नष्ट होना एक प्रमुख चिंता का विषय है। यह परत सीएफसी (CFCs), नाइट्रस ऑक्साइड (Nitrous Oxide) जैसे प्रदूषकों के कारण खतरे में है। नाइट्रस ऑक्साइड कृषि भूमि से उत्सर्जित होता है और क्षेत्रीय और स्थानीय जलविज्ञान में बदलाव (जैसे कि बांध निर्माण, आर्द्रभूमि का जल निकासी, सिंचाई परियोजनाएँ, शहरी क्षेत्रों में अभेद्य सतहों का बढ़ना) के कारण भी इसका उत्सर्जन होता है, जो अंततः भूमि आवरण परिवर्तन के परिणामस्वरूप होते हैं। यह प्रदूषण ओजोन परत को नुकसान पहुंचाता है, जिससे पृथ्वी के लिए महत्वपूर्ण सुरक्षा बाधा कमजोर होती है, जो सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी (UV) किरणों से हमारी रक्षा करती है। इस परत का नष्ट होना जलवायु परिवर्तन, त्वचा कैंसर, और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है।

## 4.5.5 अन्य प्रभाव

पृथ्वी की अधिकांश मानव जनसंख्या के लिए शायद सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा भविष्य में खाद्य और अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर दीर्घकालिक खतरा है, जो उत्पादक भूमि को गैर-उत्पादक उपयोगों में बदलने के कारण उत्पन्न हो रहा है। जैसे कृषि भूमि का आवासीय उपयोग के लिए रूपांतरण और चरागाहों का अत्यधिक चराई के कारण ह्रास। भूमि उपयोग (Land-use) एक प्रक्रिया है, जिसमें प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को सामाजिक पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तित किया जाता है। यह प्रक्रिया प्रकृति, अर्थव्यवस्था और समाज से उत्पन्न सिंथेटिक प्रभावों से जटिल होती है। भूमि उपयोग की दिशा, डिग्री, संरचना, क्षेत्रीय वितरण और लाभ न केवल प्राकृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं, बल्कि विविध प्राकृतिक, आर्थिक और तकनीकी परिस्थितियों द्वारा भी सीमित होते हैं। भू-उपयोग भू-आवरण परिवर्तन

(land-cover change) का सबसे सीधा और प्रमुख प्रेरक कारक है। जैसे-जैसे वैश्विक जनसंख्या बढ़ रही है, भूमि पर विशेष रूप से अफ्रीका और एशिया में अधिक दबाव बढने की संभावना हैं। लोगों की आवश्यकता पूरी करने के लिए भू-उपयोग की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, वन और घास के मैदानों के रूपांतरण से कृषि के लिए अधिक भूमि लाई जा सकती है।

**सारांश**

इस इकाई में, हमने भूमि आवरण परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया। अब तक आपने सीखा कि:

- **भू-आवरण** पृथ्वी की सतह की भौतिक विशेषताओं को संदर्भित करता है, जिसमें वनस्पति, जल, मिट्टी और अन्य भौतिक तत्व शामिल होते हैं। **भू-उपयोग** उस तरीके को दर्शाता है, जिससे मनुष्यों और उनके आवासों द्वारा भूमि का उपयोग किया जाता है।

- **भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति (1951-2001):** 1947 में स्वतंत्रता के समय भारत की जनसंख्या लगभग 34.5 करोड़ थी। 1940 के दशक के बाद से इसमें बड़े बदलाव देखे गए। यहां तक कि सबसे गरीब लोगों के जीवन स्तर में भी कुछ सुधार हुआ।

- **1950-51 में भूमि की रिपोर्टिंग स्थिति:** कुल 284.32 मिलियन हेक्टेयर भूमि में से 14.21% वन क्षेत्र था, 16.7% भूमि कृषि के लिए अनुपलब्ध थी, 17.39% अन्य अनाकृषित भूमि के रूप में थी, 9.9% परती भूमि थी, और 41.77% भूमि पर खेती की जा रही थी।

- **2000-2001 में भू-उपयोग परिवर्तन:** कुल रिपोर्ट की गई भूमि 306.54 मिलियन हेक्टेयर थी, जो 1950 की तुलना में 22.22 मिलियन हेक्टेयर अधिक थी। वन क्षेत्र 22.51% हो गया (1950 से 28.54 मिलियन हेक्टेयर अधिक), 13.83% भूमि कृषि के लिए अनुपलब्ध थी, अन्य अनाकृषित भूमि 9.29% थी, परती भूमि 8.12% थी और कुल बोई गई भूमि 46.07% थी।

- **भू-आवरण परिवर्तन की आवश्यकता:** समय के साथ और जनसंख्या बढ़ने के कारण भूमि आवरण में परिवर्तन आवश्यक हो गया है। इसके प्रमुख कारण औद्योगीकरण, कृषि विस्तार, शहरीकरण और बढ़ती जनसंख्या हैं।

- **शहरीकरण और औद्योगीकरण:** भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया 1970 के दशक में औद्योगिक क्रांति और 1990 के दशक में वैश्वीकरण के साथ तेज हुई। इस अवधि में वन कटाई, घासभूमि की जुताई, आर्द्रभूमि का निकास और कृषि भूमि पर अतिक्रमण बढ़ा, जिससे भूमि आवरण में बड़े बदलाव हुए।

- **तेजी से शहरीकरण के प्रभाव:** स्क्वायर्स (2002) और युआन (2005) के अनुसार, तीव्र शहरीकरण नए शहरी विकास के लिए अवसर प्रदान करता है, लेकिन साथ ही, इसने कृषि योग्य भूमि, वन क्षेत्र और जल निकायों के भारी नुकसान भी पहुंचाए हैं।

- **औद्योगीकरण और शहरीकरण के दुष्प्रभाव:** कावज़ोग्लू (2008) के अनुसार, विकासशील देशों में औद्योगीकरण और शहरीकरण अक्सर अनियंत्रित और असंगठित रूप से आगे बढ़ते हैं, जिससे पर्यावरण पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। यह विशेष रूप से मूलभूत पारिस्थितिक तंत्र, वन्यजीव आवास और वैश्विक जैव विविधता को प्रभावित करता है। भूमि उपयोग परिवर्तन स्थानिक और अस्थायी रूप से समान रूप से नहीं होता।
- **जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक-आर्थिक विकास और कृषि तीव्रता के बीच संबंध:** भारत में 1951, 1961, 1971, 1981 और 1991 के जिला स्तर के आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनसंख्या दबाव का कृषि तीव्रता (फसल चक्र, सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों के उपयोग) पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1 (a) रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

दिल्ली उन कई शहरों में से एक है जो तेजी से शहरीकरण और औद्योगिक, आवासीय और परिवहन स्रोतों से बढ़ते प्रदूषण स्तर से जूझ रहे हैं। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार, दिल्ली की जनसंख्या 1991-2001 के दशक में ………………. बढ़ गई है (1991 में 9.4 मिलियन से बढ़कर 2001 में …………………. हो गई)। दिल्ली में जनसंख्या वृद्धि मुख्य रूप से बेहतर जीवन स्तर की तलाश में राजधानी की ओर होने वाले …………………… के कारण हुई है। दिल्ली की जनसंख्या 2009 में ……………….. तक पहुँच गई (2001-2008 के बीच 57% की वृद्धि)। स्वतंत्रता के बाद, जब दिल्ली ने बहुत कम समय में बड़े पैमाने पर प्रवासन देखा, तो दिल्ली की जनसंख्या लगभग दोगुनी हो गई। इतनी बड़ी ………………………. जनसंख्या को बसाने के लिए शहर का बहुत ही अनियोजित और ……………………………. तरीके से विस्तार किया गया। इस प्रकार के अनियोजित विस्तार का प्रत्यक्ष प्रभाव लोगों की कार्यक्षमता और उत्पादकता पर पड़ता है, जिससे उनके समग्र ………………… विकास पर प्रभाव पड़ता है।

2 (a) भू-आवरण परिवर्तन की अवधारणा पर चर्चा करें।

(b) भू-आवरण एवं भूमि उपयोग से आप क्या समझते हैं?

3 (a) भारत के विशेष संदर्भ में भूमि आवरण परिवर्तन का वर्णन करें।

(b) भारत के वन एवं परती भूमि की चर्चा करें।

4. भू-आवरण परिवर्तन के कारणों की व्याख्या करें।

5 (a) भू-आवरण परिवर्तन में शहरीकरण की क्या भूमिका है?

(b) भू-आवरण परिवर्तन में कृषि की भूमिका स्पष्ट करें।

6 (a) रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

1950-51 में भूमि के लिए रिपोर्टिंग क्षेत्र ………………. था, कुल क्षेत्रफल में से ………………. वन से आच्छादित था, 16.7% क्षेत्र खेती के लिए उपलब्ध नहीं था और …….. अन्य असिंचित भूमि के रूप में उपलब्ध था, 9.9% क्षेत्र परती भूमि के रूप में था और शुद्ध बोया गया क्षेत्र …………….. था। दूसरी ओर, 2000-2001 में ये मान अलग थे …………….. की तुलना में। 2001 में ………………….. भूमि क्षेत्र रिपोर्ट किया गया था, जो पहले रिपोर्ट किए गए क्षेत्र से ……………….. अधिक था। वन से आच्छादित भूमि …………….. (1950 की तुलना में 28.54 मिलियन हेक्टेयर अधिक) थी, …………. भूमि खेती के लिए उपलब्ध नहीं थी। कुल क्षेत्रफल के 9.29% में अन्य असिंचित भूमि पाई गई …………………। परती भूमि और शुद्ध बोया गया क्षेत्र क्रमशः …………………….. था। जैसा कि आप अध्ययन में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं, ………………… के दौरान भारत में भूमि उपयोग पैटर्न और भूमि आवरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है।

(b) 1981-2001: उच्च वृद्धि दर लेकिन वृद्धि दर में धीमापन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। (हाँ/नहीं)

(c) भू-पृष्ठ की भौतिक विशेषताएँ, जो वनस्पति, जल, मिट्टी और अन्य भौतिक विशेषताओं के वितरण में परिलक्षित होती हैं। भूमि उपयोग से तात्पर्य उस तरीके से है जिसमें मनुष्यों और उनके आवासों द्वारा भूमि का उपयोग किया गया है। (भूमि आवरण / भूमि उपयोग)

(d) वह भूमि जिसमें भोजन/चारे के लिए पौधे उगाए जाते हैं। (कृषि भूमि / चारागाह / परती भूमि)

(e) भूमि आवरण परिवर्तन का जलवायु परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(f) प्रदूषण और भूमि आवरण परिवर्तन के बीच क्या संबंध है?

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

1 (a) महानगरीय शहर, 47.02%, 13.82 मिलियन, लोगों का प्रवासन, जनसंख्या, 21.7 मिलियन, प्रवासी, प्रवासी जनसंख्या, अनियंत्रित ढंग, शहरी वातावरण, सामाजिक-आर्थिक।

2 (a) अनुभाग 4.1 देखें, (b अनुभाग 4.2.1 देखें,

3 (a) अनुभाग 4.3 देखें, (b) अनुभाग 4.3 देखें,

4 अनुभाग 4.4 देखें,

5 (a) अनुभाग 4.4.1 देखें, (b) अनुभाग 4.4.3 देखें,

6 (a) 284.32 एमएचए, 14.21% क्षेत्रफल, खेती, 17.39%, 41.77%, 1950, 306.54 एमएचए, 22.22 एमएचए, 22.51%, 13.83%, 2000-2001, 8.12% और 46.07%, 1950 -2000।

(b) हां, (सी) भूमि कवर, (डी) क्रॉपलैंड, (ई) अनुभाग 4.5.2 देखें Yes,

(c) भूमि आवरण, (डी) फसल भूमि, (ई) अनुभाग 4.5.2 देखें

7 (a) अनुभाग 4.4.4 देखें

# इकाई- 5: भू-क्षरण के कारण और परिणाम

**इकाई संरचना**

**5.0 सीखने के उद्देश**
**5.1 परिचय**
**5.2 भू-क्षरण की परिभाषाएँ**
**5.3 भू-क्षरण के प्रमुख कारण**
**5.4 भू-क्षरण के प्राकृतिक कारण**
**5.5 भू-क्षरण के मानव-निर्मित कारण**
**5.5.1 वनों की कटाई**
**5.5.2 मरुस्थलीकरण**
**5.5.3 अति-चराई**
**5.5.4 ठोस अपशिष्ट का निपटान**
**5.5.5 कृषि प्रथाएँ**
**5.5.6 मृदा क्षरण**
**5.5.7 नगरीकरण और औद्योगीकरण**
**5.5.8 खनन**
**5.6 भू-क्षरण के परिणाम**
**सारांश**

## 5.0 सीखने के उद्देश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- भू-क्षरण की परिभाषा
- भू-क्षरण के प्रमुख कारण
- वनों की कटाई और भू-क्षरण के बीच के संबंध
- मरुस्थलीकरण और भू-क्षरण की परिभाषा
- अत्यधिक चराई किस प्रकार भू-क्षरण का कारण बनती है?
- ठोस अपशिष्ट का अनुचित निपटान भू-क्षरण के लिए किस प्रकार उत्तरदायी है?

## 5.1 परिचय

जैसा कि आप जानते हैं, प्रकृति आदिकाल से ही मानव के प्रति अत्यंत उदार रही है। पृथ्वी पर उपलब्ध विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन जैसे वन, भूमि, जल, खनिज, ऊर्जा आदि मानव जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। ये प्राकृतिक संसाधन न केवल मनुष्यों के लिए उपयोगी हैं, बल्कि करोड़ों जीव-जंतुओं और प्रजातियों के लिए भी आवास का कार्य करते हैं। जल, भूमि, खनिज, ऊर्जा, वायु,

वन और वन्यजीव मानव के पृथ्वी पर अस्तित्व में आने से बहुत पहले से विद्यमान थे। इसलिए, मानव ने अपने अस्तित्व के प्रारंभ से ही इन प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया है।

भूमि मानव एवं पृथ्वी पर अन्य सभी जीवों के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन रही है। भूमि संसाधन विभिन्न रूपों में जैसे वन क्षेत्र, कृषि भूमि, पर्वतीय क्षेत्र, पहाड़ियाँ, मैदान और पठार आदि में पाए जाते हैं। भूमि संसाधन मानव के लिए अत्यंत आवश्यक हैं क्योंकि यह कृषि भूमि और वन भूमि प्रदान करती है, जिनका उपयोग वानिकी, कृषि तथा खनिजों के दोहन आदि कार्यों में किया जाता है।

इनके अतिरिक्त भूमि अन्य पौधों और जानवरों को भोजन एवं आश्रय भी प्रदान करती है। यह जलग्रहण क्षेत्र (watershed) या जलाशय के रूप में कार्य करती है। मानव गतिविधियों से उत्पन्न ठोस अपशिष्टों के भंडारण के लिए भूमि एक भंडार के रूप में भी प्रयुक्त होती है। इसके साथ ही भूमि का उपयोग भवनों, उद्योगों, सड़कों तथा अन्य आधारभूत संरचनाओं के निर्माण में भी किया जाता है।

पारिस्थितिकीय परिस्थितियों के आधार पर भूमि को विभिन्न श्रेणियों में जैसे कृषि भूमि, बंजर भूमि, आर्द्रभूमि, शुष्क भूमि, चरागाह भूमि, घासभूमि, हिमाच्छादित भूमि तथा परती या परती भूमि में विभाजित किया गया है। भारत में भूमि क्षरण, जैव विविधता की हानि, पर्यावरण प्रदूषण तथा ठोस अपशिष्ट के उत्पादन जैसी समस्याएँ अत्यंत महत्वपूर्ण पर्यावरणीय मुद्दे हैं। भूमि क्षरण एक गंभीर अंतरराष्ट्रीय समस्या है और आने वाले समय में यह एक महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दा बनी रहेगी।

भूमि संसाधन न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि पारिस्थितिकीय और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, कई प्रमुख जैव-भू-रासायनिक चक्र जैसे कार्बन, नाइट्रोजन, सल्फर, फॉस्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि भूमि में ही पूर्ण होते हैं।

लेकिन पिछले कुछ दशकों में मानव द्वारा भूमि संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया गया है, जिससे भूमि की गुणवत्ता और उसकी पारिस्थितिकीय संतुलन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

मानव-निर्मित गतिविधियों के कारण भूमि का क्षरण लगातार बढ़ रहा है। इन गतिविधियों में वनों की कटाई, खनन, जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण, औद्योगीकरण, ठोस अपशिष्ट का अनुचित निपटान आदि शामिल हैं। भू-क्षरण प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकंप, भूस्खलन, बाढ़ और वनाग्नि के कारण भी होता है। इसके अलावा अत्यधिक चराई, मरुस्थलीकरण और जलभराव भी भूमि क्षरण में योगदान देते हैं। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 328.73 मिलियन हेक्टेयर (जो विश्व के कुल भू-क्षेत्र का लगभग 2.5%) है। इसमें से 304.89 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को रिपोर्ट किया गया है, और केवल 264.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग में लाई जा रही है (शर्मा, 2018)। जैसा कि आप जानते हैं, भारत ग्रामप्रधान देश है और यहाँ विश्व की लगभग 16% मानव जनसंख्या तथा 20% पशुधन जनसंख्या निवास करती है। भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र (328.73 मिलियन हेक्टेयर) में से लगभग 178 मिलियन हेक्टेयर (54%) भूमि पहले ही बंजर भूमि में परिवर्तित हो चुकी है, जिसमें लगभग 40 मिलियन हेक्टेयर अवनत वन भूमि भी शामिल है। देश में कुल कृषि योग्य भूमि लगभग 144 मिलियन हेक्टेयर है, जिसमें से 56% (80.6 मिलियन हेक्टेयर) भूमि त्रुटिपूर्ण कृषि प्रथाओं के कारण क्षरित हो चुकी है। घने वनों का क्षेत्र घटकर अब कुल भौगोलिक क्षेत्र का केवल 11% (36.2 मिलियन हेक्टेयर) रह गया है (शर्मा, 2018)।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जनसंख्या विस्फोट, अनुचित कृषि पद्धतियाँ, शहरीकरण, औद्योगीकरण, वनों की कटाई, अत्यधिक चराई, झूम कृषि, खनन गतिविधियाँ तथा ठोस अपशिष्ट का

अनुचित निपटान आदि भारत में भूमि क्षरण के प्रमुख कारण हैं। भूमि क्षरण न केवल भूमि की उत्पादकता को कम करता है, बल्कि यह पारिस्थितिकीय, सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी उत्पन्न करता है। इन प्रभावों में जैव विविधता की हानि, विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, मृदा अम्लीकरण, मृदा क्षारीकरण आदि शामिल हैं। उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश भूमि संसाधन या तो पहले से ही क्षरित हो चुके हैं, क्षरण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, या फिर क्षरण के खतरे में हैं। इस इकाई में आप भूमि क्षरण के विभिन्न कारणों और उसके परिणामों का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

## 5.2 भू-क्षरण की परिभाषाएँ

विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों/संस्थाओं और वैज्ञानिकों द्वारा भूमि क्षरण की कई परिभाषाएँ दी गई हैं। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:

- ऑर्गनाइज़ेशन फॉर ईकनामिक क्वॉपरैशन एंड डिवेलप्मन्ट (OECD) के अनुसार भूमि क्षरण वह प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं, भूमि उपयोग या अन्य मानवजनित गतिविधियों और आवासीय पैटर्न के कारण भूमि की जैविक या आर्थिक उत्पादकता में कमी या हानि होता है, जैसे कि भूमि प्रदूषण, मृदा अपरदन और वनस्पति आवरण का नाश।
- यूनाइटिड नेशन कन्वेन्शन टू काम्बैट डिसर्टिफिकेशन (UNCCD) के अनुसार भूमि क्षरण एक वैश्विक विकास और पर्यावरणीय समस्या है, और मरुस्थलीकरण भूमि क्षरण का सबसे गंभीर रूप है।
- वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन (WHO) के अनुसार भूमि क्षरण अत्यधिक सूखा और मानव गतिविधियों के कारण होता है, जिससे भूमि की गुणवत्ता घटती है और इसका नकारात्मक प्रभाव खाद्य उत्पादन, आजीविका और अन्य पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के उत्पादन पर पड़ता है।
- भूमि क्षरण भूमि की उत्पादक क्षमता में समग्र कमी को दर्शाता है, जिसमें इसके प्रमुख उपयोग, कृषि प्रणाली और आर्थिक संसाधन के रूप में इसका महत्व शामिल है।
- अन्य शब्दों में भूमि क्षरण को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "यह मिट्टी के अपक्षय या मिट्टी की उर्वरता की हानि की प्रक्रिया है, जिसमें प्राकृतिक या मानवजनित गतिविधियों के कारण मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में गिरावट आती है।"

## 5.3 भू-क्षरण के प्रमुख कारण

भू-क्षरण के विभिन्न कारण हैं, लेकिन सबसे पहले आपको भूमि क्षरण की श्रेणियों को समझना आवश्यक है। पहली श्रेणी - भौतिक क्षरण: यह मिट्टी के भौतिक गुणों में गिरावट को दर्शाता है। भौतिक गुणों में भूमि का परिदृश्य, संरचना, बनावट, कुल घनत्व, नमी की मात्रा, जल धारण क्षमता आदि शामिल हैं। दूसरी श्रेणी - रासायनिक क्षरण: यह मुख्य रूप से मिट्टी के पोषक तत्वों की कमी के कारण होता है। भूमि के रासायनिक गुणों में क्लोराइड्स, नाइट्रेट्स, फॉस्फेट्स, मैग्नीशियम, जिंक, कैल्शियम और अन्य पोषक तत्व शामिल हैं। तीसरी श्रेणी - जैविक क्षरण: इसमें मिट्टी के जैविक पदार्थ और जैव विविधता में गिरावट आती है। भूमि के जैविक गुणों में वह सभी वनस्पति और जीव-जंतु शामिल हैं, जो भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में निवास करते हैं।

# 5.4 भू-क्षरण के प्राकृतिक कारण

भू-क्षरण के कारणों को दो प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है: **प्राकृतिक** और **मानव-निर्मित**। भूमि क्षरण के विभिन्न प्राकृतिक कारण नीचे वर्णित हैं।

1. **भूकंप:** "पृथ्वी की सतह का हिलना-डुलना, जो लिथोस्फीयर में अचानक ऊर्जा के रिलीज होने से उत्पन्न भूकंपीय तरंगों के कारण होता है।" भूकंप मानव जीवन में सबसे भयावह प्राकृतिक घटनाओं में से एक है। आमतौर पर अधिकतम विनाश एपिसेंटर के पास होता है, जहाँ कंपन उत्पन्न होते हैं और फैलते हैं। भूकंप भूमि क्षरण का कारण बन सकता है, क्योंकि यह किसी भी क्षेत्र की भूमि की संरचना को बदल सकता है। इसके अलावा, भूकंप भूस्खलन और विनाशकारी बाढ़ (catastrophic floods) का कारण बनता है, जो अंततः भूमि को नष्ट कर देता है।
2. **भूस्खलन:** धरती की ढलान पर गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से मिट्टी और अपरदित चट्टानी पदार्थ का अचानक नीचे की ओर सरकना भूस्खलन कहलाता है। भूस्खलन विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों में आम होते हैं, खासकर उन क्षेत्रों में जो नदी के किनारों या समुद्र तट के पास स्थित हैं। पानी का सतत प्रवाह मिट्टी और चट्टानों को क्षरण करता रहता है, जिससे अंततः भूस्खलन हो जाता है। जब नदियाँ बाढ़ की स्थिति में होती हैं, तो भूस्खलन की संभावना और भी बढ़ जाती है। भारत में भूस्खलन मुख्यतः उत्तर और उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में सामान्य है। इसके अलावा, मानवजनित गतिविधियाँ भी भूस्खलन के लिए जिम्मेदार होती हैं। भूस्खलन भूमि की उपजाऊ मिट्टी को हटाकर भूमि क्षरण का कारण बनता है।

भूस्खलन के भूमि पर प्रभाव: भूस्खलन आमतौर पर पहाड़ी या पर्वतीय क्षेत्रों में होते हैं। भूस्खलन को एक प्राकृतिक घटना माना जाता है। भूस्खलन भूमि के परिदृश्य (landscape) में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाते हैं। इसके अलावा, भूस्खलन भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में पोषक तत्वों (nutrients) की कमी का भी कारण बनता है।

3. **बाढ़:** जब पानी के अत्यधिक प्रवाह से सामान्यतः शुष्क भूमि पानी में डूब जाती है उस स्थिति को बाढ़ कहते हैं (चित्र 1)।

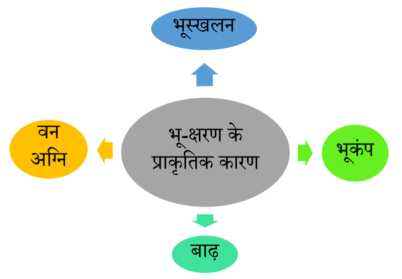

**चित्र 1. भू-क्षरण के प्राकृतिक कारण**

यूरोपीयन यूनियन फ्लड डाइरेक्टिव के अनुसार: "बाढ़ वह स्थिति है जब पानी सामान्यतः सूखी रहने वाली भूमि को ढक देता है।" भारत सरकार, जल संसाधन मंत्रालय, केंद्रीय जल आयोग के अनुसार: बाढ़ देश के लगभग 7.351 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को प्रभावित करती है। बाढ़ से लगभग 40.96 मिलियन लोग प्रभावित होते हैं, 1800 मानव जीवन की हानि होती है, 85,599 पशुधन खो जाते हैं, 14 लाख घर क्षतिग्रस्त होते हैं, 3.7 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि क्षतिग्रस्त होती है, और सार्वजनिक उपयोगिताओं को लगभग 1186.45 करोड़ का नुकसान होता है। इसलिए, बाढ़ भूमि क्षरण के लिए जिम्मेदार है (शर्मा, 2018)।

# 5.5 भू-क्षरण के मानव-निर्मित कारण

भू-क्षरण के विभिन्न मानवजनित या मानव-निर्मित कारण हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारणों का सार तालिका 1 और चित्र 2 में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है।

**तालिका-1: भू-क्षरण के प्रमुख मानवजनित कारण और उनके प्रभाव**

| भू-क्षरण के कारण | प्रभाव |
|---|---|
| वनों की कटाई | मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट, भूस्खलन, जैव विविधता का ह्रास, मरुस्थलीकरण |
| मरुस्थलीकरण | नमी की कमी, मिट्टी की जल धारण क्षमता में कमी, जैव विविधता का ह्रास, भूमि की उत्पादकता में कमी |
| अत्यधिक चराई | मरुस्थलीकरण, जैव विविधता का ह्रास, भूमि की उत्पादकता में कमी |
| ठोस अपशिष्ट का निपटान | बंजर भूमि, भूमि की उत्पादकता में कमी, बीमारियाँ |
| त्रुटिपूर्ण कृषि पद्धतियाँ | जलभराव, मृदा अपरदन, मिट्टी से मूल्यवान पोषक तत्वों का नुकसान, वनों की कटाई, मिट्टी का विषैला स्वभाव, जैव विविधता का ह्रास |
| मृदा अपरदन | उपजाऊ मिट्टी का नुकसान, कृषि भूमि का नुकसान, भूमि की उत्पादकता में कमी |
| भूस्खलन | उपजाऊ मिट्टी का नुकसान, कृषि भूमि का नुकसान, वनों का नुकसान |
| शहरीकरण और औद्योगीकरण | मृदा क्षरण, कृषि भूमि का नुकसान, वनों का नुकसान, भूमि में विषाक्त रसायन |
| खनन | मूल्यवान पोषक तत्वों का नुकसान, मृदा अपरदन, भूमि क्षरण |

## 5.5.1 वनों की कटाई

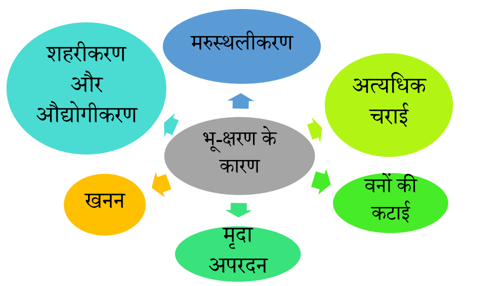

**चित्र 2. भू-क्षरण के मानव निर्मित कारण**

आप जानते ही हैं कि जंगल बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन हैं, जो न केवल वायु को शुद्ध करने के लिए जिम्मेदार हैं, बल्कि अपनी पत्तियाँ झड़ने के कारण भूमि की उर्वरता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि इन पत्तियों में कई मूल्यवान पोषक तत्व पाए जाते हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI) जंगल को इस प्रकार परिभाषित करता है: 'सभी भूमि, जो एक हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल की हो, और जिसमें वृक्ष आवरण घनत्व 10% से अधिक हो'। भारत वन सर्वेक्षण (FSI) द्वारा तैयार "स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट (2011)" के अनुसार, भारत में वनों का क्षेत्रफल लगभग 69.20 मिलियन हेक्टेयर है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 21.02% बनता है।

वन अपने जड़ों की मदद से मिट्टी के कणों को बांधने में सहायक होते हैं। जड़ों के आसपास का क्षेत्र (राइजोस्पीयर) मिट्टी को नमी युक्त और पोषक तत्वों से भरपूर बनाए रखता है। राइजोस्पीयर में अनेक मूल्यवान सूक्ष्मजीव (बैक्टीरिया, शैवाल और कवक) भी पाए जाते हैं, जो मिट्टी में पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण के लिए महत्वपूर्ण जैविक समुदायों का काम करते हैं। "वृक्षों की कटाई" शब्द का अर्थ है पेड़-पौधों के

आवरण में हानि होना। वृक्षों की कटाई का तात्पर्य है वन भूमि को विभिन्न उद्देश्यों जैसे कृषि, चरागाह, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, वाणिज्यिक उत्पादों आदि के लिए गैर-वन भूमि में परिवर्तित करना। यूनाइटिड नेशन एनविरोंमेंट प्रोग्राम (UNEP) के अनुसार, प्रत्येक वर्ष लगभग 7.3 मिलियन हेक्टेयर समृद्ध उष्णकटिबंधीय वनों की हानि होती है और लगभग 14 हेक्टेयर वनों की हर मिनट कटाई होती है। इसलिए, वृक्षों की कटाई भूमि पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। वृक्षों की कटाई मानवजनित या प्राकृतिक दोनों कारणों से हो सकती है।

यूनाइटिड नेशन फ्रैम्वर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाइमिट चेन्ज (UNFCCC, 2010) के अनुसार, जीविका अर्जन आधारित खेती वृक्षों की कटाई का 48% कारण है, वाणिज्यिक कृषि 32%, जलभराव 14%, और ईंधन के लिए लकड़ी एकत्र करना 5% है।

**निर्वनीकरण के कारण:** वृक्षों की कटाई के कई कारण होते हैं, जिनमें शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, कृषि गतिविधियाँ, अत्यधिक शोषण आदि शामिल हैं। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है, भोजन, बुनियादी ढांचा और परिवहन जैसी आवश्यकताओं की मांग भी बढ़ती है। इसके परिणामस्वरूप, कई वनों का क्षरण निर्माण गतिविधियों के कारण हुआ है। भोजन की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए वन भूमि को कृषि भूमि में भी परिवर्तित किया जा रहा है।

**भूमि पर निर्वनीकरण के प्रभाव:** भारत में हर साल वृक्षों की कटाई और अति चराई के कारण लगभग 5.37 मिलियन टन NPK (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम) मिट्टी से खो जाता है। वृक्षों की कटाई के भूमि पर विभिन्न प्रभाव होते हैं, जो आगे विस्तार से बताया गया है:

i. यह वनस्पति आवरण की संरचना और रचना में बदलाव का कारण बनती है।
ii. निर्वनीकरण हाइड्रोलॉजिकल चक्र को प्रभावित करती है। पेड़ भूजल को अवशोषित करके वातावरण में छोड़ते हैं। निर्वनीकरण के कारण यह प्रक्रिया बंद हो जाती है, जिससे मौसम सूखा हो जाता है। इससे मिट्टी में जल की मात्रा कम होती है और क्षेत्र में मरुस्थलीकरण तथा सूखे जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।
iii. वन भूमि महत्वपूर्ण संसाधन है और भूमि की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वृ निर्वनीकरण मिट्टी का कटाव, बाढ़ और भूस्खलन जैसी समस्याओं का कारण बनती है। कटे हुए क्षेत्रों में सतही जल प्रवाह बढ़ जाता है, जो भूमिगत जल प्रवाह की तुलना में तेज गति से बहता है।
iv. निर्वनीकरण के कारण मिट्टी की गुणवत्ता कम हो जाती है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा घटती है, जिससे मिट्टी के सूक्ष्मजीव भी कम हो जाते हैं।
v. निर्वनीकरण मिट्टी के भौतिक गुणों (जैसे संरचना, हवादारता, जल धारण क्षमता) को भी प्रभावित करती है।.
vi. यह मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता पर नकारात्मक प्रभाव डालती है, जिसमें मुख्य पोषक तत्वों की कमी, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी और पोषक असंतुलन शामिल है।
vii. निर्वनीकरण के कारण मिट्टी सतही जल प्रवाह को रोकने की क्षमता खो देती है। यह प्रवृत्ति मिट्टी के कटाव के साथ-साथ ऊपरी मिट्टी की उर्वरता और महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की पुनःपूर्ति क्षमता को भी कम कर देती है।
viii. निर्वनीकरण जैव विविधता की हानि का भी कारण बनती है।

ix. यह मिट्टी के कटाव के लिए भी जिम्मेदार है।

x. निर्वनीकरण क्षेत्र में बाढ़ की आवृत्ति बढ़ा देती है।

## 5.5.2 मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण भूमि क्षरण के लिए सबसे बड़ा खतरा है। “मरुस्थलीकरण” शब्द का प्रथम प्रयोग Aubreville (1949) ने किया था, ताकि वन कटाई के कारण अत्यधिक मिट्टी क्षरण को दर्शाया जा सके। मरुस्थलीकरण उन क्षेत्रों में भूमि क्षरण की एक प्रक्रिया है, जो शुष्क, अर्ध-शुष्क और सूक्ष्म उप-आर्द्र होते हैं। यूएनओ कान्फ्रन्स ऑन डिसर्टिफिकेशन (1977) ने मरुस्थलीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है: "भूमि की जैविक क्षमता का विनाश, जो अंततः मरुस्थल जैसी परिस्थितियों की ओर ले जा सकता है।"

यूनाइटिड नेशन के अनुसार, मरुस्थलीकरण वह प्रक्रिया है जो भूमि की जैविक उत्पादकता, पौधों की विविधता, चरागाह की क्षमता, कृषि उत्पादन और मानव उपयोग की क्षमता में कमी का कारण बनती है।यूनाइटिड नेशन कांफ्रेंस ऑन एनविरोंमेंट एंड डेवलपमेंट (UNCED, 1992) के अनुसार, "शुष्क, अर्ध-शुष्क और सूक्ष्म उप-आर्द्र क्षेत्रों में भूमि का क्षरण विभिन्न कारणों से होता है, जिनमें जलवायु परिवर्तन और मानव गतिविधियाँ प्रमुख हैं।" मरुस्थलीकरण की पहचान इस रूप में होती है कि उसमें तेज़ हवा और पानी द्वारा मिट्टी का क्षरण, प्रजातियों की विविधता में कमी, तथा भूमि पारिस्थितिक तंत्रों की कुल उत्पादकता में गिरावट देखी जाती है।

यूनाइटिड नेशन एनविरोंमेंट प्रोग्राम (UNEP) ने मरुस्थलीकरण को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया है: न्यून या हल्का:जैविक उत्पादकता में बहुत कम या कोई परिवर्तन नहीं। मध्यम: अपेक्षित उत्पादन का लगभग 25% तक ह्रास। गंभीर: अपेक्षित उत्पादन का 25% से 50% तक ह्रास। अत्यंत गंभीर: अपेक्षित उत्पादन का 50% से अधिक ह्रास। जैविक उत्पादकता के अलावा, प्रत्येक भूमि श्रेणी के मूल्यांकन में भूमि आवरण, लवणीकरण, मिट्टी की स्थिति तथा भूमि पुनर्वास की लागत जैसे मानदंडों का भी उपयोग किया जाता है।

**मरुस्थलीकरण के प्रभाव**

i. मरुस्थलीकरण के परिणाम स्वरूप बाढ़, पर्यावरण प्रदूषण, तूफान तथा अन्य प्राकृतिक आपदाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जो भूमि को प्रदूषित कर देती हैं।

ii. मरुस्थलीकरण के कारण मिट्टी कृषि के लिए अनुपयुक्त हो जाती है, जिससे खाद्य पदार्थों की भारी कमी हो सकती है।

iii. यह जल संकट उत्पन्न करता है, जिसके कारण मानव और पशु जीवन दोनों के लिए अस्तित्व संकट पैदा हो जाता है।

iv. मरुस्थलीकरण से मिट्टी की संरचना में परिवर्तन होता है और वर्षा का जल मिट्टी में समाहित नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप, पौधों को उनके विकास के लिए आवश्यक जल नहीं मिल पाता। एक या दो मौसम की बंजर भूमि को संभाला जा सकता है, परंतु यदि भूमि बार-बार मरुस्थलीकरण का सामना करती है, तो वह अपनी उर्वरता पूरी तरह खो सकती है।

v. यह मिट्टी को शुष्क बना देता है जिससे भूमि की उत्पादकता में कमी होती हैं।

vi. मरुस्थलीकरण से भूमि की नमी घट जाती है। जैसा कि आप जानते हैं, नमी जीवों के अस्तित्व के लिए अत्यंत आवश्यक है। कई जीव जैसे केंचुए, बैक्टीरिया, कवक आदि नम भूमि में रहते हैं। नमी

पौधों और अन्य जैविक समुदायों को जल उपलब्ध कराती है। मरुस्थलीकरण के कारण भूमि की सारी नमी वाष्पित हो जाती है।

vii. मरुस्थलीकरण जैव विविधता में कमी लाता है। भूमि की उत्पादकता बढानें वाले जीव जैसे बैक्टीरिया, कवक, मोलस्क, एनिलिड्स, आर्थ्रोपोड्स आदि भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होते हैं।

## 5.5.3 अतिचारण

अतिचारण का अर्थ है चरागाहों पर अत्यधिक मात्रा में पशुओं द्वारा चरना। यह उस स्थिति को भी दर्शाता है जब पशु किसी क्षेत्र की वनस्पति पर तब चरते हैं, जबकि वह पिछली चराई के बाद पुनः विकसित नहीं हो पाई होती। इसे "गहन चराई" भी कहा जाता है।

जब भूमि से वनस्पति या घास को लगातार हटाया जाता है, तो अतिचारण की स्थिति उत्पन्न होती है। पशुधन की संख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण चरागाहों का अत्यधिक दोहन होता है। इसके परिणामस्वरूप घास और अन्य प्रकार की वनस्पतियाँ जीवित नहीं रह पातीं, और वनस्पति आवरण की कमी से मिट्टी का कटाव होने लगता है। अतिचारण का पर्यावरण पर अनेक प्रभाव पड़ते हैं, विशेष रूप से वनस्पति और मिट्टी के गुणों पर। इसे वैश्विक स्तर पर भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण माना गया है। Oldemann (1991) के अनुसार, अतिचारण सभी प्रकार के भूमि क्षरण का लगभग 35.8% हिस्सा है। यह देखा गया है कि अतिचारण के प्रारंभिक लक्षणों में दलहनी पौधों की संख्या में कमी और जड़ी-बूटीदार पौधों की संख्या में वृद्धि शामिल होती है।

शुष्क क्षेत्रों में पशुधन की संख्या में वृद्धि के कारण अति-चराई होती है, जिससे भूमि में जल का अवशोषण कम हो जाता है और सतही बहाव तथा मिट्टी का कटाव बढ़ जाता है। मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव मिट्टी की उर्वरता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति और उनकी गतिविधियों को प्रभावित करते हैं मिट्टी में नमी की मात्रा और भंडारण क्षमता, संरचना तथा कणों का आकार आदि। अतिचारण से घासभूमि का क्षरण होता है, क्योंकि इससे पौधों की पत्तियों की अत्यधिक कटाई और पशुओं द्वारा दबाव बढ़ जाता है। कभी-कभी इसे जड़ी-बूटी नियंत्रण के रूप में भी उपयोग किया जाता है। अति-चराई प्राकृतिक वनस्पति को नष्ट करने के लिए भी जिम्मेदार होती है।

पशुओं द्वारा चराई चारे के उपयोग की एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, क्योंकि शाकाहारी जीव उसी वातावरण में पाए जाते हैं जहाँ उनका विकास हुआ है। यह मांस उत्पादन के लिए एक उपयुक्त और कम लागत वाला साधन है, जो वैश्विक स्तर पर उपयोग किया जाता है। घासभूमि का एक बड़ा हिस्सा पशुधन द्वारा उपयोग किया जाता है। अतिचारण का मिट्टी और वनस्पति पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, लेकिन ये परिवर्तन पुनः सुधार योग्य होते हैं। अतिचारण दबाव से पौधों की घनत्व में कमी आती है और अक्सर अस्वादिष्ट या अनुपयोगी पौधों के प्रसार में वृद्धि होती है। हालाँकि, इन सभी नकारात्मक प्रभावों को उचित प्रबंधन उपायों के माध्यम से रोका जा सकता है।

**भूमि पर अतिचारण के प्रभाव:** अतिचारण के भूमि पर कई प्रकार के प्रभाव होते हैं, जिससे आगे विस्तार में समझाया गया है:

**(i)** **मिट्टी का कटाव:** जैसा कि आप जानते हैं, मिट्टी का कटाव वह प्रक्रिया है जिसमें भूमि की ऊपरी परत हट जाती है। यह अतिचारण का सबसे गंभीर प्रभावों में से एक है। मिट्टी का क्षरण

जब किसी क्षेत्र में बड़ी संख्या में पशु चरते हैं, तो उनके पैरों से भूमि पर लगातार दबाव पड़ता है, जिससे पौधों और वनस्पति आवरण का नाश हो जाता है। पशु नई पौधों की कोमल, छोटी और नाज़ुक अंकुरों को भी खा जाते हैं, जिससे पौधों का पूर्ण क्षरण हो जाता है और भूमि निर्वन तथा अनावृत हो जाती है। ऐसी भूमि पर उच्च तापमान और कठोर मौसमीय परिस्थितियाँ चट्टानों को तोड़ती हैं और ऊपरी मिट्टी को बहा ले जाती हैं। इसके अतिरिक्त, पशु अक्सर विशिष्ट स्थानों जैसे जल स्रोतों के पास एकत्रित होते हैं, जिससे उन क्षेत्रों में भूमि का और अधिक क्षरण होता है।

**(ii)** **भूमि क्षरण:** अति-चराई के परिणामस्वरूप होने वाला मिट्टी का कटाव भूमि क्षरण का कारण बनता है। शुष्क क्षेत्रों में यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है, क्योंकि वहाँ का चरागाह और वनस्पति आवरण का बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाता है, जिससे मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया निरंतर आगे बढ़ती है। अति-चराई के साथ-साथ अत्यधिक पशुधन घनत्व प्राकृतिक पर्यावरण के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध होता है। गहन या अत्यधिक चराई जल चक्र को बाधित करती है और भूजल संसाधनों की पुनर्भरण क्षमता को कम कर देती है। इसके अतिरिक्त, पृथ्वी के कुछ क्षेत्रों में अति-चराई का संबंध नाइट्रोजन और फॉस्फोरस प्रदूषण से भी पाया गया है।

**(iii)** **अमूल्य प्रजातियों की हानि:** अधिक चराई (ओवरग्रेज़िंग) के कारण पौधों की संरचना और उनकी पुनर्जनन क्षमता प्रभावित होती है। मूल चरागाह वनस्पतियाँ उच्च गुणवत्ता वाले घासों और जड़ी-बूटियों से बनी होती हैं जिनमें अत्यधिक पोषण मूल्य होता है। जब पशु इन चरागाहों पर अत्यधिक चराई करते हैं, तो वे जड़ों तक को नष्ट कर देते हैं जिनमें पुनर्जनन के लिए आवश्यक पोषक तत्व या भंडारित भोजन होता है। परिणामस्वरूप, अन्य अधिक अनुकूलनीय प्रजातियाँ जैसे कि खरपतवार और अप्रिय पौधे (जिन्हें पशु नहीं खाते) वहाँ उगने लगते हैं। ये द्वितीयक पौध प्रजातियाँ पोषण में कम होती हैं और अत्यधिक अनुकूलनीय होने के कारण मूल, स्थानिक या उपयोगी पौध प्रजातियों का स्थान ले लेती हैं, जिससे मूल्यवान वनस्पति विविधता का नुकसान होता है।

**(iv)** **खाद्य संकट/अकाल:** जैसा कि पहले बताया गया है, अत्यधिक चराई (ओवरग्रेज़िंग) मरुस्थलीकरण का एक प्रमुख कारण है क्योंकि यह कृषि योग्य या चरागाह भूमि को अनुपजाऊ भूमि में बदल देती है। अत्यधिक चराई की गई भूमि की मिट्टी अपने आवश्यक पोषक तत्वों को खो देती है, जिसके कारण वह खाद्य फसलों की खेती के लिए उपयुक्त नहीं रहती। भूमि की उत्पादकता में कमी सीधे तौर पर भोजन की उपलब्धता को प्रभावित करती है, जिससे खाद्य संकट या अकाल की स्थिति उत्पन्न होती है। इसके साथ ही, अत्यधिक चराई आर्थिक हानि का भी कारण बनती है।

**(v)** **मनुष्यों और पशुधन की मृत्यु:** अत्यधिक चराई (ओवरग्रेज़िंग) के दीर्घकालिक प्रभावों में खाद्य की कमी प्रमुख है, जो मनुष्यों और पशुओं दोनों की भूख से मृत्यु का कारण बन सकती है। जब पशुओं के चरने के लिए पर्याप्त चरागाह उपलब्ध नहीं होते, तो उन्हें जीवित रहने के लिए आवश्यक पोषक तत्व नहीं मिल पाते। पोषक तत्वों की यह कमी पशुओं के वजन में कमी लाती है और उनकी जीवित रहने की क्षमता को घटा देती है। इसी प्रकार, जब मनुष्यों के

लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं होता, तो उनकी जीवित रहने की संभावना और स्वास्थ्य दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

## 5.5.4 ठोस अपशिष्ट का निपटान

ठोस अपशिष्ट का फेंकना भूमि क्षरण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण है। नगरीकरण और औद्योगीकरण जैसी तीव्र विकासात्मक गतिविधियों के कारण प्रतिवर्ष लाखों टन ठोस अपशिष्ट भूमि पर या उसके आसपास फेंका जा रहा है। भूमि पर ठोस अपशिष्ट का निपटान एक सामान्य अपशिष्ट प्रबंधन पद्धति है, जिसे दुनिया के लगभग सभी शहरों में अपनाया जाता है। ठोस अपशिष्ट जैव-अपघटनीय (biodegradable) और अजैव-अपघटनीय (non-biodegradable) दोनों प्रकार का हो सकता है, जिनमें से अजैव-अपघटनीय अपशिष्ट को अधिक हानिकारक माना जाता है क्योंकि यह आसानी से विघटित नहीं होता (चित्र 3)।

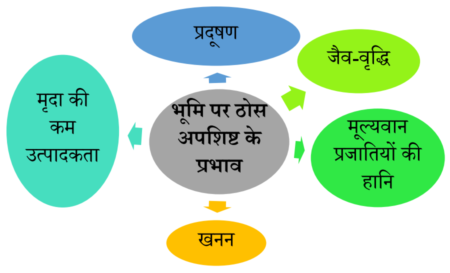


**चित्र 3. भूमि पर ठोस अपशिष्ट के प्रभाव**

**भूमि पर ठोस अपशिष्ट के प्रभाव:** भूमि पर ठोस अपशिष्ट के निम्न प्रभाव होते हैं, जिनका सारांश चित्र 3 में दिया गया है:

(i) **प्रदूषण:** ठोस अपशिष्ट में विभिन्न प्रकार के हानिकारक रसायन पाए जाते हैं, विशेष रूप से खतरनाक अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, अजैव-अपघटनीय अपशिष्ट और रेडियोधर्मी अपशिष्ट। जब ठोस अपशिष्ट को भूमि पर फेंका जाता है, तो यह गंभीर मृदा प्रदूषण का कारण बनता है। भूमि पर ठोस अपशिष्ट का निपटान न केवल मृदा प्रदूषण के लिए जिम्मेदार होता है, बल्कि वायु और जल प्रदूषण का भी कारण बनता है। धीरे-धीरे ऐसे डंपिंग स्थल बंजर भूमि में परिवर्तित हो जाते हैं।

(ii) **जैव-वृद्धि:** जैव-वृद्धि वह प्रक्रिया है जिसमें खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक ट्रॉफिक स्तर पर विषैले रसायनों की सांद्रता बढ़ती जाती है। जब हानिकारक रसायन मिट्टी में डाले जाते हैं, तो वे पौधों तक पहुँच सकते हैं और बाद में जानवरों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

(iii) **जैव विविधता की हानि:** जैसा कि आप जानते हैं, जैव विविधता का अर्थ है जीवित प्राणियों की विविधता और उनके बीच की भिन्नता, जो सभी स्रोतों से प्राप्त होती है। जैव विविधता भूमि और जल दोनों में पाई जाती है। अनुमान है कि एक चम्मच उपजाऊ मिट्टी में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते हैं (Eriksson, 2017)। ये जीवाणु मिट्टी में मूल्यवान खनिजों के पुनर्चक्रण में अत्यंत सहायक होते हैं।

(iv) जैव विविधता में शामिल कुछ महत्वपूर्ण जीवाणु हैं- सूडोमोनस, अजोटोबकटर, नाइट्रोसोमोनास, नाइट्रोबैक्टर (जो नाइट्रोजन चक्र में उपयोगी हैं), थियोबैसिलस, आर्थ्रोबैक्टर, क्लोरोबियम, क्रोमेटियम, रोडोपसेडोमोनस (जो सल्फर चक्र में उपयोगी हैं), तथा एस्परगिलस, फुसारियम, फ्लेवोबैक्टीरियम जैसे कवक जो फॉस्फोरस चक्र में भाग लेते हैं।

इसके अलावा आइसेनिया, लम्ब्रिरकस, डेंड्रोबाएना, पेरियोनिक्स, यूड्रिलस जैसी केंचुए की कई प्रजातियाँ भी भूमि की जैव विविधता का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

**(v)** ठोस अपशिष्ट के अत्यधिक निपटान के कारण इन जीवित प्राणियों की अनेक प्रजातियाँ संकटग्रस्त हो रही हैं और विलुप्ति के कगार पर पहुँच गई हैं।

**(vi)** मृदा की कम उत्पादकता: ठोस अपशिष्ट न केवल प्रदूषण और जैव विविधता की हानि के लिए जिम्मेदार है, बल्कि यह डंपिंग स्थलों पर फसलों की कम या बिल्कुल भी उत्पादन न होने का कारण भी बनता है। यह पाया गया है कि अजैव-अपघटनीय अपशिष्टों के कारण फसल उत्पादन पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

## 5.5.5 कृषि प्रथाएँ

जैसा कि आप जानते हैं, कृषि किसी भी राष्ट्र के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत मुख्य रूप से एक कृषि-आधारित देश है। भारत में प्रागैतिहासिक काल से ही विभिन्न प्रकार की कृषि प्रणालियाँ अपनाई जाती रही हैं, जैसे निर्वाह कृषि, स्थानांतरणीय खेती, वृक्षारोपण कृषि, गहन कृषि, शुष्क कृषि, मिश्रित एवं बहु-कृषि, फसल चक्र और सीढ़ीनुमा खेती।

फसलों के उत्पादन में वृद्धि के लिए आज उर्वरकों का उपयोग आवश्यक हो गया है, लेकिन रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी में कुछ पोषक तत्वों की मात्रा में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। यह असमानता वनस्पति पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। "कीटनाशक" शब्द में उन सभी रासायनिक पदार्थों को शामिल किया जाता है जो अवांछित शाकीय पौधों, काष्ठीय पौधों, कीटों, कृन्तकों, घोंघों या किसी भी अन्य जीव समुदाय पर जैव-घातक प्रभाव डालने वाले रसायनों के नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाते हैं। इन कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से कुछ कीटों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और यह कुछ उपयोगी प्रजातियों जैसे केंचुए, लाभकारी कीटों, मधुमक्खियों आदि को भी मार सकता है। ये सभी प्रजातियाँ भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में अत्यंत उपयोगी होती हैं। इस प्रकार, कीटनाशकों का उपयोग मिट्टी की उर्वरता में गिरावट का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त, सोडियम नाइट्रेट, बेसिक स्लैग आदि जैसे क्षारीय उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की क्षारीयता बढ़ जाती है, जो अंततः भूमि की उत्पादकता को प्रभावित करती है।

**कृषि प्रथाएँ एवं उनका भूमि पर प्रभाव:** विभिन्न कृषि प्रथाएँ जैसे स्थानांतरणीय खेती, अनियंत्रित या अपर्याप्त रूप से नियोजित सिंचाई, तथा कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग भूमि क्षरण के लिए जिम्मेदार हैं। इन प्रथाओं के भूमि पर कई प्रभाव होते हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रभावों का सारांश नीचे वर्णित है:

**i.** गहन कृषि के कारण मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी।

**ii.** मिट्टी के पोषक तत्वों में असंतुलन, विशेष रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी।

**iii.** मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में कमी।

**iv.** वनों की कटाई और अत्यधिक चराई।

**v.** अत्यधिक जल-उपयोग करने वाली फसलों की सिंचाई के कारण भूमिगत जल स्तर में गिरावट।

**vi.** मूल्यवान प्रजातियों का नुकसान।

**vii.** नाइट्रोजन और जल के अत्यधिक उपयोग से नाइट्रोजन का रिसाव होकर जल-स्तर तक पहुँच जाना, जिससे मनुष्यों और अन्य जीवों के लिए भूजल प्रदूषित हो जाना।

**viii.** जैव-वृद्धि: खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर पर विषैले रसायनों की सांद्रता में वृद्धि।

## 5.5.6 मृदा क्षरण

यह केवल मिट्टी की ऊपरी परत का विस्थापन है। मिट्टी का क्षरण अधिक वर्षा, वायु प्रवाह, पशु और मानव गतिविधियों के कारण हो सकता है। मिट्टी की ऊपरी परत अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इस परत में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व मौजूद होते हैं।

मृदा क्षरण पर विभिन्न कारक प्रभाव डालते हैं, जैसे स्थलाकृति, वर्षा, गुरुत्वाकर्षण, मिट्टी की प्रकृति आदि। जल और वायु द्वारा तीव्र मिट्टी क्षरण भूमि क्षरण की प्रमुख प्रक्रिया है और यह मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय कारकों के बदलते संबंधों का परिणाम है (चित्र 4)।

कुल भौगोलिक क्षेत्रफल (328.7 मिलियन हेक्टेयर) का लगभग 43% भूमि (141.3 मिलियन हेक्टेयर) जल और वायु क्षरण के अधीन है, जलभरित क्षेत्र लगभग 2.6% (8.5 मिलियन हेक्टेयर), क्षारीय मिट्टी का लगभग 1.1% (3.6 मिलियन हेक्टेयर), अम्लीय मिट्टियाँ 1.4% (4.5 मिलियन हेक्टेयर), खारी मिट्टी और तटीय रेत क्षेत्र 1.7% (5.5 मिलियन हेक्टेयर), खाइयाँ और घाटियाँ 1.2% (4.0 मिलियन हेक्टेयर), स्थानांतरणीय खेती के अधीन क्षेत्र 1.5% (4.9 मिलियन हेक्टेयर), नदी और प्रवाही क्षेत्र 0.8% (2.7 मिलियन हेक्टेयर) हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) में 77 मिलियन एकड़ से अधिक भूमि गंभीर रूप से क्षरणग्रस्त हो चुकी है।

**मृदा क्षरण के प्रकार और कारण:** जैसा कि पहले बताया गया है, मृदा क्षरण का अर्थ है मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत का हटना। वायु और जल द्वारा मृदा क्षरण सबसे सामान्य हैं। मृदा क्षरण के विभिन्न प्रकार नीचे दिए गए हैं:

**जल द्वारा मृदा क्षरण:** इस प्रकार के मृदा क्षरण को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

**शीट क्षरण:** इस प्रकार के मृदा क्षरण में उपजाऊ मिट्टी की परत बहते पानी द्वारा हटा दी जाती है। यह मृदा क्षरण का गंभीर प्रकार है क्योंकि इसमें मिट्टी की महीन और उपजाऊ परत हट जाती है।

**रिल क्षरण:** यह शीट क्षरण का दूसरा प्रकार है। इसमें भूमि पर छोटे-छोटे उँगलियों जैसे नाले बनने लगते हैं। धीरे-धीरे ये छोटे नाले संख्या में बढ़ते हैं और गहरे तथा चौड़े हो जाते हैं, जिससे भूमि असंस्कृत या अनुपजाऊ हो जाती है।

**घाटी या गली क्षरण:** इस प्रकार के मृदा क्षरण में पानी एक निश्चित मार्ग पर बहता है। गली क्षरण के कारण भूमि खेती योग्य नहीं रहती हैं।

**नदी और धार क्षरण:** इस श्रेणी में मृदा क्षरण नदी के तट और बिस्तर पर होता है। यह आमतौर पर नदियों, धाराओं और उपनदियों के माध्यम से होता है।

a. **तटीय क्षरण:** इसे तटीय मृदा क्षरण भी कहते हैं, जिसमें समुद्री तट की संरचना से सामग्री का क्षय होता है, जैसे कि समुद्र तट, रेत के टीले या तलछट की लहरों, ज्वारीय धाराओं, लहरों की धारा या तेज़ हवाओं द्वारा हटना। **वायु द्वारा मृदा क्षरण:** इस प्रकार के मृदा क्षरण में मिट्टी के विस्थापन के लिए हवा जिम्मेदार होती है। यह प्रकार आमतौर पर निर्वस्त्र और शुष्क भूमि क्षेत्रों में होता है। इसे जल द्वारा होने वाले मृदा क्षरण की तुलना में कम हानिकारक माना जाता है।
b. **भूमि पर मृदा क्षरण के प्रभाव:** मृदा क्षरण का भूमि पर कई हानिकारक प्रभाव होते हैं, जो निम्नवत वर्णित किया गया है।

जैसा कि आपने शीट क्षरण के बारे में सीखा, इसमें महीन और उपजाऊ मिट्टी पानी के कारण क्षरण हो जाती है। इस प्रक्रिया में मिट्टी से कई मूल्यवान पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस, नाइट्रेट्स, कैल्शियम, मैग्नीशियम, क्लोराइड्स आदि विलुप्त हो जाते हैं। इसलिए, पोषक तत्वों की हानि मृदा क्षरण के प्रमुख प्रभावों में से एक है। नदी के किनारों से लगातार होने वाला क्षरण कृषि योग्य भूमि को कम कर देता है। भारत की विभिन्न नदियाँ जैसे गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कावेरी, कृष्णा, कोसी आदि अपने किनारों से बड़ी मात्रा में भूमि को नुकसान पहुँचा चुकी हैं। धाराओं और नदियों द्वारा होने वाला क्षरण विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि भूमि की हानि का कारण बनता है।

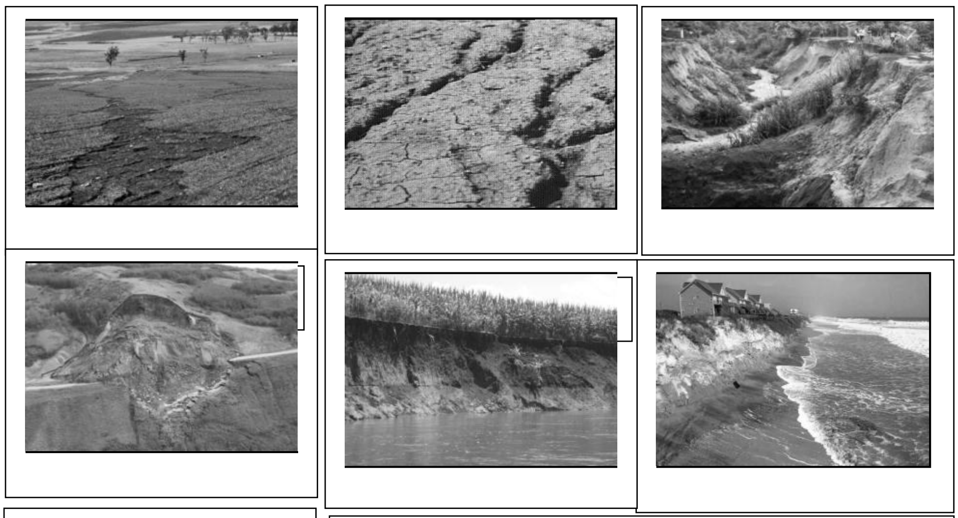

**चित्र 4 : मृदा क्षरण के प्रकार**

1. शीट क्षरण 2. रिल क्षरण
3. गली क्षरण 4. स्लिप क्षरण
5. नदी क्षरण 6. तटीय क्षरण
7. वायु क्षरण

## 5.5.7 नगरीकरण और औद्योगीकरण

भूमि पर नगरीकरण और औद्योगीकरण के विभिन्न प्रभाव हैं, जिनका सारांश नीचे वर्णित है:

**नगरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव:** नगरीकरण और औद्योगीकरण भी भूमि क्षरण के महत्वपूर्ण कारण हैं। जैसा कि उल्लेख किया गया है, भारत की लगभग 32% जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहती है। नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें ग्रामीण क्षेत्र शहरी क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। शहरी क्षेत्र वह क्षेत्र होता है जहाँ जनसंख्या घनत्व अधिक होता है और अधिकांश लोग कृषि से बाहर की गतिविधियों में संलग्न होते हैं। नगरीकरण दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है और यह भूमि विखंडन और भूमि क्षरण जैसी कई पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न करता है। नगरीकरण भूमि की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणधर्मों को बदल देता है और इस प्रकार भूमि की गुणवत्ता को घटाता है। नगरीकरण के कारण वनस्पति की हानि, ठोस अपशिष्ट का उत्पादन, अत्यधिक जल प्रवाह और मृदा क्षरण होता है। ये सभी कारक भूमि पर गंभीर प्रभाव डालते हैं।

औद्योगीकरण का अर्थ किसी क्षेत्र में उद्योगों का विकास है। उद्योगों की तीव्र वृद्धि अंततः वायु, जल और मिट्टी के प्रदूषण का कारण बनती है। इसके अलावा, औद्योगीकरण के लिए अधिक से अधिक भूमि की

आवश्यकता होती है, जिससे भूमि की संरचना और गुणवत्ता में परिवर्तन होता है। कई उद्योग जैसे चमड़ा, कागज और पल्प, कृषि, बैटरी रीसायक्लिंग आदि भूमि पर बड़ी मात्रा में ठोस अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं और मिट्टी की गुणवत्ता को गंभीर रूप से घटाते हैं।

### 5.5.8 खनन

खनन का अर्थ पृथ्वी से मूल्यवान खनिजों का निष्कर्षण है। खनन भूमि को विभिन्न तरीकों से प्रभावित कर सकता है, जैसे मृदा क्षरण, सिंकहोल्स, जैव विविधता का नुकसान, मृदा प्रदूषण आदि शामिल हैं। खनन का भूमि पर प्रभाव क्षेत्र के भूमि उपयोग पैटर्न में दिखाई देता है क्योंकि वनस्पति आवरण खोने के कारण भूमि क्षरण के लिए उजागर हो जाती है। भारत सरकार के पर्यावरण विभाग के अनुसार, कुछ खनिजों जैसे कोयला, लौह अयस्क, जिंक, सीसा, तांबा, सोना, चूना पत्थर, मैंगनीज, शिलापट फॉस्फेट, क्रोमाइट्स, सिलिका का खनन भारत में भूमि क्षरण के प्रमुख कारणों में से एक है।

## 5.6 भू-क्षरण के परिणाम

जैसा कि आप जानते हैं, भूमि क्षरण विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जैसे मृदा क्षरण, जल स्रोतों में तलछट का बढ़ना, मरुस्थलीकरण आदि। यदि हम भू-क्षरण के परिणामों का विश्लेषण करें, तो पाएँगे कि भू-क्षरण एक गंभीर समस्या है जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण है। भू-क्षरण के विभिन्न परिणाम और प्रभाव हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिणाम नीचे वर्णित हैं:

**मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव-** यह भू-क्षरण का एक महत्वपूर्ण परिणाम है। जैसा कि आप जानते हैं, हम पूरी तरह से भूमि संसाधनों पर निर्भर हैं केवल परिवहन और वन क्षेत्र के लिए ही नहीं, बल्कि भोजन और फलों के लिए भी। मानव ने भूमि में विभिन्न प्रकार के विषैला रसायन डाले हैं। ऐसे अपशिष्टों में विषैले रसायन और धातुएँ होती हैं, जो मनुष्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के लिए, प्लास्टिक अपशिष्ट में ऐक्रिलिक, पॉलीविनाइल क्लोराइड, पॉलीकार्बोनेट, और फथलेट्स हो सकते हैं, जो कैंसर, त्वचा रोग, श्वसन संबंधी विकार, और जन्मजात दोष से जुड़े होते हैं। रासायनिक घटक जैसे कैडमियम, आर्सेनिक, पारा, साइनाइड और क्रोमियम, जो आमतौर पर औषधि, कीटनाशक, और उर्वरक उद्योग के अपशिष्टों में पाए जाते हैं, मानव स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालते हैं। इनमें कैंसरकारक तत्व होते हैं और ये फेफड़े, गुर्दे, तथा यकृत को भी नुकसान पहुँचा सकते हैं। कई विषैले रसायन, जो भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में प्रवेश करते हैं, जैव-वृद्धि के माध्यम से खाद्य श्रृंखला के उच्च स्तर तक पहुँच सकते हैं और मनुष्यों में विभिन्न रोग उत्पन्न कर सकते हैं। जब भूमि कृषि और औद्योगिक अपशिष्टों से प्रदूषित होती है, तो डंपिंग स्थल बढ़ जाते हैं। ये डंपिंग स्थल चूहों, मक्खियों, मच्छरों और पक्षियों के प्रजनन स्थल बन जाते हैं, जो विभिन्न रोगों को फैलाने में सक्षम होते हैं। इसलिए, भूमि प्रदूषण महामारी रोगों जैसे कॉलरा, टाइफायड, अमीबियासिस आदि का कारण बन सकता है। यहाँ तक कि ऐसे डंपिंग स्थल में मौजूद विषैले रसायन मानव शरीर में सब्जियों और अन्य खाद्य पदार्थों के माध्यम से भी पहुँच सकते हैं, यदि वे प्रदूषित भूमि में उगाए गए हों।

**प्रदूषण-** यह भी भूमि क्षरण के प्रमुख परिणामों में से एक है। मृदा प्रदूषण भूमि प्रदूषण के अंतर्गत आता है। इसलिए, जब उर्वरक रसायनों (का अत्यधिक उपयोग किया जाता है या भूमि विषैले रसायनों और ठोस अपशिष्टों के कारण क्षतिग्रस्त हो जाती है, तो मिट्टी की ऊपरी परत नष्ट हो जाती है, जिससे मृदा प्रदूषण उत्पन्न होता है।कृषि और रासायनिक अपशिष्टों के प्रभाव मृदा प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। इसके परिणामस्वरूप भूमि

अपनी उपजाऊ शक्ति और वनस्पति आवरण खो देती है। भूमि क्षरण अन्य प्रकार के प्रदूषण का कारण भी बन सकता है।

लैंडफिल और डंपिंग साइट्स अपने आसपास के क्षेत्रों में दुर्गंध और गंध उत्पन्न करते हैं, जिससे वायु प्रदूषण होता है। शहरों और कस्बों में, जो बड़े डंपिंग स्थल और लैंडफिल क्षेत्रों के पास स्थित हैं, वहां निवासियों ने तीखी दुर्गंध का अनुभव किया है। इसके अतिरिक्त, ठोस अपशिष्टों का दहन भी वायु प्रदूषण में योगदान देता है। भूमि प्रदूषण सभी दिशाओं में फैल सकता है, जिससे आसपास के पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह जल स्रोतों को प्रदूषित कर सकता है और उनकी गुणवत्ता को गंभीर रूप से घटा सकता है। यह तब होता है जब लैंडफिल और ठोस अपशिष्टों से निकलने वाले रसायन और अन्य विषैले पदार्थ अधिकांशतः सतही वर्षा जल प्रवाह द्वारा जल स्रोतों तक पहुँच जाते हैं। इसी समय, लीचिंग होती है, जिससे विषैले रसायन भूमिगत जल स्रोतों और जल निकायों में प्रवेश कर जाते हैं।

**जैव विविधता का नुकसान-** पिछले कुछ दशकों में, जैव विविधता पर गंभीर प्रभाव पड़ा है क्योंकि इसे लगातार अपने प्राकृतिक आवास के नुकसान का गंभीर खतरा झेलना पड़ा है। जैसा कि आप जानते हैं, आवास की हानि जैविक विविधता के लिए प्रमुख खतरा है। भूमि पर लगातार मानव आर्थिक गतिविधियों ने भूमि को क्षतिग्रस्त कर दिया है, जिससे वन्यजीवन को अपने आवास छोड़कर नए क्षेत्रों में अनुकूलन करना पड़ा। परिणामस्वरूप, कई प्रजातियाँ अनुकूलन के प्रयास में मर गईं, कुछ विलुप्त हो गईं और कई वर्तमान में विलुप्ति के कगार पर हैं। जैसा कि आप जानते हैं, भूमि लाखों प्रजातियों का घर है। भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में कई जीवित संगठन मौजूद हैं, जैसे: पौधे: शैवाल, कवक, भ्रूणीय पौधे, फर्न पौधे, गोलेधारी और अंगोष्पर्म, जीवाणु, जानवर: सूक्ष्मजीव जैसे नेमाटोड्स, केंचुए, पक्षियों और अन्य (तितलियाँ, पतंगे, मधुमक्खियाँ, ड्रैगन फ्लाई), उभयचर, सरीसृप, पक्षी और स्तनधारी। ये जैव विविधताएँ भूमि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। भूमि पर विषैले रसायनों का उत्सर्जन पारिस्थितिकी तंत्र को पौधों और जानवरों के जीवन के लिए असुविधाजनक बना देता है। ये रसायन पौधों और जल को प्रदूषित करते हैं, जिसे निचले स्तर के जानवर खाते हैं, और खाद्य श्रृंखला के माध्यम से यह प्रदूषण ऊपर तक पहुँचता है। इस प्रक्रिया को जैव-वृद्धि कहा जाता है और इसे पारिस्थितिकीय स्थिरता के लिए गंभीर खतरा माना जाता है। भूमि पारिस्थितिकी तंत्र के कार्यों में बाधा अनिवार्य रूप से भूमि और भूमिगत जैव विविधता की विविधता को कम करती है, साथ ही जल परिवेश को भी प्रभावित करती है।

**पोषक तत्वों और भूमि उत्पादकता की हानि-** अनुमानित है कि भारतीय उपमहाद्वीप से प्रतिवर्ष लगभग 6,000 मिलियन टन मिट्टी क्षरण के कारण खो जाती है। यह क्षरणशील सामग्री अपने साथ कई मूल्यवान पोषक तत्व ले जाती है, जो स्थायी रूप से नष्ट हो जाते हैं। कई पोषक तत्व सतही बहाव और लीचिंग के कारण खो जाते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ जल का रिसाव अधिक होता है, वहाँ लीचिंग की संभावना भी अधिक होती है। मिट्टी के गुणधर्म भी पोषक तत्वों के लीचिंग से नुकसान पर स्पष्ट प्रभाव डालते हैं। बालू मिट्टी में पोषक तत्वों की हानि चिकनी मिट्टी की तुलना में अधिक होती है, क्योंकि बालू मिट्टी में रिसाव की दर अधिक और पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता कम होती है। इसलिए, बालू मिट्टी में ऊपरी मिट्टी के पोषक तत्व हवा और तेजी से लीचिंग दोनों के कारण खो जाते हैं।

भूमि क्षरण के कारण कई अन्य चीजें भी खो जाती हैं, जिनका आर्थिक मूल्य आकलन करना कठिन है। इनमें शामिल हैं:

- चारागाह और फूस उत्पादन की हानि, लकड़ी उत्पादन में गिरावट।
- वनस्पति और जीव-जंतु की प्रजातियों का नुकसान।
- जल स्रोतों का नुकसान, जैसे कि झरनों और प्राकृतिक जलाशयों का सूखना, और कुओं में जल स्तर का घटना।
- जब भूमि हवा या जल क्षरण के कारण खो जाती है, तो केवल भौतिक, रासायनिक और जैविक हानि ही नहीं होती, बल्कि रोजगार के अवसरों की हानि भी होती है। इससे लोग शहरों और कस्बों की ओर पलायन करते हैं, जिससे अप्रत्याशित नगरीकरण से संबंधित सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

**आर्थिक हानि:** जैसा कि आप जानते हैं, भूमि आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। भू-क्षरण वैश्विक स्तर पर करोड़ों डॉलर की हानि का कारण बनता है। लैंडफिल और डंप स्थल वायु गुणवत्ता को भी घटाते हैं और मानव स्वास्थ्य के लिए संभावित खतरा पैदा कर सकते हैं। कृषि की हानि के अलावा, भूमि क्षरण जैव विविधता, रोगों और वनों की कटाई जैसी समस्याओं के लिए भी जिम्मेदार है। रोगों, वनों और जैव विविधता की पुनर्स्थापना की लागत असीमित है। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि भूमि क्षरण का पर्यटन उद्योग से सीधा संबंध है। भूमि क्षरण किसी क्षेत्र में आगंतुकों की संख्या को कम कर देता है। इसलिए, भूमि क्षरण न केवल स्थानीय समुदायों पर अतिरिक्त बोझ डालता है, बल्कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव डालता है।

**प्राकृतिक आपदाएँ:** भूमि क्षरण विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकंप, बाढ़, भूस्खलन, भू-स्खलन आदि का कारण बन सकता है। भारत में बाढ़ सबसे अधिक होने वाली आपदा है। भूमि क्षरण के कारण जल प्रवाह भी बढ़ जाता है, जिससे किसी क्षेत्र में बाढ़ जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। बाढ़ सामान्यतः असामान्य रूप से भारी वर्षा के कारण होती है, लेकिन भूमि क्षरण वाले क्षेत्रों में बाढ़ की तीव्रता, आवृत्ति और गंभीरता सामान्यतः अधिक होती है। इसके अलावा, कई मानवजनित गतिविधियाँ भूमि की सतह और मिट्टी की संरचना वर्षा जल को अवशोषित, रोकने और उपयोग करने की क्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। भूमि क्षरण भूस्खलन के लिए भी जिम्मेदार है, क्योंकि भूमि क्षरण मिट्टी की जल धारण क्षमता को कम कर देता है, जिससे भू-स्खलन या भूस्खलन होता है। इस पाठ्यक्रम के यूनिट-7 में भूमि से संबंधित खतरों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

# सारांश

इस इकाई में हमने भू-क्षरण के विभिन्न कारणों और परिणामों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की। अब तक आपने यह सीखा कि:

- भूमि एक उपयोगी संसाधन है और यह विभिन्न रूपों में पाई जा सकती है जैसे: वन क्षेत्र, कृषि भूमि, निर्जन भूमि, चारागाह भूमि, चरागाह क्षेत्र, हिमाच्छादित भूमि, शुष्क भूमि और अपव्ययी भूमि।
- भू-क्षरण वह प्रक्रिया है जिसमें भूमि अपनी उत्पादक क्षमता खो देती है।
- भू-क्षरण के स्रोत प्राकृतिक कारणों और मानवजनित या मानवनिर्मित कारणों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं।
- भू-क्षरण के प्राकृतिक कारणों में भूकंप, भूस्खलन, भू-स्खलन और बाढ़ शामिल हैं।

- भू-क्षरण के मानवजनित कारणों में वनों की कटाई, मरुस्थलीकरण, अत्यधिक चराई, मृदा क्षरण, विभिन्न कृषि प्रथाएँ, नगरीकरण और औद्योगीकरण, खनन आदि शामिल हैं।
- वनों की कटाई के विभिन्न प्रभाव हैं जैसे मिट्टी में पोषक तत्वों की हानि, भूस्खलन, मिट्टी में नमी की कमी, मिट्टी की जल धारण क्षमता में कमी, बाढ़, मरुस्थलीकरण आदि।
- मरुस्थलीकरण के विभिन्न प्रभाव हैं जैसे बाढ़, भूस्खलन, मिट्टी में नमी की कमी, जैव विविधता की हानि आदि।
- अत्यधिक चराई से मरुस्थलीकरण, कम उत्पादन, मूल्यवान प्रजातियों की हानि, मृदा क्षरण आदि हो सकते हैं। वहीं, ठोस अपशिष्ट भी भूमि को प्रभावित करता है और भूमि पर इसके मुख्य प्रभाव हैं: मृदा प्रदूषण, जैव विविधता की हानि, जैव-वृद्धि, अपव्ययी भूमि का निर्माण आदि।
- विभिन्न कृषि प्रथाएँ जैसे स्थानांतरणीय खेती, अनुचित सिंचाई, जलभराव और कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग भी भूमि क्षरण के लिए जिम्मेदार हैं।
- मृदा क्षरण को जल द्वारा क्षरण और वायु द्वारा क्षरण में वर्गीकृत किया जा सकता है। जल द्वारा क्षरण में शीट क्षरण, रिल क्षरण, गली क्षरण, नदी/धारा क्षरण और तटीय क्षरण शामिल हैं।
- उपजाऊ मिट्टी की हानि मृदा क्षरण का मुख्य प्रभाव है।
- नगरीकरण और औद्योगीकरण भी भूमि क्षरण का कारण बनते हैं। इनके भूमि पर विभिन्न प्रभाव हैं जैसे वनों की कटाई, वनस्पति आवरण की हानि, मिट्टी की गुणवत्ता में परिवर्तन, ठोस अपशिष्ट का डंपिंग, कृषि भूमि की कमी, भूमि का विखंडन आदि।
- भू-क्षरण के मुख्य परिणाम हैं: रोग, कम उत्पादन, जैव विविधता की हानि, आर्थिक हानि और प्राकृतिक आपदाएँ।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1 a) रिक्त स्थान**

जैसा कि आप जानते हैं, वन एक बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन हैं, जो न केवल वायु को शुद्ध करने के लिए जिम्मेदार हैं, बल्कि भूमि की उर्वरता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके पत्ते गिरने पर उनमें कई …….. होते हैं। फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया (FSI) वन को इस प्रकार परिभाषित करता है: "सभी भूमि, जो क्षेत्रफल में ……… से अधिक हो, और जिसमें वृक्ष आवरण घनत्व ……….. से अधिक हो। FSI द्वारा जारी State of Forest Report (2011) के अनुसार, भारत में वन क्षेत्र का अनुमानित क्षेत्रफल 69.20 मिलियन हेक्टेयर (m ha) है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 21.02% बनाता है। वन अपनी जड़ों की मदद से मिट्टी कणों को बांधने में सहायक होते हैं। जड़ों का क्षेत्र ………….. भी मिट्टी को नम और पोषक तत्वों से भरपूर बनाए रखता है। राइजोस्पीयर में कई महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं जैसे …………. और ……… जो मिट्टी में पोषक तत्वों के चक्रण के लिए आवश्यक जैविक समुदाय हैं।. वनों की कटाई शब्द का अर्थ है वृक्ष आवरण की हानि। वनों की कटाई का मतलब है वन भूमि को विभिन्न उद्देश्यों जैसे कृषि चराई, नगरीकरण, औद्योगीकरण, वाणिज्यिक उत्पाद आदि के लिए ………. में परिवर्तित करना। ………….. के अनुसार, हर साल लगभग 7.3 मिलियन हेक्टेयर समृद्ध उष्णकटिबंधीय वन और लगभग

14 हेक्टेयर बंद वन हर मिनट खो जाते हैं। इसलिए, वनों की कटाई भूमि पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। वनों की कटाई का अर्थ है वन में वनस्पति आवरण को हटाना, जो मानवजनित या प्राकृतिक हो सकता है।

**2 (a)** भू-क्षरण के कारण क्या हैं?

**(b)** मरुस्थलीकरण के प्रभाव क्या हैं?

**3 (a)** वनों की कटाई के कारण और प्रभाव क्या हैं?

**(b)** मृदा क्षरण के प्रकार क्या हैं?

**4 (a)** भू-क्षरण को परिभाषित करें। कृषि प्रथाओं के भूमि पर कारण और प्रभाव क्या हैं?

**5(a)** नगरीकरण और औद्योगीकरण के भूमि पर प्रभाव क्या हैं?

**(b)** ठोस अपशिष्ट के भूमि पर क्या प्रभाव हैं?

**(c)** भू-क्षरण के प्राकृतिक कारण क्या हैं?

**6 (a) रिक्त स्थान**

मृदा क्षरण केवल ……… है। मृदा क्षरण उच्च वर्षा, वायु प्रवाह, पशु और मानव गतिविधियों के कारण हो सकता है। मिट्टी की ऊपरी परत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस परत में पौधों के लिए आवश्यक सभी ……………… मौजूद होते हैं। Rama Rao (1962) के अनुसार, मृदा क्षरण मिट्टी का धीरे-धीरे फैलने वाला ……… है। मृदा क्षरण विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है जैसे ……………………….. आदि। …………… और …………… द्वारा तीव्र मृदा क्षरण प्रमुख भूमि क्षरण प्रक्रिया है और यह मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय कारकों के बदलते संबंधों का परिणाम है। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल (328.7 मिलियन हेक्टेयर) में से लगभग ………. जल और वायु क्षरण के अधीन है, जलभराव क्षेत्र लगभग ……………………, क्षारीय मिट्टियाँ लगभग …… , अम्लीय मिट्टियाँ 1.4% (4.5 मिलियन हेक्टेयर), खारे मिट्टियाँ सहित तटीय बालू क्षेत्र 1.7% (5.5 मिलियन हेक्टेयर), गढ्ढा और नालियाँ 1.2% (4.0 मिलियन हेक्टेयर), स्थानांतरणीय खेती का क्षेत्र 1.5% (4.9 मिलियन हेक्टेयर), नदी और जलधारा क्षेत्र 0.8% (2.7 मिलियन हेक्टेयर) हैं।

**(b)** भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 328.73 मिलियन हेक्टेयर है। (हाँ/नहीं)

**(c)** चराई पर अत्यधिक दबाव को अत्यधिक चराई कहा जाता है। (मरुस्थलीकरण/अत्यधिक चराई)

**(d)** मृदा क्षरण का सबसे गंभीर रूप है गली क्षरण। (शीट क्षरण/रिल क्षरण/गली क्षरण/तटीय क्षरण)

**(e)** जैव-वृद्धि क्या है?

**7 (a)** भू-क्षरण के परिणाम क्या हैं?

**(b)** भू-क्षरण की परिभाषाएँ OECD, CCD और WHO के अनुसार क्या हैं?

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

**1 (a)** मूल्यवान पोषक तत्व, एक हेक्टेयर, 10%, राइजोस्पीयर, बैक्टीरिया, शैवाल और कवकगैर-वन उपयोग, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, मायन्यूत, स्थान, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी

**2 (a)** अनुभाग 5.3, 5.4., 5.5 देखें

**(b)** अनुभाग 5.5.2 देखें

**3 (a)** अनुभाग 5.5.1 देखें

**(b)** अनुभाग 5.5.6 देखें

**4 (a)** अनुभाग 5.2., 5.5.5 देखें

**5 (a)** अनुभाग 5.5.7 देखें

**(b)** अनुभाग 5.5.4 देखें

**(c)** अनुभाग 5.4 देखें

**6 (a)** मिट्टी की ऊपरी परत का विस्थापन, आवश्यक पोषक तत्व, मृत्यु, स्थलाकृति, वर्षा, गुरुत्वाकर्षण, जल और मिट्टी, 43%, 2.6%, 1.1%,

**(b)** हाँ (c) अत्यधिक चराई (d) शीट क्षरण (e) अनुभाग 5.5.4 देखें

**7 (a)** अनुभाग 5.6 देखें

**(b)** अनुभाग 5.2 देखें

# इकाई 6: बंजर भूमि की उत्पत्ति: प्रकार, विस्तार, संरक्षण और प्रबंधन

**इकाई संरचना**

**6.0 उद्देश्य**
**6.1 परिचय**
**6.2 बंजर भूमि की परिभाषाएँ**
**6.3 बंजर भूमि के प्रकार**
**6.3.1 बंजर भूमि की श्रेणियाँ**
**6.4 भारत में बंजर भूमि**
**6.5 बंजर भूमि की उत्पत्ति**
**6.5.1 बंजर भूमि का विस्तार**
**6.6 भूमि का संरक्षण**
**6.7 बंजर भूमि का प्रबंधन**
**सारांश**

## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- बंजर भूमि की परिभाषा।
- बंजर भूमि के प्रकार।
- भारत में बंजर भूमि।
- बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार कारक।
- बंजर भूमि के संरक्षण के तरीकों का वर्णन।
- बंजर भूमि के प्रबंधन का वर्णन।

## 6.1 परिचय

आपने इस पाठ्यक्रम की इकाई-5 में भूमि संसाधन के विभिन्न कारणों और परिणामों का अध्ययन किया है। जैसा कि आप जानते हैं, भूमि एक स्थलीय जैव-उत्पादक पारिस्थितिकी तंत्र है। इसमें मिट्टी, पानी, पौधे और अन्य जैविक कृषि भूमि, बंजर भूमि, आर्द्रभूमि, शुष्क भूमि, चारागाह भूमि, चरागहा, बर्फीली भूमि और बंजर भूमि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। कृषि भूमि वह भूमि होती है जिसमें नियमित रूप से फसलें उगाई और काटी जाती हैं। बंजर भूमि वे क्षेत्र होते हैं जहाँ नग्न चट्टानें, पत्थरों के ढेर और बिना वनस्पति वाले शिलाखंड पाए जाते हैं।

आर्द्रभूमि वह क्षेत्र होता है जहाँ मिट्टी मौसमी या स्थायी रूप से नमी से संतृप्त होती है। इसमें दलदल, कीचड़ भरे क्षेत्र और पीटभूमि (बॉग) आदि शामिल होते हैं। भूमि के बंजर होने के लिए विभिन्न प्राकृतिक और मानवजनित कारण जिम्मेदार होते हैं। भूमि प्राकृतिक प्रक्रियाओं या मानव गतिविधियों के कारण अनुपयोगी हो सकती है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (FAO, 2014) के अनुसार, पृथ्वी की 33% भूमि वनों से, 26% भूमि चरागाहों से, 20% भूमि रेगिस्तान से, 10% भूमि आर्द्रभूमि से, 10% कृषि भूमि से और 20% भूमि शहरी क्षेत्रों से ढकी हुई है। बंजर भूमि (वेस्टलैंड) वह भूमि होती है जिसका कभी उत्पादन के लिए उपयोग किया गया था, लेकिन अब इसे छोड़ दिया गया है और यह कृषि योग्य नहीं है। इस इकाई में, आप बंजर भूमि की परिभाषा, प्रकार और उत्पत्ति के बारे में सीखेंगे। साथ ही, आप बंजर भूमि के संरक्षण और प्रबंधन से संबंधित जानकारी भी प्राप्त करेंगे।

# 6.2 बंजर भूमि की परिभाषाएँ

वेस्टलैंड (Wasteland) को विभिन्न विद्वानों द्वारा अलग-अलग तरीकों से परिभाषित किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ नीचे दी गई हैं:

इसे इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है: "बंजर भूमि वह भूमि होती है जिसका पहले उपयोग किया गया था, लेकिन जिसे छोड़ दिया गया है और जिसके लिए कोई और उपयोग नहीं पाया गया है।"

बंजर भूमि सर्वेक्षण और सुधार समिति, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, भारत सरकार (1961) ने बंजर भूमि को इस प्रकार परिभाषित किया है: "वे भूमि जो या तो खेती के लिए उपलब्ध नहीं हैं या किसी न किसी कारण से खेती किए बिना छोड़ दी गई हैं।"

खरे (1987) के अनुसार, "वे भूमि बंजर मानी जाती हैं: (a) जो पारिस्थितिक रूप से अस्थिर हैं, (b) जिनकी ऊपरी मिट्टी लगभग पूरी तरह से नष्ट हो चुकी है, और (c) जिनकी जड़ क्षेत्र (राइज़ोस्फीयर) में विषाक्तता विकसित हो गई है, जिससे वार्षिक फसलें और वृक्ष दोनों का विकास बाधित होता है।"

राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड (NWDB, 2007) के अनुसार, "बंजर भूमि वे भूमि हैं जो विभिन्न बाधाओं के कारण वर्तमान में अनुपयोगी पड़ी हुई हैं।"

राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेंसी (2000) के अनुसार, "बंजर भूमि वह क्षतिग्रस्त भूमि है, जिसे उचित प्रयासों से पुनः उपजाऊ बनाया जा सकता है। यह वर्तमान में कम उपयोग की जा रही भूमि है या ऐसी भूमि है जो उचित जल और मिट्टी प्रबंधन की कमी या प्राकृतिक कारणों से खराब हो रही है।"

दूसरे शब्दों में, "बंजर भूमि वे विविध भूमि हैं जो वर्तमान में किसी मूल्यवान सामग्री या सेवा के उत्पादन के लिए उपयुक्त या सक्षम नहीं हैं। इसका कारण भू-पर्यावरणीय से लेकर सामाजिक-आर्थिक कारक तक हो सकता है।"

बंजर भूमि वह भूमि होती है जो अनुपयोगी पड़ी हो या जिसका पूरी क्षमता से उपयोग न किया जा रहा हो। बंजर भूमि को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है: "वह भूमि जिसे छोड़ दिया गया हो और जिसका आगे कोई उपयोग न हो।" या "बंजर भूमि वह भूमि होती है, जिसका आर्थिक उत्पादन क्षमता 20% से कम हो।"

बंजर भूमि वह भूमि हैं जो पारिस्थितिक रूप से अस्थिर, अत्यधिक क्षरित और खराब हो चुकी हैं।"

## 6.3 बंजर भूमि के प्रकार

बंजर भूमि में क्षतिग्रस्त वन, अत्यधिक चराई से प्रभावित क्षेत्र, कटावग्रस्त भूमि, पहाड़ी ढलानें, जलभराव वाली दलदली भूमि, सूखी और अनुपजाऊ रहित भूमि आदि शामिल हो सकती हैं। ये बंजर भूमि प्राकृतिक कारणों और मानवजनित गतिविधियों के कारण बनती हैं (तालिका 1)। हालांकि, कुछ बंजर भूमि उपयोगी भी हो सकती हैं, लेकिन इनमें कुछ गंभीर श्रेणियां हैं जो विशेष रूप से चिंता का विषय बनी हुई हैं जैसे:

- **क्षरणग्रस्त भूमि** (Degraded land)
- **लवणीय भूमि** (Salinized land)
- **जलभराव वाली भूमि** (Waterlogged land)
- **रेगिस्तानी भूमि** (Desert land)
- **मृदा कटावग्रस्त भूमि** (Soil eroded land)

**तालिका 1. बंजर भूमि की पहचान हेतु श्रेणियां (कारक तत्वों के आधार पर)**

| जल (Water) | हवा (Wind) | मनुष्य (Man) | अन्य (Others) |
|---|---|---|---|
| शीट अपरदन (Sheet Erosion) | रेतीले टिब्बे (Sand Dunes) | खदान अपशिष्ट (Mine Spoils) | भूस्खलन (Land Slides) |
| रिल अपरदन (Rill Erosion) | रेतीली पट्टी (Sand Bar) | झूम कृषि (Shifting Cultivation) | उथली मिट्टी (Shallow Soils) |
| गली अपरदन (Gully Erosion) | तटीय रेत (Coastal Sand) | औद्योगिक बंजर भूमि (Industrial Wasteland) | |
| गहरी भूमि (Ravinous Land) | | | |
| लवणीय मिट्टी (Saline Soil) | | | |
| दलदली भूमि (Marshy Land) | | | |
| जलभराव वाली भूमि (Water Logged) | | | |
| क्षारीय मिट्टी (Alkali Soil) | | | |

बंजर भूमि के विकास के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं। इन कारकों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि बंजर भूमि मुख्य रूप से तीन कारकों जैसे - मनुष्य, प्रकृति और तकनीक के असंतुलित प्रभाव के कारण बनती है। हालाँकि, प्राकृतिक कारण महत्वपूर्ण हैं, लेकिन मनुष्य द्वारा तकनीकी नवाचारों की सहायता से भूमि के अनुचित उपयोग की प्रवृत्ति भी बंजर भूमि के विस्तार में बड़ी भूमिका निभाती है। बंजर भूमि के निर्माण में जिम्मेदार कारकों

की पहचान और निगरानी के लिए कुछ प्रमुख भौतिक परिवर्तनों (Physical Variables) जैसे – क्षेत्र का सापेक्ष ऊँचाई स्तर (Relative Relief), जल निकासी घनत्व (Drainage Density), ढलान (Slope), और भूवैज्ञानिक आधार (Geological Basis) पर ध्यान दिया जाता है।

## 6.3.1 बंजर भूमि की श्रेणियाँ

**A) उपजाऊ बंजर भूमि (Culturable Wasteland):** यह वह भूमि होती है जिसमें वनस्पति आवरण विकसित करने की क्षमता होती है, लेकिन विभिन्न बाधाओं के कारण इसका उपयोग नहीं हो रहा होता है। ये बाधाएँ मृदा कटाव (erosion), जलभराव (water logging), लवणीयता (salinity) आदि हो सकती हैं। ऐसी भूमि को पूरी क्षमता से उपयोग में नहीं लाया जा रहा या फिर गलत प्रबंधन के कारण बेकार पड़ी होती है। इसके पीछे के कारण राज्य या निजी स्वामित्व, भूमि का अधिसूचित वन क्षेत्र घोषित किया जाना आदि हो सकते हैं। इस श्रेणी में गहरी दरारों वाली भूमि (gullied land), सतही जलभराव से प्रभावित दलदली भूमि (surface water logged marshy land), ऊबड़-खाबड़ (undulating) एवं लवणीय भूमि (saline land) शामिल होती हैं। साथ ही, पारिस्थितिक सीमाओं (ecological limitations) के कारण बेकार पड़ी भूमि भी इसमें आती है, जैसे – क्षरणग्रस्त वन (degraded forests), चारागाह (pastures), झूम कृषि क्षेत्र (shifting

**तालिका 2: विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि (अपयोगी भूमि) और उनकी सीमित करने वाले कारक (स्रोत: भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, 1985)**

| बंजर भूमि का प्रकार | क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर में) | प्रतिशत (%) |
|---|---|---|
| गहरी दरारों वाली या कटावग्रस्त भूमि | 2.06 | 0.65 |
| झाड़ियों रहित भूमि | 19.40 | 6.13 |
| जलभराव/दलदली भूमि | 1.66 | 0.52 |
| लवणीयता से प्रभावित भूमि | 2.04 | 0.65 |
| झूम कृषि क्षेत्र | 3.51 | 1.11 |
| क्षरणग्रस्त अधिसूचित वन भूमि | 14.07 | 4.44 |
| क्षरणग्रस्त चरागाह भूमि | 2.60 | 0.82 |
| वृक्षारोपण के अंतर्गत क्षरणग्रस्त भूमि | 0.58 | 0.18 |
| रेतीला क्षेत्र | 5.00 | 1.58 |
| खनन उद्योग से प्रभावित बंजर भूमि | 0.12 | 0.04 |
| पथरीली/बंजर चट्टानी/शीट चट्टानी भूमि | 6.46 | 2.04 |
| अत्यधिक ढलान वाला क्षेत्र | 0.77 | 0.24 |
| हिमाच्छादित ग्लेशियर क्षेत्र | 5.58 | 1.76 |
| **कुल** | **63.84** | **20.16** |

cultivation areas), रेतीले टीले (sand dunes) और खनन से खराब हुई भूमि (mining spoils) आदि (तालिका 2)।

**(B) अनुपजाऊ बंजर भूमि (Unculturable Wasteland)**

यह वह भूमि होती है जिसे वनस्पति आवरण विकसित करने के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता, जैसे कि बंजर चट्टानी क्षेत्र और बर्फ से ढके हुए ग्लेशियर। ऐसी भूमि खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती। इस श्रेणी में बंजर चट्टानी भूमि, अत्यधिक ढलान वाले क्षेत्र, और स्थायी रूप से बर्फ या ग्लेशियर से ढके हुए इलाके शामिल होते हैं। परित्यक्त भूमि के निर्माण से पारिस्थितिक संतुलन (ecological balance) बिगड़ सकता है क्योंकि यह उन विभिन्न जैविक और अजैविक घटकों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जो उस विशेष भूमि पर निर्भर होते हैं।

## 6.4 भारत में बंजर भूमि

भारत में कुल 114.01 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर बंजर और अनुपयोगी भूमि फैली हुई है। जल अपक्षय (पानी से कटाव) के अंतर्गत आने वाला क्षेत्र 23.61 मिलियन हेक्टेयर है, जबकि पवन अपक्षय (हवा से कटाव) के अंतर्गत लगभग 8.89 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र आता है। भारत में विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि पाई जाती है, जैसे गहरी कटावग्रस्त या गहरी खाइयों वाली भूमि, जलभराव वाली भूमि, लवणता से प्रभावित भूमि, स्थानांतरित कृषि भूमि, अत्याधिक चराई से प्रभावित भूमि, रेतीली भूमि, खनन और औद्योगिक गतिविधियों के कारण बंजर हुई भूमि, हिमाच्छादित भूमि और ऊसर भूमि। इन सभी का संक्षिप्त विवरण तालिका-3 में दिया गया है।

**तालिका-3: क्षरणित भूमि का विस्तार दर्शाती हुई (FSI, 1996)**

| भूमि क्षरण के प्रकार | क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर में) |
|---|---|
| जल अपरदन | 111.26 |
| पवन अपरदन | 38.74 |
| जलभराव | 6.00 |
| क्षारीय मिट्टी | 2.50 |
| लवणीय मिट्टी | 2.50 |
| गहरे गड्ढे और गली | 3.97 |
| झूम खेती (स्थानांतरित कृषि) | 4.36 |
| नदीय क्षेत्र एवं तेज बहाव | 2.73 |

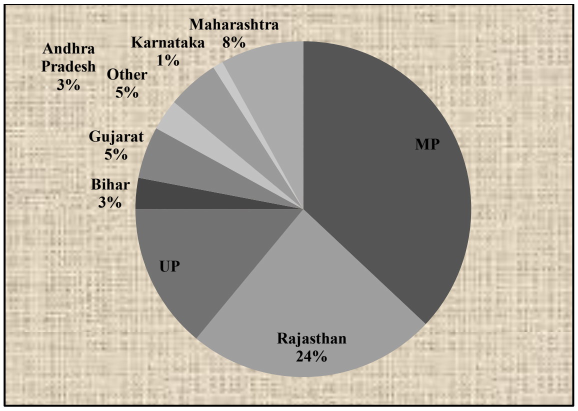


**चित्र-1: भारत के विभिन्न राज्यों में जल अपरदित क्षेत्र (Water Eroded Area) का प्रतिशत दर्शाया गया है (कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)**

भारत में, कुल 114.01 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र क्षरित और परित्यक्त भूमि के अंतर्गत आता है। जल अपरदन स्थानीय रूप से बहते जल प्रवाह के कारण होता है। जल प्रवाह मिट्टी को क्षरित/अपरदित कर सकता है और गहराई वाले चैनल बना सकता है, जिन्हें गलिया (कहा जाता है। मध्य प्रदेश और राजस्थान भारत के ऐसे राज्य हैं जहां अधिक गहरी खाइयों वाली भूमि पाई जाती है, इसके बाद उत्तर प्रदेश का स्थान आता है (चित्र-1)। झाड़ियों के साथ या बिना झाड़ियों वाली भूमि का अधिकतम भाग मध्य प्रदेश (19%) में है, इसके बाद महाराष्ट्र (16%), राजस्थान (14%) और गुजरात (11%) का स्थान आता है। इस प्रकार की भूमि अपरदन के कारण क्षरित हो जाती है (भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, 1985)। जलभरित क्षेत्र मुख्य रूप से आर्द्रभूमि से ढका होता है।

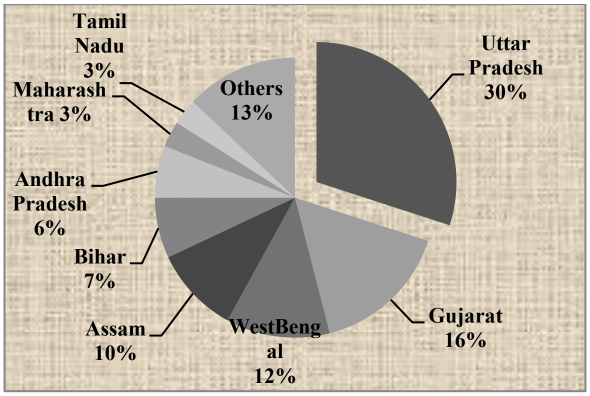

चित्र-2: भारत के विभिन्न राज्यों में जलभराव क्षेत्र (%)

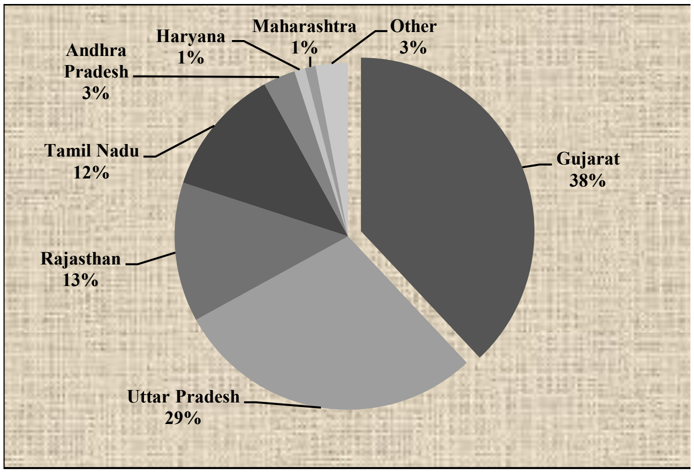

चित्र-3: भारत के विभिन्न राज्यों में राज्यवार लवणीय भूमि (%)

यह जलभरित भूमि जलीय और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों के बीच एक पारिस्थितिक संक्रमण क्षेत्र होती है। भारत में सबसे अधिक जलभरित भूमि उत्तर प्रदेश (30%) में पाई जाती है, तत्पश्चात गुजरात (16%) और पश्चिम बंगाल (12%) का स्थान आता है (चित्र-2)। मिट्टी की लवणता या क्षारीयता पौधों की वृद्धि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। जैसा कि ज्ञात है, कृषि में मिट्टी की लवणता एक महत्वपूर्ण नियंत्रण कारक होती

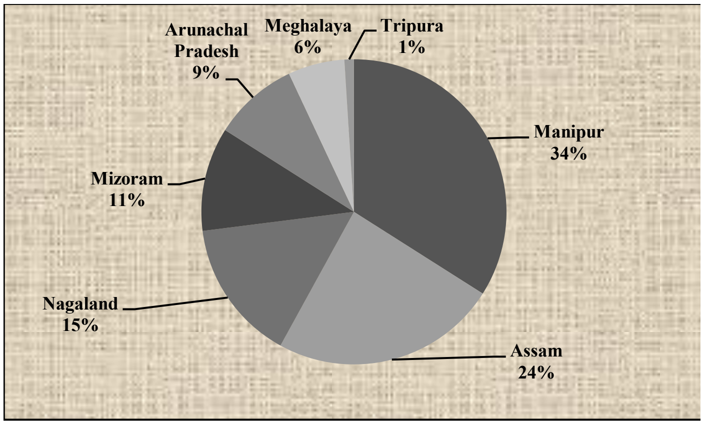

चित्र-4: भारत के विभिन्न राज्यों में स्थानांतरित कृषि भूमि का प्रतिशत (%)

है। मुख्य रूप से, गुजरात (38%), उत्तर प्रदेश (29%), राजस्थान (13%) और तमिलनाडु (12%) में इस प्रकार की अनुपयोगी भूमि अधिक पाई जाती है (चित्र-3)। स्थानांतरण कृषि के कारण भूमि क्षरण वृक्षों की कटाई और खेती के लिए जंगलों को जलाने की चक्रीय भूमि उपयोग प्रणाली का परिणाम है। इस प्रकार की बंजर भूमि भारत के उत्तरी राज्यों में पाई जाती है। स्थानांतरण कृषि के कारण सबसे अधिक बंजर भूमि मणिपुर (34%) में पाई जाती है, इसके बाद असम (24%), नागालैंड (15%), मिजोरम (11%), अरुणाचल प्रदेश (9%), मेघालय (6%) और त्रिपुरा (1%) का स्थान आता है (चित्र-4)। अपर्याप्त रूप से उपयोग की गई बंजर भूमि आंध्र प्रदेश (16%) में सबसे अधिक पाई जाती है, इसके बाद मध्य प्रदेश (15%) और महाराष्ट्र (10%) का स्थान आता है (तालिका-4)।

**तालिका-4: विभिन्न संगठनों द्वारा प्रदत्त बंजर भूमि का अनुमानित क्षेत्रफल**

| स्रोत | क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर) |
|---|---|
| कृषि मंत्रालय और जेएनयू, भूगोल विभाग (1986) | 175 |
| राष्ट्रीय भूमि उपयोग और परित्यक्त भूमि विकास परिषद (पहली बैठक 1986) | 123 |
| परित्यक्त भूमि विकास संवर्धन सोसायटी (1982) | 145 |
| ग्रामीण विकास मंत्रालय और NRSA (2000) | 64 |

अत्यधिक चराई भी बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार है। चरागाह भूमि राजस्थान (47%) में अधिकतम है, इसके बाद हिमाचल प्रदेश (16%), असम (9%) और अरुणाचल प्रदेश (8%) का स्थान आता है। वृक्षारोपण (Plantation) के कारण भूमि का अधिकतम क्षरण हिमाचल प्रदेश (42%) में पाया जाता है, इसके बाद मध्य प्रदेश (16%), महाराष्ट्र (12%) और जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख (11%) का स्थान आता है।

रेतीली भूमि तटीय और नदी के किनारे वाले क्षेत्रों में पाए जाने की संभावना अधिक है। अधिकांश रेतीले क्षेत्र की भूमि राजस्थान राज्य में पाई जाती है (81%)। खनन और उद्योग भी बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार हैं। खदानों के कचरे के निस्तारण और औद्योगिक अपशिष्टों के निर्वहन से भूमि अनुपयोगी हो जाती है। बिहार (15%) में खनन के कारण अधिकतम बंजर भूमि पाई जाती है, इसके बाद मध्य प्रदेश (11%), राजस्थान (10%), तमिलनाडु (10%), गोवा (9%), महाराष्ट्र (8%) और आंध्र प्रदेश (8%) का स्थान आता है (तालिका-5)।

बंजर भूमि चट्टानों और पत्थरों से घिरी होती है। इस प्रकार की अनुपयोगी भूमि ज्यादातर जम्मू और कश्मीर (51%), आंध्र प्रदेश (8%), राजस्थान (7%), हिमाचल प्रदेश (6%), गुजरात (5%), मध्य प्रदेश (5%), कर्नाटक (4%) और महाराष्ट्र (4%) में पाई जाती है। तीव्र ढलानें भी बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार होती हैं। इस प्रकार की भूमि में भूस्खलन किसी भी प्रकार के उत्पादन को बाधित कर सकता है। आमतौर पर इस प्रकार की भूमि भारत के पहाड़ी राज्यों में पाई जाती है। इस प्रकार की बंजर भूमि जम्मू और कश्मीर (लद्दाख सहित) में सबसे

अधिक (20%) है, इसके बाद हिमाचल प्रदेश (18%), महाराष्ट्र (16%) और उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड (12%) का स्थान आता है।

**तालिका 5. भारत में राज्यवार बंजर भूमि (स्रोत: भारत का बंजर भूमि एटलस)**

| राज्यवार बंजर भूमि का विवरण - एनआरएसए (संदर्भ वर्ष 2003 के अनुसार जानकारी) | | | |
|---|---|---|---|
| **राज्य** | **बंजर भूमि** | **राज्य** | **बंजर भूमि** |
| आंध्रप्रदेश | 45267.15 | मणिपुर | 13174.74 |
| अरुणांचल प्रदेश | 18175.95 | मेघालय | 3411.41 |
| असम | 14034.08 | मिजोरम | 4469.88 |
| बिहार | 5443.68 | नागालैंड | 3709.40 |
| छत्तीसग | 7584.15 | उड़ीसा | 18952.74 |
| गोवा | 531.29 | पंजाब | 1172.84 |
| गुजरात | 20377.74 | राजस्थान | 101453.86 |
| हरयाणा | 3266.45 | सिक्किम | 3808.21 |
| हिमांचल प्रदेश | 28336.80 | त्रिपुरा | 1322.97 |
| जम्मू एंड कश्मीर इन्क्लुडिंग लदाख | 70201.99 | तमिलनाडु | 17303.29 |
| झारखण्ड | 11165.26 | उत्तराखण्ड | 16097.46 |
| कर्नाटका | 13536.58 | उत्तर प्रदेश | 16984.16 |
| केरला | 1788.80 | WB | 4397.56 |
| मध्य प्रदेश | 57134.03 | UTs | 314.38 |
| महाराष्ट्र | 49275.41 | | |
| मणिपुर | 13174.74 | | |
| | | | **कुल बंजर भूमि = 552692.26** |

बर्फ से ढकी हुई भूमि को भी बंजर भूमि माना जाता है। इस प्रकार की बंजर भूमि जम्मू और कश्मीर (लद्दाख सहित) में अधिकतम (38%) पाई जाती है, इसके बाद उत्तराखंड (24%), हिमाचल प्रदेश (23%), अरुणाचल प्रदेश (12%) और सिक्किम (3%) का स्थान आता है। आंकडो से पता चलता है कि जलवायु (वर्षा, तापमान, पवन वेग); स्थलाकृति (ढलान का कोण, ढलान की लंबाई); अपरदन (अपरदन की सीमा और तीव्रता); मिट्टी के गुण (भौतिक और रासायनिक) से संबंधित हो सकते हैं। मिट्टी को तेजी से उत्पादक बनाने के लिए क्षेत्र-विशिष्ट तकनीक की आवश्यकता है, क्योंकि प्रकृति में होने वाले परिवर्तन संतुलन तक पहुंचने में 200-400 वर्ष लेते हैं। बंजर भूमि को सुधारने के लिए अपनाई जाने वाली विधि उस भूमि के प्रकार पर निर्भर करेगी। कुछ पारंपरिक विधियों में मिट्टी में नमी की मात्रा बढ़ाने के लिए इन-सीटू संरक्षण विधियाँ (बाँध बनाना,

टेरेसिंग आदि); प्राकृतिक पुनर्जनन को बढ़ावा देना, जल संचयन और कृषि वानिकी को बढ़ावा देना आदि शामिल हो सकता है।

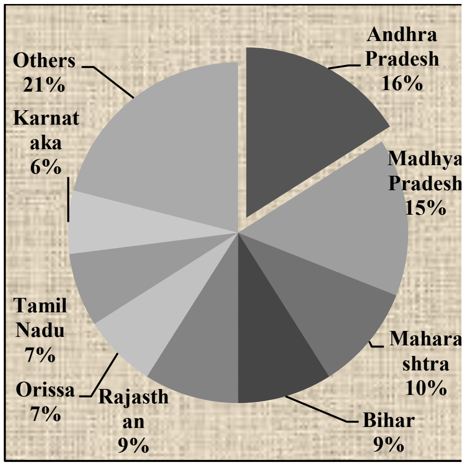


चित्र-5: भारत के विभिन्न राज्यों में अल्पउपयोगी भूमि का प्रतिशत (%)

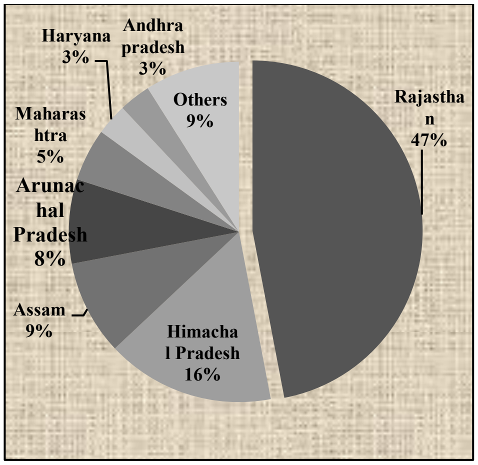


चित्र-6: भारत के विभिन्न राज्यों में चरागाही बंजर भूमि का प्रतिशत (%)

## 6.5 बंजर भूमि की उत्पत्ति

बंजर भूमि के निर्माण के विभिन्न कारक जैसे कि वन उत्पादों का अत्यधिक दोहन, अति चराई, विकासात्मक परियोजनाएँ, भूमि का दुरुपयोग और अवैज्ञानिक भूमि प्रबंधन हैं। बंजर भूमि का निर्माण प्राकृतिक या मानव जनित (मानवीय गतिविधियों) कारणों से हो सकता है। प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न भूमि जैसे असमतल ऊँची भूमि, रेतीली भूमि, बर्फ से ढकी भूमि और तटीय लवणीय भूमि हैं। जबकि गली या गहरी कटाव वाली भूमि, झूम/स्थानांतरित कृषि और बंजर पहाड़ी श्रृंखलाओं का निर्माण मानवीय गतिविधियों के कारण होता है।

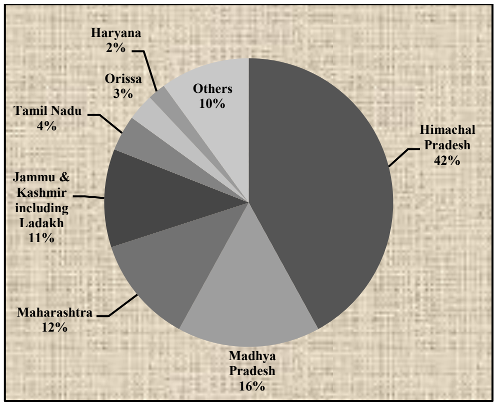


चित्र-7: भारत के विभिन्न राज्यों में वृक्षारोपण के कारण बंजर भूमि का प्रतिशत (%)

बंजर भूमि निर्माण में चार प्रमुख मानवजनित गतिविधियाँ योगदान देती हैं: वनों की कटाई, अत्यधिक चराई, अत्यधिक खेती और अवैज्ञानिक सिंचाई। इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, औद्योगिक एवं सीवेज कचरा, मिट्टी का अपरदन, जलभराव आदि भी बंजर भूमि के निर्माण का कारण बन सकते हैं।

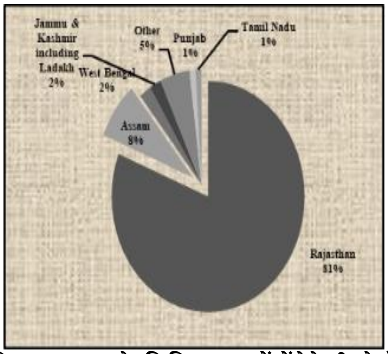


चित्र-8: भारत के विभिन्न राज्यों में रेतेली क्षेत्रों का प्रतिशत (%)

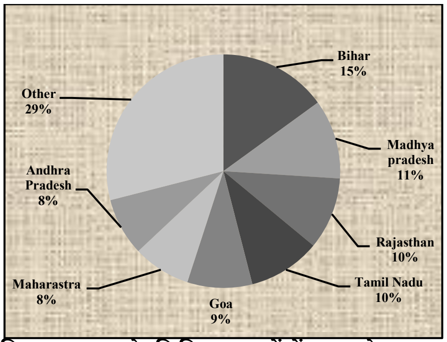


चित्र-9: भारत के विभिन्न राज्यों में खनन के कारण बंजर भूमि का प्रतिशत (%)

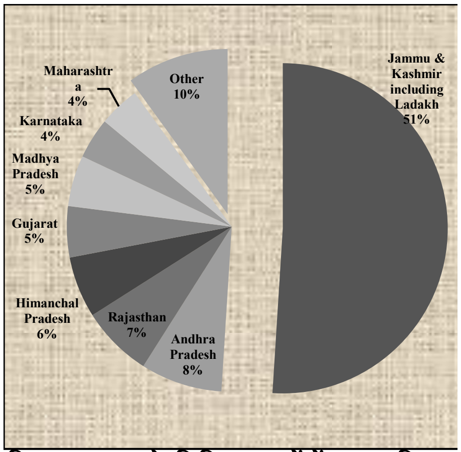


चित्र-10: भारत के विभिन्न राज्यों में बंजर भूमि का प्रतिशत (%)

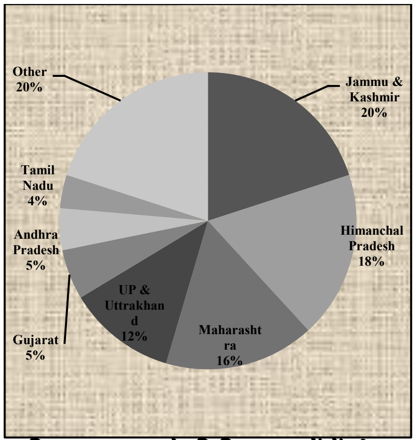


चित्र-11: भारत के विभिन्न राज्यों में तीव्र ढलानों का प्रतिशत (%)

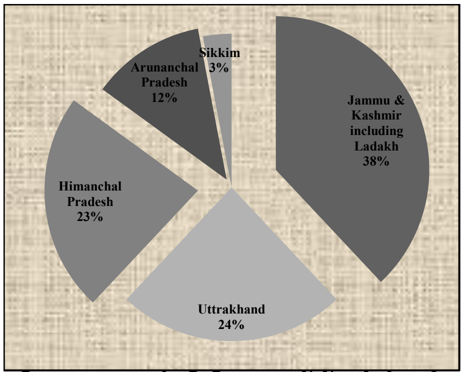


चित्र-12: भारत के विभिन्न राज्यों में बर्फ से ढकी भूमि का प्रतिशत (%)

## 6.5.1 बंजर भूमि का विस्तार

नेशनल रिमोट सेंसिंग सेंटर (NRSC) के अनुमान के अनुसार, देश के कुल क्षेत्रफल का 20.17% बंजर भूमि है, जिसमें से 16.74% कृषि योग्य है और शेष 4.4% कृषि के लिए अनुपयोगी है। बंजर भूमि का अधिकतम हिस्सा जम्मू और कश्मीर (लद्दाख सहित) (60.10%) में पाया जाता है ( चित्र-13)।

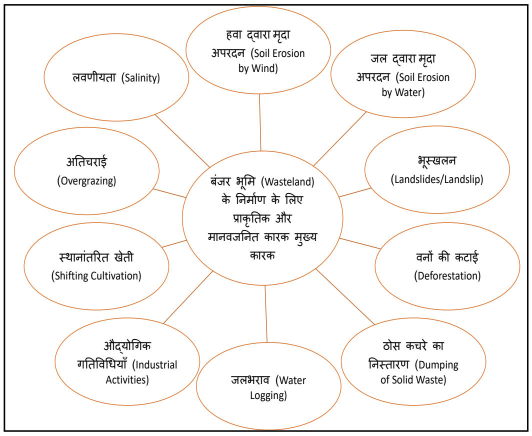


**चित्र-13: बंजर भूमि के निर्माण के कारक**

**लवणीयता:** अनुचित सिंचाई और अत्यधिक वर्षा से मिट्टी में लवणीकरण हो जाती है। लवणीकरण मिट्टी में लवणों की उच्च सांद्रता उत्पन्न कर सकता है, जिससे बंजर भूमि का निर्माण होता है। नहरों से रिसाव, ऊँचा भूजल स्तर और लवणीय भूजल भी मिट्टी की लवणीयता के लिए जिम्मेदार होते हैं। लवणीयता भूमि को अनुपयोगी और कृषि के अयोग्य बना देती है (कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)।

**जलभराव क्षेत्र:** भारत में लगभग 60 लाख हेक्टेयर क्षेत्र जलभराव से प्रभावित है। जलभराव मिट्टी में सामान्य वायु संचार को बाधित करता है। यह मिट्टी में अधिक लवणता (खारापन) के लिए भी जिम्मेदार होता है और बंजर भूमि के निर्माण का कारण बनता है (भारतीय कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)।

**स्थानांतरित कृषि:** स्थानांतरित कृषि एक प्रकार की कृषि प्रणाली है जिसमें घने जंगलों को फसलों की खेती के लिए साफ किया जाता है। जब किसान जंगल की उपजाऊ मिट्टी का उपयोग कर लेते हैं, तो वे दूसरे जंगल की तलाश करते हैं और वहीं इसी प्रक्रिया को दोहराते हैं। यह कृषि प्रणाली भी बंजर भूमि के निर्माण के लिए उत्तरदायी होती है। भारत में यह कृषि प्रणाली मुख्य रूप से पूर्वोत्तर राज्यों में प्रचलित है। स्थानांतरित कृषि या झूम कृषि भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों या उन क्षेत्रों में अपनाई जाती है जहाँ भूमि की उपलब्धता कोई प्रमुख समस्या नहीं होती। इस विधि में ढलानदार या अन्य प्रकार की भूमि पर मौजूद घने जंगल और वनस्पतियाँ साफ कर दी जाती हैं और बिना किसी प्रबंधन के फसलें उगाई जाती हैं। झूम कृषि के प्रबंधन के लिए गहन खेती हेतु उपयुक्त भूमि की पहचान करना आवश्यक है। जलवायु कारकों, मिट्टी की विशेषताओं और अन्य संबंधित कारकों के आधार पर प्रत्येक स्थान के लिए ऐसी भूमि उपयोग प्रणाली और फसल चक्र विकसित करना होगा जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना प्रभावी हो **(भारतीय कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)।**

**वनों की कटाई:** वनों के तीव्र क्षरण एवं विनाश के परिणामस्वरूप व्यापक क्षेत्रफल की भूमि क्रमशः बंजर भूमि में परिवर्तित होती जा रही है। जैसा कि आप जानते हैं, मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए वन अत्यंत आवश्यक हैं, लेकिन बुनियादी ढांचे और भोजन की बढ़ती मांग के कारण वन भूमि बंजर भूमि में बदलती जा रही है। वन कई प्रजातियों का प्राकृतिक आवास भी होते हैं, और ये प्रजातियां मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होती हैं।

वनों की कटाई के कारण ये बहुमूल्य प्रजातियां अधिक समय तक जीवित नहीं रह पातीं। इसलिए, वनों की कटाई बंजर भूमि के निर्माण का एक महत्वपूर्ण कारण भी है **(कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)।**

**कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग:** कृषि रसायन जैसे उर्वरक और कीटनाशक वे रसायन होते हैं जो खेती में उपयोग किए जाते हैं। लेकिन जब इनका जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है, तो यह न केवल भूमि पर मौजूद महत्वपूर्ण जीवों के विलुप्त होने का कारण बनता है, बल्कि उपजाऊ जमीन को बंजर बनाने में भी अहम भूमिका निभाता है **(बालासुब्रमण्यन, 2015)।**

**औद्योगिक गतिविधियाँ:** विभिन्न प्रकार के उद्योग अपनी अपशिष्ट सामग्री भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में छोड़ते हैं। कई बार इन औद्योगिक अपशिष्टों में अत्यंत विषैले रसायन होते हैं, जो भूमि की संपूर्ण जैव विविधता को नष्ट कर सकते हैं। औद्योगिक कचरा भूमि को अनुपयोगी और बंजर बना देता है, जिससे बंजर भूमि के बनने की प्रक्रिया तेज हो जाती है **(बालासुब्रमण्यन, 2015)।**

**भूस्खलन:** भूस्खलन और मिट्टी धंसने की समस्या खासकर पहाड़ी क्षेत्रों में आम है, जिससे कृषि भूमि, राजमार्गों और गांवों के निवासियों को गंभीर खतरा होता है। भूस्खलन के प्रमुख कारणों में कमजोर भूगर्भीय संरचनाएँ, भूकंपीय हलचल, भूमि का अनुचित उपयोग, वनों की कटाई और खनन आदि शामिल हैं। भूस्खलन न केवल भौगोलिक संरचना को बदल सकता है बल्कि बंजर भूमि के निर्माण के लिए भी जिम्मेदार होता है (बालासुब्रमण्यन, 2015)।

## 6.6 भूमि का संरक्षण

भूमि संरक्षण में संरक्षण (Preservation), पुनर्स्थापन (Restoration), उपचार (Remediation) और शमन (Mitigation) शामिल हो सकते हैं। संरक्षण प्रक्रिया में भूमि और इससे जुड़े संसाधनों का मानव द्वारा दोहन नहीं किया जाता है, बल्कि उन्हें उनके प्राकृतिक स्वरूप में बनाए रखा जाता है (चित्र-14)। पुनर्स्थापन उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसमें भूमि पारिस्थितिकी तंत्र और संबंधित समुदायों को उनके प्राकृतिक स्थिति में बहाल किया जाता है।

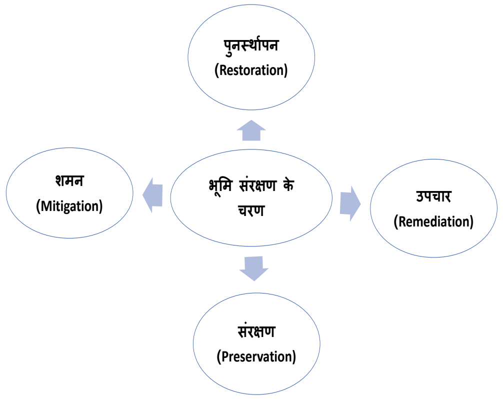


**चित्र-14: भूमि संरक्षण के विभिन्न चरण**

उपचार प्रक्रिया में भूमि से प्रदूषण हटाने के लिए विभिन्न तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इनमें शामिल हैं:

बैक्टीरिया उपचार (Bacteria remediation)

पादप उपचार (Phyto-remediation)

खाद उपचार (Compost remediation)

फफूंद उपचार (Myco-remediation)

इन सभी तकनीकों को सामूहिक रूप से जैव उपचार (Bio-remediation) कहा जाता है। हमारे देश में बंजर भूमि सुधार और विकास की जिम्मेदारी बंजर भूमि विकास बोर्ड (Waste Land Development Board) के अंतर्गत आती है, जो निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कार्य करता है जैसे:

सीमांत मिट्टी की भौतिक संरचना और गुणवत्ता में सुधार करना।

इन भूमि को सिंचाई के लिए अच्छी गुणवत्ता वाला जल उपलब्ध कराना।

मिट्टी के कटाव, बाढ़ और भूस्खलन को रोकना।

भूमि के जैविक संसाधनों को स्थायी उपयोग के लिए संरक्षित करना।

यहाँ कुछ महत्वपूर्ण पुनः प्राप्ति (रिक्लेमेशन) प्रथाओं पर चर्चा की गई है:

**मृदा अपरदन नियंत्रण (Soil Erosion Control):** जैसा कि आप जानते हैं, मृदा अपरदन भूमि के क्षरण और बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है। यदि हम मृदा अपरदन को नियंत्रित कर लें, तो हम भूमि को संरक्षित कर सकते हैं। मृदा अपरदन को विभिन्न कृषि तकनीकों के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है, जैसे कि समोच्च खेती (Contour Farming), पट्टी फसल (Strip Cropping), सीढ़ीदार खेती (Terracing), गली पुनः प्राप्ति (Gully Reclamation) और शेल्टर बेल्ट (Shelter Belts)। समोच्च खेती ढलान के पार की जाती है। पट्टी फसल प्रणाली में कृषि भूमि को लंबी, संकरी पट्टियों में विभाजित किया जाता है, जिससे मृदा अपरदन रोका जाता है। सीढ़ीदार खेती ढलान वाले क्षेत्रों में की जाती है, जिससे मृदा अपरदन और सतही जल प्रवाह कम होता है। नाली (Gullies) मृदा के तीव्र क्षरण का संकेत होती हैं, और यदि किसी भूमि पर नाली विकसित हो जाती है, तो उसे शीघ्रता से बढ़ने वाली फसलों से बोना चाहिए। शेल्टर बेल्ट पेड़ों की पंक्तियाँ होती हैं, जो हवा और पानी के वेग को कम कर मृदा अपरदन की संभावना को घटाती हैं। मृदा अपरदन को वृक्षारोपण, चराई नियंत्रण और बाढ़ नियंत्रण से भी कम किया जा सकता है।

**भूस्खलन नियंत्रण (Land Slide Control):** भूस्खलन भी बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है। यह एक प्राकृतिक और मानवजनित दोनों प्रकार की आपदा मानी जाती है। प्राकृतिक रूप से, भूस्खलन भारी वर्षा, भौगोलिक परिस्थितियों और गुरुत्वाकर्षण के कारण होता है। मानवजनित कारणों में वनों की कटाई, खनन और असंयमित कृषि प्रथाएँ शामिल हैं। यदि हम भूस्खलन को नियंत्रित कर लें, तो हम भूमि को संरक्षित कर सकते हैं। भूस्खलन आमतौर पर पहाड़ी क्षेत्रों में होता है। इसे नियंत्रित करने के लिए वृक्षारोपण किया जाना चाहिए, और ढलानों पर अधिकतम वनस्पति बनाए रखनी चाहिए। इसके अलावा, भूस्खलन-प्रवण क्षेत्रों में अनियंत्रित या अत्यधिक सिंचाई से बचना चाहिए।

**वनीकरण (Afforestation):** वन भूमि संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वन भूमि की उर्वरता बनाए रखते हैं और मृदा को नम और उपजाऊ रखते हैं। वनीकरण सतत भूमि प्रबंधन में योगदान देता है। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (MoEF&CC) ने 5 मिलियन हेक्टेयर बंजर भूमि को वनीकरण द्वारा पुनः प्राप्त करने का लक्ष्य रखा है।

**कृषि प्रथाओं में सुधार (Improve Agricultural Practices)**

आधुनिक, सतत और उपयुक्त कृषि प्रथाओं से भूमि का संरक्षण किया जा सकता है। इन सतत कृषि विधियों में किसान जैव-उर्वरक, जैव-कीटनाशक, जैव-नाशी जीव और सूक्ष्म-सिंचाई तकनीकों का उपयोग करते हैं।

**ठोस अपशिष्ट प्रबंधन (Solid Waste Management)**

भूमि के संरक्षण के लिए ठोस अपशिष्ट का उचित प्रबंधन आवश्यक है। ठोस अपशिष्ट बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार होती है और इसमें कई हानिकारक रसायन होते हैं, जो धीरे-धीरे मृदा की गुणवत्ता को खराब करते हैं। यदि हम शहरी और औद्योगिक ठोस अपशिष्ट का उचित प्रबंधन करें, तो हम भूमि संसाधनों का संरक्षण कर सकते हैं।

# 6.7 बंजर भूमि का प्रबंधन

भूमि प्रबंधन (Land Management) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हम भूमि संसाधनों का प्रबंधन कर सकते हैं और उन्हें वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए विकसित कर सकते हैं। भूमि प्रबंधन तब संभव है जब हम उन कारकों पर ध्यान दें जो बंजर भूमि बनने के लिए जिम्मेदार होते हैं। भूमि प्रबंधन के लिए विभिन्न प्रभावी विधियाँ हैं, जो निश्चित रूप से सहायक हो सकती हैं। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं ( चित्र 15):

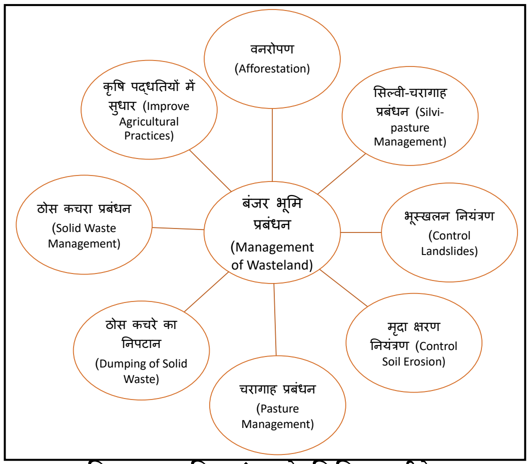

**चित्र 15: भूमि प्रबंधन के विभिन्न तरीके**

**वन संरक्षण:** वन संरक्षण भूमि संसाधनों को संरक्षित करने का एक उत्तम उपाय है। विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में बढ़ते वनों के विनाश से भारी मृदा अपरदन होता है। इससे ईंधन की भारी कमी और भूमि के क्षरण के कारण उत्पादकता में गिरावट आती है। राष्ट्रीय वन नीति ने वनों के विभिन्न उपयोगों, समुदायों के अधिकारों, उनकी सक्रिय भागीदारी के बिना वन संसाधनों की सुरक्षा की अव्यवहारिकता और गरीबों की आजीविका रणनीतियों में वनों की भूमिका को स्पष्ट रूप से पहचाना है। वन्यजीव प्रभाग में प्रमुख प्रणालियाँ वन्यजीवों और उनके आवासों के संरक्षण, सुरक्षा और विकास पर केंद्रित हैं।

जैव-विविधता संरक्षण की मुख्य रणनीति प्रतिनिधि पारिस्थितिक तंत्रों में विविध आवासों की सुरक्षा है। 103 राष्ट्रीय उद्यान, 503 वन्यजीव अभयारण्य, 30 बाघ अभयारण्य और 18 जैवमंडल आरक्षित क्षेत्रों के विस्तृत नेटवर्क ने इन प्रजातियों और वन संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अंततः, पर्यावरण संसाधन प्रबंधन को भारत में उपलब्ध दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों के इष्टतम उपयोग और हमारे आसपास के पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के एक उपाय के रूप में देखा जाना चाहिए।

यह देखा गया है कि देश का एक बड़ा क्षेत्र जल से मृदा अपरदन के कारण क्षरित हो रहा है। इस क्षरण के प्रमुख कारण जैसे वनस्पति आवरण की कमी, ढलान, मिट्टी की प्रकृति, वर्षा की मात्रा और तीव्रता, फसल प्रणाली और भूमि प्रबंधन हैं। मृदा अपरदन की तीव्रता के आधार पर इसे निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- शीट अपरदन
- गली अपरदन
- रेवेन्स (गहरी खाइयों का निर्माण)

इन श्रेणियों के आधार पर उपयुक्त उपाय सुझाए जा सकते हैं ताकि जल प्रवाह और मिट्टी की हानि को रोका जा सके। जल प्रवाह और मृदा हानि को रोकने के लिए अपनाई जाने वाली सांस्कृतिक विधियों में अपरदन-प्रतिरोधी फसलों जैसे दलहन और घासों की खेती, उपयुक्त फसल प्रणाली अपनाना, प्रबंधन और मल्चिंग का उपयोग शामिल है। मृदा अपरदन रोकने के लिए यांत्रिक उपायों में कुछ हद तक भूमि की सतह को समायोजित करने की प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जैसे मेड़बंदी, सीढ़ीदार खेती आदि। ये उपाय जल प्रवाह को धीमा करने और एकत्रीकरण समय को बढ़ाकर मृदा अपरदन को रोकने में प्रभावी साबित हुए हैं। समोच्च खेती और ग्रेडेड ट्रेंचिंग (अपवाह मोड़ने के लिए) भी अपरदन नियंत्रण के लिए प्रभावी उपाय हैं।

**1. चरागाह विकास:** चरागाह पारिस्थितिकी तंत्र का विकास भी भूमि संसाधनों के प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। घास मिट्टी के कणों को बांधती है और मिट्टी के कटाव को रोकती है। *Cenchrus ciliaris, Lasiurus sindicus* जैसी घासें मिट्टी के बहाव को रोकने में प्रभावी पाई गई हैं। यह सुझाव दिया गया है कि हवा से कटाव प्रवण क्षेत्रों में क्षतिग्रस्त भूमि को घास के अंतर्गत रखा जाना चाहिए। यदि हम चरागाह पारिस्थितिकी तंत्र को विकसित करते हैं, तो हम भूमि संसाधनों का प्रभावी ढंग से प्रबंधन कर सकते हैं (कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)।

**2. स्ट्रिप क्रॉपिंग:** स्ट्रिप क्रॉपिंग भूमि प्रबंधन का एक प्रभावी तरीका है। केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (CAZRI) द्वारा विकसित अनाज दलहनी फसलों या अनाज को घास की पट्टियों के साथ स्ट्रिप क्रॉपिंग के रूप में लगाना, हवा के कटाव को नियंत्रित करने का एक प्रभावी उपाय है।

**3. मल्चिंग:** मल्चिंग हवा के कटाव को कम करने में बहुत प्रभावी पाई गई है।

**4. बंजर भूमि में एग्रो-हॉर्टिकल्चरल वानिकी:** यह प्रणाली खाद्य और सब्जी फसलों को बागवानी फसलों के साथ संयोजन में उगाने की प्रक्रिया है। यह प्रणाली उन विकसित हो रहे बागों में अधिक सामान्य पाई जाती है, जिनमें पेड़ों में अभी फल लगना शुरू नहीं हुआ है। आमतौर पर इस प्रकार के खेतों या बागों में दलहन और तिलहन फसलें उगाई जाती हैं। लंबे वृक्षों की छंटाई इस प्रकार की जाती है कि कृषि कार्य सुगमता से किया जा सके, और गेहूं, चना जैसी मौसमी फसलें अंतर-पंक्ति स्थान में उगाई जा सकें। ये फसलें न केवल प्रति इकाई भूमि आय को बढ़ाती हैं बल्कि खेत को ढककर भूमि का प्रबंधन भी करती हैं।

**5. एग्रो-फोरेस्ट्री:** एग्रो-फोरेस्ट्री भूमि प्रबंधन के लिए एक प्रभावी पद्धति है। वास्तव में, यह एक भूमि प्रबंधन प्रणाली है जिसमें चरागाह भूमि में पेड़ या पौधे उगाए जाते हैं। यह एक आत्मनिर्भर भूमि प्रबंधन प्रणाली है जो कृषि

फसलों, वृक्षों, पशुधन और पौधों के उत्पादन को एक साथ या क्रमिक रूप से एक ही भूमि पर संयोजित करती है। इस प्रकार की पद्धति जैव विविधता, मिट्टी की उत्पादकता और अर्थव्यवस्था को बढ़ाती है।

**6. वनस्पति आवरण के लिए कृषि पद्धति:** जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पौधे, वृक्ष और घास भूमि प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भूमि संसाधनों को उचित वनस्पति के अंतर्गत लाने से भूमि के क्षरण को काफी हद तक रोका जा सकता है। वनस्पति आवरण विभिन्न उद्देश्यों के लिए हो सकता है जैसे चारे और ईंधन के लिए, सतत फसल उत्पादन, चरागाह, वानिकी और अन्य सामाजिक-आर्थिक उपयोगों के लिए।

**7. चारा और ईंधन उत्पादन:** क्षतिग्रस्त भूमि और अनुपयोगी भूमि पारिस्थितिक रूप से असंतुलित होती हैं, जहां उपजाऊ मिट्टी की परत नष्ट हो चुकी होती है और विषाक्तता उत्पन्न हो जाती है, जिससे पौधों, फसलों और वृक्षों की वृद्धि बाधित होती है। उचित प्रबंधन और मूलभूत इनपुट्स के साथ, इन भूमि क्षेत्रों में उच्च्व उत्पादकता वाली घासें, दलहन और वृक्ष उगाना संभव है। चारे और ईंधन उत्पादन के लिए सुझाई गई प्रजातियाँ हैं: *अकेशिया टॉर्टिलिस (Acacia tortilis), अकेशिया लेबेक (Acacia lebbek), हार्डविकिया बिनाटा (Hardwickia binata), ल्युकेना ल्यूसोसीफाला (Leucaena leucocephala), दालबर्गिया सिस्सू* (*Dalbergia sissoo), दालबर्गिया लाटीफोलिया (Dalbergia latifolia), नीम (Azadirachta indica), कोंकरस सिलेयारिस* (*Cenchrus ciliaris), सेहिमा नर्वोसुम* (*Sehima nervosum), स्टाइलोसैंथिस हमाटा* (*Stylosanthes hamata), फ़ेज़ोलस एट्रोपर्पुरियस* (*Phaseolus atropurpureus)* आदि (कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1985)।

**8. सतत भूमि उपयोग:** मानव पूरी तरह से भूमि संसाधनों पर निर्भर है, लेकिन दुर्भाग्यवश, उसने इन संसाधनों का अत्यधिक शोषण किया है। यदि हम अपनी अतिरिक्त आवश्यकताओं और लालच को सीमित कर सकें, तो प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर प्रबंधन संभव है। ईंधन, चारे, भोजन आदि पर अत्यधिक निर्भरता कम की जानी चाहिए। कीटनाशकों, रॉडेंटिसाइड्स, खरपतवारनाशकों, रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग को कम करना आवश्यक है।

**9. चरागाह प्रबंधन:** चरागाह प्रबंधन तकनीक से हम भूमि संसाधनों का प्रबंधन कर सकते हैं। इसमें कई चरणों, उपायों और इनपुट्स का समावेश होता है, जैसे कि क्षतिग्रस्त चारागाह भूमि का पुनर्निर्माण, मिश्रित घासों और दलहनों की खेती, और उर्वरकों के माध्यम से मिट्टी तथा पौधों के पोषण स्तर को बढ़ाना। इस तकनीक में चारागाह को अवांछित खरपतवारों, विषैले तत्वों और ठोस अपशिष्ट से मुक्त रखा जाता है। चरागाह प्रबंधन में उपयुक्त प्रजातियाँ जैसे: *कोंकरस सेटीगेरुस* (*Conchrus setigerus*), *कोंकरस सिलेयारिस* (*Conchru ciliaris*), लेसिउरस सिन्डिकस (Lasiurus sindicus), पैनिकम एण्टीडोटेल (Panicum antidetab) आदि हैं।

**10. सिल्वी-पास्तुर प्रबंधन:** ईंधन लकड़ी, छोटे आकार की इमारती लकड़ी, चारा और पशु आहार की बढ़ती मांग भूमि के क्षरण का कारण बनती है। ऐसे में, सिल्वी-पास्तुर प्रणाली क्षतिग्रस्त या अनुपयोगी भूमि के आर्थिक उपयोग का सर्वोत्तम तरीका प्रतीत होती है। यह भूमि प्रबंधन प्रणाली तीन प्रमुख घटकों को समाहित करती है: वृक्ष, जो भूमि के संरक्षण और जलवायु सुधार में सहायक होते हैं, विशेष रूप से शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में। पशु, जो चरागाह पर चरते हैं और पोषक वृक्षों तथा झाड़ियों की पत्तियों का सेवन करते हैं। मौसमी नकदी फसलें, जिन्हें इस प्रणाली में वृक्षों, झाड़ियों, घासों और दलहनों के साथ उगाया जाता है।

**11. सामाजिक-आर्थिक विचारधारा और भूमि का अधिकतम उपयोग:** भूमि प्रबंधन के लिए भूमि का अधिकतम उपयोग आवश्यक है। एक संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र के लिए यह स्थापित तथ्य है कि कुल भौगोलिक क्षेत्र का 33% भाग वनों के अंतर्गत होना चाहिए। बड़ी संख्या में किसान अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए गेहूं और धान जैसी नकदी फसलें उगाते हैं, लेकिन तेलहन, दलहन और चारा फसलों के उत्पादन और मांग के बीच अभी भी एक बड़ा अंतर बना हुआ है। मिट्टी, जलवायु और उपलब्ध संसाधनों के आधार पर आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त भूमि में तेलहन, चारा और दलहन फसलें उगाने से सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार आ सकता है। साथ ही, अनुपयोगी भूमि को वनों के अंतर्गत लाने से हमारी पारिस्थितिकी और पर्यावरण में भी सुधार होगा।

# सारांश

यह इकाई में हमने बंजर भूमि के प्रकार, उत्पत्ति, संरक्षण और प्रबंधन पर चर्चा की है। अब तक आपने सीखा कि: भूमि एक उपयोगी संसाधन है और यह कृषि भूमि, अनुपजाऊ भूमि, घास भूमि, चारागाह भूमि, बर्फीली भूमि, शुष्क भूमि और बंजर भूमि के रूप में पाई जा सकती है।

- भूमि एक स्थलीय जैव-उत्पादक पारिस्थितिक तंत्र है। इसमें मिट्टी, जल, पौधे और अन्य जैविक समुदाय शामिल होते हैं। पारिस्थितिक स्थितियों के आधार पर, भूमि को निम्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है: कृषि भूमि, अनुपजाऊ भूमि, आर्द्रभूमि, शुष्क भूमि, चारागाह भूमि, घास भूमि, बर्फीली भूमि और बंजर भूमि।
- Dudley Stamp (1954) के अनुसार, "बंजर भूमि वह भूमि है जिसका पहले उपयोग किया गया था, लेकिन जिसे छोड़ दिया गया है और जिसका आगे कोई उपयोग नहीं किया गया है।"
- भारत सरकार के खाद्य और कृषि मंत्रालय की बंजर भूमि सर्वेक्षण और पुनर्ग्रहण समिति (1961) के अनुसार, बंजर भूमि वे भूमि हैं जो या तो कृषि के लिए उपलब्ध नहीं हैं या किसी कारणवश खेती के बिना छोड़ दी गई हैं। वह भूमि बंजर भूमि मानी जाती हैं जो (a) जो पारिस्थितिक रूप से अस्थिर हैं, (b) जिनकी ऊपरी मिट्टी लगभग पूरी तरह से नष्ट हो चुकी है, और (c) जिनमें वार्षिक फसलों और वृक्षों की वृद्धि के लिए जड़ क्षेत्र में विषाक्तता विकसित हो गई है।
- बंजर भूमि दो प्रकार की हो सकती है: कृषि योग्य बंजर भूमि, जिसमें वनस्पति आवरण विकसित करने की क्षमता होती है लेकिन विभिन्न बाधाओं जैसे कटाव, जलभराव, लवणता आदि के कारण इसका उपयोग नहीं किया जा रहा है। अकृषि योग्य बंजर भूमि, वह भूमि जिसे वनस्पति आवरण विकसित करने के लिए नहीं बदला जा सकता, जैसे अनुपजाऊ चट्टानी क्षेत्र और बर्फ से ढके हिमनदीय क्षेत्र।
- भारत में विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि पाई जाती हैं, जिन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है: गली या गहरी कटावयुक्त भूमि, झाड़ियों वाली/बिना झाड़ियों वाली भूमि, जलभराव/दलदली भूमि, लवणता से प्रभावित भूमि, स्थानांतरित खेती वाली भूमि, अधिसूचित वन क्षेत्र की क्षरणग्रस्त भूमि, क्षरणग्रस्त चारागाह भूमि, उनुप्योगी बागान भूमि, रेतीला क्षेत्र, खनन और औद्योगिक कचरे वाली भूमि, पत्थरीली/अनुपजाऊ चट्टानी भूमि, तीव्र ढाल वाला क्षेत्र, बर्फ से ढका हुआ हिमनदीय क्षेत्र। भारत में लगभग 63 मिलियन हेक्टेयर भूमि को बंजर भूमि माना जाता है।

- बंजर भूमि की उत्पत्ति प्राकृतिक या मानवजनित गतिविधियों से हो सकती है। इसके प्रमुख कारण हैं: लवणता, जलभराव, स्थानांतरित खेती, वनों की कटाई, अत्यधिक उर्वरक उपयोग, औद्योगिक गतिविधियां, भूस्खलन आदि।
- भूमि संरक्षण कई तरीकों से किया जा सकता है, जैसे कि: मृदा कटाव नियंत्रण, भूस्खलन नियंत्रण, वनीकरण, उन्नत कृषि तकनीकों का उपयोग, ठोस कचरा प्रबंधन, जलभराव नियंत्रण आदि।
- भूमि प्रबंधन के तहत निम्नलिखित उपाय जैसे: वन संरक्षण, चारागाह विकास, पट्टी फसल प्रणाली, गीली घास डालना (मल्चिंग), बंजर भूमि में कृषि-बागवानी वानिकी, कृषि वानिकी, वनस्पति आवरण के लिए कृषि दृष्टिकोण, चारे और ईंधन उत्पादन, सतत भूमि उपयोग, चारागाह प्रबंधन, सिल्वी-चारागाह प्रबंधन, भूमि के इष्टतम उपयोग के लिए सामाजिक-आर्थिक विचार आदि किया जा सकता हैं।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1(क) रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्दों से भरें।**

भारत में, कुल क्षेत्रफल में ……….. खराब और अनुपयोगी भूमि शामिल है। जल अपरदन क्षेत्र ……….. के स्थानीय प्रवाह के कारण बनता है। जल प्रवाह मिट्टी को खराब/क्षरित कर सकता है और नालियां (Gullies) बना सकता है। झाड़ियों के साथ या बिना भूमि ……….. (19%) में अधिकतम पाई जाती है, इसके बाद महाराष्ट्र (16%), राजस्थान (14%) और गुजरात (11%) का स्थान आता है। यह प्रकार की भूमि अपरदन के कारण खराब हो जाती है। जलभराव क्षेत्र ज्यादातर ……….. से ढका होता है। यह जलभराव भूमि ……….. और ……….. पारिस्थितिकी तंत्र के बीच संक्रमण क्षेत्र (Ecotone) होती है। सबसे अधिक जलभराव भूमि ……….. (30%) में पाई जाती है, इसके बाद गुजरात (16%) और पश्चिम बंगाल (12%) का स्थान आता है। मिट्टी की लवणता या क्षारीयता पौधों की वृद्धि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। जैसा कि आप जानते हैं, मिट्टी की लवणता कृषि का एक नियंत्रण कारक है। मुख्य रूप से गुजरात (………..), उत्तर प्रदेश (29%), राजस्थान (13%) और तमिलनाडु (12%) राज्यों में इस प्रकार की ……….. भूमि पाई जाती है।

**2(क)** अनुपयोगी भूमि (वेस्ट लैंड) की परिभाषा दें।

**(ख)** अनुपयोगी भूमि के प्रकार क्या हैं? समझाइए।

**3(क)** कृषि योग्य अनुपयोगी भूमि (Culturable Waste Land) और गैर-कृषि योग्य अनुपयोगी भूमि (Unculturable Waste Land) में अंतर बताइए।

**(ख)** भारत में अनुपयोगी भूमि पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

**4(क)** अनुपयोगी भूमि की उत्पत्ति (Waste Land Genesis) को परिभाषित करें। वे कौन-कौन से कारक हैं जो अनुपयोगी भूमि की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार होते हैं?

**5(क)** भूमि संरक्षण में शामिल चरणों के बारे में लिखें।

**(ख)** भूमि संरक्षण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी दें।

**(ग)** अनुपयोगी भूमि विकास बोर्ड (Waste Land Development Board) के उद्देश्य क्या हैं?

**6(क)** रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्दों से भरें।

वृक्षों की कटाई और खेती के लिए जंगलों को जलाने की चक्रीय भूमि उपयोग प्रक्रिया के कारण ……….. भूमि का क्षरण होता है। यह प्रकार की अनुपयोगी भूमि भारत के ……….. में पाई जाती है। स्थानांतरी खेती (Shifting Cultivation) के कारण सबसे अधिक अनुपयोगी भूमि मणिपुर (………..) में पाई जाती है, इसके बाद ……….. (24%), नागालैंड (………..), मिज़ोरम (11%), अरुणाचल प्रदेश (9%), मेघालय (6%) और त्रिपुरा (1%) का स्थान आता है। सबसे अधिक कम उपयोग की गई अनुपयोगी भूमि आंध्र प्रदेश (16%) में है, इसके बाद मध्य प्रदेश (15%) और महाराष्ट्र (10%) का स्थान आता है। अत्यधिक चराई भी ……….. उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार होती है। चरागाह भूमि अधिकतम ……….. (47%) में है, इसके बाद हिमाचल प्रदेश (16%), असम (9%) और अरुणाचल प्रदेश (8%) का स्थान आता है। वृक्षारोपण के कारण भूमि क्षरण अधिकतम हिमाचल प्रदेश (42%) में हुआ है, इसके बाद मध्य प्रदेश (16%), महाराष्ट्र (12%) और जम्मू-कश्मीर तथा लद्दाख (11%) का स्थान आता है। बर्फ से ढकी भूमि भी अनुपयोगी भूमि मानी जाती है। इस प्रकार की अनुपयोगी भूमि अधिकतम ……….. (38%) में पाई जाती है, इसके बाद ……….. (24%), हिमाचल प्रदेश (23%), अरुणाचल प्रदेश (12%) और सिक्किम (3%) का स्थान आता है।

**(ख)** देश के किस भाग में स्थानांतरी खेती के कारण सबसे अधिक अनुपयोगी भूमि पाई जाती है? (उत्तर-पूर्व/दक्षिण-पश्चिम/पूर्वी भाग/उत्तरी भाग)

**(ग)** भारत में सबसे अधिक अनुपयोगी भूमि किस राज्य में है? (जम्मू-कश्मीर और लद्दाख/गुजरात/उत्तराखंड/मध्य प्रदेश)

**(घ)** इनमें से कौन अनुपयोगी भूमि की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार नहीं है? (बायो-रिमेडिएशन/वनों की कटाई/अत्यधिक चराई/जलभराव)

**(ङ)** स्थानांतरी खेती से आप क्या समझते हैं?

**7(क)** भूमि प्रबंधन (Land Management) पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।

**उत्तर:**

**1(क)** 114.01Mha, जल, मध्य प्रदेश, आर्द्रभूमि, जलीय, स्थलीय, उत्तर प्रदेश, 38%, उत्तर प्रदेश

**2(क)** अनुभाग 6.2 देखें, (ख) अनुभाग 6.3 में देखें।

**3(क)** अनुभाग 6.3 में देखें। (ख) अनुभाग 6.4 में देखें।

**4(क)** अनुभाग 6.5 में देखें।

**5(क)** अनुभाग 6.6 देखें।

**(ख)** अनुभाग 6.6 में देखें।

**(ग)** अनुपयोगी भूमि विकास बोर्ड के उद्देश्यों के लिए अनुभाग 6.6 देखें।

**6(क)** स्थानांतरी खेती (Shifting Cultivation), उत्तर-पूर्वी राज्य, 34%, असम, 15%, अनुपयोगी भूमि (Wasteland), राजस्थान, जम्मू-कश्मीर और लद्दाख तथा उत्तराखंड **(ख)** उत्तर-पूर्व (North-East) **(ग)** जम्मू-

कश्मीर और लद्दाख (Jammu & Kashmir including Ladakh) **(घ)** बायो-रिमेडिएशन (Bio-remediation) **(ङ)** अनुभाग 6.5 में देखें।

**7(क)** अनुभाग 6.7 देखें।

# इकाई 7: भूमि से सम्बन्धित आपदाएँ और उनके निवारण: भूस्खलन, भूस्खल, भूकंप और सूखा

**इकाई संरचना**


**7.0 सीखने के उद्देश्य**

**7.1 परिचय**

**7.2 भूमि से संबंधित आपदाएँ**

**7.2.1 भूस्खलन / भूस्खल**

**7.2.1.1 भूस्खलन / भूस्खल के प्रकार**

**7.2.1.2 भूस्खलन/भू-स्खलन के कारण**

**7.2.1.3 भूस्खलन के प्रभाव**

**7.2.1.4 भूस्खलन को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न निवारक**

**7.2.2 भूकंप**

**7.2.2.1 भूकंप के प्रकार**

**7.2.2.2 भूकंप के कारण**

**7.2.2.3 भूकंप के प्रभाव**

**7.2.2.4 भूकंप के शमन उपाय**

**7.2.3 सूखा**

**7.2.3.1 सूखे के प्रकार**

**7.2.3.2 सूखे के कारण**

**7.2.3.3 सूखे के प्रभाव**

**7.2.3.4 सूखे के शमन उपाय**

**सारांश**


## 7.0 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप सक्षम होंगे:

- भू-संबंधित खतरों का वर्णन करने में।

- भूस्खलन (landslides), भूस्खल (landslips), भूकंप (earthquake) और सूखे (drought) को परिभाषित करने में।
- भूस्खलन, भूस्खल और सूखे के प्रकारों पर चर्चा करने में।
- भूस्खलन के कारणों, प्रभावों और शमन उपायों पर चर्चा करने में।
- भूकंप के कारणों, प्रभावों और शमन उपायों पर चर्चा करने में।
- सूखे के कारणों, प्रभावों और शमन उपायों पर चर्चा करने में।

## 7.1 परिचय

पृथ्वी जीवन को सहारा देने वाले कच्चे पदार्थों का भंडार है। हमारे प्राकृतिक संसाधन और आवास अंततः पृथ्वी के भीतर होने वाली गतिशील प्रक्रियाओं का परिणाम हैं, और यही प्रक्रियाएँ प्राकृतिक आपदाओं का स्रोत भी होती हैं। अनुमान है कि आने वाले समय में विनाशकारी भूकंपों, सूखों, बाढ़ों और भूस्खलनों से हजारों लोगों की मृत्यु हो सकती है। इन प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए अरबों-खरबों डॉलर की आवश्यकता होगी। इसके साथ-साथ भूमि धसाव, मिट्टी और पानी का प्रदूषण तथा अपरदन जैसी धीमी प्रक्रियाओं से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए भी बड़े निवेश की आवश्यकता होगी। जीवन और आधारभूत संरचनाओं की रक्षा के लिए इन निवेशों को उचित वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर करना आवश्यक है।

भूस्खलन, भूकंप और सूखा प्राकृतिक आपदाओं के अनुसार वर्गीकृत किए जाते हैं। ये ऐसी प्राकृतिक घटनाएँ हैं जिनका किसी भी राष्ट्र की पारिस्थितिकी और सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। प्राकृतिक आपदाओं को मुख्यतः दो व्यापक वर्गों में बाँटा जाता है:

1. **भू-भौतिकीय आपदाएँ (Geophysical Disasters):** जैसे भूकंप, सूखा, भूस्खलन, ज्वालामुखी विस्फोट, बाढ़ और जंगल की आग।
2. **जैविक आपदाएँ (Biological Hazards):** जैसे बीमारियाँ और संक्रमण।

Kates (1978) के अनुसार, पर्यावरणीय आपदा वह "संभावित खतरा है जो प्रकृति से उत्पन्न घटना द्वारा मानव निर्मित या प्राकृतिक गतिविधियों पर असर डालता है।" शाब्दिक रूप से हैजर्ड (*Hazard)* का अर्थ है – "जोखिम" । हैजर्ड को निम्न प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- **ऊर्जा के स्रोत के आधार पर:**
    - जैविक (Biological) – जीवित प्राणी (जैसे रोग और संक्रमण)।
    - रासायनिक (Chemical) – रासायनिक तत्व।
    - भौतिक (Physical) – पृथ्वी की गतिविधियाँ (जैसे भूकंप, चक्रवात)।
- **उत्पत्ति के आधार पर:**

- प्राकृतिक (जैसे भूकंप, बाढ़, सुनामी)।
- मानवजनित (जैसे रासायनिक दुर्घटनाएँ, औद्योगिक आपदाएँ)।

कई भू-संबंधित खतरे जो भूमि पर उत्पन्न होते हैं और क्षेत्र की पारिस्थितिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को प्रभावित कर सकते हैं। आप जानते हैं कि भूकंप, भूस्खलन, और सूखा वे प्राकृतिक आपदाएँ हैं जो स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र में होती हैं। भू-संबंधित खतरों के कारण और प्रभाव बहुत अधिक और अगणनीय हैं। इस इकाई में, आप भू-संबंधित खतरों और उनके शमन उपायों के बारे में भूस्खलन (landslides), भूस्खल (landslips), भूकंप और सूखे के विशेष संदर्भ में जानेंगे।

## 7.2 भूमि से संबंधित आपदाएँ

भूमि से संबंधित आपदाएँ वे प्राकृतिक आपदाएँ हैं जो भूमि पर घटित होती हैं और स्थलीय पारिस्थितिक (इकोसिस्टम) को नष्ट कर देती हैं। भूमि से संबंधित आपदाओं के विभिन्न प्रकार होते हैं, जैसे भूस्खलन, भू-स्खल, भूकंप, सूखा, बाढ़, ज्वालामुखी विस्फोट आदि। ये भूमि से संबंधित आपदाएँ प्राकृतिक तथा मानव-जनित गतिविधियों के कारण उत्पन्न होती हैं। भूमि से संबंधित आपदाओं के विभिन्न प्रकार जैसे भूस्खलन/भू-स्खलन, भूकंप और सूखा हैं। इन्हें निम्नलिखित उपशीर्षकों में वर्णित किया गया है।

**तालिका-1: भूमि से संबंधित आपदाओं की परिभाषा, प्रकार और कारण**

| क्रम सं. | आपदा का नाम | परिभाषा | प्रकार | कारण |
|---|---|---|---|---|
| 1. | **भूस्खलन / भूस्खल** | गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से मिट्टी या चट्टानों के बड़े पेमानें पर ढलान से नीचे और बाहर की और गति के परिणाम स्वरूप को भूस्खलन कहते हैं। | गिरना, बहना, रेंगना, मलबे का बहाव, हिमस्खलन, लहार, कीचड़ प्रवाह और पार्श्व प्रसार | **प्राकृतिक कारण:**<br>• गुरुत्वाकर्षण<br>• भूवैज्ञानिक कारक<br>• भारी और लंबी वर्षा<br>• भूकंप<br>• ज्वालामुखी<br>• तरंगें<br>**मानवजनित कारण:**<br>• अनुचित जल निकासी प्रणाली<br>• इमारतों, नहरों और खनन के लिए ढलानों पर गहरी खुदाई<br>• भूमि उपयोग में परिवर्तन• खड़ी ढलानों पर कृषि पद्धतियाँ |
| 2. | **भूकंप** | भूकंप को कंपन या झटकों के रूप में भी जाना जाता है। भूकंप पृथ्वी की सतह के | स्ट्राइक स्लिप फॉल्ट, नॉर्मल फॉल्ट और रिवर्स फॉल्ट | भूकंप तब आता है जब पृथ्वी के दो खंड अचानक एक-दूसरे के आगे खिसक जाते हैं। जिस सतह पर वे खिसकते हैं उसे भ्रंश (fault) या भ्रंश तल (fault plane) |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | "हिलने" की घटना है, जो ऊर्जा की अचानक रिहाई के कारण होती है और जो भूकंपीय तरंगें उत्पन्न करती है। | | कहते हैं। |
| **3.** | **सूखा** | यह एक लंबी अवधि है जब औसत से कम वर्षा होती है, आमतौर पर एक ऋतु से अधिक। | मौसम विज्ञान संबंधी सूखा, कृषि संबंधी सूखा, जल विज्ञान संबंधी सूखा और सामाजिक-आर्थिक सूखा | — |

## 7.2.1 भूस्खलन/भूस्खल

भूस्खलन को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "भूस्खलन एक सामान्य शब्द है जो पृथ्वी की सामग्री (मिट्टी, चट्टान और वनस्पति) के नीचे और बाहर की ओर गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से होने वाली विविध प्रकार की ढलान गतियों को दर्शाता है।" कुछ भूस्खलन बहुत तीव्र होते हैं और कुछ ही सेकंडों में हो जाते हैं, जबकि कुछ अन्य घंटों, हफ्तों या उससे भी अधिक समय में घटित होते हैं। मलबा प्रवाह (Debris Flow): यह चट्टान, मिट्टी और अन्य मलबे का तरल द्रव्यमान है जो पानी से संतृप्त होता है। कीचड़ प्रवाह या मलबा प्रवाह उन खड़ी और विरल वनस्पति वाली ढलानों पर पाए जाते हैं जहाँ भारी वर्षा मौसम-जनित सामग्री की मोटी परत को गति देती है। यह तब विकसित होता है जब पानी तेजी से भूमि में जमा हो जाता है (जैसे भारी वर्षा या तेज बर्फ पिघलने के दौरान), जिससे पृथ्वी की सतह कीचड़ या कीचड़ जैसे द्रव में बदल जाती है। यह कीचड़ बहुत तेजी से ढलानों या नालों से नीचे बह सकता है और अक्सर बिना किसी चेतावनी के हिमस्खलन जैसी गति से प्रहार कर सकता है। भूस्खलन प्रायः हिमालय और पश्चिमी घाट के पहाड़ी क्षेत्रों में होता है। हालाँकि, हिमालयी क्षेत्र की भौगोलिक नाज़ुकता के कारण वहाँ भूस्खलन अधिक होते हैं।

### 7.2.1.1 भूस्खलन / भूस्खलन के प्रकार

Varnes (1978) के अनुसार भूस्खलन निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

1. **गिरावट (Falls):** खड़ी ढलानों या चट्टानों से वस्तुओं का बड़ा टुकड़ा अलग होकर नीचे स्वतंत्र रूप से गिरना, उछलना और लुढ़कना।
2. **प्रवाह (Flows):** इस प्रकार की भूस्खलन में कई प्रकार की सामूहिक गतियाँ होती हैं जैसे क्रीप (Creep), मलवा प्रवाह (Debris Flow), मलवा हिंसखलन (Debris Avalanches), कीचड़ का बहाव (Mudflow)।
3. **क्रिप (Creep):** मिट्टी या चट्टानों का धीमा और स्थिर रूप से ढलान की ओर खिसकना।
4. **मलबा प्रवाह (Debris Flow):** ढलान से तेज गति से होने वाला सामूहिक प्रवाह, जिसमें ढीली मिट्टी, चट्टानें और कार्बनिक पदार्थ हवा और पानी के साथ मिलकर कीचड़ का रूप ले लेते हैं।
5. **मलबा हिमस्खलन (Debris Avalanches):** बहुत तेज़ से अत्यंत तीव्र गति तक का मलबा प्रवाह।

6. **लहार (Lahar):** ज्वालामुखी की ढलान से उत्पन्न कीचड़ प्रवाह, जो आमतौर पर भारी वर्षा, बर्फ या हिमनद के पिघलने, या ज्वालामुखी झीलों के टूटने से शुरू होता है।
7. **कीचड़ का बहाव (Mudflow):** यह गीली सामग्री का तेज़ी से बहने वाला एक ऐसा ढेर है जिसमें कम से कम 50% रेत, गाद और मिट्टी के आकार के कण होते हैं।
8. **पार्श्व प्रसार (Lateral Spreads):** ये अक्सर बहुत कम ढलान वाली जगहों पर होते हैं और इनके परिणामस्वरूप पृथ्वी की सामग्री लगभग क्षैतिज रूप से चलती है। पार्श्व प्रसार आमतौर पर द्रवीकरण (liquefaction) के कारण होता है, जहाँ संतृप्त तलछट (आमतौर पर रेत और गाद) एक ठोस से द्रवीभूत अवस्था में बदल जाते हैं, जिसका कारण प्रायः एक भूकंप होता है।

## 7.2.1.2 भूस्खलन/भू-स्खलन के कारण

भूस्खलन विभिन्न कारकों के कारण होते हैं, जिनमें **भूगोल (geography), गुरुत्वाकर्षण (gravity), मौसम (weather), भूजल (groundwater), लहरों की क्रिया (wave action), मिट्टी का प्रकार (type of soil)** और **मानवीय गतिविधियां (human activities)** शामिल हैं। आमतौर पर ये खड़ी ढलानों तथा कम ढलान वाले क्षेत्रों में भी हो सकते हैं। भूस्खलन के कारण प्राकृतिक या मानवजनित हो सकते हैं।

**(A) प्राकृतिक कारण**

प्राकृतिक कारणों में निम्नलिखित शामिल हैं:

1. **गुरुत्वाकर्षण (Gravity):** गुरुत्वाकर्षण खड़ी ढलानों पर अधिक प्रभावशाली होता है, लेकिन कम ढलान भी इसके प्रति संवेदनशील हो सकते हैं।
2. **भूगर्भीय कारक (Geological factors):** कई भूस्खलन ऐसी भूगर्भीय स्थितियों में होते हैं जहाँ झरझरी रेत और बजरी, मिट्टी की या चट्टान की अभेद्य परतों के ऊपर होती हैं। पानी ऊपरी सामग्री से रिसकर नीचे की परतों पर जमा हो जाता है, जिससे एक कमजोर क्षेत्र बनता है।
3. **भारी और लगातार बारिश (Heavy and Prolonged rainfall):** पानी अक्सर भूस्खलन का प्राथमिक कारक होता है। जब तूफानी पानी खड़ी ढलानों पर मिट्टी को संतृप्त कर देता है या जब अंतःस्रवण **(infiltration)** के कारण भूजल स्तर में तेजी से वृद्धि होती है, जिससे अक्सर भूस्खलन होता है।
4. **भूकंप (Earthquake):** भूकंप भूस्खलन का एक मुख्य कारण रहा है। जब विवर्तनिक प्लेटें हिलती हैं, तो उनके साथ मिट्टी भी हिलती है। खड़ी ढलानों पर भूकंप आने पर, मिट्टी खिसकती है, जिससे भूस्खलन होता है।
5. **जंगल की आग (Forest Fires):** जंगल की आग प्राकृतिक वनस्पति के विनाश के कारण मिट्टी के कटाव को बढ़ाती है जो बाढ़ और भूस्खलन को प्रेरित करती है।
6. **ज्वालामुखी (Volcanoes):** स्ट्रैटो ज्वालामुखी (Strato volcanoes) खासकर गीली परिस्थितियों में अचानक ढहने की संभावना जैसे ज्वालामुखी विस्फोट के बाद की स्थितियाँ, जिनमें विस्तृत क्षेत्रों में वनस्पति नष्ट हो जाना और ढीली ज्वालामुखी जैसे चट्टानें फैल जाना भूस्खलन को बढ़ावा देती हैं।

7. **लहरें (Waves):** लहरों की क्रिया समुद्र तट या चट्टान के आधार का कटाव और ढलान को कमजोर और भविष्य में भूस्खलन के लिए मंच तैयार कर सकती है।

**(B) मानवजनित कारण**

मानवीय गतिविधियाँ, विशेष रूप से जल निकासी या भूजल को प्रभावित करती हैं, वह भूस्खलन को गति दे सकती हैं। निम्न कुछ महत्वपूर्ण मानव निर्मित गतिविधियाँ जो भूस्खलन के लिए जिम्मेदार हैं; जैसे -

- **अनुचित जल निकासी प्रणाली (Inappropriate drainage system):** ढलानों पर प्राकृतिक जल निकासी लाइनों को रोकने से भूस्खलन की भेद्यता बढ़ जाती है।
- **भवन, सड़क, नहर और खनन के लिए ढलानों पर गहरी खुदाई (Deep Excavation on slopes for building roads, canals and mining):** इमारतों, सड़कों, तटबंधों और कट-एंड-फिल संरचनाओं जैसे विकासात्मक कार्य प्राकृतिक ढलानों को संशोधित करते हैं, जिससे भूस्खलन की संभावना बढ़ जाती है।
- **ढलान/भूमि उपयोग पैटर्न में बदलाव, वनों की कटाई, और खड़ी ढलानों पर कृषि पद्धतियाँ (Change in slope/land use pattern, deforestation, agricultural practices on steep slops):** वनों की कटाई, मौसमी फसलों की खेती, और बस्तियों में वृद्धि से भूमि उपयोग पैटर्न में बदलाव आता है। अनुचित भूमि उपयोग पद्धतियाँ, जैसे कि भारी जुताई, ने कई मामलों में भूस्खलन में योगदान दिया है।

## 7.2.1.3 भूस्खलन के प्रभाव

भूस्खलन के कई प्रभाव होते हैं, जो इस प्रकार हैं:

**1. भूमि के स्वरूप में बदलाव**

भूस्खलन से भूमि का पूरा स्वरूप बदल सकता है। यह पहाड़ों और पहाड़ी क्षेत्रों की संरचना को पूरी तरह से बाधित कर देता है। उत्तराखंड, जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और मिजोरम जैसे क्षेत्र भूस्खलन से प्रभावित हैं। कई सुंदर पारिस्थितिकी तंत्र जैसे तालाब, झीलें और जंगल भूस्खलन के कारण क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और अपनी संरचना खो देते हैं।

**2. मानव जीवन की हानि**

भूस्खलन एक प्राकृतिक आपदा है जो मानव जीवन को खतरे में डाल सकती है। पहाड़ी क्षेत्रों और पहाड़ों की तलहटी में रहने वाले लोग भूस्खलन के कारण मृत्यु जैसे जोखिम में होते हैं।

**3. पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव**

भूस्खलन से जंगल, भूमि और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हो सकते हैं। मलबा नदियों और झरनों में जाकर उनके प्राकृतिक बहाव को रोक सकता है। भूस्खलन के कारण पानी के कई गुण, जैसे पारदर्शिता (transparency), गंदलापन (turbidity), कुल ठोस (total solids), कुल घुलित ठोस (total dissolved solids) और घुलित ऑक्सीजन (dissolved oxygen), प्रभावित हो सकते हैं।

**4. आर्थिक प्रभाव**

भूस्खलन से स्कूल, शैक्षणिक संस्थान, अस्पताल, उद्योग, सड़कें और अन्य परिवहन प्रणालियों जैसे बुनियादी ढांचे को नुकसान पहुँच सकता है। इन बुनियादी चीजों की मरम्मत बहुत महंगी होती है जो राज्यों या देशों की अर्थव्यवस्था को बाधित करती है।

## 7.2.1.4 भूस्खलन को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न निवारक

भूस्खलन विभिन्न कारकों, जैसे स्थलाकृति (topography), भूविज्ञान (geology), भूवैज्ञानिक संरचना (geological structure), और भूजल (groundwater) के संयोजन से होता है। भूस्खलन को रोकने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं, जिन्हें आपदा के पहले, दौरान और बाद में वर्गीकृत किया गया है।

**भूस्खलन/आपदा से पहले**

1. उस क्षेत्र की पहचान करें जहां आप रहते हैं और अपने क्षेत्र में भूस्खलन की घटनाओं की आवृत्ति (frequency) पर ध्यान दें।
2. ढलानों पर वृक्षारोपण करें, क्योंकि उनकी जड़ें मिट्टी को स्थिर कर सकती हैं।
3. ढलान को कंक्रीट से ढकें, और इसमें पाइप डालकर ऊपर से पानी को बाहर निकलने दें।
4. भूस्खलन-खतरे वाले क्षेत्र में न रहें।
5. ऐसे क्षेत्र में कुछ भी निर्माण न करें जहां पहले भूस्खलन हुआ हो।
6. सुनिश्चित करें कि सभी पानी के पाइपों में रिसाव न हो।
7. ढलान के निचले हिस्से के सामने एक मजबूत दीवार बनाएं ताकि किसी भी कीचड़ के बहाव को रोका जा सके और उसके प्रवाह की दिशा भी बदली जा सके।
8. भूस्खलन की चेतावनी दिए जाने पर घर के अंदर ही रहें।
9. भारी बारिश होने पर पहाड़ी क्षेत्रों से दूर रहें।
10. भूस्खलन की संभावना को कम करने के लिए, ढलान में पानी के पाइप लगाए जा सकते हैं ताकि अतिरिक्त पानी को बाहर निकाला जा सके। इससे ढलान पर पानी का स्तर बहुत अधिक नहीं बढ़ेगा और भूस्खलन का जोखिम कम हो जाएगा।

**भूस्खलन/आपदा के दौरान**

i. **सतर्क और जागृत रहें:** कई बार मलबा प्रवाह (debris flows) तब होते हैं जब लोग सो रहे होते हैं। भारी बारिश की चेतावनी के लिए मौसम रेडियो या पोर्टेबल रेडियो या टेलीविज़न सुनें। ध्यान रखें कि तेज, छोटी अवधि की बारिश विशेष रूप से खतरनाक हो सकती है, खासकर लंबे समय तक भारी वर्षा और नम मौसम के बाद।

ii. **यदि आप जोखिम वाले क्षेत्र में हैं तो निकल जाएँ:** यदि भूस्खलन और मलबा प्रवाह के जोखिम वाले क्षेत्र में हैं, तो यदि सुरक्षित हो तो वहाँ से निकलने पर विचार करें और सुरक्षित रहें। याद रखें कि भारी बारिश के दौरान गाड़ी चलाना खतरनाक हो सकता है। यदि आप घर पर हो तो संभवतः दूसरी मंजिल पर चले जाएँ।

iii. **असामान्य आवाज़ों पर ध्यान दें:** ऐसी किसी भी असामान्य आवाज़ को सुनें जो हिलते हुए मलबे का संकेत दे सकती हैं, जैसे पेड़ों का टूटना या पत्थरों का आपस में टकराना। बहती हुई या गिरती हुई कीचड़ या

मलबे की एक धार बड़े भूस्खलन से पहले आ सकती है। हिलता हुआ मलबा तेजी से और कभी-कभी बिना चेतावनी के भी बह सकता है।

iv. **नदी या नाले के पास सतर्क रहें:** यदि आप किसी नाले या नदी के पास हैं, तो पानी के बहाव में अचानक वृद्धि या कमी और साफ पानी के गंदा होने पर सतर्क रहें। ऐसे बदलाव ऊपर की ओर भूस्खलन का संकेत हो सकते हैं।

v. **गाड़ी चलाते समय विशेष रूप से सतर्क रहें:** सड़कों के किनारे के तटबंध (embankments) भूस्खलन के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। सड़क पर ढही हुई पक्की सड़क, कीचड़, गिरे हुए पत्थरों और संभावित मलबा प्रवाह के अन्य संकेतों पर ध्यान दें।

**भूस्खलन के बाद**

1. **भूस्खलन वाले क्षेत्र से दूर रहें:** खुद को और अपने परिवार के सदस्यों को भूस्खलन वाले क्षेत्र से दूर रखें। आगे और भूस्खलन होने का खतरा हो सकता है।
2. **घायलों की मदद करें:** सीधे भूस्खलन क्षेत्र में प्रवेश किए बिना, उसके पास घायल और फंसे हुए लोगों की जाँच करें।
3. **पड़ोसियों की सहायता करें:** उन पड़ोसियों की मदद करें जिन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता हो सकती है, जैसे शिशु, बुजुर्ग और विकलांग व्यक्ति।
4. **आपातकालीन जानकारी पर ध्यान दें:** नवीनतम आपातकालीन जानकारी के लिए स्थानीय रेडियो या टेलीविज़न स्टेशनों को सुनें या देखें।
5. **बाढ़ पर नज़र रखें:** बाढ़ और भारी बारिश पर नज़र रखें, जो भूस्खलन या मलबा प्रवाह के बाद हो सकती है। ये दोनों अक्सर एक ही घटना से शुरू होते हैं।
6. इमारतों की जाँच करें: इमारत की नींव, चिमनी और आसपास की ज़मीन को हुए नुकसान की जाँच करें। इससे क्षेत्र की सुरक्षा का आकलन करने में मदद मिल सकती है।

## 7.2.2 भूकंप

भूकंप को कंपन (temblor) भी कहा जाता है। भूकंप का अर्थ है "पृथ्वी की सतह का हिलना, जो स्थलमंडल (lithosphere) में ऊर्जा के अचानक उत्सर्जन के कारण उत्पन्न भूकंपीय तरंगों (seismic waves) से होता है।" भूकंप प्राकृतिक आपदाओं का सबसे खतरनाक और विनाशकारी रूप है। यह कुछ ही मिनटों में लाखों लोगों की जान, इमारतें और अवसंरचनाएँ नष्ट कर सकता है। इसलिए, भूकंप मानव जीवन की सबसे भयावह प्राकृतिक घटना मानी जाती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि यह पूर्वानुमानित (predictable) नहीं होता और किसी भी प्रकार के संकेत दिए बिना घटित हो सकता है।

जब पृथ्वी की पपड़ी (earth's crust) के नीचे स्थित सामरिक प्लेटें (tectonic plates) आपस में खिसकती या टकराती हैं और पृथ्वी हिलती है, तो उसे भूकंप कहते हैं। सबसे अधिक विनाश आम तौर पर भूकंप केंद्र (epicenter) के आसपास होता है, वहीं से कंपन उत्पन्न होकर चारों ओर फैलता है।

**भूकंप विज्ञान (Seismology)** वह अध्ययन है जिसमें भूकंप और भूकंपीय तरंगों का विश्लेषण किया जाता है। इस विषय का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक को भूकंप वैज्ञानिक (Seismologist) कहा जाता है।

भारत का लगभग 50–60% भाग विभिन्न तीव्रता की भूकंपीय गतिविधियों के प्रति संवेदनशील है। इनमें से अधिकांश क्षेत्र हिमालय और उप-हिमालय (Sub-Himalayan) क्षेत्रों में स्थित हैं। जिन राज्यों के क्षेत्र सर्वाधिक जोखिम वाले भूकंपीय क्षेत्रों में आते हैं, वे हैं –

- पूर्वोत्तर राज्य (अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, मणिपुर और मिज़ोरम),
- अंडमान और निकोबार द्वीप समूह,
- गुजरात का पश्चिमी भाग,
- उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार के हिमालयी तराई क्षेत्र।

दक्षिण प्रायद्वीप (Deccan Peninsula) और राजस्थान भूकंपीय दृष्टि से सबसे कम संवेदनशील क्षेत्र माने जाते हैं।

**सारणी-2 : भारत में विभिन्न भूकंपीय क्षेत्र**

| Zone (क्षेत्र) | भारत का क्षेत्र | जोखिम की संभावना |
|---|---|---|
| Zone-1 (II) | भारत का कोई भी क्षेत्र ज़ोन-1 में वर्गीकृत नहीं है। | सबसे कम क्षति का जोखिम |
| Zone-2 (II) | कर्नाटक | कम क्षति का जोखिम |
| Zone-3 (III) | उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों का कुछ भाग | मध्यम क्षति का जोखिम |
| Zone-4(IV) | जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, पंजाब और उत्तर प्रदेश का कुछ भाग | उच्च क्षति जोखिम क्षेत्र |
| Zone-5 (V) | कश्मीर, हिमालय, उत्तर और मध्य बिहार, पूर्वोत्तर भारत, कच्छ का रण, और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह | उच्चतम जोखिम |

## 7.2.2.1 भूकंप के प्रकार

**(a) भूकंपीय भ्रंश (Earthquake fault types):** भूकंप उत्पन्न करने वाले भ्रंश (faults) मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं:

**(i) स्ट्राइक-स्लिप भ्रंश (Strike Slip Fault):** इस प्रकार के भ्रंश में दरार (fault) ऊर्ध्वाधर (vertical) होती है और टेक्टोनिक प्लेटें क्षैतिज दिशा (horizontally) में एक-दूसरे के पास से सरकती हैं। यह स्थिति उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ पपड़ी (crustal blocks) के खंड एक-दूसरे के पास से खिसकते हैं (चित्र 1)।

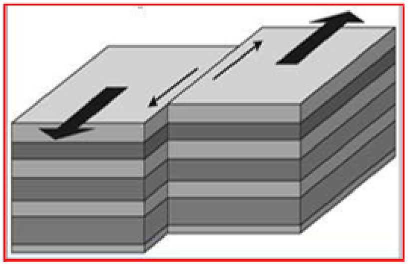

चित्र 1. स्ट्राइक-स्लिप भ्रंश

**(ii) सामान्य भ्रंश (Normal Fault):** इस प्रकार के भ्रंश में दरार (fault) कोणीय (at an angle) होती है। इसमें भ्रंश के ऊपर स्थित टेक्टोनिक प्लेट (जिसे हैंगिंग वॉल – Hanging Wall कहा जाता है) नीचे की ओर खिसक जाती है, जबकि भ्रंश के नीचे वाला खंड (जिसे फुट वॉल – Foot Wall कहा जाता है) अपनी जगह पर रहता है। यह स्थिति उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ पृथ्वी की पपड़ी (crustal blocks) में तनाव (extension) या खींचाव (pulling) होता है, जैसे कि विभिन्न सीमाओं (divergent boundaries) वाले क्षेत्रों में (चित्र 2)।

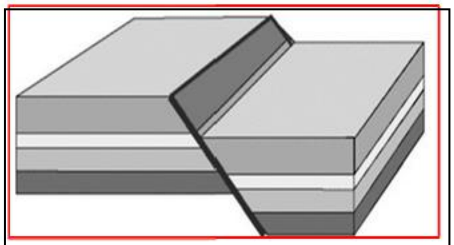
चित्र 2. सामान्य भ्रंश

**(iii) थ्रस्ट (या रिवर्स) भ्रंश [Thrust (Reverse) Fault]:** इस प्रकार के भ्रंश में दरार (fault) कोणीय होती है और भ्रंश के ऊपर स्थित खंड (हैंगिंग वॉल – Hanging Wall) नीचे वाले खंड (फुट वॉल – Foot Wall) की तुलना में ऊपर की ओर खिसक जाता है। यह स्थिति उन क्षेत्रों में होती है जहाँ पपड़ी (crustal blocks) एक-दूसरे की ओर धकेली (pushed together) जा रही होती है। रिवर्स भ्रंश (Reverse Fault) उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ पृथ्वी की पपड़ी संकुचित (shortened) हो रही होती है, जैसे कि संमिलन सीमाओं (convergent boundaries) पर (चित्र 3)।

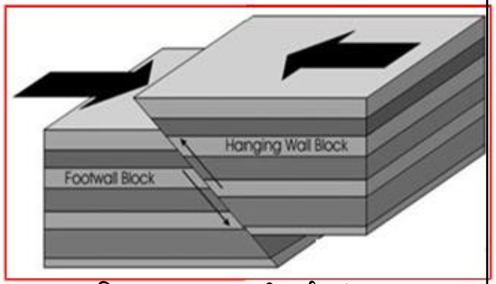

चित्र 3. थ्रस्ट (या रिवर्स) भ्रंश

**(b) आफ्टरशॉक्स (Aftershocks)**: आफ्टरशॉक वह भूकंप होता है जो किसी मुख्य भूकंप (Main Shock) के बाद घटित होता है। आफ्टरशॉक उसी क्षेत्र में आते हैं जहाँ मुख्य भूकंप आया था, लेकिन इनकी तीव्रता हमेशा मुख्य भूकंप से कम होती है। यदि किसी आफ्टरशॉक की तीव्रता मुख्य भूकंप से अधिक हो जाती है, तो उस आफ्टरशॉक को मुख्य भूकंप (Main Shock) के रूप में पुनः वर्गीकृत (re-designate) किया जाता है, और पहले वाले मुख्य भूकंप को आफ्टरशॉक के रूप में पुनः वर्गीकृत किया जाता है।

(c) **भूकंप की आवृत्ति (Frequency of Occurrence of Earthquake):** अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक वर्ष लगभग 5,00,000 भूकंप आते हैं। इनमें से लगभग 1,00,000 भूकंप ऐसे होते हैं जिन्हें लोग महसूस कर सकते हैं। छोटे (मामूली) भूकंप लगभग निरंतर पूरी दुनिया में आते रहते हैं, जैसे अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया और अलास्का क्षेत्रों में। गुटेनबर्ग-रिच्टर का नियम (Gutenberg-Richter Law) कहता है कि –

- प्रत्येक वर्ष 3.7–4.6 परिमाण (magnitude) का भूकंप आता है।
- प्रत्येक 10 वर्ष में 4.7–5.5 परिमाण का भूकंप आता है।
- प्रत्येक 100 वर्ष में 5.6 या उससे अधिक परिमाण का भूकंप आता है।

यह नियम किसी भी क्षेत्र और समयावधि में भूकंप के परिमाण और कुल संख्या के बीच संबंध को स्पष्ट करता है। यह नियम बेनों गुटेनबर्ग (Beno Gutenberg) और चार्ल्स फ्रांसिस रिच्टर (Charles Francis Richter) द्वारा 1956 में विकसित किया गया था।

**(d) भूकंपीय तरंगें (Seismic Waves):** हर भूकंप से विभिन्न प्रकार की भूकंपीय तरंगें उत्पन्न होती हैं, जो चट्टानों और तरल पदार्थों के माध्यम से अलग-अलग वेगों (velocities) से यात्रा करती हैं।

**(e) पी-तरंगें (P-Waves) या प्राथमिक तरंगें (Primary Waves) या दाब तरंगें (Pressure Waves):** शरीर तरंगों (Body Waves) का पहला प्रकार पी-तरंग है। यह भूकंपीय तरंगों (Seismic Waves) में सबसे तेज़ होती है और इसलिए सबसे पहले भूकंपीय स्टेशन पर पहुँचती है। पी-तरंग ठोस चट्टानों और द्रवों (जैसे पानी या पृथ्वी की द्रव परतों) के माध्यम से गति कर सकती है। कभी-कभी जानवर भूकंप की पी-तरंग को सुन सकते हैं। कुत्ते प्रायः भूकंप से ठीक पहले ज़ोर-ज़ोर से भौंकना शुरू कर देते हैं। भूकंप में पी-तरंग की सामान्य गति 5 से 8 किमी/सेकंड के बीच होती है।

**(f) एस-तरंगें (S-Waves), द्वितीयक तरंगें (Secondary Waves) या कतरनी तरंगें (Shear Waves):** शरीर तरंगों का दूसरा प्रकार एस-तरंग है, जो भूकंप में दूसरी तरंग होती है जिसे महसूस किया जाता है। एस-तरंगें पी-तरंगों से धीमी होती हैं और केवल ठोस चट्टानों के माध्यम से ही गति कर सकती हैं, किसी भी द्रव माध्यम से नहीं। यही गुण भूकंप वैज्ञानिकों (Seismologists) को इस निष्कर्ष पर ले गया कि पृथ्वी का बाहरी कोर (Outer Core) द्रव अवस्था में है। पी और एस तरंगों को सामूहिक रूप से शरीर तरंगें (Body Waves) कहा जाता है।

**(g) सतही तरंगें (Surface Waves):** ये केवल पृथ्वी की पर्पटी (Crust) में यात्रा करती हैं और शरीर तरंगों की तुलना में इनकी आवृत्ति (Frequency) कम होती है, जिससे इन्हें भूकंपीलेख (Seismogram) पर आसानी से पहचाना जा सकता है। हालांकि ये शरीर तरंगों के बाद पहुँचती हैं, लेकिन भूकंप से होने वाली अधिकतर क्षति और विनाश के लिए मुख्य रूप से यही तरंगें ज़िम्मेदार होती हैं। गहरे भूकंपों में सतही तरंगों की शक्ति और इनके कारण होने वाली क्षति कम हो जाती है।

**(h) लव तरंगें (Love Waves):** सतही तरंगों का पहला प्रकार लव तरंग कहलाता है, जिसका नाम ब्रिटिश गणितज्ञ ए. ई. एच. लव (A.E.H. Love) के नाम पर रखा गया है, जिन्होंने 1911 में इस प्रकार की तरंग के लिए गणितीय मॉडल विकसित किया था। लव तरंगें पूरी तरह से क्षैतिज (Horizontal) गति उत्पन्न करती हैं। रिक्टर पैमाना (Richter scale )1935 में अमेरिकी भूकंप वैज्ञानिक चार्ल्स रिक्टर (Charles Richter, 1891–1989) ने विकसित किया था। यह भूकंप की तीव्रता या शक्ति को मात्रात्मक रूप से मापने का तरीका है जो गणितीय आधार पर निर्मित है।

**भूकंपीलेख (Seismograph):** यह पृथ्वी की गति को मापता है, जिसमें उपर्युक्त सभी भूकंपीय तरंगें शामिल हैं जो भूकंप से उत्पन्न होती हैं।

## 7.2.2.2 भूकंप के कारण

भूकंप तब आता है जब पृथ्वी के दो भाग अचानक एक-दूसरे से खिसक जाते हैं। जिस सतह पर वे खिसकते हैं, उसे भ्रंश (Fault) या भ्रंश तल (Fault Plane) कहा जाता है। पृथ्वी की सतह के नीचे वह स्थान जहाँ भूकंप प्रारंभ होता है, उसे उपकेंद्र (Hypocenter) और उसके ठीक ऊपर सतह पर स्थित स्थान को केंद्रक (Epicenter) कहते हैं। भूकंप अक्सर ज्वालामुखीय क्षेत्रों में आते हैं और वहाँ इनका कारण टेक्टोनिक भ्रंश तथा ज्वालामुखी में मैग्मा की गति होती है। भूकंप मुख्य रूप से भूवैज्ञानिक भ्रंशों के टूटने से आते हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त ये ज्वालामुखीय गतिविधियों, भूस्खलन, खदानों में होने वाले विस्फोट और परमाणु परीक्षणों से भी हो सकते हैं।

## 7.2.2.3 भूकंप के प्रभाव

भूकंप के निम्नलिखित प्रभाव हो सकते हैं, परंतु ये इन्हीं तक सीमित नहीं हैं:

i. यह मानव जीवन को नष्ट करता है।
ii. यह विद्यालयों, शैक्षणिक संस्थानों, अस्पतालों, उद्योगों तथा अन्य व्यक्तिगत/निजी संपत्तियों के बुनियादी ढाँचे को नष्ट कर देता है।
iii. यह जलविद्युत परियोजनाओं अथवा बाँधों को नष्ट कर देता है।
iv. यह भूस्खलन, बाढ़, चक्रवात आदि को जन्म दे सकता है।
v. यह विनाशकारी बाढ़ का कारण बन सकता है।
vi. यह बड़े पैमाने पर सामाजिक एवं आर्थिक हानि का कारण बनता है।
vii. सीवेज प्रणाली के नष्ट हो जाने से यह महामारी रोगों को जन्म दे सकता है।
viii. यह विद्युत प्रणाली और संचार प्रणाली को पूरी तरह से नष्ट कर देता है
ix. यह कृषि भूमि को बर्बाद कर देता है।
x. कभी-कभी भूकंप परिवार, समुदाय और समाज के सदस्यों को एक-दूसरे से पूरी तरह अलग कर देता है।

## 7.2.2.4 भूकंप के शमन उपाय

जैसा कि आप जानते हैं, भूकंप सबसे तेज़, अचानक और अप्रत्याशित आपदा है। आपदा के समय बहुत प्रभावी उपाय करना संभव नहीं होता। इसलिए यह आवश्यक है कि आपदा से पहले नियमों और निर्देशों का पालन किया जाए, जिससे भूकंप के प्रभाव को कम किया जा सके। भूकंप के शमन (Mitigation) के कई उपाय हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण उपाय नीचे दिए गए हैं, जो भूकंप के प्रभाव को कम करने में निश्चित रूप से सहायक होते हैं:

**(a) भूकंप से पहले (Before Earthquake):**

जैसा कि आप जानते हैं, भूकंप की तीव्र गति कोई संकेत नहीं देती। यदि हम इंतजार करेंगे कि धरती हिलना शुरू करे, तो शायद बहुत देर हो जाएगी। इसलिए भूकंप, विशेषकर भूकंप संभावित क्षेत्रों में, निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

1. जिस क्षेत्र में आप रहते हैं वहाँ के भूकंप क्षेत्र (Seismic Zone) और भूकंप की आवृत्ति (Frequency) की पहचान करें।
2. सरकार द्वारा निर्धारित नियमों और विनियमों का पालन करें। भारत सरकार ने विभिन्न भूकंपीय क्षेत्रों (Seismic Zones) में भवन निर्माण के लिए अलग-अलग नियम बनाए हैं।
3. लोगों/समुदायों के लिए आपदा प्रबंधन (Disaster Management) का प्रशिक्षण नियमित रूप से आयोजित किया जाना चाहिए।
4. मीडिया और राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया बल (NDRF) आदि अधिकारियों के फ़ोन नंबर हमेशा पास रखें।
5. एक निश्चित स्थान पर हमेशा निम्नलिखित वस्तुएँ रखें: पीने का पानी, सूखा भोजन, प्राथमिक उपचार किट (First Aid Kit), टॉर्च और बैटरी से चलने वाला रेडियो।
6. घर में ऐसे स्थान की पहचान करें जो भूकंप के समय आपको सुरक्षा (Cover) प्रदान कर सके।
7. भूकंप के दौरान लंबी दूरी के फ़ोन कॉल करना आसान हो सकता है। इसलिए परिवार के आपातकालीन संपर्क (Emergency Contact) के रूप में किसी बाहर रहने वाले रिश्तेदार या मित्र की पहचान करें। यदि आपदा के बाद परिवार के सदस्य एक-दूसरे से अलग हो जाएँ और संपर्क न कर सकें, तो वे उस निर्धारित रिश्तेदार/मित्र से संपर्क करें। इस संपर्क व्यक्ति का पता और फ़ोन नंबर परिवार के सभी सदस्यों के पास होना चाहिए।

**(b) भूकंप के दौरान (During Earthquake):** भूकंप आने से पहले कोई चेतावनी नहीं देता। कभी-कभी, एक तेज़ गर्जन जैसी आवाज़ उसके आने का संकेत कुछ सेकंड पहले दे सकती है। ये कुछ सेकंड हमें सुरक्षित स्थान पर जाने का मौका दे सकते हैं। भूकंप के दौरान सुरक्षित रहने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव हैं:

- **i.** तुरंत सुरक्षित स्थान लें जैसे मेज़ या मज़बूत फर्नीचर के नीचे जाएँ, घुटनों के बल बैठें, फ़र्श के पास रहें। संतुलन बनाए रखने के लिए फर्नीचर को पकड़ें।
- **ii.** दरवाज़े की चौखट (Doorway) में खड़े न हों। तेज़ झटके से गंभीर चोट लग सकती है।
- **iii.** खिड़कियों, शीशों, अलमारियों और अन्य असुरक्षित भारी वस्तुओं से दूर रहें।
- **iv.** यदि आप भूमिगत घरों या कमरों में हैं, तो इमारत से बाहर भागने की कोशिश न करें।
- **v.** कभी भी लिफ्ट का उपयोग न करें।
- **vi.** यदि आप ऐसे घर में रहते हैं जो खुले क्षेत्र के पास है, तो सबसे अच्छा यह होगा कि खुले क्षेत्र में चले जाएँ जहाँ पेड़, बिजली और टेलीफ़ोन की तारें न हों।
- **vii.** यदि आप बाहर खुले में चले जाते हैं, तो इमारतों, स्ट्रीट लाइट और बिजली की तारों से दूर रहें। एक बार खुले में पहुँचने पर वहीं रुकें जब तक झटके बंद न हो जाएँ। खुले तारों वाले स्थान से बचें और उन धातु की वस्तुओं को न छुएँ जो ढीली तारों के संपर्क में हों और क्षतिग्रस्त संरचनाओं से दूर रहें।
- **viii.** यदि आप वाहन में हैं, तो इमारतों, पेड़ों और पुलों से दूर खुले क्षेत्र में ले जाएँ। पुल या रैंप से बचें, क्योंकि भूकंप से वे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

**(c) भूकंप के बाद (After Earthquake):** भूकंप के बाद ध्यान रखने योग्य कुछ बातें इस प्रकार हैं। इस दौरान बरती गई सावधानियाँ आपकी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक हैं:

1. जूते पहनें ताकि मलबे और अन्य हानिकारक पदार्थों से पैरों की सुरक्षा हो सके।
2. भूकंप के बाद आफ्टरशॉक्स (Aftershocks) के लिए तैयार रहें। आफ्टरशॉक्स अतिरिक्त क्षति पहुँचा सकते हैं और कमजोर संरचनाओं को गिरा सकते हैं। ये भूकंप के बाद पहले कुछ घंटों, दिनों, हफ्तों और महीनों तक भी आ सकते हैं।
3. आग लगने के खतरों की जाँच करें और मोमबत्ती या लालटेन की बजाय टॉर्च का उपयोग करें।
4. यदि आपका भवन भूकंप के बाद सुरक्षित स्थिति में है तो अंदर रहें और रेडियो पर सलाह सुनें। यदि भवन की क्षति के बारे में निश्चित न हों तो सावधानीपूर्वक बाहर निकलें।
5. घायलों या फँसे हुए लोगों की मदद करें और प्राथमिक उपचार दें। गंभीर रूप से घायल व्यक्तियों को तब तक न हटाएँ जब तक कि उन्हें और अधिक चोट लगने का ख़तरा न हो।
6. अपने पड़ोसियों की मदद करना याद रखें, जिन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता हो सकती है — जैसे शिशु, बुजुर्ग और दिव्यांगजन।
7. रेडियो पर नवीनतम आपातकालीन जानकारी सुनते रहें।
8. क्षतिग्रस्त इमारतों से दूर रहें।
9. केवल तभी घर लौटें जब अधिकृत एजेंसियाँ इसे सुरक्षित घोषित करें। गिरी हुई दवाइयाँ, ब्लीच, पेट्रोल या अन्य ज्वलनशील तरल पदार्थ तुरंत साफ करें। यदि गैस या अन्य रसायनों की गंध आए तो तुरंत क्षेत्र छोड़ दें।
10. यदि गैस की गंध आती है तो खिड़कियाँ खोलें और तुरंत इमारत से बाहर निकल जाएँ। गैस सिलेंडर के ऊपरी स्विच को बंद कर दें।
11. विद्युत प्रणाली की क्षति की जाँच करें। यदि चिंगारी, तार टूटे या जलने की गंध आए, तो मुख्य फ्यूज़ बॉक्स से बिजली बंद कर दें। सीवेज और पानी की पाइप लाइनों की भी जाँच करें। यदि सीवेज लाइनों में क्षति का संदेह हो तो शौचालय का उपयोग न करें। यदि पानी की पाइपें क्षतिग्रस्त हों तो नल का पानी न पिएँ।
12. टेलीफ़ोन का उपयोग केवल आपातकालीन कॉल के लिए करें।
13. यदि भूकंप के दौरान परिवार के सदस्य एक-दूसरे से बिछड़ जाएँ तो आपदा के बाद पुनर्मिलन के लिए एक योजना बनाएँ। सुनिश्चित करें कि परिवार का हर सदस्य संपर्क व्यक्ति का नाम, पता और फ़ोन नंबर जानता हो।

## 7.2.3 सूखा

सूखा सामान्यतः तब होता है जब एक मौसम से अधिक समय तक औसत से कम वर्षा होती है। यह प्रायः सामान्य से अधिक तापमान के साथ आता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि लोग किसी क्षेत्र का अत्यधिक

उपयोग या अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि कर दें, जिसके कारण उपलब्ध जल लोगों की आवश्यकता से कम पड़ जाए। सूखा जल की दीर्घकालिक कमी की एक व्यापक मौसम संबंधी स्थिति है।

## 7.2.3.1 सूखे के प्रकार

(i) **मौसम संबंधी सूखा (Meteorological Drought):** यह विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट होता है। इसे सरल भाषा में "निर्धारित अवधि में वर्षा की कमी" के रूप में परिभाषित किया जाता है। वर्षा/वृष्टि की मात्रा और अवधि क्षेत्र विशेष पर निर्भर करती है।

(ii) **कृषि संबंधी सूखा (Agricultural Drought):** यह फसलों की विभिन्न वृद्धि अवस्थाओं के दौरान उनकी जल आवश्यकताओं से जुड़ा होता है। कृषि सूखा के अंतर्गत मौसम संबंधी और जल वैज्ञानिक (hydrological drought) सूखे दोनों की विशेषताओं को जोड़ता है। इस प्रकार का सूखा फसलों, पशुधन और वानिकी को प्रभावित करता है।

(iii) **जलवैज्ञानिक सूखा (Hydrological Drought):** यह धाराओं, नदियों और जलाशयों में लगातार जल की मात्रा में कमी को संदर्भित करता है। मानव गतिविधियाँ, जैसे जलाशयों से अत्यधिक जल निकासी, जलवैज्ञानिक सूखे को और खराब कर सकती हैं। यह प्रायः मौसम संबंधी सूखे से जुड़ा होता है। इस प्रकार के सूखे सतही जल आपूर्ति में कमी से पहचाने जाते हैं।

(iv) **सामाजिक-आर्थिक सूखा (Socio-Economic Drought):** यह तब होता है जब जल की मांग, जल आपूर्ति से अधिक हो जाती है। सामाजिक-आर्थिक सूखे के उदाहरणों में अत्यधिक सिंचाई या कम नदी प्रवाह के कारण जलविद्युत संयंत्रों के ऊर्जा उत्पादन घटाना आदि शामिल है।

## 7.2.3.2 सूखे के कारण

सूखे के कई कारण होते हैं। सूखे के प्राकृतिक और मानव-निर्मित दोनों प्रकार के कारण निम्नलिखित हैं:

**(a) सूखे के प्राकृतिक और मानव कारण (Natural and Human Causes of Drought)**

i. **वनों की कटाई (Deforestation):** जैसा कि आप जानते हैं, जलचक्र में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पेड़ वाष्पीकरण को कम करते हैं, पर्याप्त जल का भंडारण करते हैं आदि। इसलिए, वनों की कटाई से किसी क्षेत्र में सूखा जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

ii. **वैश्विक ऊष्मीकरण (Global Warming):** वैश्विक ऊष्मीकरण वह स्थिति है जिसमें पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ जाता है। मानव गतिविधियों के कारण वातावरण में अधिक ग्रीनहाउस गैसें बढ़ रही हैं। परिणामस्वरूप पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। ये परिस्थितियाँ भी सूखे का कारण बनती हैं।

iii. **भूमि और जल का तापमान (Land and Water Temperatures):** जैसे-जैसे समग्र तापमान बढ़ता है, अधिक जल वाष्पीकृत होता है और गंभीर मौसमीय परिस्थितियाँ बढ़ जाती हैं। भूदृश्य और फसलों को

जीवित रहने के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है, जिससे कुल मिलाकर जल की माँग बढ़ जाती है।

iv. **वायु परिसंचरण और मौसमीय पैटर्न (Air Circulation and Weather Patterns):** वायु का प्रवाह और मौसमीय प्रतिरूप भी सूखे का कारण बनते हैं। जैसे एल-नीनो (El Nino) या ला-नीना (La Nina) जैसी घटनाएँ कुछ क्षेत्रों में सूखे के लिए जिम्मेदार होती हैं। मौसमीय पैटर्न हवा में मौजूद जल को इधर-उधर ले जाते हैं।

v. **मृदा में नमी का स्तर (Moisture Level in Soil):** मिट्टी की नमी भी सूखे में योगदान देती है। जब मिट्टी की नमी कम हो जाती है, तो बादल बनाने के लिए जल का वाष्पीकरण भी कम होता है। इसका असर वर्षा चक्र पर पड़ता है। जैसे-जैसे पृथ्वी का तापमान बढ़ता है, अधिक जल की आवश्यकता होती है लेकिन उपलब्धता में कमी से गंभीर सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है।

vi. **जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion):** जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि भी सूखे के लिए जिम्मेदार होती है। अधिक जनसंख्या को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है। यह परिस्थिति आर्थिक सूखे का कारण बन सकती है।

**(b) भारत में सूखा (Drought in India):** भारत का लगभग 5,11,300 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र सूखा-प्रवण है। सन् 1801 से अब तक भारत में लगभग 40 भयंकर सूखे पड़े हैं। भारत के मुख्य सूखा प्रभावित क्षेत्र जैसे महाराष्ट्र, उडिसा, तेलंगाना, राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ हैं। महाराष्ट्र में 36 जिलों में से 21 जिले सूखे का सामना कर रहे हैं। जैसा कि आप जानते हैं, सूखे के प्रभावों को कम करने के लिए महाराष्ट्र में पानी पंचायत आंदोलन शुरू किया गया था। उडिसा के लगभग 16 जिले सूखा-प्रवण हैं। उडिसा के मुख्यमंत्री श्री नवीन पटनायक ने सूखा प्रभावित किसानों के लिए 100 करोड़ रुपये की सहायता राशि की घोषणा की। तेलंगाना के लगभग सभी जिले, जिससे आदिलाबाद और कम्मम जिलों को छोड़कर, सूखे से प्रभावित हैं। राजस्थान के 19 जिले भी सूखे से प्रभावित हुए। मध्य प्रदेश के 52 जिलों में से 46 जिले सूखा प्रभावित हैं। झारखंड के 22 जिले सूखे जैसी स्थिति का सामना कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश के 50 जिले सूखे से प्रभावित

**तालिका 3. भारत में सूखे का इतिहास**

| अवधि | भारत में सूखे के वर्ष | सूखे की संख्या |
|---|---|---|
| 1801-1830 | 1801, 1804, 1806, 1812, 1819, 1825 | 06 |
| 1831-1860 | 1832, 1833, 1837, 1853, 1860 | 05 |
| 1861-1890 | 1862, 1866, 1868, 1873, 1877, 1883 | 06 |
| 1891-1920 | 1891, 1897, 1899, 1901, 1904, 1905, 1907, 1911, 1918, 1920 | 10 |
| 1921-1950 | 1939, 1941 | 02 |
| 1951-1980 | 1951, 1965, 1966, 1971, 1972, 1974, 1979 | 07 |
| 1981-2010 | 1982, 1987, 2002, 2009 | 04 |

हैं। कर्नाटक के 27 जिले सूखा झेल रहे हैं। इसके अतिरिक्त, गुजरात, पश्चिम बंगाल, हरियाणा और बिहार राज्य भी भारत के सूखा प्रभावित राज्यों में शामिल हैं।

## 7.2.3.3 सूखे के प्रभाव

सूखे के आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक जैसे अनेक प्रभाव दिखाई देते हैं। इनके प्रमुख प्रभाव नीचे दिए गए हैं

**(a) आर्थिक प्रभाव (Economic Impacts):**

1. किसान और लोग अपनी सब्ज़ियाँ, अनाज और अन्य फसलें नष्ट होने पर आर्थिक हानि उठा सकते हैं।
2. यदि जल आपूर्ति बहुत कम हो, तो किसानों को सिंचाई पर अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है।
3. पशुपालकों को अपने पशुओं के लिए चारे और पानी पर अधिक लागत करनी पड़ती है।
4. सूखे से खेती पर निर्भर जैसे ट्रैक्टर और खाद्य बनाने वाले उद्योग अपना व्यापार खो सकते हैं।
5. जब जंगल की आग लकड़ी के भंडार को नष्ट कर देती है जिससे लकड़ी उद्योग से जुड़े लोग प्रभावित हो सकते हैं।
6. नावों और मछली पकड़ने के उपकरणों पर निर्भर कार्य सूख चुके झीलों और जलाशयों के कारण अपने कुछ सामान नहीं बेच पाते।
7. जलविद्युत कंपनियों को, यदि जल आपूर्ति में कमी आ जाए, तो अन्य ईंधन स्रोतों पर अधिक पैसा खर्च करना पड़ सकता है।
8. जल पर आधारित कंपनियों को नई या अतिरिक्त जल आपूर्ति पर पैसा खर्च करना पड़ सकता है।
9. नदियों में जल की कमी के कारण नौवहन कठिन हो जाता है। जहाजों को नदियों, नहरों और धाराओं में घटते जलस्तर के कारण चलने में कठिनाई होती है, जिससे जल परिवहन पर निर्भर अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।
10. समुदायों को खाद्य वस्तुओं के लिए अधिक कीमत चुकानी पड़ सकती है।

**(b) पर्यावरणीय प्रभाव (Environmental Impacts):** सूखा पर्यावरणीय स्थितियों को भी अनेक तरीकों से प्रभावित करता है। जैसा कि आप जानते हैं, पौधे और जानवर जल और जल-आधारित आवास पर निर्भर करते हैं। जब सूखा आता है, तो जानवरों की खाद्य आपूर्ति घट जाती है जिससे\उनका आवास नष्ट हो सकता है। कभी-कभी यह हानि अस्थायी होती है और सूखा समाप्त होने पर स्थिति सामान्य हो जाती है। लेकिन कई बार सूखे का प्रभाव पर्यावरण पर लंबे समय तक या स्थायी रूप से पड़ सकता है। सूखे के प्रमुख पर्यावरणीय प्रभाव इस प्रकार हैं: मछलियों और वन्यजीवों के आवास का विनाश।, जंगली जानवरों के लिए भोजन और पीने के पानी की कमी, खाद्य और जल आपूर्ति घटने से जंगली जानवरों में बीमारियों की वृद्धि, वन्यजीवों का पलायन।, संकटग्रस्त प्रजातियों पर दबाव में वृद्धि, जलाशयों, झीलों और तालाबों में जलस्तर का गिरना, आर्द्रभूमियों (Wetlands) का क्षरण, सूखा जंगल की आग की संभावना को बढ़ा देता है, जल और वायु द्वारा मिट्टी का कटाव, मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट।

**(c) सामाजिक प्रभाव (Social Impacts):** सूखे के सामाजिक प्रभावों में सार्वजनिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, जल की कमी के कारण लोगों के बीच संघर्ष, और जीवनशैली में परिवर्तन शामिल हैं। सूखे के प्रमुख सामाजिक प्रभाव

जैसे सूखे से होने वाली आर्थिक हानियों के कारण अवसाद (Depression), कम जल प्रवाह और खराब जल गुणवत्ता से जुड़े मानव स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, धूल (Dust) से संबंधित स्वास्थ्य समस्याएँ, मानव जीवन की हानि, जंगल और चरागाह की आग की बढ़ती घटनाओं से जन सुरक्षा के लिए खतरा, लोगों की आय में कमी, लोग गाँवों से शहरों की ओर या एक शहर से दूसरे शहर की ओर पलायन करते हैं।

## 7.2.3.4 सूखे के शमन उपाय

सूखे के प्रभावों को निम्नलिखित उपायों से कम किया जा सकता है:

**पूर्वानुमान (Prediction):** सूखे का पूर्वानुमान जलवायु अध्ययन से लगाया जा सकता है, जिसमें महासागर/वायुमंडलीय मॉडल जिससे महासागर और वायुमंडल में असामान्य परिसंचरण पैटर्न, मिट्टी की नमी, तथा घरेलू, पशुपालन और सिंचाई उपयोग के लिए उपलब्ध जल भंडार का आकलन किया जाता है। वैज्ञानिक और शोधकर्ता किसी स्थान के पूर्व इतिहास, मौसम निगरानी प्रणाली आदि के आधार पर भी सूखे का अनुमान लगाते हैं।

**निगरानी (Monitoring):** वर्षा, मौसम, फसल की स्थिति और जल उपलब्धता जैसी महत्वपूर्ण जानकारियों से निगरानी की जा सकती है। उपग्रह अवलोकन (Satellite observations) जमीनी प्रणालियों से प्राप्त आंकड़ों को पूरक करते हैं और सूखे की निगरानी में सहायक होते हैं।

**प्रभाव मूल्यांकन (Impact Assessment):** भूमि उपयोग के प्रकार, जनसांख्यिकी (demographics), मौजूदा बुनियादी ढाँचा, सूखे की तीव्रता और प्रभावित क्षेत्रफल, तथा इसका कृषि उत्पादन, मानव स्वास्थ्य, जल की मात्रा और गुणवत्ता पर प्रभाव का आकलन किया जाता है।

**प्रतिक्रिया (Response):** सूखे से निपटने के लिए सबसे पहला महत्वपूर्ण कदम है उन्नत सूखा निगरानी प्रणाली विकसित करना। आधुनिक तकनीक और उपग्रह आधारित आँकड़ों की मदद से मौसम और वर्षा की सटीक जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जिससे सूखे की स्थिति का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। दूसरा कदम बेहतर जल और फसल प्रबंधन है। वैज्ञानिक सिंचाई तकनीकों का उपयोग, सूखा-रोधी फसलों की खेती तथा उपलब्ध जल संसाधनों का उचित उपयोग करके सूखे के प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसके साथ ही भूजल संसाधनों का प्रयोग तथा आवश्यकता पड़ने पर जल आपूर्ति को बढ़ाना भी आवश्यक है। जन-जागरूकता और पर्यावरण शिक्षा भी सूखे के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि लोग जल संरक्षण की तकनीकों जैसे वाटरशेड प्रबंधन और वर्षा जल संचयन को अपनाते हैं, तो स्थानीय स्तर पर जल की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। अंत में, यह आवश्यक है कि स्थानीय योजना, जल की माँग में कमी और जल संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाए। सामुदायिक भागीदारी और दीर्घकालिक नीतियों के माध्यम से सूखे के नकारात्मक प्रभावों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

**तालिका-4: सूखे से बचाव के उपाय और तैयारी की योजना (स्रोत: Gupta et.al., 2011)**

| बचाव उपाय (Preventive Measures) | तैयारी की योजना (Preparedness Plan) |
|---|---|

| | |
|---|---|
| जल संग्रहण के लिए बाँध/जलाशय और आर्द्रभूमियाँ (wetlands) बनाना।<br>जलग्रहण क्षेत्र (Watershed) का प्रबंधन।<br>पशुपालन प्रबंधन।<br>सूखा-प्रवण क्षेत्रों के लिए उचित फसलों का चयन।<br>मृदा संरक्षण तकनीक।<br>वनों की कटाई और वनाग्नि को कम करना।<br>जल की सतत उपलब्धता के लिए वैकल्पिक भूमि उपयोग मॉडल।<br>स्थानीय लोगों को शिक्षा और प्रशिक्षण देना। | **1.** कृषि में सुधार करना, जिसमें फसल प्रणाली में बदलाव और सूखा-रोधी किस्मों का प्रयोग शामिल हो।<br>**2.** चरागाह प्रबंधन: चराई के पैटर्न में सुधार, चारा उपलब्ध कराना तथा झाड़ियों और पेड़ों की रक्षा।<br>**3.** जल संसाधन प्रणाली का विकास: बेहतर सिंचाई व्यवस्था, उन्नत भंडारण सुविधाओं का निर्माण, सतही जल को वाष्पीकरण से बचाना और सूक्ष्म-सिंचाई (Micro-Irrigation) तकनीक को अपनाना।<br>**4.** उन्नत और वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग से पशुपालन सुविधाओं को बढ़ावा देना। |

**सूखे से पहले (Before Drought):**

- सूखा आने से पहले क्षेत्र में सूखे के इतिहास को पहचानना और समझना आवश्यक है।
- मौसम की रिपोर्ट को नियमित रूप से निगरानी करनी चाहिए
- फसल प्रबंधन में निम्नलिखित बिंदुओं को शामिल करना चाहिए
  - ऐसे पेड़ लगाएँ जो पर्याप्त मात्रा में पानी को संचित कर सकें।
  - सूखा-प्रवण क्षेत्रों में फसल चक्र (Crop Rotation) अपनाना चाहिए।
  - ऐसी फसलें उगानी चाहिए जो सूखा और बाढ़ दोनों के प्रति सहनशील हों।
- भूमि प्रबंधन में निम्न कदम उठाए जाने चाहिए:
  - मिट्टी को स्वस्थ बनाए रखें।
  - अधिक चराई (Overgrazing) को रोकें।
  - भूमि और जलस्रोतों के चारों ओर वनस्पति (Riparian Vegetation) स्थापित करें।
- खरपतवार और अनचाही फसलों को नियंत्रित किया जाना चाहिए।
- कृषि कार्यों में जल की हानि को न्यूनतम करना चाहिए
- सूखा-प्रवण क्षेत्रों में वैकल्पिक जल स्रोतों की पहचान करनी चाहिए।

**सूखे के बाद (After Drought):**

- सूखे के दौरान और उसके बाद मिट्टी की नियमित जाँच की जानी चाहिए।
- कटाई की गई फसलों और चारे की पोषक गुणवत्ता की भी जाँच करनी आवश्यक है।

# सारांश

इस इकाई में हमने भूमि से संबंधित विभिन्न प्रकार के खतरों पर चर्चा की है। अब तक आपने यह सीखा है कि:

- Kates (1978) के अनुसार पर्यावरणीय खतरा वह "संभावित जोखिम है जो प्रकृति से उत्पन्न घटनाओं द्वारा मानव निर्मित या प्राकृतिक गतिविधियों को प्रभावित करता है।" शाब्दिक रूप से, hazard का अर्थ है "जोखिम"। खतरे को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे ऊर्जा स्रोत के आधार पर: जैविक (जहाँ ऊर्जा स्रोत जीवित जीव होते हैं, उदाहरण बीमारियाँ और संक्रमण), रासायनिक (जहाँ ऊर्जा स्रोत रासायनिक तत्व होते हैं), भौतिक (जहाँ ऊर्जा स्रोत पृथ्वी की भौतिक गतिविधियाँ होती हैं, उदाहरण: भूकंप, चक्रवात) उत्पत्ति के आधार पर प्राकृतिक (भूकंप, बाढ़, सुनामी) और मानव निर्मित (रासायनिक खतरे, औद्योगिक खतरे आदि)
- भूमि से संबंधित कई प्रकार के खतरे ऐसे होते हैं जो भूमि पर उत्पन्न होते हैं और क्षेत्र की पारिस्थितिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को प्रभावित कर सकते हैं। जैसे कि भूकंप, भूस्खलन, भूमि धंसकन (landslips), सूखा ये सभी प्राकृतिक आपदाएँ भूमि पारितंत्र में घटित होती हैं। इनके कारण और प्रभाव बहुत बड़े तथा असीमित हो सकते हैं। इस इकाई में आप भूमि से जुड़े खतरों और उनके निवारण उपायों के बारे में विशेष रूप से भूस्खलन, भूमि धंसकन, भूकंप और सूखे के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।
- भूस्खलन (Landslide) एक सामान्य शब्द है, जो पृथ्वी की सामग्री (मिट्टी, चट्टान, वनस्पति) के ढलान पर नीचे और बाहर की ओर खिसकने की प्रक्रिया को दर्शाता है, जो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में होती है। कुछ भूस्खलन बहुत तेज़ होते हैं (कुछ ही सेकंड में), जबकि कुछ को घंटे, हफ्ते या उससे भी अधिक समय लग सकता है। Debris flow ऐसे द्रव्यमान होते हैं जिनमें चट्टान, मिट्टी और अन्य मलबा पानी से संतृप्त होकर बहते हैं।
- भूस्खलन के विभिन्न प्रकार होते हैं, जैसे: गिरना (Falls), बहाव (Flows), रेंगना (Creep), मलबे का बहाव (Debris flow), मलबे का हिमस्खलन (Debris avalanches), लाहर (Lahar), कीचड़ का बहाव (Mudflow), और पार्श्व फैलाव (Lateral spreads)।
- भूस्खलन और भूमि धंसकन के प्राकृतिक कारण हो सकते हैं गुरुत्वाकर्षण, भूवैज्ञानिक कारक, भारी और लंबे समय तक वर्षा, भूकंप, जंगल की आग, ज्वालामुखी और समुद्री लहरें।
- भूस्खलन के मानवजनित कारण हो सकते हैं अनुचित जल निकासी प्रणाली, ढलानों पर गहरी खुदाई (भवन, सड़कें, नहरें और खनन के लिए), ढलान/भूमि उपयोग पैटर्न में परिवर्तन, वनों की कटाई, और तीव्र ढलानों पर कृषि गतिविधियाँ।
- भूस्खलन भूमि की संरचना को प्रभावित कर सकते हैं, जनहानि का कारण बन सकते हैं और आर्थिक क्षति पहुँचा सकते हैं।

- भूकंप को tremor या temblor भी कहा जाता है। भूकंप पृथ्वी की सतह का "कंपन है, जो लिथोस्फीयर में ऊर्जा के अचानक मुक्त होने से उत्पन्न होता है और भूकंपीय तरंगें पैदा करता है।" भूकंप को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है: Strike slip fault, Normal fault और Reverse fault।
- भूकंप तब होता है जब पृथ्वी के दो खंड अचानक एक-दूसरे के पास से खिसक जाते हैं। जिस सतह पर यह खिसकन होती है उसे fault या fault plane कहा जाता है।
- सूखा (Drought) एक लंबी अवधि की स्थिति है जब वर्षा औसत से कम होती है, आमतौर पर एक मौसम से अधिक समय तक। सूखे को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है: मौसम विज्ञान संबंधी सूखा (Meteorological drought), कृषि संबंधी सूखा (Agricultural drought), जल विज्ञान संबंधी सूखा (Hydrological drought) और सामाजिक-आर्थिक सूखा (Socio-economic drought)।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1(a)** भूमि से संबंधित खतरों (Land related hazards) क्या हैं?

**(b)** भूस्खलन (Landslides) के प्रकार बताइए।

**2(a)** भूस्खलन की परिभाषा दीजिए। भूस्खलन के प्राकृतिक और मानवजनित कारणों का वर्णन कीजिए।

**(b)** भूस्खलन के प्रभाव क्या हैं?

**3.** भूस्खलन के निवारण उपायों का वर्णन कीजिए।

**4(a)** भूकंप की परिभाषा दीजिए। भूकंप के प्रकार बताएँ।

**(b)** भूकंप की भूकंपीय तरंगों (Seismic waves) के बारे में लिखिए।

**(c)** भूकंप के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

**5(a)** भूकंप की सबसे तेज़ तरंगें कौन-सी होती हैं? (P-waves / S-waves / Surface waves / Love waves)

**(b)** उत्तराखंड किस भूकंपीय क्षेत्र (Seismic Zone) के अंतर्गत आता है? (Seismic zone-I / Seismic zone-II / Seismic zone-III / Seismic zone-IV)

**(c)** भारत में सर्वाधिक सूखा किस अवधि के दौरान पड़ा था? (1801-1830 / 1831-1860 / 1981-2010 / 1891-1920)

**6(a)** सूखे की परिभाषा दीजिए। सूखे के कारणों और प्रभावों का वर्णन कीजिए।

**(b)** सूखे के निवारण उपायों के बारे में लिखिए।

**(c)** भारत में सूखे की स्थिति पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर**

**5(a)** पी वेव्स **(b)** सिस्मिक जोन -IV **(c)** 1891-1920

# इकाई 8: भूमि प्रबंधन: मृदा सुधार; बंजर भूमि का पुनर्वास और पुनर्स्थापन

**इकाई संरचना**

**8.0 सीखने के उद्देश**
**8.1 परिचय**
**8.2 भूमि प्रबंधन**
**8.3 भूमि प्रबंधन की विधियाँ**
**8.4 मृदा सुधार**
**8.5 मिट्टी और बंजर भूमि का पुनर्वास**
**8.5.1 मिट्टी का पुनर्वास**
**8.6 बंजर भूमि का पुनर्स्थापन**
**सारांश**

## 8.0 सीखने के उद्देश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- भूमि प्रबंधन की अवधारणा क्या है ?
- मृदा सुधार क्या है?
- मृदा सुधार क्यों आवश्यक है?
- मृदा सुधार की तकनीकें कौन-कौन सी हैं?
- मृदा का पुनर्वास कैसे किया जा सकता है?
- बंजर भूमि के पुनर्स्थापन की विधियाँ क्या हैं?

## 8.1 परिचय

पिछली इकाईयों के अधयन से अब आप जैसा कि आप जानते हैं कि मृदा अपरदन को भूमि क्षरण का प्रमुख कारण माना जाता है, लेकिन भौतिक और जैविक संरक्षण विधियों की सीमित प्रभावशीलता और कम अपनाए जाने से यह धारणा चुनौतीपूर्ण हो जाती है। विभिन्न मानवजनित और प्राकृतिक गतिविधियाँ भूमि क्षरण का कारण बनती हैं। भूमि के अंदर उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग और आसपास हानिकारक पदार्थों का निस्तारण, वनों की कटाई और मरुस्थलीकरण भूमि क्षरण के प्रमुख कारण हैं। इन कारणों से भूमि पारितंत्र की उत्पादकता में कमी आती है। कई विषैले पदार्थ जैसे पारा, आर्सेनिक, कैडमियम, क्रोमियम, निकेल, और जिंक भूमि पारितंत्र में प्रवेश कर जाते हैं और जैव-संचयन के माध्यम से उच्च पोषक स्तरों तक पहुँच सकते हैं। ये विषैले तत्व न केवल मनुष्यों में बल्कि अन्य जीवों में भी विभिन्न बीमारियों का कारण बन सकते हैं।

फ्रांसिस शैक्सन (2014) के अनुसार, भूमि प्रबंधन भूमि उपयोग प्रणालियों और उत्पादन को इस प्रकार सक्रिय रूप से प्रबंधित करने की प्रक्रिया है, जिससे भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हो सके। भूमि, मृदा और बंजर भूमि को सुधारने के कई तरीके हैं, जो निश्चित रूप से भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होते हैं। भूमि प्रबंधन की विभिन्न विधियों में मृदा सुधार, मृदा का पुनर्वास तथा मृदा का पुनर्स्थापन शामिल हैं। भूमि प्रबंधन में मुख्य रूप से वर्षा जल, वनस्पति, मृदा और ढलानों का सक्रिय प्रबंधन किया जाता है। भूमि प्रबंधन की तकनीकें विभिन्न स्तरों पर खेत से लेकर परिदृश्य और मृदा स्तर तक लागू की जाती हैं। भूमि सुधार और वनस्पति उत्पादन भूमि प्रबंधन के दो प्रमुख घटक हैं। इस इकाई में, आप भूमि प्रबंधन, मृदा सुधार, तथा मृदा के पुनर्स्थापन के बारे में अध्ययन करेंगे।

## 8.2 भूमि प्रबंधन

ह्यू हैमंड बेनेट को मृदा संरक्षण का जनक कहा जाता है। उनके समय से विश्व भर में मृदा अपरदन नियंत्रण से संबंधित कई दिशा-निर्देश और व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित पुस्तिकाएँ प्रकाशित की गई हैं, जिनमें तकनीकी सिद्धांतों, यांत्रिक विधियों और क्षेत्र विशेष में अपनाई गई व्यावहारिक पद्धतियों का वर्णन मिलता है। बेनेट द्वारा प्रस्तावित मृदा संरक्षण की पद्धतियों को कई बार बिना पूर्व परीक्षण के भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपनाया गया हैं जिसके परिणाम अधिकांश असंतोषजनक रहे हैं। पर्यावरणीय ह्रास सभ्यताओं के विकास से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह विषय पारिस्थितिकी विशेषज्ञ, वन विशेषज्ञ, भूगोलज्ञ, जलविज्ञानियों और सामाजिक अर्थशास्त्रियों सभी के लिए समान रूप से रुचिकर है। जैसा कि ठीक ही कहा गया है "हर दिन भूमि चुपचाप मरती जा रही है, बस हमारी आवाज़ें ही रह गई हैं।"

शैक्सन, डगलस और डाउनस (2005) के अनुसार, "भूमि प्रबंधन एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें उपयुक्त उत्पादन प्रणालियों को इस प्रकार लागू और प्रबंधित किया जाता है कि भूमि की उत्पादकता, स्थिरता या उपयोगिता में वृद्धि हो या कम से कम कोई हानि न हो। कुछ विशेष परिस्थितियों में, वर्तमान भूमि उपयोग या प्रबंधन प्रणाली को बदलने की आवश्यकता हो सकती है ताकि तेजी से हो रहे भूमि क्षरण को रोका जा सके और भूमि को ऐसी स्थिति में लौटाया जा सके जहाँ प्रभावी प्रबंधन का पूर्ण लाभ प्राप्त किया जा सके।

स्थानीय जलवायु के खतरों में निम्नलिखित कारक भूमि क्षरण के लिए उत्तरदायी होते हैं: वर्षा: अत्यधिक तीव्रता की वर्षा, सूखा, या अत्यधिक वर्षा की मात्रा। तापमान: अधिकतम, न्यूनतम, और तीव्र उतार-चढ़ाव। वायु की तीव्रता या वेग। ये सभी कारक भूमि की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं और क्षरण का कारण बनते हैं। भू-आकृति (Landscape) से संबंधित खतरों में शामिल हैं: ढाल: जो बहाव की गति को प्रभावित करती है। पूर्व अपरदन प्रभाव (Past erosion effects): जो शेष ऊपरी मृदा की गुणवत्ता को घटाते हैं। प्राकृतिक आर्द्रता (Inherent wetness): जो जड़ क्षेत्र (root-zone) में वायु संचरण (aeration) को सीमित करती है। मूल पदार्थ (Parent materials of soil): जिनकी रासायनिक सीमाएँ मृदा की उत्पादकता को प्रभावित करती हैं।

"स्थानिक" (Endemic) मृदा स्थितियों द्वारा उत्पन्न सीमाएँ:

- प्रभावी जड़ गहराई (Effective rooting-depth): पौधों की जड़ों के विकास के लिए उपलब्ध मृदा की गहराई।

- सतही अवरोध (Surface hindrances): जैसे पत्थर आदि, जो जड़ों के विकास में बाधा डालते हैं।
- ऊपरी मृदा की बनावट (Top soil texture): रेतीली से लेकर चिकनी मिट्टी तक की संरचना।
- ऊपरी उपमृदा की बनावट (Upper sub soil texture): इसकी बनावट भी रेतीली से लेकर चिकनी मिट्टी तक भिन्न हो सकती है।
- उपमृदा की पारगम्यता (Sub soil permeability): अत्यधिक जल निकास वाली मृदा से लेकर अत्यधिक सीमित जल निकास वाली मृदा तक।
- ऐसे पदार्थ (Materials) जो जड़ गहराई को सीमित करते हैं: रासायनिक (chemical), जलवैज्ञानिक (hydrologic) या भौतिक (physical) अवरोध।

भूमि क्षरण (Land degradation) मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में ह्रास (degradation) का कारण हो सकता है। इन गुणों में शामिल हैं:

- जैविक पदार्थों की मात्रा (organic-matter content)
- सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति (soil organisms)
- मृदा का अम्लीकरण (acidification)
- रंध्रता की हानि (loss of porosity)
- मृदा कणों की हानि (loss of soil particles)
- पोषक तत्वों और जल का बहाव या अपरदन

इसके विपरीत, यदि इन गुणों में से कुछ या सभी में सुधार किया जाए, तो यह प्रभावित भूमि की स्थिरता, संरक्षण और स्थायित्व (sustainability) को बढ़ाने में सहायक होगा।

## 8.3 भूमि प्रबंधन की विधियाँ

भारी उपकरणों के उपयोग या मृदा के अनुचित उपचार से अक्सर मृदा सघनता (soil compaction) की समस्या उत्पन्न होती है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर मृदा में छिद्रों का आयतन पौधों की वृद्धि के लिए अत्यधिक कम हो जाता है, और दूसरी ओर मृदा में ऑक्सीजन की मात्रा भी घट जाती है। कम संरचनात्मक स्थिरता (low structural stability) वाली मिट्टियाँ विशेष रूप से सघनता से होने वाले नुकसान के प्रति संवेदनशील होती हैं, विशेषकर तब जब मृदा में जल की मात्रा प्रतिकूल हो। सघन मिट्टियों को पुनःउत्पादक बनाने का पहला चरण भौतिक मृदा सुधार है। इसका मुख्य उद्देश्य मृदा में वायु और जल संतुलन को सुधारना होता है।

मृदा की मूलभूत विशेषताओं को प्रभावित करने वाले सुधार कार्यों को रासायनिक मृदा सुधार कहा जाता है। इनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित उपाय शामिल हैं: मृदा का pH संतुलन बढ़ाना या घटाना, पोषक तत्वों की मात्रा का अनुकूलन, तथा हानिकारक प्रभावों जैसे लवणीकरण (salinization) या प्रदूषण को कम या समाप्त करना। इन हस्तक्षेपों के माध्यम से अत्यधिक अम्लीय, अत्यधिक क्षारीय, पोषक तत्वों से रहित या प्रदूषित मिट्टियों की मूल स्थिति में सुधार लाया जा सकता है, जिससे पुनर्वास और अपरदन नियंत्रण उपायों के साथ स्वस्थ पौधों की वृद्धि

संभव हो पाती है। रासायनिक मृदा सुधार उपाय विशेष रूप से निम्न क्षेत्रों में आवश्यक होते हैं: खनन क्षेत्रों में अम्लीय मिट्टियों में चूना डालने हेतु, कच्ची मिट्टियों में जहाँ ह्यूमस (humus) की कमी होती है, लवणीय क्षेत्रों में आयन गतिविधि को कम करने के लिए, तथा प्रदूषित स्थलों में विषैले तत्वों को हटाने के लिए।

इन सुधार उपायों से मृदा की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है और पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार होती हैं।

## 8.4 मृदा सुधार

मृदा सुधार एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से हम मृदा की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। "Amelioration" शब्द लैटिन भाषा के शब्द "melior" से लिया गया है, जिसका अर्थ है "बेहतर"।

जैसा कि आप जानते हैं, मृदा मुख्य रूप से चिकनी मिट्टी और रेत से बनी होती है। इन तत्वों के अतिरिक्त ह्यूमस, सूक्ष्मजीव और केंचुए भी मृदा के आवश्यक घटक हैं। भूमि पारितंत्र में जैविक और अजैविक कारकों के कार्य अलग-अलग होते हैं। चिकनी मिट्टी में मृदा सुधार की प्रक्रिया मृदा की संरचना को बेहतर बनाती है, जिससे रंध्रता (porosity) और पारगम्यता (permeability) बढ़ती है। इसके परिणामस्वरूप वातन, जल निकास और जड़ों की गहराई में सुधार होता है। दूसरी ओर, रेतीली मिट्टियों में सुधार से जल और पोषक तत्वों को धारण करने की क्षमता बढ़ती है। गोबर-आधारित कम्पोस्ट मृदा में आसानी से उपलब्ध होता है, किंतु इनमें अक्सर लवणों की मात्रा अधिक होती है, जिससे इसका उपयोग सीमित मात्रा में ही किया जा सकता है। इसके विपरीत, पौधों से बने कम्पोस्ट में लवण की मात्रा कम होती है, इसलिए इन्हें अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। ये मृदा सुधार में अधिक प्रभावी होते हैं, हालांकि इनकी लागत सामान्य रूप से अधिक होती है। मृदा क्षरण के कई कारण होते हैं। इनमें से प्रमुख कारण हैं भूमि की लवणीयता, जो फसलों की वृद्धि के लिए हानिकारक होती है। अत्यधिक और अनियंत्रित सिंचाई, जल-जमाव, उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग, तथा निकास प्रणाली की कमी।

**मृदा उत्पादकता के संकेतक:**

मृदा की उत्पादकता को समझने के लिए कई प्रकार के संकेत होते हैं, जिनसे यह निर्धारित किया जा सकता है कि मृदा प्रदूषित है, जल-जमाव से ग्रस्त है या उसमें अधिक लवणता है। जल निकास मृदा की स्थिति का एक प्रमुख संकेतक है। यदि मृदा पर पानी धीरे-धीरे या तेज़ी से बहता है, तो इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मृदा संतृप्त है या असंतृप्त। खराब जल निकास मृदा अपरदन का भी कारण बन सकता है। वर्षा के बाद यदि पानी लंबे समय तक सतह पर जमा रहता है, तो यह मृदा में अत्यधिक नमी का संकेत देता है। पौधों की पत्तियों के किनारे भूरे पड़ जाना भी अधिक नमी का संकेत है। इसी प्रकार, पौधों की सड़ी हुई जड़ें यह दर्शाती हैं कि मृदा में जल-जमाव की स्थिति है। किसी स्थान के मृदा का प्रकार वहा की नमी की स्थिति को काफी प्रभावित करती है। रेतीली मिट्टी में जल की अवशोषण दर अधिक होती है और पानी तेजी से नीचे चला जाता है। जबकि चिकनी मिट्टी में पानी लंबे समय तक रुक जाता है। pH स्केल किसी घोल की अम्लीय या क्षारीय प्रकृति को मापने का एक मानक है। यह हाइड्रोजन आयनों की सांद्रता को दर्शाता है और मृदा उत्पादकता का एक प्रमुख संकेतक भी है। pH जितना कम होगा, मृदा की अम्लीयता उतनी अधिक होगी। उदाहरण के लिए, pH 4 की मृदा pH 5 वाली मृदा से 10 गुना अधिक अम्लीय, और pH 6 वाली मृदा से 100 गुना अधिक अम्लीय होती है। मृदा की अम्लीयता प्राकृतिक

प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती है, किंतु कृषि गतिविधियों, नाइट्रेट्स के अक्षम उपयोग, तथा फसलों के माध्यम से क्षारीय तत्वों के निर्यात से यह और बढ़ जाती है। सूक्ष्मजीव विविधता भी मृदा उत्पादकता का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। जैसा कि आप जानते हैं, मृदा में अधिकांश जैविक गतिविधियाँ ऊपरी 10 सेंटीमीटर में होती हैं। कई किसान मृदा में उपस्थित जीवों की मात्रा और विविधता से अनजान रहते हैं, क्योंकि ये गतिविधियाँ खुली आँखों से दिखाई नहीं देतीं। अधिकतर किसान यह नहीं समझ पाते कि मृदा में कितने प्रकार के जीव उपस्थित हैं और उनकी क्या भूमिका होती हैं। मृदा में सूक्ष्मजीवों मुख्य रूप से पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण, मृदा संरचना का संरक्षण, पौधों की बीमारियों का दमन, मृदा का विषहरण इत्यादी में भूमिका निभाते हैं।

**लवणीय मृदा के लिए मृदा सुधार की तकनीकें**: लवणीय मृदा के सुधार के लिए कई विधियाँ अपनाई जाती हैं, जिनका विवरण नीचे दिया गया है:

(i). **स्क्रैपिंग:** यह एक सरल यांत्रिक विधि है, जिसमें मिट्टी की सतह से लवण को हटाया जाता है। हालांकि, इस तकनीक की सफलता सीमित होती है, क्योंकि यह केवल सतही लवणों को ही हटाती है।

(ii). **लीचिंग:** यह लवणों को मिट्टी के जड़ से हटाने की सबसे प्रभावी विधि है। इस विधि में मीठे पानी को खेत में ठहराकर मिट्टी में मौजूद लवणों को घोल दिया जाता है। लीचिंग उस समय करनी चाहिए जब मृदा में नमी की मात्रा कम हो और भूजल स्तर गहरा हो।

(iii). **निकास व्यवस्था:** सही जल निकास प्रणाली भी मृदा में लवण की मात्रा को कम करने में प्रभावी होती है। अच्छी निकासी से लवणीय जल मिट्टी से बाहर निकल जाता है और मृदा की उत्पादकता बनी रहती है।

(iv). **सिंचाई की विधियाँ:** बार-बार सिंचाई करने से मृदा की नमी उच्च स्तर पर बनी रहती हैं, जिससे लवणों के जमाव को रोका जा सकता है। इसलिए, उच्च लवणता वाली मिट्टियों में उगाई जाने वाली फसलों को अधिक बार सिंचाई की आवश्यकता होती है।

(v). **सूक्ष्म सिंचाई विधियाँ:** स्प्रिंकलर (sprinkler), ड्रिप (drip irrigation), माइक्रो या ड्रॉप सिंचाई (micro/drop irrigation) जैसी विधियाँ प्रभावी होती हैं क्योंकि ये एक समय में कम मात्रा में लेकिन बार-बार पानी उपलब्ध कराती हैं। जब जल का अनुप्रयोग दर मिट्टी की जल अवशोषण क्षमता से कम होती है, तब घुलनशील लवणों का लीचिंग अधिक प्रभावी रूप से होती है। इसके विपरीत फ्लड सिंचाई में यह शमता नहीं होती।

(vi). **सिंचाई का उचित उपयोग:** सिंचाई के लिए लवण-मुक्त या कम लवणीय जल का प्रयोग किया जाना चाहिए (यदि पूर्णतः लवण-मुक्त जल उपलब्ध न हो)। लवणों के संचय को रोकने हेतु मिट्टी में नमी का संतुलित स्तर बनाए रखना चाहिए। साथ ही मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए उर्वरकों का उचित उपयोग आवश्यक है। सामान्यतः लवणीय मिट्टियाँ कम उर्वर होती हैं। ऐसी मिट्टी में नाइट्रोजन की प्रतिक्रिया तब बेहतर होती है जब इसे हरी खाद के साथ दिया जाए। हालाँकि, अत्यधिक लवणीय मिट्टी में अधिक मात्रा में उर्वरक डालना निरर्थक होता है। अम्ल-निर्माण करने वाले उर्वरक जैसे अमोनिकल और एमाइड स्वरूप के उर्वरक मृदा का pH स्तर घटाने में सहायक होते हैं।

**(vii). मल्चिंग:** जब भूजल स्तर बड़ा हो और भूजल में लवणता अधिक हो, तब मृदा लवणीकरण की संभावना बढ़ जाती है। मल्चिंग से मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण कम होता है और मृदा जल का प्रवाह नीचे की ओर बढ़ता है। इस प्रकार, यह मृदा की सतह पर लवणों के जमाव को नियंत्रित करता है।

लवणीय मिट्टियाँ बंजर होती हैं, लेकिन उनमें उत्पादन की क्षमता होती है। सभी समस्या-ग्रस्त मिट्टियों को सुधारना और उन्हें उपजाऊ बनाना आवश्यक है ताकि निरंतर बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य आपूर्ति और सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। लवणीय मिट्टी में उपस्थित घुलनशील लवणों की सांद्रता को ऊपर बताए गए सुधारात्मक उपायों द्वारा कम किया जा सकता है और मिट्टी को उत्पादक बनाया जा सकता है।

**तालिका – 1: लवणीय सांद्रता एवं उपयुक्त फसलें**

| | |
|---|---|
| अत्यधिक लवणीय मिट्टी के लिए फसलें | गन्ना, जौ, सेसबेनिया, ओट्स और जौ |
| मध्यम लवणीय मिट्टी के लिए फसलें | बाजरा, मक्का, गेहूँ, धान और कपास |
| कम लवणीय मिट्टी के लिए फसलें | दलहन फसलें, सफेद क्लोवर, मूली, सेम, मटर और तिल |
| लवण-संवेदनशील फसलें | प्याज़, टमाटर, आलू और गाजर |

मिट्टी के सघनन (Soil Compaction) से बचने के कई कारण हैं, क्योंकि सघन मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी को उत्पन्न करती है, फसल उत्पादकता को घटाती है, जड़ों के विकास को सीमित करती है, मिट्टी के वायुसंचार (aeration) को कम करती है, मिट्टी में उपलब्ध जल की मात्रा घटाती है, अवशोषण (infiltration) की दर को कम करती है, सतही बहाव (runoff) को बढ़ाती है, तलछट (sediment) और पोषक तत्वों की हानि को बढ़ाती है तथा मिट्टी की संरचना को क्षति पहुँचाती है। मिट्टी के सघनन को गहरी जुताई, फसल अवशेष (Crop residue) छोड़ने, जैविक पदार्थ (organic matter) और वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से नियंत्रित किया जा सकता है। सघनन की समस्या को सुधारने के लिए जिप्सम (Gypsum) या अन्य रासायनिक पदार्थों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इसके लिए मिट्टी का विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि उसकी बनावट, खनिज तत्वों की कमी, या विशेषता आदि की पहचान की जा सके।

**तालिका - 2: मिट्टी में जीवों की भूमिका**

| सूक्ष्मजीव | सूक्ष्मजीवों की भूमिका |
|---|---|
| सूक्ष्मजीव-जीव | मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का अपघटन करते हैं। |
| सूक्ष्मजीव-जीव | पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण करते हैं और उन्हें आगे की जैविक प्रक्रियाओं के लिए उपलब्ध कराते हैं। |
| मध्यम आकार के जीव | मिट्टी में सूक्ष्मजीवों का नियमन और वितरण करते हैं। ये मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करते हैं, जिससे सूक्ष्मजीवों के लिए उनका अपघटन आसान हो जाता है। |
| स्थूल जीव | इन्हें मिट्टी के अभियंता कहा जाता है क्योंकि ये मिट्टी के कणों को इधर-उधर स्थानांतरित करने की क्षमता रखते हैं। |

जिप्सम भारी चिकनी मिट्टियों की संरचना में सुधार लाने और लवणीय मिट्टियों से सोडियम को हटाने में सहायक होता है। लेकिन दूसरी ओर, रेतीली मिट्टियों में जिप्सम का प्रयोग बेकार साबित हो सकता है, जिससे धन, प्राकृतिक संसाधनों की हानि होती है और यह पौधों, मिट्टी तथा पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

## 8.5 मिट्टी और बंजर भूमि का पुनर्वास

"पुनर्वास" (Rehabilitation) का अर्थ है पारिस्थितिक तंत्र की प्रक्रियाओं, सेवाओं और उत्पादकता में सुधार करना, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि पारिस्थितिक तंत्र को उसकी मूल या पूर्व स्थिति में पूर्ण रूप से पुनर्स्थापित किया जाए। मिट्टी और बंजर भूमि का पुनर्वास उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके माध्यम से किसी क्षेत्र की क्षतिग्रस्त भूमि को उसकी पूर्व अवस्था के किसी स्तर तक वापस लाया जाता है। विभिन्न विकासात्मक गतिविधियाँ जैसे खनन, कृषि संबंधी अनुचित प्रथाएँ आदि भूमि क्षरण के लिए जिम्मेदार होती हैं।

भूमि पुनर्वास (Land Rehabilitation) का उद्देश्य भूमि पारिस्थितिक में सुधार करना होता है। अधिकतर मामलों में यह उन क्षयकारी प्रभावों को कम करने से संबंधित होता है जो गलत भूमि प्रबंधन, विशेषकर अनुचित कृषि प्रथाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। भूमि पुनर्वास में यह एक प्रमुख प्रश्न होता है कि भूमि को किस सीमा तक आत्मनिर्भर प्राकृतिक नियंत्रण (self-sustaining natural control) के लिए पुनर्वासित किया जाए और किस सीमा तक उसे सतत आर्थिक उपयोग (sustainable economic after-use) के लिए विकसित किया जाए, ताकि भविष्य में भूमि की गुणवत्ता सावधानीपूर्वक प्रबंधन और सुधार द्वारा बनाए रखी जा सके।

कई परिस्थितियों में, भूमि पुनर्वास कार्यों में भूमि क्षरण के भौतिक लक्षणों को कम करना शामिल होता है, जैसे मिट्टी की गुणवत्ता में कमी (soil quality loss) जो प्राय: मिट्टी के सघनन के कारण होती है तथा साथ ही पहाड़ी ढलानों और जलमार्गों में अत्यधिक सतही बहाव और अपरदन की समस्या से भी इसमे हानि होती हैं। अन्य संदर्भों में, पुनर्वास में मिट्टी के अपरदन और प्रदूषण को कम करने के उपाय भी सम्मिलित होते हैं।

### 8.5.1 मिट्टी का पुनर्वास

भूमि पुनर्वास में मिट्टी एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। मिट्टी भूमि पर फसलों की वृद्धि को नियंत्रित करती है और यह निर्धारित करती है कि वर्षा का जल मिट्टी में कितनी मात्रा में समाहित होगा, कितना भाग सतही बहाव के रूप में बहेगा, कितना जल सतह पर या मिट्टी में संग्रहित रहेगा, और कितना जल वाष्पीकरण (evaporation) या वाष्पोत्सर्जन (transpiration) के माध्यम से वायुमंडल में वापस जाएगा। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वनस्पति आवरण के माध्यम से मिट्टी इस बात को भी नियंत्रित करती है कि जल या वायु अपरदन द्वारा मिट्टी किस गति से हटती है। मिट्टी एक जीवित संसाधन है; यह एक जीवित पारिस्थितिकी तंत्र है  एक जटिल, गतिशील, विकसित होने वाला और जैविक रूप से संचालित खुला तंत्र (biologically modulated open system)।

मिट्टी को "जैविक उत्पादकता को प्रोत्साहित करने वाली जीवित संरचना" (a biotic build favoring net primary productivity) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जैसा कि आप जानते हैं, मिट्टी जैव-भू-

रासायनिक चक्रों का एक प्रमुख घटक है। अधिकांश स्थलीय जैव-भू-रासायनिक चक्रों के महत्वपूर्ण संबंध मिट्टी में ही बनते और संचालित होते हैं। मिट्टी में होने वाली जैविक प्रक्रियाएँ पोषक तत्वों की आपूर्ति, रासायनिक संतुलन (chemical buffering), मिट्टी का घनत्व (density), रंध्रता (porosity), वायुसंचार (aeration) और जल धारण क्षमता (water holding capacity) को नियंत्रित करती हैं। ये सभी कारक मिट्टी की संरचनात्मक स्थिरता (structural stabilization), विषहरण (detoxification) और स्वयं के निर्माण की क्षमता को प्रभावित करते हैं। मिट्टी की जैविक गतिविधियाँ उसकी गुणवत्ता को निर्धारित करती हैं और सामान्यतः मिट्टी को जीवित प्राणियों के लिए अधिक उपयुक्त बनाती हैं। यही कारण है कि भूमि पुनर्वास में मुख्य ध्यान मिट्टी की स्थिति और उसकी जीवंतता (vivacity) पर केंद्रित रहता है।

मिट्टियाँ अपने निर्माण और विकास की प्रक्रिया में विभिन्न विशेषताओं को प्राप्त करती हैं, जो जीवों, कार्बनिक पदार्थों, जल, रासायनिक तत्वों और मिट्टी के कणों के ऊर्ध्वाधर (vertical) और क्षैतिज (horizontal) संचलन के परिणामस्वरूप होती हैं। मिट्टी का स्व-विकास (self-development) और उसकी उत्क्रांती (evolution) निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है:

i. **जैविक प्रक्रियाएँ:** वे सभी जीव-जंतु और सूक्ष्मजीव जो मिट्टी की सतह पर या भीतर रहते हैं, अपनी जैविक गतिविधियों, एंजाइमिक स्रावों (enzymatic secretions) और अपशिष्ट पदार्थों (waste products) के माध्यम से मिट्टी की संरचना और गुणों को प्रभावित करते हैं। चट्टानों के अपक्षय (weathering) के माध्यम से भूवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ यह निर्धारित करती हैं कि मिट्टी किस प्रकार की मूल सामग्री (parent material) से बनी है, और उस सामग्री की उपलब्धता तथा मात्रा कितनी है। यह मिट्टी के ढाँचे (soil skeleton) के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाती है। मिट्टी की स्थिति (position) भूमि पारिस्थितिक तंत्र (land ecosystem) में जहाँ होती है, वही यह निर्धारित करती है कि उस पर अपरदन (erosion), जल निकासी (drainage) या निक्षेपण (deposition) कितना हुआ है। ये प्रक्रियाएँ जैविक प्रणालियों (biological systems) की गतिविधियों को नियंत्रित करती हैं और गीलापन-सूखापन (wetting/drying) जैसी स्थितियों के माध्यम से मिट्टी में होने वाली भौतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं।

लगभग सभी मिट्टियाँ किसी न किसी रूप में मानव उपयोग (land-use) से प्रभावित हुई हैं। कई बार खेती, वानिकी (forest farming) और चराई (grazing) जैसी गतिविधियाँ दशकों या सदियों से जारी हैं, जिससे मिट्टी की प्राकृतिक अवस्था में विकृति (distortion) आई है। अधिकांश वे मिट्टियाँ जो पुनर्वास (rehabilitation) के लिए निर्धारित भूमि पर पाई जाती हैं, अनुचित भूमि उपयोग (inappropriate land use) या खराब भूमि प्रबंधन (poor land husbandry) के कारण क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। इन समस्याओं के समाधान और भूमि क्षरण (land degradation) को रोकने का सबसे प्रभावी तरीका यह है कि मिट्टी के प्रबंधन की पद्धति (management practices) को बदला जाए।

ii. **भूमि पुनर्वास में संबोधित की जाने वाली मिट्टी की गुणात्मक विशेषताएँ:** Shaxson (FAO, 1999) ने भूमि पुनर्वास के दौरान ध्यान में रखे जाने वाले सात प्रमुख मिट्टी गुणों का वर्णन किया है। ये गुण निम्नलिखित हैं:

a) मिट्टी निर्माण की दर
b) जैव-उत्पादकता या उर्वरता
c) वर्षा जल का अवशोषण
d) मिट्टी की नमी और जैव विविधता
e) वाष्पीकरण द्वारा जल की हानि
f) मिट्टी का राइज़ोस्फीयर
g) मिट्टी की विषाक्तता

**मिट्टी की गहराई बढ़ाना:** भूमि पुनर्वास (Land Rehabilitation) के लिए एक स्वविकशित मिट्टी (self-sustaining soil) का निर्माण आवश्यक होता है, जिसका अर्थ है कि मिट्टी के निर्माण (soil development) और मिट्टी के ह्रास (soil loss) के बीच संतुलन बना रहना चाहिए। यह दो तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है या तो मिट्टी अपरदन (soil erosion) की दर को कम करके, जो पारंपरिक मृदा संरक्षण (soil conservation) पद्धति है, या मिट्टी के निर्माण की दर को बढ़ाकर। वैज्ञानिकों का मानना है कि पौधे जब आवश्यक खनिजों को प्राप्त करने के लिए शैलाधर (bedrock) से पोषक तत्व लेते हैं, तो उनके द्वारा स्रावित कार्बनिक अम्ल (organic acids) अपक्षय (weathering) की प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं, जिससे मिट्टी निर्माण की गति बढ़ जाती है। हाल के वर्षों में, मुकुना बीन्स (Mucuna beans) का उपयोग करके उष्णकटिबंधीय ढालदार भूमि (tropical steep lands) की मिट्टियों को पुनर्जीवित करने में उल्लेखनीय सफलता मिली है। मुकुना पौधे प्रति हेक्टेयर लगभग 100 टन हरित खाद (green manure) उत्पन्न करने में सक्षम हैं और इनका उपयोग उन भूमि क्षेत्रों के पुनर्वास के लिए किया गया है जहाँ लगभग खेती योग्य मिट्टी समाप्त हो चुकी थी। हालाँकि, प्रभावी मिट्टी की गहराई (effective soil depth) बढ़ाने के कई अन्य उपाय भी हैं, जो केवल कार्बनिक पदार्थ (organic matter) के समावेश पर निर्भर नहीं करते। उदाहरण के लिए, मिट्टी की गहराई को भौतिक रूप से बढ़ाया जा सकता है, जैसे पहाड़ी ढलानों से मिट्टी को काटकर और भरकर (cut and fill) कृषि सीढ़ियाँ (agricultural terraces) बनाना। औद्योगिक भूमि पुनर्वास (industrial land reclamation) में कई स्थानों पर ऊपरी मिट्टी (top soil) अन्य क्षेत्रों से लाकर डाली जाती है। कृषि में इसका समानांतर उदाहरण बाँध (dam) या अवरोधक संरचना बनाना है, जो वायु या जल अपरदन से बहकर आई मिट्टी को एकत्रित करती है और उसे समतल निक्षेपणीय क्षेत्र (flat depositional terrace) में परिवर्तित कर देती है, जहाँ खेती की जा सकती है।

भूमि पुनर्वास के लिए मिट्टी का स्वनिर्भर (self-sustaining) होना आवश्यक है, अर्थात् मिट्टी के निर्माण और मिट्टी के ह्रास के बीच संतुलन बना रहना चाहिए। यह संतुलन दो तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है पहला, मिट्टी के अपरदन की दर को कम करके, जो पारंपरिक मृदा संरक्षण विधि है,और दूसरा, मिट्टी के निर्माण की प्रक्रिया को बढ़ाकर। वैज्ञानिकों ने इस बात पर जोर दिया है कि पौधों द्वारा आवश्यक खनिजों को प्राप्त करने की प्रक्रिया के

दौरान उनके द्वारा स्रावित कार्बनिक अम्ल शैल-पट्ट के अपक्षय की गति को तेज करते हैं, जिससे मिट्टी निर्माण की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। हाल के वर्षों में मुकुना बीन्स (Mucuna beans) का उपयोग करके उष्णकटिबंधीय ढालदार क्षेत्रों की मिट्टी को पुनर्जीवित करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। मुकुना पौधे प्रति हेक्टेयर लगभग 100 टन हरित खाद प्रतिवर्ष उत्पन्न करने में सक्षम हैं और इनका उपयोग उन भूमि क्षेत्रों के पुनर्वास में किया गया है जहाँ लगभग खेती योग्य मिट्टी समाप्त हो चुकी थी। हालाँकि, प्रभावी मिट्टी की गहराई बढ़ाने के लिए केवल कार्बनिक पदार्थों के समावेश से ही नहीं, बल्कि कई अन्य तरीकों से भी यह कार्य किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पहाड़ी ढलानों से मिट्टी को काटकर और भरकर कृषि सीढ़ियाँ बनाना मिट्टी की गहराई बढ़ाने का एक भौतिक उपाय है। औद्योगिक भूमि पुनर्वास में कई स्थानों पर ऊपरी मिट्टी (top soil) अन्य क्षेत्रों से लाकर डाली जाती है ताकि भूमि को उपजाऊ बनाया जा सके। इसी प्रकार, कृषि में बाँध (dam) जैसे ढाँचों का निर्माण किया जाता है जो वायु या जल अपरदन से बहकर आई मिट्टी को एकत्रित करते हैं और उसे समतल निक्षेपणीय क्षेत्र (flat depositional terrace) में परिवर्तित करते हैं, जहाँ खेती संभव हो जाती है।

## 8.5.2 बंजर भूमि का पुनर्वास

Dudley Stamp (1954) के अनुसार "बंजर भूमि (Waste land) वह भूमि है जिसका पहले उपयोग किया गया था, लेकिन अब उसे छोड़ दिया गया है और भविष्य में उसका कोई उपयोग नहीं पाया जा सकता हैं।" जैसा कि आप जानते हैं, बंजर भूमि वह भूमि होती है जो पहले खेती के लिए उपयोग में लाई जाती थी, लेकिन कम उत्पादकता (low productivity) के कारण उसे परित्यक्त (abandoned) कर दिया गया है।

Vohra (1978) के अनुसार, हर वर्ष लगभग 6000 मिलियन टन उपजाऊ मिट्टी जिसमें लगभग 5 मिलियन टन NPK (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम) होते हैं, बहकर नष्ट हो जाती है। विभिन्न विकासात्मक गतिविधियाँ जैसे उद्योग (industries), शहरीकरण (urbanization), और अनुचित कृषि प्रथाएँ (agricultural practices) बंजर भूमि के निर्माण (wasteland genesis) के प्रमुख कारण हैं। मिट्टी और वनस्पति (vegetation) के उचित प्रबंधन (soil management) द्वारा बंजर भूमि का पुनर्वास करने से जलग्रहण क्षेत्रों (catchment areas) में गाद जमाव (siltation) को कम किया

**तालिका 3 - बंजर भूमि के पुनर्वास के लिए कुछ महत्वपूर्ण पौध प्रजातियाँ**

| वैज्ञानिक नाम | स्थानीय नाम |
|---|---|
| *Acacia catechu* | Kher |
| *Acacia concinna* | Shikakai |
| *Butea monosperma* | Palash |
| *Pogamia pinnata* | Karanja |
| *Schleichera oleasa* | Kusum |
| *Madhuca latifolia* | Mahua |
| *Emblica officinalis* | Amla |
| *Cassia fistula* | Amaltash |
| *Aegle marmelos* | Bel Patthar |
| *Sapindus laurifolius* | Soap nut |
| *Spondias mangifera* | Wild mango |
| *Mangifera indica* | Mango |
| *Dendrocalamus strictus* | Male bamboo, solid bamboo |
| *Bambusa arundinaceae* | Bans |
| *Strychnos nux vomica* | Poison nut |

**(Source: Ramachandra and Kumar, 2003)**

जा सकता है और जल उत्पादन (water yield) में वृद्धि की जा सकती है। यह पुनर्वास प्रक्रिया मिट्टी की क्षमता (soil capability), जलवायु परिस्थितियों (climatic conditions) और पौधों की प्रजातियों (plant species) पर निर्भर करती है। वनों की कटाई (deforestation) बंजर भूमि बनने का प्रमुख कारण है। पौधे बंजर भूमि के पुनर्वास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किंतु पौधों की उपयुक्त प्रजाति का चयन (selection of plant species) इस प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। पौधों की प्रजाति का चयन स्थानीय जलवायु (local weather condition), अनुकूलन क्षमता (adaptability), उत्पादकता (productivity) और जीवित रहने की क्षमता (survivorship) के आधार पर किया जाना चाहिए। पौध प्रजातियों के चयन के प्रमुख मानक इस प्रकार हैं:

- **i.** पौधे बंजर भूमि की नर्सरी और वृद्धि (growth) दोनों स्तरों पर जीवित रह सकें।
- **ii.** पौधों में उच्च्य प्रजनन क्षमता (high reproductive fertility) हो।
- **iii.** पौधों का स्थापन दर (establishment rate) अधिक हो।
- **iv.** पौधों में पुनर्जीवन शक्ति (regeneration power) अच्छी हो।
- **v.** चयनित प्रजातियाँ स्थानीय लोगों की ईंधन, खाद्य और चारे की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

बुनियादी मानकों के अलावा, बंजर भूमि पुनर्वास के लिए पौध प्रजातियों के चयन में निर्णायक कारक (Decisive Factors) निम्नलिखित हैं:

- **i.** स्थानीय प्रजातियाँ (Local species) स्थल-विशिष्ट (site-specific) होनी चाहिए।
- **ii.** प्रजातियों की संभावनाएँ (potential) और उपयोगिता (utilization) को पहचाना जाना चाहिए।
- **iii.** आक्रामक (invasive) प्रजातिया
- **iv.** वनीकरण में बहु-प्रजातीय (multi-specific) दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह मिट्टी निर्माण (generation of soil) में सहायक होता है।
- **v.** प्रजातियों में वानिकी-विशेषताएँ (Silvi-characteristics) विकसित (cultured) की जानी चाहिए।

## 8.6 बंजर भूमि का पुनर्स्थापन

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में "पुनर्स्थापन" का अर्थ है उस पारिस्थितिक तंत्र की प्रक्रिया, जिसके माध्यम से क्षतिग्रस्त, पतित, या नष्ट हुए तंत्र को पुनः स्वस्थ स्थिति में लाया जाता है। यह क्षति मिट्टी के अपरदन या मानव हस्तक्षेप के कारण हो सकती है। पुनर्स्थापन का उद्देश्य किसी क्षेत्र को उसके ऐतिहासिक मार्ग वापस लाने का प्रयास करना होता है। इस प्रक्रिया में भूमि को उसकी मूल स्थिति में लौटाने के लिए कई कदम शामिल होते हैं, जैसे हानिकारक तत्वों और अन्य खतरनाक पदार्थों को हटाना, अन्य अवांछित संरचनाओं को हटाना, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करना। यह प्रक्रिया विशेष रूप से उन समस्याओं को सुधारने के लिए अपनाई जाती है जो तेल

खनन, कोयला खनन और अन्य गतिविधियों के कारण उत्पन्न हुई हैं साथ ही प्राकृतिक आपदाओं के बाद भूमि के सुधार के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

हमारे कई महत्वपूर्ण संसाधन, जैसे ईंटें या कोयला, भूमि से प्राप्त होते हैं। यह प्रथा तब से चली आ रही है जब से मानव सभ्यता अस्तित्व में आई है। हालांकि, इस विनाश की गति इस बात पर निर्भर करती है कि जीवन की गति कैसी है, और उन गतिविधियों का प्रकार और स्तर क्या है, जिन्होंने सभ्यता को संभव बनाया है।

भूमि पुनर्स्थापन वह प्रक्रिया है जिसमें किसी क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र को प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र और सूक्ष्मजीवों, पौधों तथा जानवरों के आवास की स्थिति में पुनः लाया जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, पारिस्थितिक विनाश आम तौर पर प्रदूषण, वनों की कटाई और अन्य मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप होता है।

**बंजर भूमि पुनर्स्थापन की विधियाँ:** एक क्षतिग्रस्त मिट्टी आम तौर पर फसल, खाद्य उत्पादन और आसपास के जीवों के आवास की क्षमता खो देती है। यह स्थिति क्षेत्र की पारिस्थितिकी और सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। इसलिए मिट्टी को उसकी प्राकृतिक स्थिति में पुनः लाने का प्रयास किया जाता है। एक क्षतिग्रस्त मिट्टी की विशेषताएँ उच्च लवणता, उर्वरता, कार्बनिक पदार्थ की कमी, मिट्टी की अपरदन क्षमता में वृद्धि, क्षारीयता और अम्लता में वृद्धि होती हैं। मिट्टी का क्षरण मानवजनित और प्राकृतिक कारणों से हो सकता है मानवजनित कारण: कृषि गतिविधियाँ मिट्टी की संरचना और जल निकासी क्षमता को प्रभावित कर सकती हैं। रासायनिक पदार्थों का उपयोग मिट्टी की लवणता या क्षारीयता बढ़ा सकता है। प्राकृतिक कारण जैसे लवणीयकरण या अपरदन। क्षतिग्रस्त मिट्टी को पुनर्स्थापित करने के विभिन्न तरीके निम्नलिखित हैं:

(a) **जैविक कृषि तकनीकों का उपयोग:** इस तकनीक में कृषि में प्राकृतिक उपायों का उपयोग किया जाता है ताकि पर्यावरण पर होने वाले हानिकारक प्रभावों को कम किया जा सके। मिट्टी के पुनर्स्थापन में मदद करने वाली कुछ जैविक कृषि तकनीकें हैं हरित खाद का उपयोग करना, कवर क्रॉप्स लगाना, फसल चक्रीकरण अपनाना, जैविक कंपोस्ट का प्रयोग।यह बंजर भूमि के पुनर्वास के लिए सबसे प्रभावी तकनीकों में से एक है। जैसा कि आप जानते हैं, रासायनिक उर्वरक भूमि क्षरण के मुख्य कारण हैं, इसलिए जैविक कृषि बंजर भूमि के पुनर्वास के लिए उपयुक्त और लाभकारी है।

(b) **हरित खाद और कवर क्रॉप्स:** ये खाद और फसलें मिट्टी में मल्च (mulch) की तरह काम करती हैं, जिससे मिट्टी का अपरदन और नमी की हानि रोकी जा सके। इनके अपघटन (decomposition) के दौरान ये मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ (organic matter) की मात्रा बढ़ाती हैं। हरित खाद और कवर फसलों में नाइट्रोजन फिक्स करने की क्षमता होती है। इनके जड़ों में मौजूद नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया वायुमंडल से नाइट्रोजन को अवशोषित करने में मदद करते हैं। ये खाद और फसलें खरपतवार (weed) के विकास को भी रोकती हैं। यह एक सस्ता और प्राकृतिक तरीका है जो खरपतवार नियंत्रण और बंजर भूमि के पुनर्वास में सहायक है।

**(c) जैविक कंपोस्ट:** जैविक कंपोस्ट मिट्टी को उर्वर बनाने का एक सस्ता और प्रभावी तरीका है, खासकर अकार्बनिक उर्वरकों की तुलना में। कंपोस्ट पौधों और जानवरों के अपघटित अपशिष्टों का मिश्रण होता है।कंपोस्ट का मुख्य लाभ यह है कि यह मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाता है। जैसा कि आप जानते हैं, कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की उर्वरता, संरचना और जल धारण क्षमता को सुधारता है। इसके अलावा, यह मिट्टी में कार्बन का उचित स्तर (appropriate aspect of carbon) बनाए रखने में भी सहायक है।कंपोस्ट का उपयोग रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करता है, क्योंकि यदि रासायनिक उर्वरकों का अनुचित उपयोग किया जाए तो वे नदियों, उपनदियों, नालों और भूजल (ground water) को प्रदूषित कर सकते हैं।

**(d) फसल चक्रीकरण:** यह एक कृषि प्रथा है जिसमें एक ही स्थान पर विभिन्न प्रकार की फसलें क्रमशः उगाई जाती हैं। इस कृषि पद्धति से मिट्टी का अपरदन कम होता है, मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और इसके परिणामस्वरूप फसल की पैदावार में वृद्धि होती है।

**(e) मिट्टी सुधार:** यह बंजर भूमि पुनर्वास की सबसे प्रभावी तकनीक है। इसमें मिट्टी से हानिकारक तत्वों और संदूषकों को हटाना शामिल है, जैसे भारी धातुएँ, सीवेज स्लज, कैंसरजनक हाइड्रोकार्बन औद्योगिक अपशिष्ट तरल पदार्थ, पेट्रोलियम, मिट्टी सुधार जैविक तकनीकों के उपयोग से भी किया जा सकता है, जिससे जैव-सुधार भी कहा जाता है।

**(f) जैव-सुधार:** जैव-सुधार एक तकनीक है जिसमें सूक्ष्मजीवों (microorganisms) का उपयोग मिट्टी, तलछट (sediments), जल या अन्य प्रदूषित पदार्थों में मौजूद हानिकारक तत्वों (hazardous substances) को विघटित (degradation) करने के लिए किया जाता है। जैव-सुधार में कुछ विशेष बैक्टीरिया, कवक (fungi), शैवाल (algae) और पौधों (plants) का उपयोग किया जाता है। जैव-संवर्धन (Bio-augmentation) वह प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्मजीवों को प्रदूषित स्थल पर लाया जाता है ताकि हानिकारक पदार्थों के

**तालिका 4 - विभिन्न फाइटो-सुधार तकनीकें**

| तकनीक | पौध तंत्र | माध्यम |
|---|---|---|
| फाइटो-एक्सट्रैक्शन | पौधे द्वारा धातु का सीधा अवशोषण और उसका संकेंद्रण, और बाद में पौधों को हटाकर धातु की निकासी | मिट्टी |
| फाइटो-रूपांतरण | पौधे द्वारा जैविक यौगिकों का अवशोषण और अपघटन | सतही जल और भूमिगत जल |
| फाइटो-विघटन | राइज़ोस्फीयर में सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन को बढ़ावा देना | राइज़ोस्फीयर की मिट्टी और भूमिगत जल |
| राइज़ो-फिल्टरेशन | धातुओं का पौधों की जड़ों में अवशोषण | सतही जल और पंप किए गए जल |

विघटन (degradation) की गति बढ़ाई जा सके। विघटन की प्रक्रिया (degradation procedure) के आधार पर जैव-सुधार के प्रकार निम्नलिखित हैं:

**(g) जैव-रूपांतरण** (Bio-transformation): यह प्रक्रिया हानिकारक पदार्थों (contaminants) को कम करना या गैर-हानिकारक (less or non-hazardous) पदार्थों में बदलने की क्रिया है।

**(h) जैव-विघटन**: यह प्रक्रिया जैविक पदार्थों (organic substances) को जैविक या अकार्बनिक अणुओं (smaller organic or inorganic molecules) में तोड़ने की क्रिया है।

**(i) खनिजीकरण** (Mineralization): यह प्रक्रिया जैविक पदार्थों (organic material) का पूर्ण विघटन (complete bio-degradation) कर उन्हें अकार्बनिक पदार्थों (inorganic substances) जैसे $CO_2$ या $H_2O$ में परिवर्तित करने की क्रिया है।

जीवों के आधार पर जैव-सुधार के प्रकार नीचे दिए गए हैं:

**(i) बैक्टीरियल सुधार:** यह वह प्रक्रिया है जिसमें बैक्टीरिया का उपयोग हाइड्रोकार्बन जैसे आणविक प्रदूषकों को सरल और सुरक्षित घटकों में तोड़ने के लिए किया जाता है। *Deinococcus radiodurans* एक जेनेटिकली मॉडिफाइड बैक्टीरिया है, जो भारी धातुओं और टोल्यून (toluene) को तोड़ सकता है। *Geobacter sulfurreducens* यूरेनियम को अघुलनशील रूप में बदल सकता है। *Thermus brockianus* नामक बैक्टीरिया हाइड्रोजन पेरोक्साइड को वर्तमान में उपयोग हो रहे रसायनों की तुलना में 8000 गुना तेजी से विघटित कर सकता है। *Alcaligenes eutrophus* एक अन्य प्रकार का बैक्टीरिया है, जो 2,4-D (एक हर्बीसाइड जो अमेरिका में उपयोग होता है) को विघटित कर सकता है।

**(ii) मायको-सुधार:** यह वह प्रक्रिया है जिसमें कवक का उपयोग करके आणविक प्रदूषकों को सरल और सुरक्षित घटकों में तोड़ा जाता है।

**(iii) फाइटो-सुधार:** यह वह प्रक्रिया है जिसमें पौध प्रजातियों का उपयोग करके आणविक प्रदूषकों को सरल और सुरक्षित घटकों में परिवर्तित किया जाता है।

कई पौधों का उपयोग जैव-सुधार में किया जाता है, जिनमें विशेष रूप से शामिल हैं: Transgenic Arabidopsis: पारा (mercury) को गैसीय रूप में परिवर्तित कर सकता है, बाँस (Bamboo): सिलिका (silica) को संचित कर सकता है, Indian mustard / Brassica juncea: सल्फर (sulphur), सीसा (lead), सेलेनियम (selenium), क्रोमियम (chromium), कैडमियम (cadmium), निकल (nickel), जिंक (zinc) और तांबा (copper) को संचित कर सकता है। Chinese ladder fern / Pteris vittata: आर्सेनिक (arsenic) को संचित कर सकता है, कॉटनवुड (Cottonwood): पारा (mercury) को संचित कर सकता है, टमाटर और अल्पाइन (Tomato and Alpine): सीसा (lead), जिंक (zinc) और कैडमियम (cadmium) को संचित कर सकते हैं।

(i) **कंपोस्ट जैव-सुधार:** इस प्रक्रिया में मिट्टी में बहुत बड़ी संख्या में लाभकारी बैक्टीरिया (beneficial bacteria) को प्रविष्ट किया जाता है, जिसे कंपोस्ट चाय (compost tea) कहा जाता है। कंपोस्ट चाय एक पानी आधारित (water-based), ऑक्सीजन युक्त (oxygen-rich) संवर्धन (culture) है, जिसमें लाभकारी एरोबिक बैक्टीरिया (aerobic bacteria), नीमाटोड्स (nematodes), कवक (fungi) और प्रोटोजोआ (protozoa) की बड़ी संख्या होती है। इसका उपयोग हानिकारक पदार्थों (toxins) को जैव-सुधार (bio-remediate) करने के लिए किया जाता है। इस मिश्रण (brew) को प्रदूषित क्षेत्रों (contaminated sites) पर लगाया जाता है, जहाँ सूक्ष्मजीव (microbial population) हानिकारक पदार्थों को तोड़कर मिटा देते हैं।

(ii) **इन-सिटू जैव-सुधार:** इन-सिटू जैव-सुधार वह तकनीक हैं जिनमें जैव-सुधार को सीधे उसी स्थल पर लागू किया जाता है, जहाँ प्रदूषण हुआ हो और इसमें मिनिमम हस्तक्षेप (minimum disturbances) होता है। इस तकनीक में प्रदूषित पदार्थों को हटाए बिना स्थल पर ही (in place) उपचार किया जाता है। यह तकनीक सबसे उपयुक्त विकल्प मानी जाती है क्योंकि यह कम लागत और कम व्यवधान (lesser disturbance) के साथ प्रदूषण का उपचार करती है, और प्रदूषकों को खोदने या स्थानांतरित (excavation and transport) करने की आवश्यकता नहीं होती हैं।

(iii) **एक्स-सिटू जैव-सुधार:** ये वे जैव-सुधार तकनीकें हैं जिनमें प्रदूषित पदार्थों (contaminated matrix) को खोदकर (excavation) हटाना पड़ता है ताकि उन्हें किसी तरह से स्लरी रिएक्टर (slurry reactors), कंपोस्टिंग (compositing), बायोपाइल्स (biopiles) आदि के माध्यम से उपचारित किया जा सके। इस तकनीक में प्रदूषक उसी स्थान पर (site of contaminated place) विघटित (degraded) किए जाते हैं, जहां वे मौजूद होते हैं, लेकिन इसके लिए पहले उन्हें स्थल से हटाना आवश्यक होता है।

**जैव-सुधार के लाभ:** जैव-सुधार एक प्राकृतिक प्रक्रिया (natural process) है और इसका स्थानीय समुदाय या जनसंख्या पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। जैव-सुधार के कई लाभ निम्नलिखित हैं:

- इस तकनीक का उपयोग करके कई ऐसे पदार्थ, जिन्हें कानूनी रूप से हानिकारक माना जाता है, उन्हें निर्दोष और सुरक्षित यौगिकों में परिवर्तित किया जा सकता है।
- जैव-सुधार का उपयोग स्थल पर (In Situ) और स्थल से बाहर (Ex Situ) दोनों जगह किया जा सकता है।
- जैव-सुधार उन अन्य तकनीकों की तुलना में कम लागत वाला (less expensive) है, जो हानिकारक अपशिष्ट (hazardous waste) की सफाई के लिए उपयोग की जाती हैं।
- जैव-सुधार पूरी तरह से प्राकृतिक सूक्ष्मजीवों (natural microbes) पर आधारित है, इसलिए इसका पौधों, जानवरों और मानवों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता हैं।

**जैव-सुधार के नुकसान:**

- बायो-रिमेडिएशन (जैव-शोधन) आमतौर पर अन्य तकनीकों की तुलना में अधिक समय लेता है।
- संभव है कि बायो-रिमेडिएशन की प्रक्रिया से बनने वाला उत्पाद अपने मूल (पैरेंट) उत्पाद की तुलना में अधिक विषैला (टॉक्सिक) होता हैं।
- बायो-रिमेडिएशन केवल जैव-अपघटनीय यौगिकों तक ही सीमित है।

**बायो-ऑगमेंटेशन (Bio-augmentation):** यह एक प्रक्रिया है जिसमें प्रदूषित मिट्टी में आनुवंशिक रूप से संशोधित (genetically modified) सूक्ष्मजीवों को इस उद्देश्य से डाला जाता है कि वे प्रदूषकों को विघटित कर सकें। इस तकनीक की दक्षता (efficiency) कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे मिट्टी के भौतिक-रासायनिक गुण और यह क्षमता कि डाले गए सूक्ष्मजीव स्थानीय सूक्ष्मजीव समुदाय के साथ सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा कर सकें।

# सारांश

इस इकाई में, हमने भूमि प्रबंधन (Land Husbandry), मृदा सुधार (Soil Amelioration), मृदा और बंजर भूमि के पुनर्वास (Rehabilitation) तथा पुनर्स्थापन (Restoration) के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। अब तक आपने यह सीखा है कि:

- फ्रांसिस शैक्सन (Francis Shaxson, 2014) के अनुसार, भूमि प्रबंधन भूमि उपयोग प्रणालियों और उत्पादन का सक्रिय रूप से इस प्रकार प्रबंधन करने की प्रक्रिया है जिससे उत्पादकता में वृद्धि हो सके। भूमि, मृदा तथा बंजर भूमि में सुधार लाने के विभिन्न तरीके हैं, जो निश्चित रूप से भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होते हैं। भूमि प्रबंधन की विभिन्न विधियों में मृदा सुधार, पुनर्वास और पुनर्स्थापन शामिल हैं।भूमि प्रबंधन में मुख्य रूप से वर्षा जल, वनस्पति, मृदा और ढालों का सक्रिय प्रबंधन सम्मिलित होता है।
- मृदा संरक्षण के जनक ह्यू हैमंड बेनेट (Hugh Hammond Bennett) के अनुसार, विश्व ने क्षरण नियंत्रण से संबंधित अनेक मार्गदर्शिकाएँ (manuals) देखी हैं, जिनमें व्यावहारिक अनुभव, तकनीकी सिद्धांत, उपयोग की जाने वाली यांत्रिक विधियाँ तथा विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न स्तर की सफलता के साथ अपनाए गए व्यावहारिक उपायों का वर्णन किया गया है।
- शैक्सन (Shaxson), डगलस (Douglas) और डाउनस (Downes), 2005 के अनुसार "भूमि प्रबंधन एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें उत्पादन की उपयुक्त प्रणालियों को इस प्रकार लागू और प्रबंधित किया जाता है कि उत्पादकता, स्थिरता या उपयोगिता में वृद्धि हो या कम से कम कोई हानि न हो। इसके अतिरिक्त, कुछ विशेष परिस्थितियों में मौजूदा उपयोग या प्रबंधन में परिवर्तन आवश्यक हो सकता है ताकि तीव्र भूमि क्षरण को रोका जा सके और भूमि को ऐसी स्थिति में लाया जा सके जहाँ अच्छा भूमि प्रबंधन अपना अधिकतम प्रभाव दिखा सके।"
- मृदा सुधार एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से हम मृदा की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। "मेलिओर" शब्द लैटिन भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है "बेहतर"।

- मृदा प्रदूषित, जलभराव या उच्च लवणता से प्रभावित है या नहीं, इसे पहचानने के लिए कई संकेत होते हैं। जल निकास एक महत्वपूर्ण संकेत है, जिसके माध्यम से हम यह देख सकते हैं कि मृदा की सतह पर पानी धीमी या तेज गति से बह रहा है। यह स्थिति मृदा के संतृप्त (या असंतृप्त होने का संकेत देती है।
- लवणीय मृदा के सुधार के लिए निम्नलिखित तकनीकें अपनाई जाती हैं स्क्रैपिंग, लीचिंग, जल निकास, सिंचाई विधियाँ, सिंचाई के उचित उपयोग, मल्चिंग आदि।
- मृदा भूमि पुनर्वास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है।मृदा भूमि पर फसलों की वृद्धि को नियंत्रित करती है और यह निर्धारित करती है कि वर्षा का जल मिट्टी में कितना अवशोषित होता है, कितना जल सतही प्रवाह के रूप में बह जाता है, कितना जल सतह पर तालाबों या गड्ढों में संग्रहित रहता है, और कितना जल वाष्पीकरण/वाष्पोत्सर्जन के माध्यम से वायुमंडल में चला जाता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वनस्पति आवरण के माध्यम से, मृदा इस दर को भी नियंत्रित करती है जिससे मृदा का क्षरण जल या वायु द्वारा होता है। मृदा एक जीवित संसाधन है; यह एक जीवित पारिस्थितिकी तंत्र  है एक जटिल, गतिशील, विकसित होने वाला और जैविक रूप से नियंत्रित खुला तंत्र है।
- शैक्सन (Shaxson, FAO, 1999) ने भूमि पुनर्वास के दौरान मृदा की सात प्रमुख गुणवत्ता कारकों का वर्णन किया, जिन पर कार्य किया जा सकता है। ये कारक निम्नलिखित हैं मृदा निर्माण की दर, जैव उत्पादकता या मृदा उर्वरता, वर्षा जल का अवशोषण, मृदा की आर्द्रता और जैव विविधता, मृदा से वाष्पीकरण द्वारा जल की हानि, मृदा राइजोस्पेयर, मृदा की विषाक्तता।
- बंजर भूमि के पुनर्वास में पौधों की प्रजातियों के चयन के लिए कुछ बुनियादी कारक महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें शामिल हैं पौधे नर्सरी स्तर और बंजर भूमि पर वृद्धि स्तर पर जीवित रहने में सक्षम हों। पौधों में उच्च प्रजनन क्षमत हो। पौधों की स्थापना दर अधिक हो। पौधों में पुनर्जनन की शक्ति अच्छी हो। चुनी गई प्रजातियाँ स्थानीय ईंधन, भोजन और चारे की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हों।
- किसी पारिस्थितिकी तंत्र में "पुनर्स्थापन का अर्थ है ऐसे पारिस्थितिकी तंत्र को पुनः प्राप्त करने की प्रक्रिया जो मृदा अपरदन या मानवीय हस्तक्षेप के कारण क्षतिग्रस्त, अवनत या नष्ट हो गया हो। किसी पारिस्थितिकी तंत्र का पुनर्स्थापन उसका ऐतिहासिक विकासक्रम पुनः प्राप्त करने का प्रयास होता है।
- जैव-शोधन (Bio-remediation) एक ऐसी तकनीक है जिसमें सूक्ष्मजीवों का उपयोग मिट्टी, अवसाद, जल या अन्य प्रदूषित पदार्थों में मौजूद हानिकारक तत्वों के अपघटन  के लिए किया जाता है। बायो-ऑगमेंटेशन (Bio-augmentation) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्मजीवों को प्रदूषित स्थान पर लाकर जोड़ा जाता है ताकि वे वहाँ मौजूद हानिकारक पदार्थों के अपघटन को बढ़ावा दे सकें।
- जैव-शोधन (Bio-remediation) के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं बैक्टीरियल रिमेडिएशन, माइको-रिमेडिएशन, फाइटो-रिमेडिएशन, कम्पोस्ट बायोरिमेडिएशन।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1 (a) रिक्त स्थान**

ह्यू हैमंड बेनेट (Hugh Hammond Bennett) ………….. के जनक माने जाते हैं। विश्व ने मृदा अपरदन नियंत्रण (erosion control) से संबंधित अनेक मार्गदर्शिकाएँ (manuals) देखी हैं, जिनमें व्यावहारिक अनुभव, तकनीकी सिद्धांत, उपयोग की जाने वाली यांत्रिक विधियाँ तथा विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर सफलता के साथ अपनाए गए व्यावहारिक उपायों का वर्णन किया गया है। बेनेट द्वारा प्रस्तुत मृदा संरक्षण (soil conservation) का दृष्टिकोण बिना पूर्व परीक्षण (prior testing) के, पूरी तरह भिन्न परिस्थितियों में लागू किया गया, जिसके परिणामस्वरूप बहुत ही असंतोषजनक परिणाम (indifferent results) सामने आए, जिन्हें सभी ने देखा। पर्यावरणीय क्षरण (environmental deprivation) ………….. के विकास से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह विषय पारिस्थितिकीविदों (Ecologists), वनों के वैज्ञानिकों (Foresters), भूगोलविदों (Geographers), जलवैज्ञानिकों (Hydrologists) तथा ………….. सभी के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। यह बात सही कही गई है कि "हर दिन ………. चुपचाप मरती जा रही है, बस हमारी आवाज़ें ही बाकी रह गई हैं।"

**(b)** मि प्रबंधन (Land Husbandry) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

**(c)** लवणीय मृदा (Saline Soil) के सुधार (Soil Amelioration) की तकनीकें बताइए।

**3 (a)** मृदा और बंजर भूमि के पुनर्वास (Rehabilitation) का वर्णन कीजिए।

**(b)** पुनर्स्थापन (Restoration) क्या है? बंजर भूमि के पुनर्स्थापन का वर्णन कीजिए।

**4 (a)** जैव-शोधन (Bio-remediation) के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

**5 (a)** जैव-शोधन (Bio-remediation) के लाभ और हानियाँ बताइए।

**(b)** एक्स-सीटू (Ex-situ) और इन-सीटू (In-situ) जैव-शोधन में अंतर बताइए।

**6 (a) रिक्त स्थान**

………….. (1954) के अनुसार "बंजर भूमि (Waste Land) वह भूमि है जिसका पहले उपयोग किया गया था……., लेकिन जिसे परित्यक्त कर दिया गया है, और जिसके लिए कोई और उपयोग नहीं पाया गया।" जैसा कि आप जानते हैं, बंजर भूमि वह भूमि है जिसका पहले खेती के लिए उपयोग किया गया था, लेकिन कम उत्पादकता (low productivity) के कारण इसे छोड़ दिया गया। वोहरा (Vohra, 1978) के अनुसार लगभग ………… उपजाऊ मृदा (fertile soil) जिसमें 5 मिलियन टन ………. शामिल है, प्रति वर्ष विस्थापित हो जाती है। विभिन्न विकासात्मक गतिविधियाँ जैसे उद्योग (industries), शहरीकरण (urbanization), कृषि अभ्यास (agricultural practices) आदि बंजर भूमि के निर्माण (waste land genesis) में योगदान करती हैं। मृदा और वनस्पति के प्रबंधन (soil and vegetation management) के माध्यम से बंजर भूमि का पुनर्वास (rehabilitation) सिलोशन (siltation) को कम करेगा और जलधारा क्षेत्रों (catchment areas) में जल उत्पादन (water yield) को बढ़ाएगा। यह मृदा की क्षमता (soil capability), जलवायु (climatic conditions) और पौधों की प्रजातियों (plant species) पर निर्भर करता है। ………. मुख्य रूप से बंजर भूमि के निर्माण के लिए जिम्मेदार है। पौधे बंजर भूमि के पुनर्वास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन, पौधों का चयन (selection of plants) सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। पौधों के चयन का आधार स्थानीय मौसम (local

weather condition), अनुकूलता (adaptability), उत्पादकता (productivity) और जीवित रहने की क्षमता (survivorship) होता है।

**(b)** माइको-रिमेडिएशन (Myco-remediation) का संबंध किससे है (कवक/शैवाल/प्रोटोज़ोआन्स/ बैक्टीरिया)

**(c)** लवण-संवेदनशील फसल (Saline sensitive crop) है? (गेहूँ/चावल/टमाटर/जई)

**(d)** ह्यू हैमंड बेनेट (Hugh Hammond Bennett) को मृदा संरक्षण (Soil Conservation) का जनक माना जाता है (हाँ/नहीं)

**7 (a)** बंजर भूमि के पुनर्वास (Wasteland Rehabilitation) में उपयोग की जाने वाली पौधों की प्रजातियों की सूची दीजिए?

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

**1 (a)** मृदा संरक्षण, सभ्यता, सामाजिक-आर्थिक दृष्टि और भूमि

**2 (a)** अनुभाग 8.2 देखें, **(b)** अनुभाग 8.4 देखें

**3(a)** अनुभाग 8.5 देखें, **(b)** अनुभाग 8.6 देखें,

**4 (a)** अनुभाग 8.6 देखें,

**5 (a)** अनुभाग 8.6 देखें,

**(b)** अनुभाग 8.6 देखें,

**6 (a)** डडली स्टैम्प के अनुसार, लगभग 6000 मिलियन टन उपजाऊ मृदा का नुकसान होता है।, NPK, वनों की कटाई, बंजर भूमि, पौधों की प्रजातियाँ, पौधों की प्रजातियाँ (b) कवक, (c) टमाटर, (d) हाँ

**7(a)** अनुभाग 8.5 देखें

# इकाई 9: जल और जल संसाधन: परिचय, स्थिति, विशेषताएँ और उपयोग

इकाई संरचना

9.0 सीखने का उद्देश
9.1 परिचय
9.2 जल एक दृष्टि
9.3 जल और जल संसाधन
9.4 वैश्विक स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति
9.4.1 ताजा जल
9.4.2 खारा जल
9.5 राष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति
9.6 जल संसाधनों का उपयोग
9.6.1 घरेलू उपयोग
9.6.2 सिंचाई
9.6.3 जलविद्युत उत्पादन
9.6.4 औद्योगिक प्रयोजन
9.6.5 मत्स्य पालन
9.6.6 मनोरंजनात्मक
9.6.7 समुद्री नौवाहन
सारांश

## 9.0 सीखने का उद्देश

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- जल संसाधन क्या हैं?
- जल संसाधन महत्वपूर्ण क्यों हैं?
- जल संसाधनों के प्रकार
- वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति
- मानव जल संसाधनों का उपयोग कैसे करता है?

## 9.1 परिचय

जल प्राकृतिक संसाधनों में से एक सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है और इसे जीवन का अमृत माना जाता है। जल के महत्व को इस वाक्य से समझा जा सकता है कि "जल ही प्रकृति की सभी गतिविधियों का प्रेरक बल (Driving Force of all Nature) है।" इसका अर्थ है कि प्रकृति की हर गतिविधि जल द्वारा संचालित होती है। कहा गया है कि "शुद्ध जल सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण औषधि है।" पृथ्वी पर लगभग सभी जल

का 97.5% से अधिक भाग महासागरों (oceans) का खारा जल (seawater) है (NCERT पाठ्यपुस्तक)। शेष जल को ताजा जल (Freshwater) कहा जाता है क्योंकि इसमें उच्च लवणता (high salt content) नहीं होती। अधिकांश ताजे जल अंटार्कटिका और ग्रीनलैंड के बड़े ग्लेशियरों (glaciers) में जमा (frozen solid) है। मानव उपयोग के लिए उपलब्ध अधिकांश ताजे जल या तो मिट्टी और चट्टानों में भूजल (groundwater) के रूप में होता है, या नदियों, नालों और झीलों में सतही जल (surface water) के रूप में मौजूद होता है। जल प्रकृति द्वारा दिया गया सबसे कीमती उपहार है। जल के बिना इस ग्रह पर जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जैसा कि आप जानते हैं, मनुष्य जल संसाधनों का उपयोग कृषि (agricultural), ओद्योगिक (industrial), घरेलू (household), मनोरंजन (recreational) और पर्यावरणीय गतिविधियों (environmental activities) के लिए करता है।

पृथ्वी पर केवल 2.5% जल ताजे जल के रूप में उपलब्ध है, और इसका दो तिहाई भाग ग्लेशियरों और ध्रुवीय हिमावरण (polar ice caps) में जमा है। अनुमान है कि विश्व में 70% जल उपयोग कृषि में सिंचाई (irrigation) के लिए किया जाता है (Wilson, et.al. 1997)। जलवायु परिवर्तन (Climate Change) का जल संसाधनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता हैं क्योंकि जलवायु और जलचक्र (hydrologic cycle) के बीच निकट संबंध है। भारत की नदी प्रणाली में औसत प्रवाह (average runoff) लगभग 1869 $km^3$ है, जिसमें से लगभग 690 $km^3$ जल उपयोग योग्य (utilizable portion) माना जाता है। विभिन्न मानवजनित (manmade/anthropogenic) गतिविधियों के कारण यह कीमती संसाधन बहुत तेजी से प्रदूषित और घट रहा है। घरेलू सीवेज (domestic sewage), औद्योगिक अपशिष्ट (industrial effluent), रासायनिक उर्वरकों (chemical fertilizers) का अत्यधिक उपयोग और ठोस अपशिष्ट (solid waste) का अनुचित प्रबंधन जल संसाधनों को गंभीर नुकसान पहुँचाता है। जैसा कि आप जानते हैं, हम हर वर्ष 22 मार्च को विश्व जल दिवस (World Water Day) मनाते हैं ताकि इस कीमती प्राकृतिक संसाधन का संरक्षण किया जा सके। इस इकाई में, आप वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधन, जल संसाधनों की विशेषताएँ और उनका उपयोग सीखेंगे।

## 9.2 जल एक दृष्टि

जल एक पारदर्शी, गंधहीन, स्वादहीन एवं अकार्बनिक यौगिक है।

इसका रासायनिक सूत्र $H_2O$ है।

यह पीने, सफाई, कृषि, परिवहन, उद्योग, मनोरंजन, पशुपालन तथा घरेलू, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए विद्युत उत्पादन में प्रयुक्त होता है।

पृथ्वी की लगभग 70% सतह जल से ढकी हुई है।

वैश्विक स्तर पर लगभग 1386 मिलियन घन किलोमीटर जल उपलब्ध है।

इसमें से 97.5% जल समुद्री या खारा जल है।

जल विज्ञान (Hydrology) वह विज्ञान है जो जल की गति, वितरण एवं गुणवत्ता का अध्ययन करता है।

जल के चक्र को जलचक्र (Hydrological Cycle) कहा जाता है, जिसमें वाष्पीकरण, वर्षा, वाष्पोत्सर्जन एवं अपवाह प्रमुख प्रक्रियाएँ हैं।

केवल 2.5% जल मीठा (Freshwater) होता है, जो नदियों, झीलों, तालाबों, भूजल, हिमनदों (Glaciers) और हिमावरण (Icecaps) के रूप में पाया जाता है।

जल तीनों अवस्थाओं — द्रव, ठोस एवं गैस — में पाया जाता है।

कृषि में सिंचाई हेतु लगभग 70% मीठा जल उपयोग में लाया जाता है।

वास्तव में, पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल की तुलना में केवल लगभग 9,000–14,000 घन किलोमीटर जल ही आर्थिक रूप से मानव उपयोग के लिए उपलब्ध है यह ऐसे है जैसे भरे हुए बाथटब में केवल एक चम्मच पानी।

फसलों की सिंचाई के लिए प्रति टन अनाज उत्पादन में 1000–3000 घन मीटर जल की आवश्यकता होती है। अर्थात् 1 किलोग्राम अनाज उत्पादन के लिए 1–3 टन जल की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक व्यक्ति की दैनिक पेयजल आवश्यकता 3–5 लीटर होती है।

परंतु एक व्यक्ति के दैनिक भोजन के उत्पादन के लिए लगभग 2000–5000 लीटर जल की आवश्यकता होती है।

## 9.3 जल और जल संसाधन

जल संसाधन अन्य प्राकृतिक संसाधनों में सबसे मूल्यवान संसाधन है। जल हमारे ग्रह पर सबसे व्यापक रूप से वितरित पदार्थ है। इसके बिना मानव जीवन की कल्पना भी असंभव है क्योंकि इसका कोई विकल्प नहीं है। मानव ने सदैव विभिन्न उद्देश्यों के लिए मीठे जल का उपयोग किया है। जल संसाधन सामान्यतः मीठे जल के वे स्रोत हैं जो मानव के लिए उपयोगी या संभावित रूप से उपयोगी हैं जैसे घरेलू, कृषि और औद्योगिक उपयोग के लिए।

पृथ्वी के अनेक भागों में जल संसाधन अत्यधिक प्रदूषित हो चुके हैं, जिसके कारण वे बढ़ती हुई मांगों को पूरा करने में असमर्थ हो गए हैं। यह स्थिति आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि में प्रमुख बाधा बन गई है।

जल तीन अवस्थाओं (द्रव, ठोस और गैस) में पाया जाता है। यह महासागरों, समुद्रों, झीलों, नदियों, भूमिगत जल तथा पृथ्वी की ऊपरी परतों और मिट्टी में पाया जाता है। ठोस अवस्था में, यह ध्रुवीय क्षेत्रों में हिम और बर्फ के आवरण के रूप में उपस्थित होता है। वायुमंडल में भी कुछ मात्रा में जल जलवाष्प, जलकणों और हिमकणों के रूप में विद्यमान रहता है, और साथ ही यह जीवमंडल (biosphere) यानी जीवित प्राणियों के भीतर भी पाया जाता है।

पृथ्वी पर कुल जल भंडार की विश्वसनीय निगरानी करना एक जटिल कार्य है क्योंकि जल अत्यंत गतिशील (dynamic) है। यह निरंतर गति में रहता है और लगातार द्रव, ठोस एवं गैसीय अवस्थाओं के बीच परिवर्तनशील रहता है। इसलिए, जलमंडल (hydrosphere) में उपलब्ध जल की मात्रा का आकलन करना अत्यंत आवश्यक है।

अनुमान लगाया गया है कि जलमंडल में लगभग 1386 मिलियन घन किलोमीटर जल मौजूद है। हालांकि, इस कुल जल का 97.5% भाग खारा (लवणीय) जल है, जबकि केवल 2.5% भाग मीठा जल (freshwater) है (Wilson et al., 1997)। इस मीठे जल का भी बड़ा हिस्सा लगभग 68.7% हिमनदों (glaciers) और स्थायी हिमावरण के रूप में अंटार्कटिका, आर्कटिक तथा पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है। लगभग 29.9% मीठा जल भूजल (groundwater) के रूप में है, और केवल 0.26% मीठा जल ही झीलों,

जलाशयों और नदियों में विद्यमान है जहाँ से यह सबसे आसानी से उपलब्ध होता है और आर्थिक आवश्यकताओं तथा जल पारितंत्रों (water ecosystems) के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (Wilson et al., 1997)।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जल एक गतिशील पदार्थ (dynamic substance) है जो एक अवस्था से दूसरी अवस्था में निरंतर परिवर्तित होता रहता है। सूर्य की ऊष्मा पृथ्वी की सतह से जल को वाष्पित (evaporate) कर वायुमंडल में पहुंचा देती है। भूमि, झीलें, नदियाँ और महासागर निरंतर जलवाष्प को ऊपर भेजते रहते हैं, जो पूरे ग्रह के वातावरण में फैल जाती है और बाद में वर्षा (precipitation) के रूप में पुनः धरती पर गिरती है। भूमि पर गिरने वाली यह वर्षा ही वहाँ पाए जाने वाले जल स्रोतों जैसे नदियाँ, झीलें, भूजल और हिमनद (glaciers) के निर्माण का मुख्य स्रोत है। वायुमंडलीय वर्षा का एक भाग पुनः वाष्पित हो जाता है; कुछ भाग भूमि में समाकर (infiltrate) भूजल को पुनः भरता है, जबकि शेष भाग अपवाह (runoff) के रूप में नदियों में बहता हुआ महासागरों तक पहुँचता है, जहाँ से वह फिर वाष्पित होकर वातावरण में चला जाता है। यह प्रक्रिया निरंतर दोहराई जाती रहती है, जिसे हम जलचक्र (water cycle) कहते हैं। दूसरी ओर, कुछ भूजल (groundwater) पूरी तरह नदी प्रणालियों को बायपास कर देता है और सीधे महासागरों में प्रवाहित हो सकता है या वायुमंडल में वाष्पित (evaporate) भी हो सकता है। ये सभी मीठे जल के मूल स्रोत हैं जो न केवल जीवन को बनाए रखने में सहायक हैं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों के लिए भी अत्यंत आवश्यक हैं। नदियों का जल जलचक्र (Hydrological Cycle) में तथा मानव जाति को जल उपलब्ध कराने में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समुद्री जल के पूर्ण पुनर्भरण

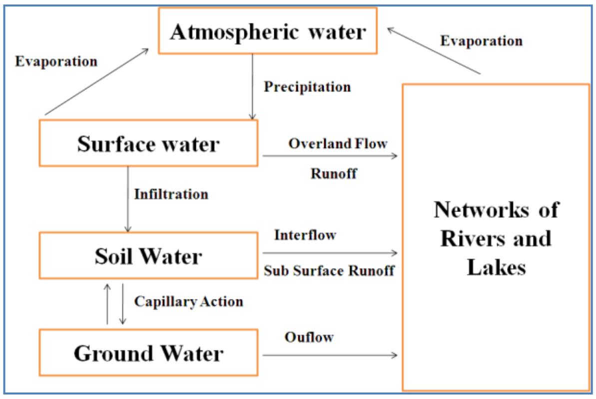


चित्र-1: जल का संचलन या जलचक्र

तालिका 1: वैश्विक स्तर पर जल का वितरण (शर्मा, 2018)

| स्थान | आयतन (मिलियन घन किलोमीटर में) | कुल जल का प्रतिशत (%) |
|---|---|---|
| मीठा जल और झीलें | 0.125 | 0.009 |
| खारी झीलें और अंतर्देशीय सागर | 0.104 | 0.008 |
| नदियाँ | 1.25X10-3 | 0.0001 |
| मिट्टी में नमी | 0.067 | 0.005 |
| भूजल | 8.3 | 0.61 |
| हिमनद और हिमावरण | 29.2 | 2.14 |
| भूमि क्षेत्र का कुल जल | 37.0 | 2.8 |
| वायुमंडलीय जलवाष्प | 0.013 | 0.001 |
| महासागर | 1320 | 97.3 |
| विश्व का कुल जल | 1360 | 100 |

(recharge) में लगभग 2500 वर्ष का समय लगता है, स्थायी हिम (Permafrost) और बर्फ (Ice) के लिए लगभग 10,000 वर्ष, तथा गहरे भूजल (Deep Groundwater) और पर्वतीय हिमनदों (Mountain Glaciers) के लिए लगभग 1500 वर्ष का समय लगता है। झीलों में संचित जल का पूर्ण पुनर्भरण लगभग 17 वर्षों में हो जाता है, जबकि नदियों में यह प्रक्रिया केवल लगभग 16 दिनों में पूरी हो जाती है। जल विनिमय (Water Exchange) की विशेषताओं के आधार पर, जल विज्ञान (Hydrology) में दो प्रमुख अवधारणाएँ उपयोग की जाती हैं पहली है स्थिर भंडारण घटक (Static Storage Component) और दूसरी है नवीकरणीय जल। स्थिर भंडारण में सामान्यतः वह मीठा जल शामिल होता है जिसका पूर्ण नवीनीकरण बहुत लंबे समय कई वर्षों या दशकों में होता है, जैसे बड़ी झीलें और भूजल स्रोत। इस घटक के अत्यधिक उपयोग से जल भंडार में कमी होती हैं और इसके प्रतिकूल प्रभाव सामने आते हैं (Wilson et al., 1997)।
यदि मनुष्य अचानक नदियों को प्रदूषित करना बंद कर दे तो कुछ समय बाद जल अपनी प्राकृतिक शुद्धता (natural purity) को पुनः प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, नदी अपवाह (river runoff) जो नवीकरणीय जल संसाधनों का प्रतिनिधित्व करता है । जलचक्र (hydrological cycle) का सबसे महत्वपूर्ण घटक है: यह पृथ्वी की पर्यावरणीय संरचना (ecology) तथा मानव आर्थिक विकास (human economic development) पर गहरा प्रभाव डालता है। वास्तव में, नदी अपवाह ही पृथ्वी की स्थल सतह पर सबसे व्यापक रूप से वितरित जल रूप है और यह विश्व में जल उपभोग (water consumption) का प्रमुख स्रोत प्रदान करता है।

## 9.4 वैश्विक स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति

शाब्दिक रूप से कहा जाए तो जल ही पृथ्वी पर जीवन का स्रोत है। यह जलमंडल (Hydrosphere) का मुख्य घटक है, जिसमें महासागर, समुद्र, नदियाँ, धाराएँ, हिमनद (Glaciers), झीलें, जलाशय (Reservoirs), ध्रुवीय हिमावरण (Polar Ice Caps) तथा ऊपरी भूजल निकाय (Shallow Groundwater Bodies) शामिल हैं, जो सतही जल (Surface Water) के साथ परस्पर जुड़े रहते हैं। अनुमानतः पृथ्वी की सतह का लगभग 70.8% भाग जल से ढका हुआ है, जो मुख्यतः महासागरों के रूप में पाया जाता है। यह अनुमान लगाया गया है कि जलमंडल में लगभग 1,386 मिलियन घन किलोमीटर जल है, जिसमें से लगभग 97.5% जल महासागरों और अंतर्देशीय सागरों (Inland Seas) में पाया जाता है। इनका अधिक लवणता होने के कारण इसे मानव उपभोग हेतु उपयोग में नहीं लाया जाता हैं। शेष 2.5% जल संसाधन हिमनदों, हिमावरण, नदियों, धाराओं, झीलों, जलाशयों तथा भूजल स्रोतों (Groundwater Sources) में संचित है (Wilson et al., 1997)।
खारे जल और मीठे जल का भंडार इतिहास के दौरान लगभग स्थिर बना रहा है, परंतु समुद्री जल और मीठे जल के बीच का अनुपात जलवायु परिस्थितियों के अनुसार सदैव बदलता रहा है। तापमान जलचक्र (Hydrological Cycle) में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रक्रिया को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है जब जलवायु अत्यधिक ठंडी होती है, तो समुद्री जल का एक बड़ा भाग हिमनदों (Glaciers) और हिमावरण (Ice Caps) द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है, जिससे मीठे जल की मात्रा बढ़ती है और समुद्री जल की मात्रा घटती है। इसके विपरीत, जब जलवायु गर्म होती है, तो हिमनद और हिमावरण पिघलने लगते हैं, जिससे समुद्री जल की मात्रा बढ़ती है और मीठे जल की मात्रा घटती है। पिछले 100 वर्षों के समुद्र-

स्तर के अवलोकनों से यह संकेत मिलता है कि समुद्र-स्तर लगातार बढ़ रहा है, जिसका अर्थ है कि वैश्विक जलवायु (Global Climate) निरंतर उष्ण (warmer) होती जा रही है (Wilson et al., 1997)।

## 9.4.1 मीठा जल

मीठा जल (Fresh Water) स्वाभाविक रूप से हिमावरण (Ice Caps), तालाब, झीलें, नदियाँ, धाराएँ और भूजल (Groundwater) के रूप में पाया जाता है। इसमें विलेय लवणों (Dissolved Salts) और कुल घुलित ठोस पदार्थों (TDS) की मात्रा बहुत कम होती है। पृथ्वी के कुल जल का केवल लगभग 2.5% भाग मीठा जल है। इसे "स्वच्छ जल" या "मीठा जल (Sweet Water)" भी कहा जाता है।

मीठे जल का मुख्य स्रोत वर्षा है। मीठा जल एक नवीकरणीय तथा परिवर्तनीय (Variable), परंतु सीमित प्राकृतिक संसाधन है। इसका पुनर्भरण केवल जलचक्र की प्रक्रिया के माध्यम से होता है, जिसमें समुद्र, झीलें, वन, भूमि और नदियों से जल वाष्पित होकर बादल बनाता है और पुनः वर्षा के रूप में पृथ्वी पर लौटता है।

मीठे जल को दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

**सतही जल (Surface Water):** जैसे तालाब, झीलें, नदियाँ, धाराएँ और जलाशय।

**भूजल (Ground Water):** जो भूमि के भीतर जलभृतों (Aquifers) में संग्रहित रहता है।

## 9.4.2 खारा जल

खारा जल (Saline Water) वह जल होता है जिसमें लवणों की सांद्रता (Concentration of Salts) अत्यधिक मात्रा में होती है। विश्व के कुल जल का लगभग 97.5% भाग खारा जल है। लवणीयता (Salinity) की मात्रा के आधार पर खारे जल को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

हल्का खारा जल (Slightly Saline Water): इस श्रेणी में जल की लवणीयता लगभग 1,000 से 3,000 पीपीएम (ppm) या 0.1–0.3% होती है।

मध्यम खारा जल (Moderately Saline Water): इस प्रकार के जल में लवणीयता लगभग 3,000 से 10,000 पीपीएम (ppm) या 0.4–1% होती है।

अत्यधिक खारा जल (Highly Saline Water): इस प्रकार के जल में लवणीयता लगभग 10,000 से 35,000 पीपीएम (ppm) या 1.1–3.5% होती है।

**तालिका –2: महाद्वीपवार प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता (शर्मा, 2018)**

| **महाद्वीप** | **प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता (घन मीटर प्रति वर्ष)** |
|---|---|
| ओशियानिया | 76000 |
| दक्षिण अमेरिका | 35000 |
| उत्तर एवं मध्य अमेरिका | 16000 |
| अफ्रीका | 6500 |
| यूरोप | 4700 |
| एशिया | 3,400 |

**जल का महत्व:** जल जीवन के लिए अत्यावश्यक है न केवल मानव जीवन के लिए, बल्कि इस ग्रह की सभी पारिस्थितिक प्रक्रियाओं (Ecological Processes) के लिए भी। यह स्वयं जीवन का अभिन्न अंग है, क्योंकि सभी जीवित क्रियाएँ (Living Processes) इसी माध्यम से संपन्न होती हैं। जल पोषक तत्वों (Nutrients) को घोलकर

कोशिकाओं तक पहुँचाने, शरीर का तापमान नियंत्रित करने, शारीरिक संरचना को सहारा देने तथा अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने में सहायता करता है। यहां तक कि मानव शरीर का लगभग 60% भाग जल से बना होता है। हम अपनी दैनिक क्रियाओं की शुरुआत भी जल से ही करते हैं। कोई व्यक्ति भोजन के बिना एक सप्ताह तक जीवित रह सकता है, परंतु जल के बिना जीवित रह पाना असंभव है। मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल से ही जल की उपलब्धता ने यह निर्धारित किया कि मानव बस्तियाँ कहाँ बसेंगी और कौन-से खाद्य पदार्थ उगाए जा सकेंगे। अनेक प्राचीन सभ्यताएँ नदियों और जल निकायों के किनारे विकसित हुई है। जल के बिना न तो व्यक्ति, और न ही समाज, अस्तित्व में रह सकता है। पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है जहाँ पर्याप्त मात्रा में द्रव अवस्था में जल विद्यमान है। जल निकाय (Water Bodies) पृथ्वी की सतह के 70% से अधिक भाग को आच्छादित करते हैं। दुर्भाग्यवश, पृथ्वी पर उपलब्ध अधिकांश जल खारा (Salt Water) है, जो पीने और सामान्य उपयोगों के लिए उपयुक्त नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं, मानव की प्रत्येक गतिविधि किसी न किसी रूप में जल से जुड़ी होती है। मनुष्य को केवल पेयजल ही नहीं, बल्कि स्नान, धुलाई, ताप, वातानुकूलन, कृषि, पशुपालन, औद्योगिक गतिविधियों, जलविद्युत उत्पादन, भाप ऊर्जा (Steam Power), नौपरिवहन (Navigation), मनोरंजन (Recreation), मत्स्य पालन (Aquaculture) तथा अपशिष्ट निपटान (Waste Disposal) के लिए भी जल की आवश्यकता होती है। जिस समाज में जल की आपूर्ति सीमित होती है, वहाँ विकास की संभावनाएँ भी सीमित हो जाती हैं, क्योंकि कुल खाद्य उत्पादन और बड़े पैमाने पर विद्युत उत्पादन आज भी जल संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। साथ ही, उद्योगों द्वारा जल की मांग लगातार बढ़ती जा रही है।

प्रत्येक महाद्वीप में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता में अत्यधिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं (तालिका–2)। ओशियानिया (Oceania) में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 70,000 घन मीटर से अधिक जल उपलब्ध है, जबकि अफ्रीका (Africa) में यह मात्रा 7,000 घन मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से भी कम है। इसके विपरीत, एशिया

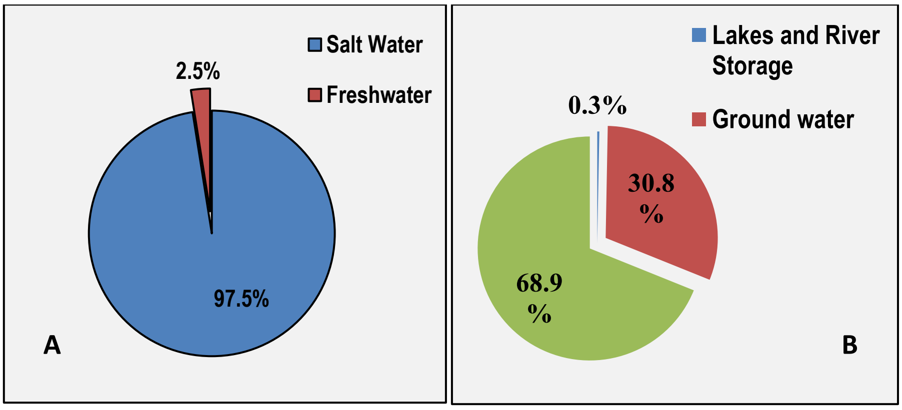


**चित्र–2. A. वैश्विक स्तर पर खारे जल और मीठे जल का प्रतिशत दर्शाता हुआ**
**B. वैश्विक स्तर पर केवल मीठे जल का प्रतिशत दर्शाता हुआ**

में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता मात्र 3,400 घन मीटर प्रति वर्ष है। यदि पृथ्वी पर कुल जल की मात्रा स्थिर मानी जाए, तो जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता समय के साथ घटती जाएगी।

मीठे जल का संकट: यदि हम अन्य सभी प्राकृतिक संसाधनों की तुलना करें, तो जल का उपयोग अत्यधिक मात्रा में किया जाता है। हाल के समय में, पृथ्वी पर प्रति वर्ष उपयोग किया जाने वाला जल, कोयला,

पेट्रोलियम, धातु अयस्क और अधातुओं सहित सभी खनिजों के वैश्विक कुल उत्पादन से लगभग 1000 गुना अधिक है। वैश्विक स्तर पर जल की कुल प्रचुरता कोई समस्या नहीं है, बल्कि समस्या यह है कि जल सही स्थान पर, सही समय पर और सही रूप में उपलब्ध नहीं होता। जैसा कि आप जानते हैं, वर्षा/वर्षण मौसमी होती है, इसलिए स्थलजल (सतही और भूमिगत जल स्रोतों) की मात्रा परिवर्तनशील होती है। वर्षा के समय और तीव्रता में अनियमितता प्रायः बाढ़ या सूखे का कारण बनती है। जैसा कि आप समझते हैं, मीठे जल की उपलब्धता वैश्विक स्तर पर सीमित है। वार्षिक रूप से अनुमान लगाया गया है कि लगभग 12.5 से 14 अरब घन मीटर जल मानव उपयोग के लिए उपलब्ध है। दूसरी ओर, मीठा जल विश्व की जनसंख्या के लिए पर्याप्त है, परंतु इसका समान वितरण संभव नहीं है, क्योंकि पहला, विश्व की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या ऐसे क्षेत्रों में रहती है, जहाँ केवल वैश्विक वार्षिक वर्षा का एक चौथाई भाग ही प्राप्त होता है; और दूसरा, वर्षा न तो मौसमों में समान रूप से होती है, और न ही वर्ष दर वर्ष स्थिर रहती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार (2020), विश्व के लगभग 40 देश ऐसे हैं जहाँ प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 2,000 घन मीटर से कम स्वच्छ जल उपलब्ध है यह वह न्यूनतम मात्रा है जो एक स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक मानी जाती है।

**तालिका–3: वैश्विक स्तर पर मीठे जल का वितरण एवं उनका प्रतिशत**

| | |
|---|---|
| ध्रुवीय बर्फ | 68.6 |
| भूजल | 30.1 |
| अन्य बर्फ एवं हिम | 0.97 |
| झीलें | 0.26 |
| मृदा आर्द्रता | 0.047 |
| वायुमंडलीय जल | 0.037 |
| दलदली क्षेत्र | 0.33 |
| नदियाँ | 0.006 |
| जैविक जल | 0.003 |

**तालिका 4: वैश्विक स्तर पर कुल जल भंडार (शिक्लोमानोव, 1999)**

| | आयतन (1000 घन किमी) | कुल जल का प्रतिशत | कुल मीठे जल का प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| **खारा जल** | | | |
| महासागर | 1338000 | 96.54 | |
| खारा / खारेपनयुक्त / भूजल | 12870 | 0.93 | |
| खारी झीलें | 85 | 0.006 | |
| **स्थलांतरीय जल** | | | |
| हिमनद एवं स्थायी हिमावरण | 24064 | 1.74 | 68.7 |
| मीठा भूजल | 10530 | 0.76 | 30.06 |
| भू-बर्फ / स्थायी हिम | 300 | 0.022 | 0.86 |
| मीठी जल की झीलें | 91 | 0.007 | 0.26 |
| मृदा आर्द्रता | 16.5 | 0.001 | 0.05 |
| वायुमंडलीय जलवाष्प | 12.9 | 0.001 | 0.04 |
| दलदली क्षेत्र / आर्द्रभूमियाँ | 11.5 | 0.001 | 0.03 |
| नदियाँ | 2.12 | 0.0002 | 0.006 |
| जैविक रूप में विद्यमान जल | 1.12 | 0.0001 | 0.003 |
| **कुल जल** | **13,86,000** | **100** | |
| **कुल जल** | **35,029** | | **100** |

विश्व की लगभग 2 अरब जनसंख्या को आज भी सुरक्षित पेयजल या स्वच्छता की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। जल की कमी वाले देशों में सबसे अधिक प्रतिशत जनसंख्या अफ्रीका और मध्य पूर्व (Middle East) में

पाई जाती है। दुर्भाग्यवश, बढ़ती जनसंख्या और ठहरती अर्थव्यवस्थाओं के कारण अधिकांश देश अपनी जनता को पर्याप्त जल आपूर्ति के स्तर पर बनाए रखने में असमर्थ रहे हैं, बल्कि कई मामलों में स्थिति और भी खराब हुई है। जल संसाधनों के संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर अनेक रणनीतियाँ अपनाई गई हैं। संयुक्त राष्ट्र (UN) ने वर्ष 2003 को "अंतरराष्ट्रीय मीठा जल वर्ष" (International Year of Freshwater) के रूप में घोषित किया था।

वैश्विक स्तर पर जल संसाधन: विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार (2020), वैश्विक स्तर पर जल संसाधनों के विभिन्न रूप पाए जाते हैं, जिनका वर्णन नीचे किया गया है और जिनका सारांश सारणी-4 में प्रस्तुत है।

मीठे जल के संसाधन असमान रूप से वितरित हैं, क्योंकि अधिकांश जल मानव निवास क्षेत्रों से बहुत दूर स्थित है। विश्व की अधिकांश बड़ी नदी घाटियाँ विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों से होकर प्रवाहित होती हैं। अनुमानतः विश्व में लगभग 263 प्रमुख अंतरराष्ट्रीय नदी घाटियाँ हैं, जो कुल 23,10,59,898 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल को आच्छादित करती हैं  यह पृथ्वी की कुल स्थलीय सतह (अंटार्कटिका को छोड़कर) का लगभग 45.3% भाग है।

भूजल (Groundwater) उपलब्ध मीठे जल संसाधनों का लगभग 90% भाग है, और लगभग 1.5 अरब लोग अपने पेयजल के लिए भूजल पर निर्भर हैं।

कृषि क्षेत्र में जल उपयोग कुल वैश्विक जल खपत का लगभग 70% है, जो मुख्य रूप से फसलों की सिंचाई में प्रयुक्त होता है; औद्योगिक उपयोग लगभग 20% है; घरेलू उपयोग के लिए लगभग 5% जल का उपयोग होता है, और शेष 5% अन्य उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाता है।

अनुमान है कि वर्ष 2025 तक प्रत्येक तीन व्यक्तियों में से दो व्यक्ति ऐसे क्षेत्रों में रहेंगे जहाँ जल की कमी (water-stressed areas) की समस्या होगी।

विश्व की लगभग 20% जनसंख्या को सुरक्षित पेयजल तक पहुँच प्राप्त नहीं है। सतही जल में मलजनित प्रदूषण (fecal pollution) के कारण होने वाले जलजनित रोग विकासशील देशों में अब भी बीमारियों का एक प्रमुख कारण बने हुए हैं। प्रदूषित जल से अनुमानतः 1.2 अरब लोगों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है और यह प्रतिवर्ष लगभग 1.5 करोड़ बच्चों की मृत्यु में योगदान देता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों में महासागरों के स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि शामिल हो सकती है। इससे कुछ तटीय क्षेत्र पूरी तरह से जलमग्न हो सकते हैं और अन्य क्षेत्रों में मानव संवेदनशीलता (vulnerability) बढ़ सकती है, क्योंकि मानव जनसंख्या समुद्री संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर है। छोटे द्वीपीय विकासशील राष्ट्र (Small Island Developing States - SIDS) विशेष रूप से संवेदनशील हैं, क्योंकि वे समुद्र-स्तर में वृद्धि और समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों (marine ecosystems) में होने वाले परिवर्तनों दोनों के प्रभावों से प्रभावित होते हैं।

भूजल अब तक का सबसे प्रचुर और आसानी से उपलब्ध मीठे जल का स्रोत है। इसके बाद झीलें, जलाशय, नदियाँ और आर्द्रभूमियाँ (सतही जल) आती हैं। बोस्विंकल (Boswinkel, 2000) के अनुसार, वैश्विक स्तर पर भूजल आसानी से उपलब्ध मीठे जल संसाधनों का 90% से अधिक भाग है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार, लगभग 1.5 अरब लोग अपने पेयजल की आपूर्ति के लिए भूजल पर निर्भर हैं। शिक्लोमानोव (Shiklomanov, 1999) के अनुसार, मीठे जल संसाधनों की कुल मात्रा लगभग 3.5

करोड़ (35 मिलियन) घन किलोमीटर है, जो पृथ्वी पर कुल जल मात्रा का लगभग 2.5% है। इन मीठे जल संसाधनों में से लगभग 2.4 करोड़ (24 मिलियन) घन किलोमीटर या 68.9% भाग हिमनदों (glaciers) और पर्वतीय क्षेत्रों, अंटार्कटिक तथा आर्कटिक क्षेत्रों में स्थायी हिमावरण के रूप में विद्यमान है।

वैश्विक स्तर पर मीठे जल की झीलों और नदियों में अनुमानतः 1,05,000 घन किलोमीटर (0.3%) जल संचित है। पारिस्थितिक तंत्रों और मानव उपयोग के लिए उपलब्ध कुल उपयोगी मीठे जल की मात्रा लगभग 2,00,000 घन किलोमीटर है, जो सभी मीठे जल संसाधनों का 1% से भी कम है (Shiklomanov, 1999)। अधिकांश मीठा जल स्थायी हिम या बर्फ के रूप में अंटार्कटिका और ग्रीनलैंड में या गहरे भूजल जलभृतों (aquifers) में बंद रूप में पाया जाता है। मानव उपयोग के लिए जल के प्रमुख स्रोत झीलें, नदियाँ, मृदा आर्द्रता (soil moisture) और अपेक्षाकृत उथले भूजल बेसिन हैं। मीठे जल की पुनर्भरण (replenishment) महासागरों की सतह से होने वाले वाष्पीकरण पर निर्भर करती है। प्रतिवर्ष लगभग 5,05,000 घन किलोमीटर जल महासागरों से वाष्पीकृत होता है। इसके अतिरिक्त लगभग 72,000 घन किलोमीटर जल भूमि से वाष्पीकृत होता है। कुल वर्षा का लगभग 80% भाग अर्थात् लगभग 4,58,000 घन किलोमीटर प्रति वर्ष महासागरों पर गिरता है, जबकि शेष लगभग 1,19,000 घन किलोमीटर प्रति वर्ष भूमि पर गिरता है।

## 9.5 राष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधनों की स्थिति

भारत के पास विश्व के कुल मीठे जल संसाधनों का लगभग 4% हिस्सा है, जिससे यह विश्व के शीर्ष दस जल समृद्ध देशों में शामिल होता है। भारत में वर्तमान में प्रति व्यक्ति उपयोग योग्य मीठे जल की उपलब्धता लगभग 1,122 घन मीटर प्रति वर्ष है, जबकि अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार यह मात्रा 1,700 घन मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष होनी चाहिए।

भविष्य में वर्तमान दर को देखते हुए अनुमान है कि भारत में जल की बढ़ती माँग के कारण इसे "जल-अभावग्रस्त क्षेत्र" (water scarce region) कहा जाएगा, क्योंकि उपयोग योग्य मीठे जल की मात्रा अंतरराष्ट्रीय मानक 1,000 घन मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से कम हो जाएगी। शहरीकरण और औद्योगीकरण की तीव्र गति तथा कृषि क्षेत्र की बढ़ती आवश्यकताओं के कारण जल की माँग लगातार बढ़ रही है। प्रत्येक वर्ष वर्षा और हिमपात के रूप में भारत को लगभग 4,000 घन किलोमीटर मीठा जल प्राप्त होता है जिसमें से लगभग 2,047 घन किलोमीटर जल पुनः महासागरों में चला जाता है या वायुमंडल में वाष्पित हो जाता है।

भारत में नदियाँ विकास और संस्कृति की जीवनरेखा रही हैं। देश में बारह प्रमुख नदी प्रणालियाँ हैं, जिनसे अनेक छोटी नदियाँ और धाराएँ जुड़ी हुई हैं। उत्तर भारत की प्रमुख नदी प्रणालियाँ गंगा, यमुना, सिंधु और ब्रह्मपुत्र हैं। दक्षिण भारत में कृष्णा, गोदावरी और कावेरी नदियाँ प्रमुख हैं जबकि मध्य भारत में नर्मदा, महानदी और ताप्ती नदी प्रणालियाँ स्थित हैं।

भारत की लगभग 70% नदियाँ बंगाल की खाड़ी में मिलती हैं जिनमें से अधिकांश गंगा–ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली का हिस्सा हैं। अरब सागर में कुल जल निकास का लगभग 20% भाग सिंधु और ताप्ती नदियों के माध्यम से पहुँचता है। शेष 10% जल निकास आंतरिक बेसिनों और प्राकृतिक झीलों में समाहित होता है। बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक समस्याओं के अतिरिक्त अधिकांश भारतीय नदियाँ शहरी और औद्योगिक केंद्रों से निकले कचरे के कारण प्रदूषण की शिकार हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) के अनुसार, देश की 18

प्रमुख नदियाँ गंभीर रूप से प्रदूषित हैं। इसके अतिरिक्त केरल राज्य की 44 नदियाँ वनों की कटाई, रेत खनन, नदी तटों पर ईंट निर्माण और प्रदूषण जैसी गतिविधियों के कारण अपनी गुणवत्ता खो रही हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, नदियाँ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए पेयजल का प्रमुख स्रोत हैं, उद्योगों के लिए कच्चा जल प्रदान करती हैं तथा कृषि के लिए सिंचाई का माध्यम भी हैं। भारत की कई नदियाँ अपने तल में गाद (silt) के जमाव से प्रभावित हो रही हैं, जिससे उनके जल प्रवाह में कमी आती है और नदी पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystem) असंतुलित होता है। नदियों के तटीय क्षेत्रों (riparian zones) में वनों की कटाई से मृदा अपरदन (soil erosion), भूस्खलन (landslide), बाढ़ और गाद जमाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। भारत की नदियों में गाद जमाव की दर विश्व में सबसे अधिक मानी जाती है। अनुमान है कि लगभग 135 अरब मीट्रिक टन अवसाद (sediment load) और 32 अरब मीट्रिक टन घुलनशील पदार्थ विभिन्न नदियों के माध्यम से महासागरों में पहुँचते हैं। इन नदियों पर अनेक बड़े बाँध और बैराज बनाए गए हैं। भारत के विभिन्न बाँधों और उनके प्रभावों का विस्तृत विवरण इस पाठ्यक्रम की ईकाई–10 में दिया गया है।

भारत विश्व की कुछ सबसे सुंदर झीलों का भी घर है। ये झीलें हिमालय की ऊँचाई वाले हिमाच्छादित क्षेत्रों में, उत्तर–पूर्व भारत में, राजस्थान के अर्ध–शुष्क मरुस्थलीय इलाकों में, तटीय क्षेत्रों में, तथा छोटे नगरों और गाँवों में पाई जाती हैं। भारत में झीलें पेयजल, कृषि और औद्योगिक कार्यों के लिए जल का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये झीलें सीवेज अवशोषक (sewage absorbers), बाढ़ नियंत्रक (flood controllers) और भूजल पुनर्भरण (groundwater recharger) के रूप में कार्य करती हैं। साथ ही ये ऐसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र (ecosystems) हैं जहाँ अनेक प्रकार के पक्षी और जीव अपना आवास बनाते हैं। झीलें मत्स्य पालन (pisciculture) और जलकृषि (aquaculture) के लिए भी उपयोगी हैं, जिससे लोगों को आजीविका का स्रोत प्राप्त होता है। भारत में शहरी और ग्रामीण दोनों प्रकार की झीलें हैं, जिन्हें रामसर जल–आर्द्रभूमि अभिसमय (Ramsar Convention on Wetlands, 1971) के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। ये झीलें मुख्यतः पारिस्थितिक स्थिरता (ecological sustainability) और अनेक समुदायों के आजीविका स्रोत के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। हालाँकि, इन झीलों में जल की कमी और इनके पुनर्भरण स्रोत मानवजनित गतिविधियों के कारण गंभीर रूप से प्रभावित हो रहे हैं। भारत के जल संसाधनों को मुख्यतः दो श्रेणियों में बाँटा गया है सतही जल और भूजल।

**A. सतही जल संसाधन (Surface Water Resources):** जैसा कि आप जानते हैं, सतही जल वह प्रकार का जल है जो पृथ्वी की सतह पर पाया जाता है। यह जल नदियों, झीलों, आर्द्रभूमियों (wetlands) और यहाँ तक कि महासागरों के रूप में उपस्थित होता है। सतही जल का मुख्य स्रोत वर्षा या वर्षण (precipitation) है। वर्षा के बाद जल का एक बड़ा भाग वनस्पतियों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है या फिर अस्थायी रूप से भूमि की सतही अवसादों (surface depressions) में रुक जाता है। जब मिट्टी पूरी तरह से संतृप्त हो जाती है, तब शेष जल प्रवाह आरंभ करता है और नदियों, नालों, झीलों तथा सतही जलाशयों तक पहुँच जाता है। कृषि मुख्य रूप से सतही जल संसाधनों पर निर्भर करती है। नदियों और धाराओं से बहने वाला जल जलाशयों में संग्रहित किया जाता है या नहर प्रणाली (canal system) के माध्यम से सिंचाई के लिए मोड़ा जाता है। भारत में वर्षा और हिमपात से उत्पन्न सतही जल प्रवाह (surface run-off) का अनुमान लगभग 1,869 अरब घन मीटर (BCM) है। हालांकि, अनुमान है कि इनमें से केवल 690 अरब घन मीटर (BCM) या 37% सतही जल संसाधनों का ही वास्तविक उपयोग संभव है। इसका कारण यह है कि

हिमालयी नदियों का लगभग 90% वार्षिक प्रवाह केवल चार महीनों में होता है, और इस जल को संग्रहित करने की संभावनाएँ सीमित जलाशय स्थलों के कारण जटिल हो जाती हैं। भारत में औसत वार्षिक वर्षा लगभग 1,170 मिमी है। अधिकांश वर्षा मानसून के दौरान (जून से सितंबर) होती है, जिसके कारण सतही प्रवाह के अधिकतम उपयोग के लिए बड़े जलाशयों का निर्माण आवश्यक हो जाता है। फिर भी, एक ही क्षेत्र में कभी–कभी सूखा और बाढ़ दोनों परिस्थितियाँ एक साथ देखने को मिलती हैं। भारत में वर्षा की मात्रा में अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है जहाँ पश्चिमी राजस्थान में यह केवल 100 मिमी तक सीमित है, वहीं मेघालय में यह 11,000 मिमी से अधिक होती है। भंडारण क्षमता (storage capacity) के आधार पर कृष्णा नदी बेसिन अग्रणी है (41.80 घन किमी), इसके बाद गोदावरी बेसिन (25.12 घन किमी) और नर्मदा बेसिन (16.98 घन किमी) का स्थान आता है (बालासुब्रमणियन, 2007)। भारत के विभिन्न जल संसाधनों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है:

**B) भारत की नदी प्रणालियाँ (नदियों की विशेषताएँ / Characterization of Rivers):** नदी का मुख्य गुण उसकी क्षरण (erosion) करने और अवसाद (sediment) को परिवहन करने की क्षमता है। यह क्षमता कई कारकों से प्रभावित होती है। नदी की जलगति (velocity), ढाल (gradient), जल प्रवाह की मात्रा (discharge) और नदी का आकार — ये सभी नदी की प्रमुख विशेषताएँ हैं। नदी में जल की गति (velocity) से अभिप्राय है कि जल एक निश्चित समय में कितनी दूरी तय करता है। नदी में जल की गति उसके जल की ऊर्जा (energy) से सीधे संबंधित होती है। जैसा कि आप जानते हैं, तीव्र गति से बहने वाली नदी (fast-moving river) सामग्री को अधिक तेजी से क्षरित कर सकती है और धीमी गति से बहने वाली नदी की तुलना में बड़े कणों को वहन (transport) करने में सक्षम होती है। नदी की गति को कई कारक प्रभावित करते हैं, जिनमें ढाल की तीव्रता (steepness of slope), नीचे की ओर बहने वाले जल की मात्रा (amount of water flowing downstream), और वह मार्ग (path) शामिल है जिससे होकर नदी बहती है। किसी धारा या नदी की ढाल की तीव्रता को उसका ग्रेडिएंट (gradient) कहा जाता है।

नदी का प्रवाह (Discharge) उस जल की मात्रा को कहते हैं जो एक निश्चित समयावधि में नदी के किसी निश्चित बिंदु से होकर गुजरती है। नदी का प्रवाह उसकी पूरी लंबाई में समान नहीं रहता। अधिकांश नदियों में, नीचे की ओर जाते हुए प्रवाह बढ़ता जाता है क्योंकि अनेक उपनदियाँ (tributaries) लगातार मुख्य नदी में जल की मात्रा बढ़ाती रहती हैं। मानसून के दौरान, जब वर्षा की मात्रा अधिक होती है या जब हिम पिघलने (snow melting) का समय होता है, तब अधिक जल नदियों में प्रवाहित होता है। इस स्थिति में नदी के जल की गति (velocity) भी बढ़ जाती है, और नदी अधिक चौड़ी व गहरी हो जाती है, जिससे बाढ़ (flood) आने की संभावना बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, गंगा नदी की चौड़ाई हरिद्वार में लगभग 700 मीटर है, जबकि पटना में इसकी चौड़ाई बढ़कर लगभग 5 किलोमीटर हो जाती है (Balasubramanian, 2007)।

**तालिका-5: भारत के जल संसाधन**

| | |
|---|---|
| अनुमानित वार्षिक वर्षा (हिमपात सहित) | 4,000 km$^3$ |
| नदियों में औसत वार्षिक संभावित जल | 1,869 km$^3$ |
| अनुमानित उपयोग योग्य जल | 1,123 km$^3$ |
| जल की मांग / उपयोग (वर्ष 2000 के लिए) | 634 km$^3$ |

*(स्रोत: भारत की जल संसाधन सूचना प्रणाली)*

नदियाँ जल आपूर्ति के महत्वपूर्ण स्रोत हैं, यद्यपि इन स्रोतों से प्राप्त जल की गुणवत्ता में सामान्यतः काफी भिन्नता (variation) होती है। नदियों के जल की गुणवत्ता कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे कि भूविज्ञान (geology), स्थलाकृति (topography), मौसमी परिवर्तन (seasonal variation), सीवेज का निष्पादन (disposal of sewage) आदि।

नदियाँ सतही जल (surface water) का प्रमुख स्रोत हैं। एक नदी घाटी (river basin) की स्पष्ट जल विभाजक सीमा (watershed boundary) होती है तथा इसका भू-जल संसाधनों (groundwater resources) से भी संबंध होता है। भारत में अनेक नदी तंत्र (river systems) पाए जाते हैं। इनके प्रवाह मार्ग के आधार पर इन्हें निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

**1.** बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ-गंगा, महानदी, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी और ब्रह्मपुत्र।

**2.** अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ-सिंधु, नर्मदा, ताप्ती आदि।

भारत की विभिन्न नदी प्रणालियों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है, जिसे तालिका–1 में संक्षेप में दर्शाया गया है।

**सिंधु नदी (Indus River):** सिंधु नदी विश्व की सबसे लंबी नदियों में से एक है, जिसका उद्गम तिब्बत में कैलाश पर्वत (Mount Kailash) से होता है। इसकी कुल लंबाई लगभग 3,199 किमी है। यह लद्दाख, बाल्टिस्तान और गिलगित क्षेत्रों से होकर बहती है तथा लद्दाख और ज़ांस्कर पर्वतमालाओं के बीच प्रवाहित होती है। भारत में इसकी कुल लंबाई लगभग 1,114 किमी है। भारत में सिंधु नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ हैं-झेलम, चिनाब, रावी, ब्यास और सतलुज। इसका प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 11,65,500 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें से 3,21,289 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र भारत में स्थित है (Balasubramanian, 2007)। भारत में सिंधु नदी बेसिन जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और हरियाणा के साथ-साथ चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र में फैला हुआ है।

**ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र (Brahmaputra River System):** ब्रह्मपुत्र नदी का उद्गम अंगसी हिमनद (Angsi Glacier) से होता है। यह नदी चीन, भारत और बांग्लादेश से होकर बहती है। भारत में यह सबसे पहले अरुणाचल प्रदेश में प्रवेश करती है, जहाँ इसे सियांग नदी कहा जाता है। यह अरुणाचल प्रदेश और असम से होकर बहती है तथा इसमें कई सहायक नदियाँ मिलती हैं। इसका प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 5,80,000 वर्ग किलोमीटर है (Balasubramanian, 2007)।

**गंगा नदी (Ganga River):** गंगा नदी का उद्गम उत्तराखंड के गढ़वाल हिमालय में स्थित गंगोत्री हिमनद से लगभग 4,100 मीटर की ऊँचाई पर समुद्र तल से होता है। गंगा नदी की मुख्य सहायक नदियाँ हैं-यमुना, रामगंगा, गोमती, घाघरा, सोन, दामोदर और सप्त कोसी। यह नदी अपने स्रोत से लगभग 2,525 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद बंगाल की खाड़ी में मिलती है। गंगा नदी के किनारे बसे प्रमुख शहर हैं-हरिद्वार, कानपुर, वाराणसी, पटना, भागलपुर, साहिबगंज, फरक्का और हल्दिया। भारत की लगभग 40% जनसंख्या गंगा नदी बेसिन पर निर्भर करती है। गंगा नदी का कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 11,86,000 वर्ग किलोमीटर है। यह भारत की सबसे लंबी नदी है और इसे भारत की राष्ट्रीय नदी (National River of India) घोषित किया गया है (Balasubramanian, 2007)।

**यमुना नदी (Yamuna River):** यमुना नदी का उद्गम उत्तराखंड के उत्तरकाशी जिले में स्थित यमुनोत्री हिमनद से होता है, जो बंदरपूँछ शिखर पर समुद्र तल से लगभग 6,387 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इस नदी

का प्रवह क्षेत्र उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र में फैला हुआ है। यमुना नदी की कुल लंबाई लगभग 1,367 किलोमीटर है और यह प्रयागराज (उत्तर प्रदेश) में गंगा नदी से मिलती है। यमुना नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ हैं-हिंडन, चंबल, सिंध, बेतवा और केन (Balasubramanian, 2007)।

**नर्मदा नदी (Narmada River):** नर्मदा नदी, जिसे रेवा नदी (Rewa River) भी कहा जाता है, मध्य भारत की एक प्रमुख नदी है। यह नदी उत्तर और दक्षिण भारत के बीच की पारंपरिक सीमा का निर्माण करती है। इसकी कुल लंबाई लगभग 1,289 किलोमीटर है। इसका उद्गम मध्य प्रदेश के अमरकंटक पर्वत शिखर से होता है। नर्मदा नदी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों से होकर बहती हुई अंत में गुजरात राज्य में अरब सागर में मिल जाती है। इसका कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 98,796 वर्ग किलोमीटर है। नर्मदा नदी की मुख्य सहायक नदियाँ हैं-शेर, शक्कर, दूधि और तवार (Balasubramanian, 2007)।

**ताप्ती नदी (Tapti River):** ताप्ती नदी भी मध्य भारत की एक प्रमुख नदी है और दक्षिण भारत की प्रायद्वीपीय नदियों में से एक है। इसकी कुल लंबाई लगभग 724 किलोमीटर है। यह नदी पौराणिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है और इसे सूर्य की पुत्री कहा गया है। ताप्ती नदी का उद्गम मध्य प्रदेश के बैतूल जिले में स्थित मुलताई सतपुड़ा पर्वतमाला से होता है। ताप्ती नदी बेसिन मुख्यतः महाराष्ट्र राज्य के उत्तरी और पूर्वी जिलों में फैला हुआ है। यह नदी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों से होकर बहती है। इसका कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 65,145 वर्ग किलोमीटर है (Balasubramanian, 2007)।

**गोदावरी नदी (Godavari River):** गोदावरी नदी भारत की दूसरी सबसे लंबी नदी है, गंगा नदी के बाद। इसकी कुल लंबाई लगभग 1,465 किलोमीटर है। यह नदी महाराष्ट्र राज्य के नासिक के पास त्र्यंबकेश्वर से उत्पन्न होती है, जो अरब सागर से लगभग 380 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, और अंत में बंगाल की खाड़ी में जाकर मिलती है। यह नदी महाराष्ट्र, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, ओडिशा, कर्नाटक और पुदुचेरी राज्यों से होकर बहती है। पुदुचेरी में इस नदी को यमन के नाम से जाना जाता है। गोदावरी नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ हैं-इंद्रावती नदी, मंजिरा, बिंदुसरा और शबरी नदी। इसका कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 3,12,812 वर्ग किलोमीटर है। यह अंत में बंगाल की खाड़ी में समाहित होती है (Balasubramanian, 2007)।

**कृष्णा नदी (Krishna River):** कृष्णा नदी भारत की प्रमुख और सबसे लंबी नदियों में से एक है, जिसकी कुल लंबाई लगभग 1,300 किलोमीटर है। यह नदी महाराष्ट्र के महाबलेश्वर (जहाँ प्राचीन भगवान शिव का मंदिर स्थित है) से उत्पन्न होती है। यह नदी महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश राज्यों से होकर बहती है। इसकी मुख्य सहायक नदी तुंगभद्रा नदी है, जबकि अन्य सहायक नदियाँ हैं-कोयना, भीमा, मल्लप्रभा, घटप्रभा, यरला, वारणा और दूधगंगा नदियाँ। कृष्णा नदी का कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 2,58,948 वर्ग किलोमीटर है (Balasubramanian, 2007)।

**कावेरी नदी (Cauveri River):** कावेरी नदी भारत की प्रमुख नदियों में से एक है, जो कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों से होकर बहती है। यह नदी सदियों से दक्षिण भारत की कृषि को सहारा देती रही है और इसे दक्षिण भारत की जीवन रेखा (lifeblood) कहा जाता है। इस नदी का उद्गम स्थल तालकावेरी (Talakaveri) है, जो पश्चिमी घाट (Western Ghats) में स्थित है। कावेरी नदी लगभग 765 किलोमीटर तक दक्षिण और पूर्व दिशा में बहती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं-शिम्शा, अर्कावती, कपिला, लक्ष्मण

तीर्था, काबिनी, भवानी, नोय्यल और अमरावती। इसका कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 81,155 वर्ग किलोमीटर है, और यह अंत में बंगाल की खाड़ी (Bay of Bengal) में मिल जाती है (Balasubramanian, 2007)।

**महानदी नदी प्रणाली (Mahanadi River System):** महानदी नदी भारत के प्रायद्वीप की तीसरी सबसे बड़ी नदी है और ओडिशा राज्य की सबसे बड़ी नदी है। इसकी कुल लंबाई लगभग 851 किलोमीटर है। महानदी की मुख्य शाखाएँ पारादीप और नुआगढ़ के निकट बंगाल की खाड़ी में जाकर मिलती हैं।इसका कुल प्रवह क्षेत्र (catchment area) लगभग 1,41,589 वर्ग किलोमीटर है (Balasubramanian, 2007)।

झीलें (Lakes): भारत में विभिन्न प्रकार की झीलें (lakes) पाई जाती हैं। झीलें हिमनदों (glaciers) के पीछे हटने, नदियों के अवरुद्ध होने आदि कारणों से बनती हैं। झीलों में मिट्टी जल से परिपूर्ण (supersaturated) होती है और इनमें स्थिर या बहुत धीमी गति से चलने वाला जल पाया जाता है। झीलों में जल का प्रवाह नहीं होता, बल्कि यह स्थिर (standing) रहता है इसे लेंटिक पारितंत्र (lentic ecosystem) कहा जाता है। झीलों के जल में तापमान, ऑक्सीजन और जैविक घटकों (biotic components) के आधार पर परतें बनती हैं। झीलें पृथ्वी की अंतर्देशीय अवसाद (inland depression) हैं, जिनमें वर्ष भर मीठा पानी (freshwater) भरा रहता है। झीलें सामान्यतः तालाबों से बड़ी होती हैं और इनका जल भूजल या हिमनदों की तुलना में अधिक सुलभ और उपयोगी होता है, इसलिए इन्हें मीठे जल का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। इन स्रोतों से प्राप्त जल की गुणवत्ता नदियों और धाराओं की तुलना में अधिक समान और उत्तम (equitable and pure) होती है। झीलों की कुछ मुख्य विशेषताएँ (characteristics) नीचे दी गई हैं:

**झीलें सामान्यतः** परतदार (stratified) होती हैं क्योंकि इनमें जल अपेक्षाकृत स्थिर रहता है, जबकि नदियों और धाराओं में जल का प्रवाह निरंतर होता है। यदि आप किसी झील में तैरते हैं, तो आप पाएंगे कि ऊपरी सतह का पानी गर्म होता है, लेकिन जैसे ही आप झील के गहरे भाग में जाते हैं, पानी ठंडा महसूस होता है। आम तौर पर झील की सबसे ठंडी परतें नीचे पाई जाती हैं। वसंत (spring) और शरद (fall/autumn) ऋतु में तापमान में होने वाले परिवर्तन झीलों की इस परतबंदी को तोड़ देते हैं, जिससे नीचे की परतों का पानी ऊपर आ जाता है और पोषक तत्वों (nutrients) का मिश्रण होता है। ग्रीष्म ऋतु (summer) के दौरान, जब बर्फ गर्म होकर पिघलती है, तो पानी का तापमान 0°C से 4°C तक बढ़ जाता है। इस तापमान पर पानी अधिक घना (dense) हो जाता है और नीचे चला जाता है, जिससे झील की परतों का मिश्रण (mixing) होता है। शरद ऋतु (autumn) में, जब पानी का तापमान 4°C से नीचे गिरता है, तो ठंडे पानी की परतें ऊपर उठती हैं और पुनः पूरी झील का जल मिलकर समान हो जाता है। इस प्रकार, तापमान में ऋतुगत परिवर्तन झीलों में जल की परतों के मिश्रण और पोषक तत्वों के पुनर्वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

**घुलित ऑक्सीजन (Dissolved Oxygen - DO) सामान्यतः** जल की ऊपरी सतह के पास सबसे अधिक होती है, जहाँ से ऑक्सीजन वायुमंडलीय हवा के साथ घुल-मिल (diffuse) सकती है। हालाँकि, झील में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा तापमान, सूर्य के प्रकाश, हवा और विभिन्न गहराइयों पर उपस्थित पौधों की संख्या के अनुसार बदलती रहती है। कुछ मछलियाँ झील के ऑक्सीजन स्तर की जैव संकेतक (bio-indicators) होती हैं। उदाहरण के लिए, ट्राउट (trout) जैसी तेज़ तैरने वाली मछलियाँ अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता रखती हैं, जबकि कैटफिश (catfish) जैसी धीमी गति से चलने वाली मछलियाँ कम घुलित ऑक्सीजन वाले क्षेत्रों में भी जीवित रह सकती हैं। एक झील में, आप पाएंगे कि उत्पादक जीव (producers)

जैसे हरे पौधे मुख्य रूप से ऊपरी सतह के पास पाए जाते हैं, जबकि उपभोक्ता जीव (consumers) झील के नीचे वाले हिस्से में रहते हैं। उत्पादक जीवों को प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) की प्रक्रिया के लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है, जो जल की सतह के पास उपलब्ध होता है। झील की निचली परतों में उपभोक्ता जीव, जैसे अवायवीय जीवाणु (anaerobic bacteria) और अपघटक (decomposers) जैसे कवक और जीवाणु पाए जाते हैं। झील में जैविक परतबंदी (biotic stratification) को मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में बाँटा जाता है:

**लिम्नेटिक क्षेत्र (Limnetic Zone):** यह झील का वह भाग है जहाँ प्रकाश संश्लेषण करने वाले जीव (photosynthesizers) पाए जाते हैं। इनमें मुख्यतः फाइटोप्लांकटन (phytoplankton) जैसे डायटम्स (diatoms), क्लोरोफायसी (Chlorophyceae), बैसिलेरियोफायसी (Bacillariophyceae) आदि शामिल हैं। इसके साथ-साथ यहाँ ज़ूप्लांकटन (zooplankton) जैसे रोटिफ़र्स (rotifers), कोपेपोड्स (copepods), साइक्लोप्स (Cyclops), क्लैडोसेरन्स (cladocerans) आदि भी पाए जाते हैं।

**प्रोफुंडल क्षेत्र (Profundal Zone):** यह झील का गहरा क्षेत्र होता है जहाँ प्रकाश संश्लेषण नहीं हो पाता, इसलिए इस क्षेत्र में जीवों की संख्या बहुत सीमित होती है।

**बेंथिक क्षेत्र (Benthic Zone):** यह क्षेत्र अपघटक (Decomposers) और अवायवीय जीवाणुओं (Anaerobic Bacteria) द्वारा अधिवासित होता है। जैसे-जैसे झीलें पुरानी होती जाती हैं, उनमें कार्बनिक पदार्थ (Organic Material) तल पर एकत्रित होते जाते हैं। यह कार्बनिक पदार्थ यूट्रोफिकेशन (Eutrophication) की प्रक्रिया को जन्म देता है। पुरानी झीलें दलदली क्षेत्र जैसी बन जाती हैं और इनमें मीथेन गैस उत्पन्न होती है। झील की आयु का निर्धारण जैव संकेतकों (Bio-indicators) की सहायता से किया जा सकता है। फाइटोप्लैंकटन और शैवाल (Algae) के प्रकार झील की आयु के अच्छे संकेतक माने जाते हैं।

भारत रामसर अभिसमय (Ramsar Convention) का हस्ताक्षरकर्ता देश है, जो आर्द्रभूमियों के संरक्षण और उनके सतत उपयोग के लिए एक अंतरराष्ट्रीय संधि है। यह संधि उन आर्द्रभूमियों की रक्षा के लिए है जो विशेष रूप से जलपक्षियों (Water Fowl) के आवास के रूप में महत्वपूर्ण हैं। “रामसर अभिसमय” का नाम ईरान के रामसर नगर के नाम पर रखा गया है, जहाँ यह संधि वर्ष 1971 में हस्ताक्षरित की गई थी। भारत में कुल 26 रामसर आर्द्रभूमि स्थल स्थित हैं (सारणी–8)।

**हिमनद (Glaciers):** भारत के पाँच राज्यों में हिमनद (Glaciers) पाए जाते हैं, और ये हिमनद कई नदियों के उद्गम स्रोत हैं। हिमनदों की मुख्य विशेषता यह होती है कि उनमें बहने की क्षमता होती है। जब पर्याप्त मात्रा में बर्फ एक स्थान पर एकत्र हो जाती है, तो उसका भार नीचे की परतों पर अत्यधिक दबाव डालता है, जिससे बर्फ में लचीलेपन (Plasticity) के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। यही गुण बर्फ के विशाल पिंड (Ice Mass) को बाहर या नीचे की ओर बहने में सक्षम बनाते हैं, और इस प्रकार एक सक्रिय हिमनद (Active Glacier) का निर्माण होता है। जब ढलान पर बर्फ का मोटा संचय हो जाता है, तो गुरुत्वाकर्षण बल (Gravity) के प्रभाव से हिमनद धीरे-धीरे घाटी की ओर नीचे की दिशा में बहने लगता है, जब तक कि वह उस बिंदु तक नहीं पहुँच जाता जहाँ पिघलने की दर और बर्फ के संचय की दर समान हो जाती है। कभी-कभी हिमनद हिमरेखा (Snow-line) से बहुत नीचे तक भी फैल सकता है। जैसा कि आप जानते हैं, हिमनद के मध्य भाग में बर्फ

का संचय सबसे अधिक होता है, जबकि किनारों की ओर बर्फ की मोटाई घटती जाती है। हिमनद की गति कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे- हिमनद की मोटाई, ढलान का झुकाव, बर्फ का तापमान, वाष्पीकरण और पिघलने की दर और ढलान के साथ घर्षण की तीव्रता।

**तालिका–6 : भारत में नदी बेसिनों के जल संसाधन क्षमता का विवरण**

| नदी बेसिन | जलग्रहण क्षेत्र (किमी$^2$) | औसत वार्षिक क्षमता (किमी$^3$) | उपयोगी सतही जल संसाधन (किमी$^3$) |
|---|---|---|---|
| सिंधु | 3,21,289 (1,16,5,500) | 73.31 | 46.00 |
| गंगा | 8,61,452 (1,18,6,000) | 525.02 | 250.00 |
| ब्रह्मपुत्र | 1,94,413 (5,80,000) | - | - |
| बराक एवं अन्य | 41,723 | 585.60 | 24.00 |
| गोदावरी | 3,12,812 | 110.54 | 76.30 |
| कृष्णा | 2,58,948 | 78.12 | 58.00 |
| कावेरी | 8,1155 | 21.36 | 19.00 |
| सुवर्णरिखा | 29,196 | 12.37 | 6.81 |
| ब्रह्मणी एवं बैतरणी | 51,822 | 28.48 | 18.30 |
| महानदी | 1,41,589 | 66.88 | 49.99 |
| पेन्नार | 55,213 | 6.32 | 6.86 |
| माही | 34,842 | 11.02 | 3.10 |
| साबरमती | 21,674 | 3.81 | 1.93 |
| नर्मदा | 98,796 | 45.64 | 34.50 |
| ताप्ती | 65,145 | 14.88 | 14.50 |
| ताप्ती से ताद्री तक की पश्चिमी प्रवाही नदियाँ | 55,940 | 87.41 | 11.94 |
| ताद्री से कन्याकुमारी तक की पश्चिमी प्रवाही नदियाँ | 56,177 | 113.53 | 24.27 |
| महानदी और पेन्नार के बीच की पूर्वी प्रवाही नदियाँ | 86,643 | 22.52 | 13.11 |
| पेन्नार और कन्याकुमारी के बीच की पूर्वी प्रवाही नदियाँ | 1,00,139 | 16.46 | 16.73 |
| लूनी सहित कच्छ एवं सौराष्ट्र की पश्चिमी प्रवाही नदियाँ | 3,21,851 | 15.10 | 14.98 |
| राजस्थान का आंतरिक जल निकास क्षेत्र | - | Negligible | Not applicable |
| म्यांमार एवं बांग्लादेश में प्रवाहित होने वाली लघु नदियाँ | 36,202 | 31.00 | Not applicable |
| **Total** | **-** | **1,869.35** | **690.31** |

**तालिका–7: भारत की कुछ प्रमुख झील प्रणालियाँ**

| क्रम सं. | स्थान | झीलों के नाम |
|---|---|---|
| 1 | आंध्र प्रदेश | हुसैन सागर झील, कोलेरू झील और कुंबम झील |
| 2 | असम | हाफलॉन्ग झील, शिवसागर झील, जॉयसागर झील, गौरीसागर झील, चांडूबी झील और रुद्रसागर झील |
| 3 | बिहार | कंवर झील पक्षी अभयारण्य |
| 4 | चंडीगढ़ | सुखना झील |
| 5 | गुजरात | हमीरसर झील, कांकरिया झील, नल सरोवर और थोल झील |
| 6 | हरियाणा | बदखल झील, ब्लू बर्ड झील, दमदमा झील और कर्णा झील |
| 7 | हिमाचल प्रदेश | बृघु झील, चंद्रताल, देह्वासर झील, घड़ासरू झील, गोविंद सागर झील, कामरूनाग झील, करेरी झील, लामा झील, प्राशर झील, मणिमहेश झील और महाकाली झील |
| 8 | जम्मू और कश्मीर (लद्दाख केंद्र शासित प्रदेश सहित) | डल झील, आंचर झील, वुलर झील (भारत की सबसे बड़ी मीठे पानी की झील), सतसर झील, निगीन झील, तुलियन झील और तारसर झील |
| 9 | कर्नाटक | अगारा झील, बेलंदूर झील, लालबाग झील, मडिवाला झील, पुट्टेनहल्ली झील, उल्सूर झील और वर्थूर झील |
| 10 | केरल | अष्टमुडी झील, वेम्बनाड झील, वेल्लायनी झील, पुन्नमदा झील और कुट्टनाड झील |
| 11 | मध्य प्रदेश | भोजताल झील |
| 12 | महाराष्ट्र | लोनार झील, पाशन झील, पवई झील, सलीम अली झील, तुलसी झील, विहार झील और छत्री झील |
| 13 | मणिपुर | लोकतक झील |
| 14 | मेघालय | उमियम झील |
| 15 | मिजोरम | पालक झील |
| 16 | ओडिशा | अंशुपा झील, चिल्का झील (भारत की सबसे बड़ी खारे पानी की झील) और कंजिया झील |
| 17 | पुडुचेरी | बाहौर झील, औस्टरी झील और वेलरामपेट झील |
| 18 | राजस्थान | आना सागर झील, बालसमंद झील, मानसागर झील, नक्की झील, पचपदरा झील और पुष्कर झील |
| 19 | सिक्किम | गुरुडोंगमार झील, चोलामू झील (भारत की सबसे ऊँची झील) और सामिति झील |
| 20 | तमिलनाडु | कालीवेली झील, कोडाइकनाल झील, ऊटी झील और पेरुमल एरी |
| 21 | तेलंगाना | भद्रकाली झील, दुर्गम चेरुवु, हिमायत सागर और हुसैन सागर |
| 22 | उत्तर प्रदेश | बेला सागर झील, रामगढ़ ताल झील, मोती झील और बखिरा ताल |
| 23 | उत्तराखंड | भीमताल झील, नैनी झील, नौकुचिया ताल, साततान, झिलमिल झील |
| 24 | पश्चिम बंगाल | सेनचल झील, मिरिक झील, संतरागाछी झील |

**तालिका–8: भारत के रामसर स्थलों (Ramsar Sites) की सूची**

| क्रम सं. | स्थल का नाम | स्थान | घोषणा की तिथि | क्षेत्रफल (वर्ग किमी में) |
|---|---|---|---|---|
| 1 | कोलेरू झील | आंध्र प्रदेश | 19.8.2002 | 901 |
| 2 | दीपोर बील | असम | 19.8.2002 | 40 |
| 3 | काबरताल आर्द्रभूमि | बिहार | 21.07.2020 | 26.20 |
| 4 | नल सरोवर पक्षी अभयारण्य | गुजरात | 24.09.2012 | 120 |
| 5 | थोल झील वन्यजीव अभयारण्य | गुजरात | 05.04.2021 | 6.99 |
| 6 | वढवाना आर्द्रभूमि | गुजरात | 05.04.2021 | 6.30 |
| 7 | सुल्तानपुर राष्ट्रीय उद्यान | हरियाणा | 25.05.2021 | 1.425 |
| 8 | भिंडावास वन्यजीव अभयारण्य | हरियाणा | 25.05.2021 | 4.12 |
| 9 | चंद्रताल आर्द्रभूमि | हिमाचल प्रदेश | 8.11.2005 | 0.49 |
| 10 | पोंग डैम झील | हिमाचल प्रदेश | 19.8.2002 | 156.62 |
| 11 | रेणुका आर्द्रभूमि | हिमाचल प्रदेश | 8.11.2005 | 0.2 |
| 12 | वुलर झील | जम्मू कश्मीर | 23.3.1990 | 189 |
| 13 | होकरसर (होकेरा) आर्द्रभूमि | जम्मू कश्मीर | 8.11.2005 | 13.75 |
| 14 | सुरिनसर–मानसर झीलें | जम्मू कश्मीर | 8.11.2005 | 3.5 |
| 15 | त्सो मोरीरी झील | जम्मू कश्मीर | 19.8.2002 | 120 |
| 16 | अष्टमुडी आर्द्रभूमि | केरल | 19.8.2002 | 614 |
| 17 | सस्थामकोट्टा झील | केरल | 19.8.2002 | 3.73 |
| 18 | वेम्बनाड कोल आर्द्रभूमि | केरल | 19.8.2002 | 1512.5 |
| 19 | त्सो कार आर्द्रभूमि परिसर | लद्दाख | 17.11.2020 | 95.77 |
| 20 | भोज आर्द्रभूमियाँ | मध्य प्रदेश | 19.8.2002 | 32.01 |
| 21 | लोनार झील | महाराष्ट्र | 22.7.2020 | 4.27 |
| 22 | नांदुर मध्यमेश्वर | महाराष्ट्र | 21.6.2019 | 14.37 |
| 23 | लोकतक झील | मणिपुर | 23.3.1990 | 266 |
| 24 | भितरकनिका मैंग्रोव | ओडिशा | 19.8.2002 | 650 |
| 25 | चिल्का झील | ओडिशा | 1.10.1981 | 1165 |
| 26 | ब्यास संरक्षण रिज़र्व | पंजाब | 26.9.2019 | 64.289 |
| 27 | हरिके झील | पंजाब | 23.3.1990 | 41 |
| 28 | कंजली झील | पंजाब | 22.1.2002 | 1.83 |
| 29 | केशोपुर–मियानी सामुदायिक रिज़र्व | पंजाब | 26.9.2019 | 3.439 |
| 30 | नंगल वन्यजीव अभयारण्य | पंजाब | 26.9.2019 | 1.16 |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 31 | रोपड़ झील | पंजाब | 22.1.2002 | 13.65 |
| 32 | केवलादेव घना राष्ट्रीय उद्यान | राजस्थान | 1.10.1981 | 28.73 |
| 33 | सांभर झील | राजस्थान | 23.3.1990 | 240 |
| 34 | प्वाइंट कैलिमियर वन्यजीव एवं पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | 19.8.2002 | 385 |
| 35 | रुद्रसागर झील | त्रिपुरा | 8.11.2005 | 2.4 |
| 36 | हैदरपुर आर्द्रभूमि | उत्तर प्रदेश | 8.12.2021 | 69.08 |
| 37 | नवाबगंज पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 19.9.2019 | 2.246 |
| 38 | पार्वती आगरा पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 2.12.2019 | 7.22 |
| 39 | समन पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 2.12.2019 | 52.63 |
| 40 | समसपुर पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 3.10.2019 | 79.94 |
| 41 | सांडी पक्षी अभयारण्य | उत्तर प्रदेश | 26.9.2019 | 30.85 |
| 42 | सरसाई नावर झील | उत्तर प्रदेश | 19.9.2019 | 16.13 |
| 43 | सूर सरोवर | उत्तर प्रदेश | 21.8.2020 | 4.31 |
| 44 | ऊपरी गंगा नदी (बृजघाट से नरौरा खंड) | उत्तर प्रदेश | 8.11.2005 | 265.9 |
| 45 | आसन संरक्षण रिज़र्व | उत्तराखंड | 21.7.2020 | 4.444 |
| 46 | पूर्व कोलकाता आर्द्रभूमियाँ | पश्चिम बंगाल | 19.8.2002 | 125 |
| 47 | सुंदरबन आर्द्रभूमि | पश्चिम बंगाल | 30.1.2019 | 4230 |

***(स्रोत: पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार)***

हिमालयी हिमनदों की गति औसतन 2 से 4 मीटर प्रति दिन होती है। आल्प्स (Alps) के हिमनद 0.1 से 0.4 मीटर प्रति दिन की दर से चलते हैं। जबकि ग्रीनलैंड (Greenland) के कुछ हिमनद लगभग 20 मीटर प्रतिदिन की गति से बहते हैं। भारत में कई प्रसिद्ध हिमनद पाए जाते हैं, जिनका विवरण तालिका –9 में दिया गया है।

**तालिका-9. भारत के राज्यों के अनुसार प्रमुख हिमनद**

| राज्य | हिमनदों के नाम |
|---|---|
| अरुणाचल प्रदेश | बिचोम और कांगटो हिमनद |
| जम्मू कश्मीर | नुन–कुन मैसिफ, माचोई, नुब्रा और सगाताफ हिमनद |
| हिमाचल प्रदेश | बारा शिग्री हिमनद, चंद्रा हिमनद, चंद्रा नाहन हिमनद, छोटा शिग्री, ढाका हिमनद, मुक्किला हिमनद और सोनापानी हिमनद |
| उत्तराखंड | गंगोत्री, काला बलांद, नामिक, पंचचूली, पिंडारी, सुंदरढुंगा, मिलाम, सोना, चोराबाड़ी और सतोपंथ हिमनद |
| सिक्किम | जेमू, राथोंग और लोनाक हिमनद |

**हिंद महासागर (Indian Ocean):** हिंद महासागर विश्व का तीसरा सबसे बड़ा महासागरीय क्षेत्र है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 70,56,0000 वर्ग किलोमीटर है। हिंद महासागर में कई सागर, खाड़ी, उपसागर

(bays) और जलडमरूमध्य (straits) शामिल हैं। इनमें प्रमुख हैं-अंडमान सागर, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी, मन्नार की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी, खंभात की खाड़ी, फारस की खाड़ी तथा लाल सागर आदि।

**भूमिगत जल संसाधन (Ground Water Resources):** जैसा कि आप जानते हैं, भूमिगत जल वह जल होता है जो पृथ्वी की सतह के नीचे पाया जाता है। हिमनद (glaciers), हिम टोपी (ice caps) और हिम क्षेत्रों (snow fields) के बाद, भूमिगत जल ही पृथ्वी पर मीठे पानी का अगला सबसे बड़ा स्रोत है। जब वर्षा या अन्य प्रकार की वृष्टि (precipitation) से प्राप्त जल वायुमंडल में वाष्पित नहीं होता या भूमि की सतह पर बहकर नहीं जाता, तब वह मिट्टी में समाविष्ट (percolate) होकर नीचे की ओर चला जाता है और भूमिगत स्तरों में एकत्र हो जाता है। भूमिगत जल के स्रोतों का विकास अपेक्षाकृत सरल होता है। सामान्यतः यह जल स्वच्छ (clear) और वर्णहीन (colourless) होता है, किंतु सतही जल की अपेक्षा अधिक कठोर (harder) होता है। इसकी गुणवत्ता सामान्यतः समान बनी रहती है। भूमिगत जल कृषि और घरेलू उपयोग के लिए मीठे पानी का प्रमुख स्रोत है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ सतही जल की उपलब्धता अपर्याप्त होती है।

भूजल का मुख्य स्रोत वर्षा/वर्षण (Rainfall/Precipitation) है। तथापि, भूजल पुनर्भरण (recharge) अन्य स्रोतों से भी होता है, जैसे नहरों और खेत की नालियों से रिसाव, तालाबों, टैंकों से रिसाव, सिंचित क्षेत्रों से गहराई तक होने वाला अवशोषण आदि। इन जल स्रोतों का एक भाग सतही मिट्टी में समा जाने के बाद उथली गहराई पर पार्श्व रूप से बहता रहता है। यह जल, जो मिट्टी की सतह के नीचे प्रवाहित होता है, अंततः नदी की धारा तक पहुँच सकता है। नदियों में प्रवाहित कुल जल में पिघली हुई बर्फ, सतही अपवाह (surface run-off), उपसतही अपवाह (sub-surface run-off) और भूजल अपवाह (ground water run-off) शामिल होते हैं। सतही अपवाह का वह भाग जो अवशोषण (infiltration) के बाद भूजल तक पहुँचता है, पड़ोसी बेसिनों, प्रवाही नदियों, प्राकृतिक झीलों, तालाबों तथा कृत्रिम जलाशयों से प्राप्त जल के साथ मिलकर भूजल संसाधनों का निर्माण करता है।

**भूवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारत में भूजल को मुख्यतः** निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

**a. असंलयनित शैल (Unconsolidated Rocks):** यह क्षेत्र उत्तर भारत के विशाल जलोढ़ मैदानों को सम्मिलित करता है, जो पश्चिम से पूर्व तक तथा उत्तर में हिमालय की तराइयों और दक्षिण में प्रायद्वीपीय भाग के बीच फैले हुए हैं। इस क्षेत्र की मिट्टी और अवसाद (sediments) मुख्यतः सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाए गए हैं, जो असंलयनित शैलों की सबसे प्रमुख नदियाँ हैं।

**तालिका–10. भारत की शैलों एवं अन्य भूवैज्ञानिक संरचनाओं का वर्गीकरण**

| क्रम सं. | शैल/संरचना का प्रकार | भूजल पुनर्भरण में वर्षा का अनुमानित प्रतिशत योगदान |
|---|---|---|
| 1 | कठोर शैल संरचनाएँ एवं दक्कन ट्रैप | 10 |
| 2 | सघन (संघनित) शैल (बलुआ पत्थर) | 5-10 |
| 3 | नदीय एलिविअल | 15-20 |
| 4 | इंडो-गंगेटिक एलिविअल | 20 |
| 5 | तटीय एलिविअल | 10-15 |
| 6 | पश्चिमी राजस्थान की बालू-टीले की रेत | 2 |
| 7 | अंतर-पर्वतीय घाटियाँ | 15-20 |

**b. अर्ध-संलयनित शैल (Semi-consolidated Rocks):** यह शैल समूह मुख्यतः आंध्र प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, बिहार, ओडिशा, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में पाया जाता है।

**c. संलयनित शैल (Consolidated Rocks):** लगभग देश का दो-तिहाई भाग, जिसमें लगभग पूरा प्रायद्वीपीय भारत सम्मिलित है, संलयनित शैलों से आच्छादित है। इस क्षेत्र में शामिल राज्य हैं-राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, ओडिशा, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु। इन पथरीले क्षेत्रों में भूजल मुख्यतः खुले कुओं के माध्यम से निकाला जाता है।

वर्षा का जल शैलों और मिट्टी में रिसकर नीचे चला जाता है और मनुष्यों के लिए भूजल (Ground Water) के रूप में उपलब्ध होता है। डॉ. ए. एन. खोसला (1949) के अनुसार, भारत की सभी नदी प्रणालियों का कुल औसत वार्षिक प्रवाह लगभग 167.4 मिलियन हेक्टेयर मीटर है, जिसे एक प्रायोगिक सूत्र के आधार पर निकाला गया था, जिसमें सतही और भूजल दोनों शामिल थे। राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) के अनुसार, देश का कुल भूजल संसाधन लगभग 67 मिलियन हेक्टेयर मीटर (m. ha m) है, जिसमें मिट्टी मिश्रण और प्रयोग योग्य भूजल को छोड़ दिया गया है। उपयोगी भूजल संसाधन का आकलन 35 मिलियन हेक्टेयर मीटर (m. ha m) किया गया था, जिसमें से 26 मिलियन हेक्टेयर मीटर सिंचाई के लिए उपलब्ध माना गया। राज्य सरकारों और केंद्रीय भूजल बोर्ड (Central Ground Water Board) द्वारा कुल भूजल पुनर्भरण (Gross Ground Water Recharge) का अनुमान 46.79 मिलियन हेक्टेयर मीटर लगाया गया, जबकि इसका शुद्ध पुनर्भरण (Net Recharge) (जो कि कुल का 70% है) 32.49 मिलियन हेक्टेयर मीटर माना गया।

भूजल आकलन समिति (Ground Water Estimation Committee, 1987) द्वारा अनुशंसित नियमों और विधियों का उपयोग वर्तमान में केंद्रीय भूजल बोर्ड और राज्य भूजल विभागों द्वारा भूजल संसाधनों की गणना के लिए किया जा रहा है। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार, देश में वार्षिक पुनर्भरणीय भूजल संसाधन (Annual Replenishable Ground Water Resources) लगभग 45.33 मिलियन हेक्टेयर मीटर (m. ha m) हैं। इसमें से 15% (6.99 मिलियन हेक्टेयर मीटर) पेयजल, औद्योगिक और अन्य उपयोगों के लिए आरक्षित रखा गया है। इस प्रकार, सिंचाई के लिए उपयोग योग्य भूजल संसाधन (Utilizable Ground Water Resource for Irrigation) का अनुमान 38.34 मिलियन हेक्टेयर मीटर प्रति वर्ष लगाया गया है।

योजना आयोग के अनुसार, देश में कुल 178 मिलियन हेक्टेयर मीटर जल संसाधन उपलब्ध हैं, लेकिन भौगोलिक संरचना (Physiography), भूगर्भीय स्थिति (Geology), विश्वसनीयता (Dependability), गुणवत्ता (Quality) और वर्तमान प्रौद्योगिकी की स्थिति (Present state of technology) जैसी सीमाओं के कारण इसका केवल एक छोटा हिस्सा ही

**तालिका-11. अगले तीस वर्षों में जल की मांग (घन किलोमीटर में) (शर्मा, 2018)**

| उद्देश्य | साल | | |
|---|---|---|---|
| | **2000** | **2025** | **2050** |
| घरेलू | 42 | 73 | 102 |
| सिंचाई | 541 | 910 | 1072 |
| औद्योगिक | 8 | 22 | 63 |
| जलविद्युत | 2 | 15 | 130 |
| अन्य | 41 | 72 | 80 |
| कुल | 634 | 1092 | 1447 |

उपयोग में लाया जा सकता है। जनसंख्या विस्फोट के कारण सिंचाई के लिए जल की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, इसलिए जल संसाधनों के संतुलित और उचित उपयोग के लिए नई प्रौद्योगिकियों का विकास और कार्यान्वयन अत्यंत आवश्यक है।

केंद्रीय भूजल बोर्ड (Central Ground Water Board) के वर्ष 2003 के अनुसार, देश में कुल पुनर्भरणीय भूजल संसाधन (Total Replenishable Ground Water Resource) लगभग 443 अरब घन मीटर (BCM) प्रति वर्ष है। इसमें से सिंचाई के लिए उपलब्ध भूजल (Ground Water Available for Irrigation) लगभग 362.4 अरब घन मीटर प्रति वर्ष (BCM/year) है, जबकि घरेलू एवं औद्योगिक उपयोगों (Domestic and Industrial Uses) के लिए लगभग 71.2 अरब घन मीटर प्रति वर्ष (BCM/year) जल उपलब्ध है।

भारत के कुछ बड़े राज्यों-जैसे उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में कुल पुनर्भरणीय भूजल संसाधन (Total Replenishable Ground Water Resource) 30 अरब घन मीटर प्रति वर्ष (30 BCM/year) से अधिक हैं। असम, बिहार, गुजरात, ओडिशा, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में 20 अरब घन मीटर प्रति वर्ष या उससे अधिक पुनर्भरणीय भूजल संसाधन उपलब्ध हैं।

वहीं, जिन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में भूजल संसाधन 1 अरब घन मीटर प्रति वर्ष से कम हैं, वे हैं-गोवा, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, दादरा और नगर हवेली, दमन और दीव, दिल्ली, लक्षद्वीप और पुडुचेरी। उत्तर प्रदेश में सिंचाई हेतु सबसे अधिक भूजल संसाधन उपलब्ध हैं, जो लगभग 68.95 अरब घन मीटर प्रति वर्ष (BCM/year) है। इसके अलावा, आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में 20 अरब घन मीटर प्रति वर्ष से अधिक भूजल संसाधन सिंचाई के लिए उपलब्ध हैं।

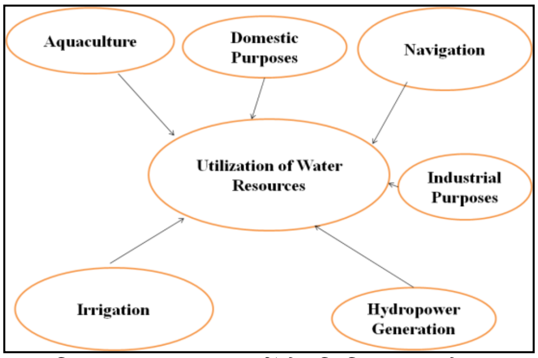

चित्र 3. जल संसाधनों के विभिन्न उपयोग

## 9.6 जल संसाधनों का उपयोग

जैसा कि आप जानते हैं, जल सभी जीवित प्राणियों की एक विषेश आवश्यकता है और यह मनुष्यों से संबंधित अनेक गतिविधियों के लिए अपरिहार्य है। प्रकृति में, जल पहाड़ों और वनों से क्षरित पदार्थों को मैदानों और समुद्र तक पहुंचाता है। मनुष्य जल का उपयोग अपने अपशिष्टों को दूर ले जाने, जल विद्युत शक्ति उत्पन्न करने, नौवहन, औद्योगिक उद्देश्यों तथा मनोरंजन के साधन के रूप में करता है। लोगों की जीवनशैली में परिवर्तन के कारण जल की खपत में अत्यधिक वृद्धि हुई है, विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु के दौरान। मानव द्वारा जल संसाधनों का उपयोग पृथ्वी पर अपने अस्तित्व के प्रारंभ से ही किया जाता रहा है। जल संसाधनों के विभिन्न उपयोग चित्र-3 में संक्षेप में दर्शाए गए हैं और नीचे विस्तार से वर्णित किये गये हैं:

## 9.6.1 घरेलू उपयोग

घरेलू उपयोग में पानी का प्रयोग पीने, धोने, सफाई करने, स्नान करने, खाना पकाने आदि के लिए किया जाता है। सामुदायिक जल आपूर्ति सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है जो कुल जल उपयोग का लगभग 5% है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक जल आपूर्ति के लिए लगभग 7 घन किलोमीटर सतही जल और 18 घन किलोमीटर भूजल का उपयोग किया जा रहा है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण जल आपूर्ति के दृष्टिकोण से एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन उच्च शहरीकरण दर है। आर्थिक विकास जितना अधिक होता है शहरीकरण भी उतना ही बढ़ता है। अनुमान है कि वर्ष 2050 तक उच्च विकास परिदृश्य में लगभग 61% जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहेगी, जबकि निम्न विकास परिदृश्य में यह प्रतिशत 48% होगा।

राष्ट्रीय समेकित जल संसाधन विकास आयोग (1999) द्वारा अपनाया गया मानक वर्ग-I शहरों के लिए प्रति व्यक्ति प्रति दिन 220 लीटर (lpcd) था। वर्ग-I से छोटे शहरों के लिए, वर्ष 2025 हेतु 165 lpcd और वर्ष 2050 हेतु 220 lpcd का मानक निर्धारित किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए वर्ष 2025 में 70 lpcd और वर्ष 2050 में 150 lpcd की सिफारिश की गई है। इन मानकों और जनसंख्या के अनुमान के आधार पर, यह आकलन किया गया है कि वर्ष 2050 तक घरेलू उपयोग के लिए जल की वार्षिक आवश्यकता निम्न मांग परिदृश्य में 90 घन किलोमीटर और उच्च मांग परिदृश्य में 111 घन किलोमीटर होगी। यह भी अनुमान है कि शहरी जल आवश्यकता का लगभग 70% और ग्रामीण जल आवश्यकता का लगभग 30% भाग सतही जल स्रोतों से पूरा किया जाएगा, जबकि शेष आवश्यकता भूजल स्रोतों से पूरी की जाएगी।

## 9.6.2 सिंचाई

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, लगभग 70% जल संसाधन का उपयोग कृषि क्षेत्र में किया जाता है। भारत में सिंचित क्षेत्र वर्ष 1950–51 में लगभग 22.6 मिलियन हेक्टेयर (Mha) था। उस समय देश में खाद्यान्न उत्पादन आवश्यकता से काफी कम था, इसलिए सिंचाई के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया। भारत की कुल संभावित सिंचाई क्षमता का अनुमान 140 मिलियन हेक्टेयर लगाया गया है, जिसमें से 76 मिलियन हेक्टेयर सतही जल स्रोतों से और 64 मिलियन हेक्टेयर भूजल स्रोतों से प्राप्त होगी। पिछली शताब्दी के अंत तक सिंचाई हेतु लगभग 300 घन किलोमीटर सतही जल और 128 घन किलोमीटर भूजल का उपयोग किया गया, जो कुल मिलाकर 428 घन किलोमीटर हुआ। अनुमान बताते हैं कि वर्ष 2025 तक सिंचाई के लिए जल की आवश्यकता निम्न मांग परिदृश्य में 561 घन किलोमीटर और उच्च मांग परिदृश्य में 611 घन किलोमीटर होगी। यह आवश्यकता वर्ष 2050 तक बढ़कर निम्न मांग परिदृश्य में 628 घन किलोमीटर और उच्च मांग परिदृश्य में 807 घन किलोमीटर तक पहुंच सकती है।

जैसा कि आप जानते हैं, भारत एक कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था रहित देश रहा है, इसलिए कृषि उत्पादन बढ़ाने और देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सिंचाई का विकास योजनाकारों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। इसी कारण से पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। भाखड़ा नंगल, हीराकुंड, दामोदर घाटी, नागार्जुन सागर, राजस्थान नहर परियोजना आदि योजनाएँ सिंचाई क्षमता बढ़ाने और कृषि उत्पादन को अधिकतम करने के उद्देश्य से शुरू की गईं। दीर्घकालिक योजना में जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में रखना आवश्यक है। राष्ट्रीय जल नीति के अनुसार, भारत में खाद्यान्न उत्पादन 1950 के दशक में लगभग

50 मिलियन टन से बढ़कर 1999–2000 में लगभग 203 मिलियन टन तक पहुंच गया। राष्ट्रीय समेकित जल संसाधन विकास आयोग (NCIWRD) के अनुसार, वर्ष 2025 तक जनसंख्या उच्च वृद्धि परिदृश्य में लगभग 1330 मिलियन और निम्न वृद्धि परिदृश्य में लगभग 1286 मिलियन होने की संभावना है। वर्ष 2050 तक, उच्च वृद्धि दर के परिदृश्य में जनसंख्या लगभग 1581 मिलियन और निम्न वृद्धि दर के परिदृश्य में लगभग 1346 मिलियन होने का अनुमान है।

## 9.6.3 जलविद्युत उत्पादन

जल संसाधनों का उपयोग जल-विद्युत (हाइड्रो-इलेक्ट्रिक) उर्जा उत्पादन के लिए प्रागैतिहासिक काल से किया जा रहा है। भारत की जल-विद्युत क्षमता का अनुमान लगभग 84,044 मेगावाट (MW) लगाया गया है, जो 60% लोड फैक्टर पर आधारित है। स्वतंत्रता के समय भारत में जल-विद्युत परियोजनाओं की स्थापित क्षमता केवल 508 मेगावाट थी। वर्ष 1998 तक यह क्षमता बढ़कर लगभग 22,000 मेगावाट हो गई। प्रमुख नदी घाटियों में जल-विद्युत विकास की स्थिति अत्यंत असमान है (शर्मा, 2018)।

एक अनुमान के अनुसार, भारत ने बारहवीं पंचवर्षीय योजना तक 60,000 मेगावाट अतिरिक्त जल-विद्युत विकसित करने की योजना बनाई थी। इसमें 14,393 मेगावाट दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007), 20,000 मेगावाट ग्यारहवीं योजना (2007–2012) और 26,000 मेगावाट बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) के दौरान शामिल थे। देश के हिमालयी और उप-हिमालयी क्षेत्रों में छोटे जल-विद्युत परियोजनाओं के विकास के लिए लगभग 10,000 मेगावाट की अतिरिक्त संभावनाएँ उपलब्ध हैं। इसलिए, यह न केवल वांछनीय है बल्कि समय की विशेष आवश्यकता भी है कि छोटे, मध्यम और बड़े जल-विद्युत परियोजनाओं के विकास के लिए एक समग्र मास्टर प्लान तैयार किया जाए। भारतीय नदियों में जल-विद्युत उत्पादन की पर्याप्त क्षमता है, विशेषकर तब जब वे अपने स्रोत पर्वतों-हिमालय क्षेत्र, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट, विंध्य पर्वतमाला और अरावली श्रृंखला से नीचे उतरती हैं, इससे पहले कि उनका जल उपभोग हो या समुद्र में प्रवाहित हो जाए (लेवी और सिडेल, 2011)।

## 9.6.4 औद्योगिक प्रयोजन

जल का उपयोग विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं में भी किया जाता है, जिनमें निर्माण, धुलाई, प्रसंस्करण, पतला करना, शीतलन (कूलिंग) आदि शामिल हैं। भारत में कृषि उद्योग जल का सबसे बड़ा उपभोक्ता है लगभग 90% जल संसाधन का उपयोग कृषि और पशुपालन के लिए किया जाता है। वैश्विक स्तर पर औद्योगिक उपयोग के लिए औसतन 19% जल संसाधन का प्रयोग किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 5% जल संसाधन औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। औद्योगिक उपयोग के लिए प्रमुख स्रोत सतही जल (41%) है, इसके बाद भूजल (35%) और नगरपालिका जल (24%) का स्थान आता है। धातु, लकड़ी, कागज उत्पाद, रसायन, तेल आदि का उत्पादन करने वाले उद्योग जल संसाधनों के प्रमुख उपभोक्ता हैं। अनुमानों के अनुसार, वर्तमान में औद्योगिक क्षेत्र में जल उपयोग लगभग 15 घन किलोमीटर ($km^3$) है। तापीय (थर्मल) और परमाणु (न्यूक्लियर) बिजली संयंत्र, जिनकी स्थापित क्षमता क्रमशः 40,000 मेगावाट और 1,500 मेगावाट है, द्वारा जल उपयोग लगभग 19 घन किलोमीटर ($km^3$) आँका गया है। यदि वर्तमान दर से जल उपयोग जारी रहा, तो वर्ष 2050 तक उद्योगों के लिए जल की आवश्यकता लगभग 103 घन किलोमीटर ($km^3$) हो जाएगी; जबकि यदि बड़े पैमाने पर जल-संरक्षण

तकनीकों को अपनाया गया, तो यह आवश्यकता घटकर लगभग 81 घन किलोमीटर ($km^3$) रह सकती है (लेवी और सिडेल, 2011)।

## 9.6.5 मत्स्य पालन

जैसा कि आप जानते हैं, जलीय कृषि (Aquaculture) का अर्थ है—जलीय जीवों, विशेष रूप से मछलियों का पालन भोजन के उद्देश्य से करना। जलीय कृषि को जल-कृषि या मत्स्य पालन (Aqua-farming) भी कहा जाता है। इसमें मछलियाँ, झींगे (Crustaceans), घोंघे (Molluscs), जलीय पौधे, शैवाल (Algae) आदि का पालन-पोषण किया जाता है। इस प्रकार, जलीय कृषि के लिए तालाब, नदियाँ और झीलें जैसी जल-संपदाएँ आवश्यक होती हैं। भारत में वार्षिक जलीय कृषि उत्पादन लगभग 9.6 मिलियन टन है। जलीय कृषि उत्पादन में भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। भारत में विशाल जल संसाधनों की उपलब्धता के कारण मत्स्य पालन (Fisheries), झींगा पालन (Prawn culture), संयुक्त मत्स्य पालन (Integrated fish farming), समुद्री मत्स्य पालन (Mariculture), मोती पालन (Pearl culture), सीप पालन (Mussel culture), समुद्री शैवाल पालन (Seaweed culture) आदि का व्यापक रूप से अभ्यास किया जाता है।

## 9.6.6 मनोरंजनात्मक

जल आधारित मनोरंजन (Recreation) भी एक आवश्यक और तेजी से बढ़ती हुई वैश्विक गतिविधि है। यह ऐसी गतिविधि है जिसे लोग शारीरिक और मानसिक ताजगी के लिए करते हैं। अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि जल-आधारित गतिविधियाँ, जैसे-रिवर राफ्टिंग, स्नान और तैराकी, सबसे लोकप्रिय मनोरंजक गतिविधियों में शामिल हैं। जलाशयों के आसपास की कुछ भूमि को मनोरंजक उपयोगों के लिए उपयोग किया जाता है, जैसे-पैदल यात्रा (Hiking), शिकार (Hunting), बर्फ पर स्कीइंग (Snow skiing) आदि। जल संसाधनों का उपयोग वॉटर स्कीइंग, तैराकी (Swimming) और मछली पकड़ने (Fishing) जैसी गतिविधियों में भी किया जाता है। जल संसाधनों के मनोरंजक उपयोग (Recreational uses of water resources) को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. प्राथमिक शारीरिक संपर्क
   - i. स्कीइंग
   - ii. तैराकी
   - iii. ट्यूबिंग
   - iv. विंड सर्फिंग
2. द्वितीयक शारीरिक संपर्क
   - i. सौंदर्यात्मक मूल्य
   - ii. नौकायन
   - iii. डोंगी चलाना
   - iv. शिकार

### 9.6.7 नौपरिवहन

जल निकायों (Water Bodies) का उपयोग मानव द्वारा प्राचीन काल से ही परिवहन (Transportation) के लिए किया जाता रहा है। विभिन्न जल निकाय जैसे -गंगा नदी, हूगली, ब्रदा और विस्चुला (Vistula) आदि का उपयोग नौवहन (Navigation) के लिए भी किया जाता है।

## सारांश

इस इकाई में, हमने जल संसाधनों के विभिन्न पहलुओं, उनकी विशेषताओं तथा उनके उपयोगों पर चर्चा की है। अब तक आपने यह सीखा है कि:

- जल सभी प्राकृतिक संसाधनों में से एक सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है।
- पृथ्वी पर लगभग 97.5% पानी खारा (Salt Water) है और 2.5% पानी ताजे पानी (Fresh Water) का है। खारा पानी समुद्रों, महासागरों और अन्य जलभूमियों (Wetlands) में पाया जाता है। वहीं, ताजा पानी ग्लेशियरों, हिम-कॉपों (Ice Caps), बर्फ, नदियों, नालों, झीलों, जलाशयों, तालाबों, भूजल आदि में पाया जाता है।
- ओशिनिया (Oceania) महाद्वीप में पानी की उपलब्धता सबसे अधिक है (प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 70,000 क्यूबिक मीटर), जबकि एशिया महाद्वीप में सबसे कम है (प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 3,400 क्यूबिक मीटर)।
- विश्व में लगभग 263 प्रमुख अंतरराष्ट्रीय नदी बेसिन पाए जाते हैं।.
- भारत में विभिन्न रूपों में जल संसाधन उपलब्ध हैं। भारत की प्रमुख नदियाँ हैं-गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, सिन्धु (इंडस) और महानदी।
- भारत के चार राज्य और दो केंद्रशासित प्रदेशों (UTs) में ग्लेशियर पाए जाते हैं, जो हैं-जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, अरुणाचल प्रदेश, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और सिक्किम।
- भारत में कई झीलें पाई जाती हैं, जिनमें प्रमुख हैं-हुसैन सागर झील, कोल्लेरू झील, कुम्बम झील, हाफलोंग झील, शिवसागर झील, जॉयसागर झील, गौरीसागर झील, चांडूबी झील, रुद्रसागर, कंवर झील बर्ड सैंक्चुरी, सुखना झील, डल झील, अंचार झील, वूलर झील (भारत की सबसे बड़ी ताजे पानी की झील), सतसर झील, अंशुपा झील, चिल्का झील (भारत की सबसे बड़ी खारे पानी की झील), कंजिया झील, पुष्कर झील, गुरुडोंगमार झील, चोलामाउ झील (भारत की सबसे ऊँची झील), समिति झील, कालीवेली झील, कोडाईकनाल झील, ऊटी झील, पेरुमल एरी, भिमताल झील, नैनी झील, नौकुचिया ताल, सतताल और झिलमिल झील।
- इन जल संसाधनों का उपयोग सिंचाई, घरेलू उपयोग, जलविद्युत उत्पादन, जलीय कृषि (Aquaculture), औद्योगिक प्रक्रियाओं, मनोरंजन (Recreational) और नौवहन (Navigation) आदि के लिए किया जाता है।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1(a) रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

ताजे पानी के संसाधन असमान रूप से वितरित हैं, जिसमें अधिकतर पानी मानव बस्तियों से दूर स्थित है। विश्व के अधिकांश बड़े नदी बेसिन कम आबादी वाले क्षेत्रों से होकर गुजरते हैं। विश्व में अनुमानित ……… प्रमुख अंतरराष्ट्रीय नदी बेसिन हैं, जो ……… या पृथ्वी की भूमि सतह के 45.3% क्षेत्रफल को कवर करते हैं (अंटार्कटिका को छोड़कर)। भूजल (Groundwater) उपलब्ध ताजे पानी के लगभग 90% का प्रतिनिधित्व करता है और लगभग ……… लोग अपने पेयजल के लिए भूजल पर निर्भर हैं। कृषि में जल उपयोग विश्व के कुल जल खपत का लगभग ……….. हिस्सा है, मुख्यतः फसल सिंचाई के माध्यम से; औद्योगिक उपयोग लगभग ……….. है और घरेलू उपयोग के लिए ……….. पानी प्रयोग किया जाता है, जबकि शेष 5% अन्य प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है।

**2 (a)** जल संसाधनों के प्रकारों पर चर्चा करें।

**(b)** भूजल और सतही जल में अंतर स्पष्ट करें।

**3 (a)** भारत की विभिन्न नदियों का वर्णन करें।

**(b)** भारत की झीलों पर नोट लिखें।

**4 (a)** जल संसाधन को परिभाषित करें। विश्व स्तर पर जल संसाधनों के कारणों के बारे में लिखें।

**5 (a)** खारे पानी और ताजे पानी में अंतर स्पष्ट करें।

**(b)** भारत में भूजल संसाधनों की स्थिति बताएं।

**(c)** भारत में सतही जल संसाधन क्या हैं?

**6 (a)** रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

जैसा कि आप जानते हैं, अक्वाकल्चर वह कृषि है जिसमें ……… की खेती की जाती है, विशेष रूप से ……… को भोजन के लिए। अक्वाकल्चर को अक्वा-फार्मिंग के नाम से भी जाना जाता है। अक्वाकल्चर में मछली, क्रस्टेशियन (झींगा आदि), मोलेस्क्स (सीप आदि), जलीय पौधे, शैवाल आदि की खेती की जाती है। इसलिए, अक्वाकल्चर के लिए जल संसाधनों की आवश्यकता होती है, जैसे तालाब, नदियाँ और झीलें। भारत में वार्षिक अक्वाकल्चर उत्पादन लगभग ……… है। अक्वाकल्चर उत्पादन में, भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। जैसा कि आप जानते हैं, भारत विशाल जल संसाधनों से सम्पन्न है; इसलिए, भारत में अक्वाकल्चर आम प्रचलित है। एस. अय्यप्पन के अनुसार, भारत में इनलैंड जल संसाधन इस प्रकार हैं: ……… नदियाँ, 0.3 मिलियन हेक्टेयर एस्चुअरी, 0.19 मिलियन हेक्टेयर खारे पानी और लैगून, 3.15 मिलियन हेक्टेयर जलाशय, 0.2 मिलियन हेक्टेयर फूड प्लेन, वेटलैंड और 0.72 मिलियन हेक्टेयर अपलैंड झीलें। मछली पालन, झींगा पालन, एकीकृत मत्स्य पालन, मैरीकल्चर, मोती पालन, मसल कल्चर और समुद्री शैवाल पालन आदि पूरी तरह से जल संसाधनों पर आधारित हैं।

**(b)** वैश्विक स्तर पर कुल खारा पानी लगभग 97.5% है (हाँ/नहीं)

**(c)** भारत की सबसे बड़ी ताजे पानी की झील है: वुलर झील / चिल्का झील

**(d)** पुष्कर झील स्थित है: राजस्थान / मध्य प्रदेश / जम्मू और कश्मीर / हिमाचल प्रदेश

**(e)** वैश्विक स्तर पर ताजे पानी के संसाधन लगभग …… हैं: 2.5% / 6.2%

**(f)** विभिन्न महाद्वीपों में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता क्या है?

**7 (a)** नदियों और झीलों के गुणधर्म (Characteristics) का वर्णन कीजिए।

**(b)** जल संसाधनों के उपयोग (Utilizations) का वर्णन कीजिए।

# इकाई 10: जल संसाधन विकास – बाँध: एक आवश्यक दुर्भाग्य

इकाई संरचना

10.0 सीखने के उद्देश
10.1 परिचय
10.2 जल संसाधन विकास
10.3 वैश्विक स्तर पर बाँध
10.4 राष्ट्रीय स्तर पर बाँध
10.5 बाँध के सकारात्मक प्रभाव
10.6 बाँध के नकारात्मक प्रभाव
10.7 बाँध – आवश्यक दुर्भाग्य
सारांश

## 10.0 सीखने के उद्देश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- जल संसाधन विकास क्या है?
- बाँध और जलविद्युत परियोजनाओं का अर्थ
- अंतरराष्ट्रीय स्तर के बाँध
- राष्ट्रीय स्तर के बाँध
- बाँधों के सकारात्मक प्रभाव क्या हैं
- बाँधों के नकारात्मक प्रभाव क्या हैं
- बाँध को आवश्यक बुराई के रूप में क्यों देखा जाता हैं?

## 10.1 परिचय

जैसा कि आपने इस पाठ्यक्रम की इकाई-9 में जल संसाधनों के बारे में पढ़ा, जिसमें हमने जल संसाधनों के उपयोग का वर्णन किया है। जल संसाधन विश्व का सबसे मूल्यवान संसाधन है। लेकिन दुर्भाग्यवश, यह संसाधन समान रूप से वितरित नहीं है और अधिकांश जल समुद्रों और महासागरों में लवणीय जल के रूप में पाया जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, विश्व में केवल 2.5% मीठा पानी उपलब्ध है, और इस 2.5% में से अधिकांश पानी ग्लेशियरों और हिम-मुद्राओं में बंधा हुआ है (Sharma, 2018)। इसलिए, मानव जाति सतही जल और भूजल पर निर्भर है। निस्संदेह, नदी बेसिनों ने अतीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और भविष्य में भी निभाएंगे। मानव ने जल संसाधनों का विभिन्न तरीकों से उपयोग किया है और उनके अनुसार जल संसाधनों का विकास किया है। जल संसाधन विकास को इस रूप में समझा जा सकता है कि यह मानव समाज के लिए जल के लाभकारी उपयोग को सुधारने के उद्देश्य से किए गए प्रयासों को दर्शाता है। जल के

सभी संभावित उपयोगों को उपभोगात्मक (जैसे जल आपूर्ति, सिंचाई) और गैर-उपभोगात्मक (जैसे जलविद्युत, नौवहन) में वर्गीकृत किया जा सकता है।

जल विकास पर्यावरणविदों के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है जो सतत विकास, आवासीय क्षेत्र का क्षरण, प्रदूषण, वनों की कटाई और जलमृदा नष्ट होने जैसी समस्याओं को देखते हैं; वकीलों के लिए जो जल अधिकार और कानून का अवलोकन करते हैं; और अर्थशास्त्रियों के लिए जो आर्थिक विकास और गरीबी उन्मूलन पर जोर देते हैं। जल संसाधन के विकास के लिए इंजीनियरिंग कार्य किए जाते हैं, जैसे बाँध, नहरें, जलविद्युत स्टेशन आदि, जो जल की निश्चित क्षमता का विकास सुनिश्चित करते हैं। मानव ने प्राचीन काल से विभिन्न उद्देश्यों के लिए जल संसाधनों का उपयोग किया है। जैसा कि हमने इस पाठ्यक्रम की इकाई-9 में जल के उपयोग पर चर्चा की थी, उसमें घरेलू उपयोग, सिंचाई, जलीय कृषि, जलविद्युत उत्पादन आदि के विभिन्न उपयोगों पर जोर दिया गया। मानव ने जल संसाधनों में विभिन्न प्रकार के संशोधन किए हैं और बाँध जल संसाधनों के विकास का आदर्श उदाहरण हैं। यदि हम जल का सतत और उपयुक्त उपयोग चाहते हैं, तो हमें जल का विकास सतत और जिम्मेदार तरीकों से करना चाहिए। इस इकाई में, आप जल विकास, बाँध की अवधारणा, अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर के बाँध, बाँधों के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव और यह समझेंगे कि बाँध क्यों 'आवश्यक दुर्भाग्य' माने जाते हैं।

## 10.2 जल संसाधन विकास

जल संसाधन विकास को विश्व के विभिन्न हिस्सों में आर्थिक और सामाजिक विकास के एक साधन के रूप में माना गया है। जल विकास पर पर्यावरणविदों, हाइड्रोलॉजिस्टों, समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों का ध्यान केंद्रित रहता है। जल संसाधन विकास में सिंचाई तकनीकों का विकास, बाँधों का निर्माण, मनोरंजन संबंधी उपाय आदि शामिल हो सकते हैं। जल विकास या जल संसाधन विकास को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है: "जल संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग की योजना बनाने, विकसित करने, वितरित करने और प्रबंधित करने की गतिविधियों का समूह।"

आदर्श रूप में, जल संसाधन विकास की योजना सभी जल मांगों को ध्यान में रखती है और जल को समान रूप से आवंटित करने का प्रयास करती है, ताकि मानव उपयोग और आवश्यकताओं की सभी मांगों को पूरा किया जा सके। जैसा कि आप जानते हैं, भारत एक प्राचीन ग्रामीण और कृषि आधारित देश है, जो तेजी से शहरीकरण की ओर बढ़ रहा है। देश को अपनी वार्षिक वर्षा का अधिकांश हिस्सा मानसून के मौसम में प्राप्त होता है, जिसमें वर्ष दर वर्ष काफी भिन्नता रहती है। देश के कई हिस्सों में वर्षा की कमी वाले महीनों में विभिन्न उपयोगों के लिए वार्षिक बहाव का एक बड़ा हिस्सा जलाशयों में संग्रह करने की आवश्यकता होती है। देश में प्रति व्यक्ति जलाशय संग्रहण तुलनात्मक रूप से कम है, और जल उपयोग की दक्षता भी निम्न रहती है। वैज्ञानिक तरीके से फसल उगाने के लिए पानी की आवश्यकता उन क्षेत्रों में भी होती है जहां वर्षा कम होती है। नदियों में नौवहन की संभावना को बढ़ाने के लिए प्रवाह बढ़ाया जा सकता है, और जल की गहराई इतनी होनी चाहिए कि बड़े जलयान भी चल सकें। भारत में जल विकास का लंबा इतिहास रहा है, हालांकि बड़े पैमाने पर जल विकास का आरंभ 19वीं सदी में हुआ। प्रारंभ में हिमालय की तलहटी में सिंचाई के लिए "रन ऑफ़ द रिवर" प्रकार के कई जल विचलन परियोजनाएँ बनाई गईं। 1975 के बाद, बहुत बड़े पैमाने पर भूजल विकास हुआ। केंद्रीय जल आयोग, भारत के आंकड़ों के अनुसार, विभिन्न स्थानों पर लगभग 220 किमी$^3$

जीवित जल संग्रहण बनाया गया है (छोटे और मध्यम जलाशयों को छोड़कर)। स्थानीय स्तर पर हम विभिन्न तरीकों से जल संसाधनों का विकास कर सकते हैं। मानव ने जल संसाधनों को कई तरीकों से परिवर्तित किया है। जल संसाधन विकास की कुछ स्वदेशी विधियाँ नीचे दी गई हैं और उन्हें चित्र-1 में भी सारांशित किया गया है।

मौसमी चेक बांध (Seasonal Check Bunds) जल के अच्छे स्रोत होते हैं। नालियाँ और खाईयाँ (Rivulets and Gullies), जो वर्षा के मौसम और उसके बाद 4–6 महीनों तक जल ले जाती हैं, भी अच्छे जल स्रोत हैं। मिट्टी या सीमेंट से नालियों पर स्थायी चेक बांध बनाना सामान्यतः सलाह योग्य नहीं है क्योंकि ये नालियाँ भारी बाढ़ के प्रति संवेदनशील होती हैं और जलसंग्रहण क्षेत्र में अधिक तलछट जम जाता है। इसके बजाय, वर्षा ऋतु के अंत में रेत के थैले रखकर अस्थायी चेक बांध बनाए जाते हैं। इन जलस्रोतों का उपयोग रबी की फसलों की सिंचाई और फलों के बागों के लिए किया जाता है। अस्थायी चेक बांध/डैम स्थानीय समुदायों द्वारा बनाए जा सकते हैं। कई गाँवों में किसान बिना वित्तीय सहायता के भी बांध बना चुके हैं। चेक बांध के पीछे जमा पानी को गुरुत्वाकर्षण के माध्यम से निचले क्षेत्रों की खेतों तक पहुँचाया जा सकता है। अधिकांश मामलों में, पानी को पंप के माध्यम से खींचकर किसानों द्वारा उपयोग किया जाता है। यह संरचना सामान्यतः मानसून में बह जाती है और इसे फिर से बनाना पड़ता है। मिट्टी के डैम (Earthen Dams) खाईयों को रोकने और जलसंग्रहण क्षेत्र को पारगम्यता टैंक (Percolation Tank) के रूप में उपयोग करने के लिए बनाए जा सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि लाभार्थी किसानों के पास जलसंग्रहण क्षेत्र का स्वामित्व और नियंत्रण हो। लिफ्ट सिंचाई (Lift Irrigation) का उपयोग परकोलेशन टैंक, चेक डैम के पीछे जमा जल और नदियों के प्रवाहित जल को खेतों और तालाबों तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। जल को उठाकर किसानों द्वारा बनाए गए तालाबों और पोंडों में पहुँचाया जाता है। प्राकृतिक झरनों (Natural Springs) और नदियों का विकास भी जल संसाधन विकास की महत्वपूर्ण विधि है। प्राकृतिक झरनों या नदियों के विकास का मुख्य उद्देश्य पीने के पानी, सिंचाई आदि के लिए जल उपलब्ध कराना है। जहाँ वन आवरण अधिक है, वहाँ प्राकृतिक झरने आम होते हैं। इन झरनों से पानी संग्रह करने, पीने के पानी के लिए उपयोग करने, कृषि भूमि और नर्सरी पौधों की सिंचाई करने, और जलसंग्रहण क्षेत्र को वनों की कटाई से बचाने के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं। फार्म तालाब (Farm Ponds) उन खेतों में विकसित किए जाते हैं जहाँ वर्षा जल का परकोलेशन कम होता है। विभिन्न आकार के ट्रेपेज़ॉइडल फार्म तालाब खोदे जाते हैं ताकि वर्षा जल जमा किया जा सके। इन तालाबों का पानी फलदार वृक्षों, खाद्य फसलों और सब्जियों की सिंचाई के लिए उपयोग किया जाता है। तालाब का आकार 5m x 5m से लेकर 10m x 10m तक हो सकता है।

जल कुंड (Jalkunds) बागों में बनाए जाने वाले कम लागत वाले जल टैंक होते हैं। ये छोटे आयताकार तालाब होते हैं, जिनकी क्षमता 2000–5000 लीटर वर्षा जल को समेटने की होती है। इन्हें खोदा जाता है और सभी किनारों को प्लास्टिक शीट से ढक दिया जाता है ताकि जल रिसाव न हो। 4000 लीटर क्षमता वाला जल कुंड प्रति सप्ताह 10 आम के पेड़ों को 10 लीटर पानी उपलब्ध करवा सकता है। ग्रुप वेल (Group Wells) उन क्षेत्रों में विकसित किए जाते हैं जहाँ भूजल संसाधन उपलब्ध हों और अन्य जल स्रोत न हो। इन क्षेत्रों में खुले कुएँ (Open Wells) बनाए जाते हैं। ये विधियाँ विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत उपयोगी हैं। इन स्रोतों का पानी पीने, धुलाई, खाना पकाने, सफाई, सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण के लिए उपयोग किया जा सकता है। अवलोकन से यह भी पता चला है कि मानव ने सबसे पहले इन विधियों के माध्यम से जल

संसाधनों का विकास या संशोधन किया। मानव ने सातवीं शताब्दी में "घराट" (Gharat) विकसित किया था, जो गेहूँ, चावल और मक्का की पीसाई के लिए और कभी-कभी तेल निकालने के लिए उपयोग किए जाते थे।

## 10.3 वैश्विक स्तर पर बाँध

बाँध (Dam) एक प्रकार की अवरोधक संरचना है जो विशेष रूप से नदियों और नालों में जल के प्राकृतिक प्रवाह को रोकती है। बाँध केवल बाढ़ को नियंत्रित नहीं करते, बल्कि सिंचाई, जल-विद्युत उत्पादन, मानव उपभोग, औद्योगिक उपयोग, मत्स्य पालन आदि कई गतिविधियों के लिए जल भी प्रदान करते हैं।

पहला बाँध 1890 में बनाया गया था। 1950 तक दुनिया में लगभग 5,000 बड़े बाँध मौजूद थे। वर्ल्ड कमिशन ऑन डैम रिपोर्ट (2000) के अनुसार, विश्व के 140 देशों में लगभग 45,000 बड़े बाँध हैं। इनमें से 22,000 चीन में हैं और अमेरिका में 6,390 हैं। भारत में लगभग 4,291 बाँध हैं (विश्व के कुल का 9%), जापान में लगभग 1,200 और स्पेन में लगभग 100 बाँध हैं। अनुमान के अनुसार, विश्वभर में हर साल 160–320 नए बड़े बाँध बनाए जाते हैं ताकि वर्षा जल को संचित किया जा सके और रनऑफ़ को रोकते हुए विशाल मात्रा में पानी जमा किया जा सके। हालांकि, बड़े बाँध केवल कुछ विशेष क्षेत्रों में ही बनाए जा सकते हैं क्योंकि इसके लिए पर्याप्त स्थान, पानी और धन की आवश्यकता होती है। बाँध का उद्देश्य देश के अनुसार भिन्न होता है; कुछ देशों ने बाँध मुख्य रूप से सिंचाई के लिए बनाए हैं, जबकि कुछ ने जल-विद्युत उत्पादन (Hydropower Energy) के लिए। उदाहरण के लिए, यूरोप ने अपने अधिकांश बाँध जल-विद्युत उत्पादन के लिए विकसित किए हैं, जबकि अफ्रीका और एशिया ने अधिकांश बाँध सिंचाई के उद्देश्य से बनाए हैं।

**तालिका-1: अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सबसे बड़े बांधों को दर्शाना**

| बाँध का नाम | विद्युत उत्पादन क्षमता | जिस नदी पर बाँध बना है | देश का नाम |
|---|---|---|---|
| थ्री गॉर्जेस बाँध | 22.5GW | यांग्त्ज़ी नदी | चीन |
| इटाइपु बाँध | 14 GW | पराना नदी | ब्राज़ील |
| शिलुओडू बाँध | 13860 MW | जिन्शा नदी | चीन |
| गूरी बाँध | 10235 MW | कारोनी नदी | वेनेज़ुएला |
| तुकुरुई बाँध | 8370 MW | टोकान्टिन्स नदी | ब्राज़ील |
| शिंगजियाबा बाँध | 6400 MW | जिन्शा नदी | चीन |
| ग्रैंड कूली बाँध | 6809 MW | कोलंबिया नदी | संयुक्त राज्य अमेरिका |
| लॉन्गटान बाँध | 6426 MW | होंगशुई नदी | चीन |
| क्रास्नोयार्स्क बाँध | 6000 MW | येनिसेई नदी | रूस |
| रॉबर्ट-बुरासा बाँध | 5616 MW | ला ग्रांडे नदी | कनाडा |

यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि बहुत कम बाँध ही बाढ़ नियंत्रण में मदद करते हैं – केवल तभी जब बाँध निम्न स्तर पर हों। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाँधों के बारे में विभिन्न तथ्य नीचे दिए गए हैं:

- हाइड्रोपावर (जल-विद्युत) वैश्विक स्तर पर विद्युत उत्पादन का प्रमुख नवीनीकरणीय स्रोत है। यह सभी नवीनीकरणीय विद्युत का 71% प्रदान करता है। वर्ष 2016 में इसकी स्थापित क्षमता 1,064 गीगावाट थी; इसने सभी स्रोतों से विश्व की कुल विद्युत का 16.4% उत्पन्न किया।
- महत्वपूर्ण नई विकास गतिविधियाँ मुख्यतः चीन, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका में केंद्रित हैं। एशिया में सबसे बड़ी अप्रयुक्त क्षमता है, जिसका अनुमान 7,195 TWh/वर्ष है, जो इसे भविष्य में विकास के लिए सबसे संभावित प्रमुख बाजार बनाता है (पी.डी. शर्मा, 2018)।
- 2015 में, चीन ने वैश्विक स्थापित हाइड्रोपावर क्षमता का 26% हिस्सा लिया, जबकि अमेरिका का हिस्सा 8.4%, ब्राजील का 7.6% और कनाडा का 6.5% था।
- इस क्षेत्र में सतत विकास के प्रथाओं में महत्वपूर्ण प्रगति हाइड्रो-पावर सततता मूल्यांकन प्रोटोकॉल (Hydro-power Sustainability Assessment Protocol) के माध्यम से हुई है।
- जैसा कि आप जानते हैं, हाइड्रो-पावर सभी विद्युत उत्पादन तकनीकों के साथ अच्छी समन्वय क्षमता रखता है, इसलिए भविष्य में विद्युत प्रणाली में इसकी भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण होने की उम्मीद है।

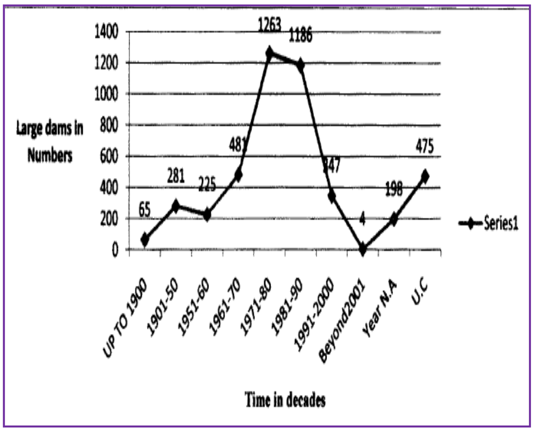

**चित्र-1:वर्षों के दौरान भारत में बड़े बांधों की वृद्धि**

- हाइड्रो-पावर के मालिकों और संचालकों के लिए निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में जलवायु सहनशीलता (climate resilience) और संभावित जलवायु परिवर्तन प्रभावों को शामिल करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।
- हाइड्रो-पावर सुविधाओं द्वारा प्रदान किए जाने वाले जल प्रबंधन लाभों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जैसे बाढ़ नियंत्रण और सूखा या शुष्क मौसम के दौरान जल संरक्षण।
- महत्वपूर्ण नई विकास गतिविधियाँ मुख्य रूप से एशिया (विशेषकर चीन), लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के बाजारों में केंद्रित हैं। इन क्षेत्रों में, हाइड्रो-पावर अंडर-सर्व किए गए क्षेत्रों और बढ़ती औद्योगिक आधार को बिजली प्रदान करने का अवसर देता है, साथ ही बहुआयामी परियोजनाओं से जुड़े अन्य कई लाभ भी प्रदान करता है।

## 10.4 राष्ट्रीय स्तर पर बाँध

जैसा कि आपने यूनिट-9 में सीखा, भारत प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है और देशभर में कई नदियाँ बहती हैं। विभिन्न नदियाँ जैसे गोदावरी, कृष्णा, दामोदर, गंगा, यमुना, तापी, सिंधु आदि भारत के अंदर बह रही हैं। भारत में राष्ट्रीय जल नीति को 1987 में राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद द्वारा अपनाया गया था। इस नीति में जल

विकास के लिए समग्र और एकीकृत जलग्रहण क्षेत्र (बेसिन)-उन्मुख दृष्टिकोण पर जोर दिया गया है और जल के उपयोग को बढ़ावा देने की दिशा में काम करने पर बल दिया गया है।

भारत सरकार के जल संसाधन, नदी विकास और गंगा पुनरुज्जीवन मंत्रालय (MoWR, RD & GR) जल संरक्षण, प्रबंधन और विकास के लिए जिम्मेदार है। यह मंत्रालय जल नियोजन की राष्ट्रीय दृष्टि, सामान्य नीतियाँ, तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण, अनुसंधान और विकास, बहुउद्देशीय परियोजनाएँ, बाढ़ प्रबंधन (बाढ़-सुरक्षा सहित), जलभराव, समुद्री कटाव और बांध सुरक्षा जैसी जिम्मेदारियों का समग्र दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है।

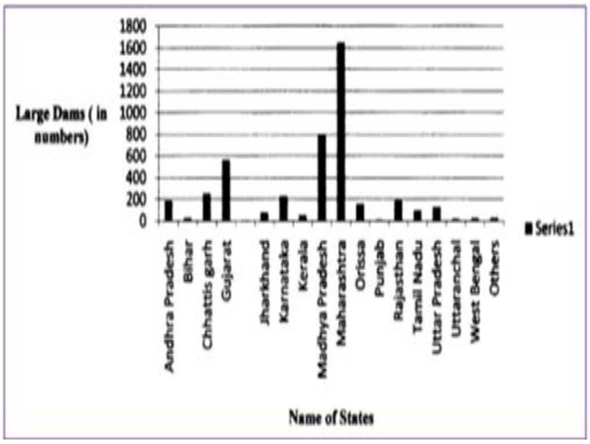


**चित्र-2: भारत के विभिन्न राज्यों में बड़े डैम का वितरण**

जल संसाधन मंत्रालय (अब जल शक्ति मंत्रालय) को अंतःराज्यीय नदियों के नियमन और विकास, न्यायाधिकरणों (Tribunals) के क्रियान्वयन, जल गुणवत्ता मूल्यांकन, द्विपक्षीय और बाह्य सहायता तथा जल संसाधनों के सहयोग कार्यक्रमों और भारत और पड़ोसी देशों से जुड़ी साझा नदियों से संबंधित मामलों का कार्यभार भी सौंपा गया है।

डैम पुनर्वास और सुधार परियोजना (DRIP) का मुख्य उद्देश्य चार राज्यों में लगभग 223 बड़े डैमों (मध्य प्रदेश-50, ओडिशा-38, केरल-31 और तमिलनाडु-104) के पुनर्वास और सुधार पर ध्यान केंद्रित करना है, जिसे विश्व बैंक की वित्तीय सहायता से संचालित किया जा रहा है। इस परियोजना की कुल लागत लगभग ₹2,100 करोड़ है और यह 18 अप्रैल, 2012 से प्रभावी हुई। भारत में जल संसाधन विकास के लिए विभिन्न विधियों को लागू किया गया है।

## 10.5 बाँध के सकारात्मक प्रभाव

पानी एक कीमती संसाधन है, जो आज विश्वभर में लगातार दुर्लभ होता जा रहा है। इस कमी को पूरा करने के लिए सतही जल स्रोतों का दोहन और उपयोग बढ़ता जा रहा है। इन जल स्रोतों का संभावित उपयोग सिंचाई, जलकृषि (Aquaculture), जलविद्युत उत्पादन, जल परिवहन (जहाँ पानी की कमी हो) आदि के लिए किया जा सकता है। यह कोई नई प्रवृत्ति नहीं है; मनुष्य कई वर्षों से जल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता रहा है। कुछ प्राचीन महान सभ्यताएँ बड़े पैमाने पर सिंचाई प्रणालियों पर आधारित थीं, जो नदी का पानी खेतों तक पहुँचाती थीं। रोमनों और नेटिव अमेरिकियों ने लगभग 2000 वर्ष पहले दूरस्थ नदियों से पानी लाने के लिए नहरें विकसित की थीं। हालांकि, उन शुरुआती जल अभियंताओं ने शायद ही कभी उस पैमाने पर जल परिवहन का सपना देखा होगा जैसा आज प्रस्तावित या कार्यान्वित किया जा रहा है। बांध किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न बांधों का निर्माण विशिष्ट उद्देश्यों के लिए किया

गया है, जैसे कि बाढ़ नियंत्रण, जल आपूर्ति, सिंचाई, विद्युत उत्पादन, जल परिवहन और जलकृषि। विश्व स्तर पर जलविद्युत मुख्य बिजली स्रोत है, वहीं कृषि के लिए पर्याप्त जल की आवश्यकता होती है, जो अक्सर बांधों द्वारा प्रदान किया जाता है। इसलिए, बांध किसी भी देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राचीन काल में, बांध केवल एकल उद्देश्य के लिए बनाए जाते थे या तो सिंचाई के लिए या बाढ़ नियंत्रण के लिए। लेकिन वर्तमान समय में बांध बहुउद्देश्यीय हो गए हैं और इनके विभिन्न उपयोग हैं। बांधों के कई सकारात्मक प्रभाव हैं, जिन्हें चित्र-4 में संक्षेपित किया गया है। बांधों के सकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं:

1. **साफ ऊर्जा प्रदान करना:** बांध बिजली उत्पादन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये बहते पानी की ऊर्जा का उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया में नदी की गतिज ऊर्जा पहिए को घुमाती है और इसे यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है। विश्व का सबसे बड़ा बांध थ्री गॉर्जेज़ बांध है, जो चीन में यांग्त्ज़े नदी पर बनाया गया है। यह बांध 2.3 किलोमीटर चौड़ा और 185 मीटर ऊँचा है। संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे बड़ा जलविद्युत संयंत्र ग्रैंड कूली बांध पर कोलंबिया नदी में स्थित है। वॉशिंगटन राज्य में बनाई

**तालिका-3: भारत के कुछ महत्वपूर्ण डैम, उनका स्थान और क्षमता दिखा रही है (शर्मा, 2018)**

| बाँध का नाम | नदी | राज्य | स्थापित क्षमता (मेगावाट) | ऊँचाई | लंबाई |
|---|---|---|---|---|---|
| नागार्जुन सागर बाँध | कृष्णा नदी | आंध्र प्रदेश | 816 | 124 m | 1,450 m |
| मैथन बाँध | बराकर नदी | झारखंड | 60 | 165 ft | 15,712 ft |
| तिलैया बाँध | बराकर नदी | बिहार | | | |
| सरदार सरोवर बाँध | नर्मदा | गुजरात | 1,450 | 163 m | 1,210 m |
| भाखड़ा–नांगल बाँध | सतलुज | हिमाचल प्रदेश | 1325 | 226 m | 520 m |
| तुंगभद्रा बाँध | तुंगभद्रा | कर्नाटक | 72 | 49.38 m | 2441 m |
| कृष्णराजसागर बाँध | मुख्य कावेरी | कर्नाटक | 200 | 125 ft | 3500 m |
| चेरुथोनी बाँध | चेरुथोनी | केरल | 32 | 450 ft | 2300 ft |
| इंदिरा सागर बाँध | नर्मदा | मध्य प्रदेश | 1,000 | 92m | 653 m |
| कोयना बाँध | कोयना | महाराष्ट्र | 1,920 | 339 ft | 2,648 ft |
| हीराकुंड बाँध (भारत का सबसे लंबा बाँध) | महानदी | ओडिशा | 307.5 | 60.96 m | 25800 m |
| बीसलपुर बाँध | बनास नदी | राजस्थान | 172 | 130 ft | 1883 ft |
| भवानी सागर बाँध | भवानी | तमिलनाडु | 32 | 105 ft | 1700 m |
| मैथूर बाँध | कावेरी नदी | तमिलनाडु | 120 | 120 ft. | 1700 m |
| टिहरी बाँध (भारत का सबसे ऊँचा बाँध) | भागीरथी | उत्तराखंड | 1,000 | 260 m | 575 m |
| रिहंद बाँध | रिहंद | उत्तर प्रदेश | 300 | 299 ft | 3064 ft |

जाने वाली 70 प्रतिशत से अधिक बिजली जलविद्युत सुविधाओं द्वारा उत्पादन की जाती है। वर्तमान समय में, जलविद्युत बिजली उत्पादन का सबसे सस्ता तरीका है। क्योंकि एक बार बांध बन जाने और

उपकरण स्थापित हो जाने के बाद, बहते पानी की ऊर्जा मुफ्त है। यह एक स्वच्छ और नवीकरणीय ईंधन स्रोत है।

2. **सिंचाई:** यह बांधों के सबसे महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभावों में से एक है। भारत की अधिकांश नदियाँ एक से अधिक राज्यों से होकर बहती हैं, इसलिए भारत में सिंचाई एक विवादास्पद विषय रही है। लेकिन भारत में सिंचाई पर बड़े और मध्यम परियोजनाओं के निर्माण का प्रभुत्व रहा है। वर्तमान समय में, पानी की कमी किसानों के लिए विश्वभर में आम समस्या है। बांध सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी प्रदान करते हैं। यह पानी आमतौर पर शुष्क मौसम में उपयोग किया जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, बांध बड़ी मात्रा में पानी संचित करते हैं, फिर गर्मियों या शुष्क मौसम में इसे बांध से छोड़ा जाता है और विभिन्न नालियों/कालों के माध्यम से कृषि भूमि में वितरित किया जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, लगभग 70% जल संसाधनों का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है। भारत में कई सिंचाई परियोजनाएँ लागू की गई हैं, जैसे बरगी परियोजना (मध्य प्रदेश), बीजास परियोजना (हरियाणा, पंजाब और राजस्थान) और भद्रा परियोजना (कर्नाटक) (India Water Portal, 2017)।
3. **जलकृषि (Aquaculture):** जलकृषि का अर्थ है जलीय जीवों, विशेषकर मछलियों, की खेती। चूंकि बांध पर्याप्त मात्रा में पानी (स्थिर), उच्च प्लवक विविधता, पर्याप्त जल गहराई और मछलियों के लिए अन्य उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं, इसलिए बांध समुदायों के लिए जलकृषि के अवसर भी प्रदान करते हैं। जलकृषि बहुउपयोग सिंचाई में एक व्यवहार्य गतिविधि साबित हुई है। कई अध्ययनों में इन बांधों की मछली के जाल पिंजरे (Net Cage Cultures) में उपयोगिता पाई गई है (Central Water Commission)। हालांकि, मौजूदा खुली जल निकायों में गहन मछली पालन (Intensive Fish Farming) करने से पानी में पोषक तत्वों का स्तर बढ़ सकता है, जो अधखाए भोजन और मछली के चयापचय अपशिष्ट से उत्पन्न होता है।
4. **परिवहन (Navigation):** जनसंख्या विस्फोट निश्चित रूप से सड़कों पर उच्च दबाव डालता है, इसलिए विश्व की कई सरकारें इसके विकल्प की तलाश में हैं। जैसा कि आप जानते हैं, नदियों की स्थिति अक्सर खतरनाक होती है, जैसे कटाव (erosion), तलछट जमाव (sedimentation) आदि के कारण। जिन नदियों में बाँध विकसित किए गए हैं, वे परिवहन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। बाँध नदी परिवहन के लिए स्थिर जल प्रणाली सुनिश्चित करते हैं।
5. **मनोरंजन (Recreation):** बाँध पूरे विश्व में प्रमुख मनोरंजक सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं। नाव चलाना, स्कीइंग, कैम्पिंग, और नाव लॉन्च जैसी सुविधाएँ सभी बाँधों द्वारा समर्थित होती हैं। भारत में कुछ बाँधों का उपयोग मनोरंजन के उद्देश्य से भी किया जाता है, जिनमें नगरजुना सागर बाँध, इडुक्की बाँध, तेहरी बाँध, हीराकुंड बाँध, भाखड़ा नांगल बाँध, सरदार सरोवर बाँध आदि शामिल हैं।
6. **बाढ़ नियंत्रण (Flood Control):** बाँध बाढ़ नियंत्रण में भी सहायक होते हैं, क्योंकि बाँधों का प्रभावी ढंग से उपयोग करके नदी के जलस्तर को नियंत्रित किया जा सकता है और नीचे के क्षेत्रों में बाढ़ को रोका जा सकता है। कई मौजूदा बाँधों का मुख्य उद्देश्य बाढ़ नियंत्रण ही है।
7. **जल आपूर्ति (Water Supply):** पानी की कमी पूरे विश्व में आम समस्या है। बाँध स्थानीय समुदायों को पर्याप्त मात्रा में जल आपूर्ति प्रदान करते हैं। बाँध गर्मी के मौसम और सूखे महीनों में सिंचाई के लिए पानी संग्रहीत करते हैं। कई रेगिस्तानी क्षेत्रों में अब खेती संभव हो गई है, क्योंकि बाँध और नहरें पानी की आपूर्ति करती हैं। बाँध स्थानीय लोगों को पेयजल भी प्रदान करते हैं। हाइड्रोलॉजिकल चक्र (जल चक्र) की पूर्ति के लिए, बाँधों की आवश्यकता होती है ताकि पानी संग्रहीत किया जा सके और पानी की कमी के समय इसे समुदायों को उपलब्ध कराया जा सके।

8. **भूमि सुधार (Land Improvement):** बाँध भूमि सुधार में सहायक होते हैं। भूमि सुधार से मिलने वाले लाभ वे अतिरिक्त लाभ हैं जो मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि के बाद प्राप्त होते हैं, जो जल निकासी और भूमि सुधार संबंधी सावधानियों के कारण होती है।
9. **अर्थव्यवस्था और रोजगार (Economy and Employment):** बाँध राज्य और देशों की अर्थव्यवस्था में योगदान देते हैं। बाँध इंजीनियरों, मजदूरों, किसानों, मछुआरों आदि को रोजगार भी प्रदान करते हैं। यद्यपि बाँध निर्माण की प्रारंभिक लागत अधिक होती है, फिर भी इनके संचालन में खर्च बहुत कम आता है। जलविद्युत संयंत्रों द्वारा उत्पन्न बिजली सबसे सस्ती बिजली मानी जाती है।

## 10.6 बाँध के नकारात्मक प्रभाव

हालांकि सदियों से बांध उपयोगी रहे हैं, लेकिन हाल के वर्षों में बड़े बांधों के माध्यम से नदियों का उपयोग करने से कई पर्यावरणीय, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। कई मामलों में, ये बांध पानी की उपलब्धता को कम कर देते हैं और प्राकृतिक तथा मानवीय मूल्य दोनों को नष्ट कर देते हैं। इसके अलावा, सकारात्मक प्रभावों के बावजूद, बांधों के विभिन्न नकारात्मक प्रभाव भी हैं, विशेष रूप से पर्यावरण पर। बांधों के नकारात्मक प्रभावों का सारांश चित्र-5 में दिया गया है। इन नकारात्मक प्रभावों का विवरण इस प्रकार है:

**नदी के पारिस्थितिक प्रवाह को अवरुद्ध/रोकना:** बांध नदी के प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रवाह को रोक देते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, नदी का प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रवाह ही उसकी स्थिरता (सस्टेनेबिलिटी) के लिए जिम्मेदार होता है। पारिस्थितिक प्रवाह में अवरोध के कारण नदी के कई जैव विविधता तत्व खतरे में पड़ जाते हैं या विलुप्त होने की कगार पर पहुँच जाते हैं। पारिस्थितिक प्रवाह नदी पारिस्थितिकी तंत्र के जैव विविधता और पानी को बनाए रखता है। नदी पर बांध का निर्माण नदी की प्रजातियों की संरचना और जल गुणवत्ता को बदल सकता है।

**भयंकर बाढ़ की संभावना बढ़ाना:** बांध के पीछे जमा विशाल पानी का दबाव भूकंपीय गतिविधि को उत्तेजित कर सकता है, जिससे बांध क्षतिग्रस्त हो सकता है और भयंकर बाढ़ का खतरा उत्पन्न हो सकता है।

**तालिका-4: तेहरी बांध से प्रभावित परिवारों और गांवों का विवरण**

| | पूर्णतः जलमग्न | आंशिक रूप से जलमग्न | पूर्णतः विस्थापित | कुल |
|---|---|---|---|---|
| गाँवों एवं नगरों की संख्या | 38 | 87 | 01 | 125 village and 1 Town |
| प्रभावित परिवारों की संख्या | 5,012 | 4,278 | 5,291 | 14,581 |
| मुआवज़ा प्राप्त करने वाले / भूमि अथवा फ्लैट आवंटित किए गए परिवारों की संख्या | 2,469 (564 Opted for cash) | Nil | 5,057 | 7,526 |
| वास्तव में नए पुनर्वास स्थलों में बसाए गए | 1,090 | Nil | 3,067 | 4,157 |

*(स्रोत: THDC, 1998)*

जैसा कि आप जानते हैं, भयंकर बाढ़ नदी के मैदानी बाढ़, तटीय बाढ़ और अन्य प्रकार की बाढ़ों की तुलना में अधिक खतरनाक होती है। भयंकर बाढ़ कुछ ही घंटों में पूरे शहरों को जलमग्न कर सकती है।

**मछलियों के प्रवास को रोकना:** बांध निर्माण और जलाशयों में तलछट के जमाव के परिणामस्वरूप, नदी के निचले हिस्से या किनारों की तटरेखाओं में तलछट की आपूर्ति रुक जाती है। इस प्रकार तलछट के प्रवाह को रोके जाने से नदी पारिस्थितिकी तंत्र में रहने वाली मछलियों के अंडे देने के क्षेत्र भी कट जाते हैं। क्षेत्रीय जीवों के सामान्य मार्ग बाधित हो जाते हैं क्योंकि बांध एक अवरोध का काम करता है। मछलियाँ उच्च बांधों के फ्लडगेट, टर्बाइन और पंप से गुजरते समय नुकसान पहुँचा सकती हैं। सिंचाई परियोजनाओं के आधार पर किए गए जलनिकासी पानी के लौटने के कारण जल गुणवत्ता में गंभीर परिवर्तन हो सकते हैं। मानव गतिविधियों या बांध निर्माण के परिणामस्वरूप जल के स्थायी रूप से गंदा होने (टर्बिडिटी) से प्रजातियों में बदलाव हो सकता है। प्रवास कुछ प्रवासी मछलियों की सामान्य प्रवृत्ति है, जिसमें मछलियाँ विभिन्न उद्देश्यों (भोजन, प्रजनन आदि) के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती हैं, विशेष रूप से प्रजनन के लिए। बांध निर्माण के कारण कई डायड्रोमस मछलियाँ (जो ताजे पानी से समुद्री पानी या इसके विपरीत जाती हैं) प्रवास नहीं कर पातीं। बांध निर्माण से मछली की गतिविधि रुक सकती है या विलंबित हो सकती है। बांध मछलियों को भोजन और प्रजनन क्षेत्रों के बीच प्रवास करने से रोकता है। इस प्रकार की रोकथाम प्रजातियों के विलुप्त होने का कारण बन सकती है। उदाहरण के लिए, गंगा नदी पारिस्थितिकी तंत्र की मछली हिलसा इलिशा, जो पहले पटना, भागलपुर और वाराणसी में प्रचुर मात्रा में पाई जाती थी, फरक्का बैराज के निर्माण के बाद इन स्थानों तक प्रवास नहीं कर पाती और अब केवल पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्रों तक सीमित रह गई है।

जलवायु परिवर्तन: बांध निर्माण और विकास के कारण क्षेत्र की जलवायु भी प्रभावित हो सकती है। बांध निर्माण के परिणामस्वरूप सूक्ष्मजलवायु (माइक्रोक्लाइमेट) और स्थानीय जलवायु में परिवर्तन देखा जा सकता है।

जल की गुणवत्ता में परिवर्तन: कुछ बांध इतने अधिक पानी को वाष्पीकरण और छिद्रयुक्त चट्टानों में रिसाव के माध्यम से खो देते हैं कि वे जितना पानी उपलब्ध कराते हैं, उससे अधिक पानी बर्बाद कर देते हैं। वाष्पीकरण के कारण बचा हुआ नमक नदी के जल की लवणता (सलिनिटी) बढ़ा देता है और इसे निचले हिस्सों में पहुँचने पर अनुपयोगी बना देता है। जलाशय में जमा होने वाली तलछट न केवल बांधों को बेकार बना देती है बल्कि निचले कृषि क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की हानि का कारण भी बनती है। खेतों तक पानी पहुँचाने वाली उथली स्थायी नहरों में घोंघे की आबादी का बढ़ना शिस्टोसोमायसिस जैसी महामारी का कारण बन सकता है। बांधों के निर्माण के समय जलाशय के निर्माण और जनसंख्या के पुनर्वास से कई जल संबंधी रोगों के फैलने की घटनाएँ देखी गई हैं। सबसे बड़ी चिंता शिस्टोसोमायसिस और मलेरिया के प्रसार में महत्वपूर्ण वृद्धि रही है, विशेष रूप से उन स्थानों पर जहाँ जलाशय रोगजनकों के प्रजनन स्थल प्रदान करते हैं। बांध की स्पिलवेज और निचले हिस्सों के पास रहने वाली आबादी में ऑंकोसेरकसिस के फैलने की भी रिपोर्टें मिली हैं। अंतर्राष्ट्रीय रिवर नेटवर्क (2001) और कनाडाई डैम एसोसिएशन (2001) के अनुसार, बांध निर्माण के परिणामस्वरूप पानी का तापमान, नमक और ऑक्सीजन का वितरण ऊर्ध्वाधर रूप से बदल सकता है। इससे नई अवांछनीय प्रजातियों का जन्म हो सकता है।

जलभराव (Water logging): जलभराव का अर्थ है मिट्टी का पानी से संतृप्त हो जाना। उच्च जल स्तर के कारण मिट्टी में जलभराव हो सकता है। जलभराव से मिट्टी में हवा की मात्रा कम हो जाती है, मिट्टी की लवणता बढ़ जाती है और उपयोगी जैविक समुदाय की हानि होती है। भारतीय विज्ञान संस्थान के अनुसार, सरदार सरोवर बांध के कमांड क्षेत्र का लगभग 40% हिस्सा जलभराव से प्रभावित होगा।

**सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव:** बांध प्रभावित क्षेत्र के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को भी काफी प्रभावित करते हैं, विशेष रूप से उन लोगों को मजबूर करके जिनके बसने वाले क्षेत्र और जमीनें जलमग्न हो जाती हैं, उन्हें अपने घर छोड़कर पलायन करना पड़ता है। बांध इनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। अनुमानित है कि वैश्विक स्तर पर 400–800 मिलियन लोग बांधों से प्रभावित हुए हैं। उदाहरण के लिए, अफ्रीका में 1970 के दशक में बांध निर्माण के कारण 3,50,000 लोग विस्थापित हुए। चीन में थ्री गॉर्जेस बांध ने 1.4 मिलियन लोगों को विस्थापित किया। बांध स्थानीय समुदाय के समाज और संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं। वर्ल्ड कमीशन ऑन डैम्स के अनुसार, चर्चिल बांधों का लागत-लाभ विश्लेषण किया गया और इसका स्थानीय लोगों के सामाजिक मूल्यों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वहीं, तेहरी बांध ने 135 से अधिक गाँवों का पुनर्वास किया। एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद के अनुसार, तेहरी के पुनर्वास पर प्रति परिवार 33,20,800 रुपये खर्च हुए, जबकि नर्मदा परियोजना में पुनर्वास लागत 1,43,660 रुपये थी। हालांकि, इन आंकड़ों पर विवाद है और कई परिवार अब भी अपने खर्चों की वापसी के लिए कार्यालयों में जा रहे हैं। श्री सुंदर लाल बहुगुणा ने तेहरी बांध के सामाजिक प्रभावों को कम करने के लिए भूख हड़ताल भी की। तेहरी बांध के निर्माण के कारण लगभग 135 गाँव प्रभावित हुए। बांध सामान्यतः आदिवासी लोगों को विस्थापित करते हैं, जो अशिक्षित और गरीब होते हैं। इसलिए, वे विस्थापित क्षेत्रों में अन्य लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते, जिससे समुदायों का समाजिक ढांचा बदल जाता है। नर्मदा घाटी परियोजना में लगभग एक मिलियन लोग और 126 गाँव महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और गुजरात में जलमग्न हुए।

## 10.7 बाँध – आवश्यक दुर्भाग्य

बांध हमें आवश्यकतानुसार हमारी सीमित ताजे पानी की आपूर्ति को संरक्षित करने में मदद करते हैं। बिना बांधों के, हम विश्व के अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। इसलिए, बांधों की आवश्यकता अनिवार्य है। लेकिन फिर भी बांध एक आवश्यक बुराई क्यों माने जाते हैं? पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बांधों को “भारत का मंदिर” कहा था। लेकिन जैसा कि आप जानते हैं, बांधों के लाभ के साथ-साथ लागत भी होती है। बांधों ने शहरी विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उस समय के इंफ्रास्ट्रक्चर का एक अहम हिस्सा थे। बड़े बांध कभी-कभी भूकंप भी उत्पन्न कर सकते हैं, क्योंकि जलाशय का भारी वजन भू-तंत्रिकीय गतिविधियों को प्रभावित कर सकता है। इसके अलावा, ये ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी करते हैं (क्योंकि जलमग्न वनस्पति सड़ती है), समुद्री मछलियों को नष्ट कर देते हैं (क्योंकि ये नदी से समुद्र में जाने वाले ताजे पानी और

**तालिका-5: सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के आधार पर: बांध आवश्यक बुराई हैं**

| बांधों के सकारात्मक प्रभाव | बांधों के नकारात्मक प्रभाव |
|---|---|
| ऊर्जा / विद्युत आपूर्ति | नदी के प्राकृतिक प्रवाह में बाधा |
| जलकृषि (मत्स्य पालन) | मछलियों के प्रवासन में बाधा |
| सिंचाई | विनाशकारी बाढ़ |
| रोज़गार | जलभराव |
| मनोरंजन एवं पर्यटन | जल की गुणवत्ता में परिवर्तन<br>सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव<br>जलवायु परिवर्तन<br>जैव विविधता की हानि |

पोषक तत्वों के प्रवाह को बाधित करते हैं) और तटीय कटाव का कारण बन सकते हैं (क्योंकि जलाशयों में जमा होने वाली तलछट पहले खाड़ी और मुहानों के माध्यम से समुद्र तक बहती थी और फिर लहरों द्वारा तटरेखा की सुरक्षा के लिए वापस धसी जाती थी)।

बांध से संबंधित सबसे बड़ी आपदा चीन में देखी गई, जिसमें बांध के क्षतिग्रस्त होने के कारण लगभग 2,30,000 लोगों की मृत्यु हुई। वर्ल्ड कमीशन ऑन डैम्स के अनुसार, बांधों के कारण 40 से 80 मिलियन लोग विस्थापित हुए हैं। आंकड़ों के अनुसार, दुनिया की बड़ी नदी प्रणालियों की लगभग 80% लंबाई कम से कम मध्यम या गंभीर रूप से बांधों के कारण कटाव का शिकार हुई है।

दूसरी ओर, केवल राजस्थान राज्य के अलवर और पड़ोसी जिलों में ही लगभग 7,00,000 लोग घरों में उपयोग, खेतों के पशु और फसलों के लिए भूजल तक बेहतर पहुँच के कारण लाभान्वित हुए। इस उपलब्धि के लिए एक भी परिवार को विस्थापित नहीं होना पड़ा। वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting) शहरी क्षेत्रों में भी प्रभावी है, जहाँ वर्षा के पानी को छतों पर इकट्ठा किया जा सकता है और टैंकों में चैनल के माध्यम से पहुँचाया जा सकता है।

जैसा कि हम जानते हैं, बांध महत्वपूर्ण हैं, लेकिन हाइड्रो-इलेक्ट्रिसिटी के कई विकल्प भी मौजूद हैं। पहला विकल्प है बिजली का अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग करना। तो फिर दुनिया की नदियों पर इतने अधिक बांध क्यों बनाए गए/निर्मित किए गए? जब बांधों की तुलना उनके विकल्पों से की जाती है, तो कभी भी निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा का मैदान नहीं रहा। यदि जल और ऊर्जा आवश्यकताओं के विकल्पों का मूल्यांकन व्यापक, पारदर्शी और सहभागी तरीके से किया जाए, तो बहुत कम बड़े बांध ही मानक पर खरे उतरेंगे। यह भी दर्शाता है कि एक बेहतर जल दुनिया संभव है। इस सूची में अन्य विभिन्न प्रभाव भी जोड़े जा सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि हमें अल्पकालिक लाभ और दीर्घकालिक हानियों में स्पष्ट अंतर करना चाहिए। यह अनिवार्य होना चाहिए कि इंजीनियर, जलविज्ञानी, सामाजिक वैज्ञानिक और अन्य पेशेवर समूह पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन में भाग लें और विकल्प अपनी भूमिका निभाएँ ताकि पर्यावरणीय प्रभावों का सही आकलन हो सके।

बांध, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कई दृष्टियों से योगदान देते हैं—जैसे सिंचाई, पीने के पानी की आपूर्ति, बाढ़ नियंत्रण, बिजली उत्पादन, मछली पालन और पर्यटन भी महत्वपूर्ण हैं। इसी दौरान, बांधों द्वारा निर्मित नया पर्यावरण विभिन्न प्रजातियों के क्षेत्र में आने का समर्थन भी करता है। बांध केवल आर्थिक विकास में ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक विकास में भी महत्वपूर्ण हैं। कई विकसित देशों में, बांधों ने पिछड़े क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमें बिजली चाहिए, हमें जलीय कृषि चाहिए, हमें कृषि चाहिए, हमें मनोरंजन चाहिए और हमें बाढ़ नियंत्रण चाहिए, लेकिन पर्यावरणीय (आवासीय विनाश, जल की गुणवत्ता में बदलाव, जलभराव, वनों की कटाई) और सामाजिक प्रभावों (गरीबी, पुनर्वास) की कीमत पर, वर्तमान परिदृश्य में बांधों को आवश्यक बुराई कहा जाता है।

हमें आर्थिक विकास पर ध्यान देना चाहिए, लेकिन दूसरी ओर हमें बांधों के नकारात्मक प्रभावों के बारे में भी सोचना चाहिए। बड़े बांध, उनके लाभ की तुलना में मानव के लिए निश्चित रूप से हानिकारक हैं। इसलिए, हमें छोटे बांधों का विकास करना चाहिए, जो समान रूप से लाभकारी हों और न्यूनतम हानि पहुँचाएँ।

# सारांश

इस इकाई में, हमने जल संसाधनों के विकास, बांधों और उनके सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभावों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की। अब तक आपने यह सीखा कि:

- जल विकास उन गतिविधियों का समूह है जो जल संसाधनों की योजना बनाने, उनका विकास करने, वितरण करने और उनका सर्वोत्तम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए की जाती हैं।
- जल संसाधन विकास के सामान्य तरीके हैं: मौसमी चेक बांध, अस्थायी चेक बांध/बांध, मिट्टी के बांध, लिफ्ट सिंचाई, खेतों में तालाब (फार्म पोंड), जलकुंड और समूह कुएँ।
- हाइड्रो-पावर विश्व स्तर पर बिजली उत्पादन का प्रमुख नवीनीकरणीय स्रोत है। यह सभी नवीनीकरणीय बिजली का 71% प्रदान करता है। 2016 में इसकी स्थापित क्षमता 1,064 GW थी, और इसने सभी स्रोतों से दुनिया की कुल बिजली का 16.4% उत्पन्न किया।
- 2015 में, वैश्विक स्थापित क्षमता में चीन का हिस्सा 26%, अमेरिका का 8.4%, ब्राजील का 7.6% और कनाडा का 6.5% था।
- विश्व के सबसे बड़े बांध: थ्री गॉर्जेस बांध, इटाई पू बांध, शीलुओदू बांध, गूरी बांध, टुकुरुई बांध, शिंगजियाबा बांध, ग्रांड कॉलियर बांध, लॉन्ग टैन बांध, क्रास्नोयार्स्क बांध और रॉबर्ट बोरेसा बांध।
- भारतीय नदियों पर 4,000 से अधिक बड़े बांध बनाए गए हैं। कुछ प्रमुख उदाहरण हैं: नगरजुना सागर बांध, मैथन बांध, टिलैया बांध, सरदार सरोवर बांध, भाकरा नागल बांध, तुंगभद्रा बांध, कृष्णराजसागर बांध, चेरोथोनी बांध, इंदिरा सागर बांध, कोयना बांध, हीराकुंड बांध (भारत का सबसे लंबा बांध), बीसलपुर बांध, भवानी सागर बांध, मैटूर बांध, तेहरी बांध (भारत का सबसे ऊँचा बांध) और रिहंद बांध।
- बांधों के विभिन्न सकारात्मक प्रभाव: स्वच्छ ऊर्जा, सिंचाई, जलीय कृषि, नौवहन, मनोरंजन, बाढ़ नियंत्रण, जल आपूर्ति, भूमि सुधार, आर्थिक विकास और रोजगार।
- सकारात्मक प्रभावों के अलावा, बांधों के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हैं: नदी के पारिस्थितिक प्रवाह को रोकना, भयंकर बाढ़ की संभावना बढ़ाना, मछलियों के प्रवास को रोकना, जलवायु परिवर्तन, जल की गुणवत्ता में परिवर्तन, जलभराव (Water Logging), सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव।

**टर्मिनल प्रश्न**

**(a) रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।**

बांध ठीक वैसे ही है जैसे एक .........., जो पानी के ...... को रोकता है, विशेषकर नालों और नदियों में। बांध केवल बाढ़ को रोकते ही नहीं हैं, बल्कि कई गतिविधियों के लिए पानी भी उपलब्ध कराते हैं, जैसे ............, आदि। सबसे पहला बांध...... में बनाया गया था और............. तक दुनिया में .......... बांध बने थे। वर्ल्ड कमीशन ऑन डैम रिपोर्ट-2000 के अनुसार, विश्व के 140 देशों में ......... बड़े बांध हैं। इनमें से, 22,000 बांध ........ में हैं, अमेरिका में ........., भारत में लगभग 4,291 बांध (विश्व के कुल का .........), जापान में लगभग ......... बांध और स्पेन में लगभग 100 बांध। अनुमान के अनुसार, विश्वभर में 160–320 नए बड़े बांध बनाए जा रहे हैं ताकि वर्षा जल को पकड़ने और जलाशयों में संग्रहीत करने के लिए

रनऑफ को रोका जा सके। हालांकि, बड़े बांध केवल कुछ विशेष क्षेत्रों में ही बनाए जा सकते हैं, क्योंकि इसके लिए स्थान, पानी और धन की आवश्यकता होती है। बांध का उद्देश्य भी देश के अनुसार भिन्न होता है; कुछ देश बांध ऊर्जा उत्पादन (HEP) के लिए बनाते हैं और कुछ सिंचाई के लिए। उदाहरण के लिए: यूरोप में अधिकांश बांध हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर (HEP) के लिए विकसित किए गए, जबकि अफ्रीका और एशिया में अधिकांश बांध सिंचाई के लिए विकसित किए गए। यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि बहुत कम बांध ही बाढ़ नियंत्रण में मदद करते हैं—बाढ़ नियंत्रण केवल तब ही संभव है जब बांध ………… में स्थित हों।

**2. (a)** जल संसाधन विकास के देशज (स्थानीय/प्राकृतिक) तरीकों पर चर्चा करें।

**(b)** वैश्विक स्तर पर बांधों का वर्णन करें।

**3. (a)** राष्ट्रीय स्तर पर बांधों का वर्णन करें।

**(b)** भारत के प्रमुख बांधों की सूची दें।

**4. (a)** बांधों के सकारात्मक प्रभावों के बारे में लिखें।

**5. (a)** बांधों के नकारात्मक प्रभाव क्या हैं, बताइए।

**(b)** बांधों के सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव का वर्णन करें।

© बांध को आवश्यक बुराई (Necessary Evil) क्यों कहा जाता है? स्पष्ट कीजिए।

**6 (a)** रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बांधों को "……………" कहा था। लेकिन, जैसा कि आप जानते हैं, बांधों के लाभ के साथ-साथ लागत भी होती है। "बांधों ने शहरी विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उस समय के इंफ्रास्ट्रक्चर का अहम हिस्सा रहे।" बड़े बांध कभी-कभी ……… का कारण भी बन सकते हैं (जलाशय के भारी वजन के कारण), ………… का उत्सर्जन कर सकते हैं (जलमग्न वनस्पति के सड़ने के कारण), ………… को नष्ट कर सकते हैं (क्योंकि ये नदी के माध्यम से समुद्र में जाने वाले ताजे पानी और पोषक तत्वों के प्रवाह को बाधित करते हैं) और तटीय कटाव का कारण बन सकते हैं (क्योंकि जलाशयों में जमा होने वाली तलछट पहले नदियों और मुहानों के माध्यम से समुद्र तक बहती थी और फिर लहरों द्वारा तटरेखा की सुरक्षा के लिए वापस धसी जाती थी)। बांध से संबंधित सबसे बड़ी आपदा चीन में देखी गई, जिसमें बांध के क्षतिग्रस्त होने के कारण लगभग ……… लोग मारे गए। वर्ल्ड कमीशन ऑन डैम्स के अनुसार, बांधों के कारण लगभग ……… लोग विस्थापित हुए हैं। आंकड़ों के अनुसार, दुनिया की बड़ी नदी प्रणालियों की लगभग 80% लंबाई कम से कम मध्यम या गंभीर रूप से बांधों के कारण कटाव का शिकार हुई है।

**(b)** थ्री गॉर्जेस बांध किस नदी पर निर्मित है? (यांग्त्ज़े नदी/पराना नदी/ जिनशा नदी/गंगा नदी)

**(c)** भारत का सबसे लंबा बांध कौन सा है? (हीराकुंड बांध/तेहरी बांध/सरदार सरोवर बांध / नगरजुना सागर बांध)

**(d)** रिहंद बांध कहाँ स्थित है? (राजस्थान/उत्तर प्रदेश/जम्मू और कश्मीर/ हिमाचल प्रदेश)

**(e)** तेहरी बांध किस नदी पर निर्मित है? (अलकनंदा/भागीरथी/सोंग/यमुना नदी)

**(f)** बांधों का मछलियों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

**7 (a)** भारत में विभिन्न राज्यों में बड़े बांधों के वितरण का ग्राफ़ प्रस्तुत करें।

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

**1 (a)** अवरोध, प्राकृतिक प्रवाह, जलविद्युत उत्पादन, 5000 बड़े बांध, 45000, चीन, 6390, 9%, 1200, हर साल, सिंचाई, जलविद्युत ऊर्जा का उत्पादन, निम्न स्तर

**2 (a)** अनुभाग 10.2 देखें, **(b)** अनुभाग 10.3 देखें,

**3(a)** अनुभाग 10.4 देखें, **(b)** अनुभाग 10.4 देखें, (तालिका-3)

**4 (a)** अनुभाग 10.5 देखें;

**5 (a)** अनुभाग 10.6 देखें, **(b)** अनुभाग 10.6 देखें, **(c)** अनुभाग 10.7 देखें

**6 (a)** भारत का मंदिर, भूकंप, ग्रीनहाउस गैसें, समुद्री मछली पालन, 2, 30,000, 40 to 80 million.

**(b)** यांग्त्ज़े नदी, **(c)** हीराकुंड बांध, **(d)** उत्तर प्रदेश **(e)** भागीरथी नदी

**(f)** अनुभाग 10.6 देखें (मछलियों के प्रवास को रोकना)

**7 (a)** अनुभाग 10.6 देखें (Fig-3)

# इकाई 11: जल संसाधन संरक्षण, जलग्रहण प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई: एक अध्ययन – पानी पंचायत

**इकाई संरचना**

**11.0 सीखने के उद्देश**
**11.1 परिचय**
**11.2 जल संसाधन संरक्षण**
**11.3 जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन**
**11.4 वर्षा जल संचयन**
**11.5 सूक्ष्म सिंचाई**
**11.6 प्रकरण अध्ययन – पानी पंचायत**
**सारांश**

## 11.0 सीखने के उद्देश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- जल संसाधन प्रबंधन क्या है?
- जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन क्या है?
- वर्षा जल संचयन क्या है?
- वर्षा जल संचयन के लाभ और हानियाँ
- सूक्ष्म सिंचाई क्या है?
- सूक्ष्म सिंचाई के तरीके
- सूक्ष्म सिंचाई का महत्व
- पानी पंचायत का अध्ययन के बारे में

## 11.1 परिचय

हमारे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक गंभीर मुद्दा है। जैसा कि आप जानते हैं, जल पृथ्वी का सबसे मूल्यवान संसाधन है और जीवन बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है। हम सभी जल संसाधनों, उनके उपयोग और जल संसाधन विकास के महत्व से अच्छी तरह परिचित हैं। सबसे पहले, यह मानवता की जिम्मेदारी है कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए जल संसाधनों को सुरक्षित रखें। इसके अलावा, यह उपयोग की गई ऊर्जा के स्तर को कम करने में भी मदद करता है, क्योंकि जल प्रबंधन में बड़ी मात्रा में बिजली की खपत होती है। निष्कर्षत, जल विभिन्न वन्यजीवों के लिए आवास का कार्य करता है। इसलिए, विश्व समुदाय जल संसाधनों के पूर्ण विनाश को रोकने का प्रयास करता है। जैसा कि आपने यूनिट-9 और यूनिट-10

में जल संसाधनों, उनके महत्व और जल संसाधन विकास के बारे में सीखा है, इन इकाइयों में हमने जल संसाधनों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। जल संसाधन तेजी से घट रहे हैं। जनसंख्या विस्फोट के कारण जल की मांग भी बढ़ रही है। वनों की कटाई, ठोस कचरे का डंपिंग, कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, खनन आदि जैसे मानवजनित गतिविधियाँ जल संसाधनों के क्षरण के जिम्मेदार हैं। दुनिया की विभिन्न नदियों के जल गुणवत्ता डेटा से यह स्पष्ट होता है कि मानवजनित गतिविधियाँ निश्चित रूप से जल संसाधनों के क्षरण की मुख्य वजह हैं। यहां तक कि हमारे महासागर भी ठोस कचरे के डंपिंग के कारण घट रहे हैं। उद्योग अपने अपशिष्ट सीधे जल निकायों में छोड़ते हैं, जो गंभीर जल प्रदूषण का कारण बनता है। घरेलू सीवेज भारत में जल प्रदूषण का एक सबसे बड़ा स्रोत है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, भारत के 3,119 नगरों में से केवल 209 नगरों में आंशिक सीवेज उपचार प्रणाली है और केवल 8 नगरों और शहरों में पूरी तरह से सीवेज उपचार सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

मानव गतिविधियाँ जल को उपयोग के लिए अनुपयुक्त बना देती हैं। जल केवल मानव के लिए ही उपयोगी नहीं है, बल्कि यह लाखों प्रजातियों का आवास भी है। जल संसाधनों के क्षरण के कारण कई जलीय प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्ति की कगार पर हैं। इसलिए, इस अमूल्य संसाधन का संरक्षण करना हमारी जिम्मेदारी है। जल संसाधनों का संरक्षण आने वाली पीढ़ियों के लिए जल बचाने में मदद कर सकता है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है, जल आपूर्ति पर और अधिक दबाव पड़ेगा, ताकि मानव उपभोग, खाद्य और चारे का उत्पादन, निर्माण और मनोरंजन जैसी गतिविधियों के लिए जल उपलब्ध कराया जा सके। जल संसाधनों को संरक्षित करने के लिए हमें यह याद रखना चाहिए कि जल सबसे मूल्यवान और सीमित संसाधन है। इस इकाई में, आप जल संसाधन संरक्षण की विभिन्न तकनीकों के बारे में सीखेंगे, जैसे जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई, पानी पंचायत की संकल्पना।

## 11.2 जल संसाधन संरक्षण

जल भूमि/मिट्टी की उपजाऊ क्षमता का अभिन्न हिस्सा है। जल संरक्षण और जल प्रबंधन के विभिन्न तरीके हैं, जैसे जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई आदि। जैसा कि आप जानते हैं, जल केवल जीवन बनाए रखने के लिए ही आवश्यक नहीं है, बल्कि पर्यावरण तंत्र, आर्थिक विकास, समुदाय की भलाई और सांस्कृतिक मूल्यों का समर्थन करने के लिए भी महत्वपूर्ण है। इसलिए, आने वाली पीढ़ियों के लिए जल संसाधनों का संरक्षण करना आवश्यक है। जैसा कि आप जानते हैं, ताजे पानी की मात्रा सीमित है और यह विश्व में असमान रूप से वितरित है। किसी स्थान पर उपयोग के लिए उपलब्ध जल समान नहीं होता, बल्कि समय के साथ प्राकृतिक और मानवजनित गतिविधियों के कारण व्यापक रूप से बदलता रहता है (चित्र-1)।

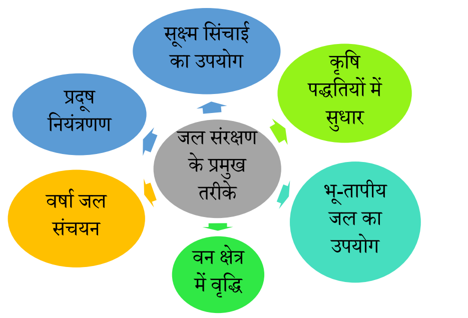

चित्र-1: जल संरक्षण के विभिन्न तरीके

इस माप के अनुसार, जनसंख्या में किसी भी वृद्धि से प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता में कमी होगी, जिसे आमतौर पर नकारात्मक माना जाता है। सतत जल उपयोग की बेहतर परिभाषा यह है कि किसी विशेष समूह

को जल से मिलने वाले लाभों का वांछित प्रवाह समय के साथ अक्षुण्ण रखा जाए। वर्ल्ड कमीशन ऑन एन्वायरनमेंट एंड डेवलपमेंट (1987) के अनुसार, मानवता में यह क्षमता है कि वह विकास को सतत बनाए ताकि वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके बिना यह सुनिश्चित किए कि भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता प्रभावित हो। जल द्वारा प्रदान किए जाने वाले वांछित लाभ सभी उपयोगकर्ताओं के लिए या समय के विभिन्न कालखंडों में समान होने की आवश्यकता नहीं है और संभावना भी कम है। वास्तव में, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और तकनीकी भिन्नताओं के कारण ऐसे लाभ व्यापक रूप से भिन्न होते हैं। लेकिन सततता पर किसी भी वास्तविक चर्चा में, प्रदान किए जाने वाले लाभों का स्पष्ट मूल्यांकन होना आवश्यक है। इस परिभाषा के अनुसार, यदि जल संसाधनों द्वारा प्रदान किए गए और समाज द्वारा वांछित लाभ समय के साथ घटते हैं, तो जल उपयोग असतत माना जाएगा। समानता की आवश्यकता यह भी मांगती है कि यदि किसी उपयोगकर्ता समूह को समय के साथ सेवाओं में कमी का सामना करना पड़ता है, तो इसे भी असतत घोषित किया जाए, भले ही अन्य उपयोगकर्ता अपनी वांछित सेवाओं को बनाए रखने में सक्षम हों।

जल संसाधनों के संरक्षण के लिए विभिन्न संरक्षणात्मक रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं, जिनमें वर्षा जल संचयन, कृषि प्रथाओं में सुधार, भू-ऊष्मीय जल का उपयोग, वन आवरण में वृद्धि, पारंपरिक जल संसाधनों का नवीनीकरण, सूक्ष्म सिंचाई, जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन आदि शामिल हैं। आज जल संरक्षण विश्व स्तर पर एक बहुत बड़ा चुनौतीपूर्ण मुद्दा बन गया है, क्योंकि जल की कमी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। जल संसाधन का संरक्षण वैश्विक स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक है, क्योंकि जल की मांग अत्यधिक बढ़ रही है। हम अपने व्यक्तिगत स्तर पर भी जल संसाधनों का संरक्षण कर सकते हैं। क्योंकि हमारे दैनिक आवश्यकताओं में जल का एक बड़ा प्रतिशत उपयोग होता है। हमारे बाथरूम, शौचालय, रसोई आदि में अत्यधिक जल का उपयोग होता है। जल उपयोग को कम करने के लिए हमारे घरों में टॉयलेट डैम, जल बचाने वाले शावर, नलों के एरिएटर जैसी विभिन्न पर्यावरण मैत्री उपकरण उपलब्ध हैं। हमारी जीवनशैली भी अतिरिक्त जल उपयोग की जिम्मेदार है; इसलिए हमें अपने दैनिक जीवनशैली में बदलाव करना चाहिए ताकि जल उपयोग कम किया जा सके। इन छोटे-छोटे उपायों के माध्यम से, हम स्थानीय स्तर पर बड़ी मात्रा में जल संसाधनों का संरक्षण कर सकते हैं।

असतत जल उपयोग दो तरीकों से उत्पन्न हो सकता है:

1. जल के भंडार और प्रवाह में परिवर्तन के माध्यम से, जो स्थान या समय के अनुसार इसकी उपलब्धता को बदल देता है।
2. संसाधन द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभों की मांग में परिवर्तन के माध्यम से, जो जीवन स्तर, तकनीक, जनसंख्या स्तर या सामाजिक तरीके बदलने के कारण उत्पन्न होता है।

जल संसाधनों का संरक्षण सततता पर आधारित है। जल की सततता के कुछ मानदंड और लक्ष्य होते हैं। ये मानदंड और लक्ष्य शैक्षणिक, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के साथ व्यापक संवाद और विश्लेषण का परिणाम हैं, जो क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय जल समस्याओं पर काम कर रहे हैं। ये स्वयं में कार्रवाई के लिए सिफारिशें नहीं हैं, बल्कि नीतिगत बिंदु हैं ये विशेष सामाजिक लक्ष्यों को रेखांकित करते हैं जिन्हें पूरा किया जा सकता है या किया जाना चाहिए। विशेष रूप से, ये मानदंड भविष्य के जल प्रबंधन और संरक्षण के लिए वैकल्पिक "दृष्टिकोण" प्रदान कर सकते हैं। निम्नलिखित विभिन्न सततता मानदंड हैं।

जल संसाधनों का संरक्षण सततता पर आधारित है। जल की सततता के कुछ मानदंड और लक्ष्य होते हैं। ये मानदंड और लक्ष्य शैक्षणिक, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के साथ व्यापक संवाद और विश्लेषण का परिणाम हैं, जो क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय जल समस्याओं पर काम कर रहे हैं। ये स्वयं में कार्रवाई के लिए सिफारिशें नहीं हैं, बल्कि नीतिगत बिंदु हैं ये विशेष सामाजिक लक्ष्यों को रेखांकित करते हैं जिन्हें पूरा किया जा सकता है या किया जाना चाहिए। विशेष रूप से, ये मानदंड भविष्य के जल प्रबंधन और संरक्षण के लिए वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं। जल सततता के विभिन्न मानदंड निम्नलिखित हैं:

- सभी मानवों के लिए न्यूनतम जल आवश्यकता सुनिश्चित की जाएगी ताकि मानव स्वास्थ्य बनाए रखा जा सके।
- पर्यावरण तंत्र के स्वास्थ्य को पुनर्स्थापित और बनाए रखने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध कराया जाएगा। विशेष मात्रा जलवायु और अन्य परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होगी। इन मात्राओं को निर्धारित करने के लिए लचीला और गतिशील प्रबंधन आवश्यक होगा।
- जल की गुणवत्ता को बनाए रखा जाएगा ताकि यह न्यूनतम मानकों को पूरा करे। ये मानक स्थान और जल उपयोग के अनुसार भिन्न होंगे।
- मानव क्रियाएँ ताजे जल के भंडार और प्रवाह की दीर्घकालिक नवीनीकरण क्षमता को प्रभावित नहीं करेंगी।
- जल संसाधनों की उपलब्धता, उपयोग और गुणवत्ता का डेटा एकत्रित किया जाएगा और सभी संबंधित पक्षों के लिए उपलब्ध कराया जाएगा।
- जल विवादों को रोकने और हल करने के लिए संस्थागत तंत्र स्थापित किए जाएंगे।
- जल योजना और निर्णय लेने की प्रक्रिया लोकतांत्रिक होगी, जिसमें सभी प्रभावित हितधारकों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाएगा।

## 11.3 जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन

शाब्दिक अर्थ में, जलग्रहण क्षेत्र का मतलब सीमा होता है। सभी जलीय जलाशयों का अपना एक जलग्रहण क्षेत्र होता है। जलग्रहण क्षेत्र वह भूमि क्षेत्र है जो जल को जलाशयों (जैसे झील, नदी, नाले, तालाब आदि) में बहाता है। “Watershed” शब्द 1920 में पेश किया गया था और इसे सीमाओं के संदर्भ में प्रयोग किया गया। एक जलग्रहण क्षेत्र वह भूमि क्षेत्र है जिसे जल निकासी द्वारा सीमांकित किया गया हो। जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन तकनीक आमतौर पर उन क्षेत्रों में उपयोग की जाती है जहाँ वर्षा अधिक होती है। जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन शब्द जल संसाधनों की सुरक्षा/संरक्षण/सहेजने के लिए जल उपयोग विधियों को लागू करने की प्रक्रिया को दर्शाता है।

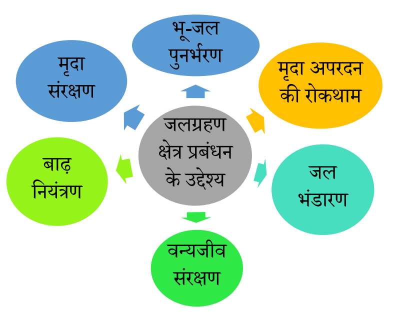


चित्र-2: जल संचयन प्रबंधन के उद्देश्य

जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन के उद्देश्य/लक्ष्य: जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन के विभिन्न उद्देश्य/लक्ष्य होते हैं, जिन्हें चित्र-2 में संक्षेप में दर्शाया गया है।

जलग्रहण क्षेत्रों के प्रकार: आकार, आकृति, जल निकासी और भूमि उपयोग पैटर्न के आधार पर जलग्रहण क्षेत्र निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

- Macro watershed (मैक्रो जलग्रहण क्षेत्र): 1,000 – 10,000 हेक्टेयर
- Micro watershed (सूक्ष्म जलग्रहण क्षेत्र): 100 – 1,000 हेक्टेयर
- Mini watershed (मिनी जलग्रहण क्षेत्र): 10 – 100 हेक्टेयर
- Mille watershed (मिली जलग्रहण क्षेत्र): 1 – 10 हेक्टेयर

जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन का महत्व: जैसा कि आप जानते हैं, रनऑफ का अर्थ है पानी का बहकर निकलना। वर्षा, कृषि भूमि और ग्लेशियर से आने वाला विभिन्न प्रकार का रनऑफ झीलों, नदियों, तालाबों और अन्य जलीय जलाशयों में जल प्रदूषण का कारण बन सकता है। जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन जलीय जलाशयों में प्रदूषण को नियंत्रित करने में मदद करता है। यह प्रबंधन विभिन्न गतिविधियों की पहचान करता है, जैसे बागवानी, सेप्टिक टैंक से जल का छोड़ा जाना, कृषि रनऑफ ये सभी गतिविधियाँ जलग्रहण क्षेत्र के जल गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन इन गतिविधियों के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए सिफारिशें करता है। इसलिए, प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों को न्यूनतम किया जा सकता है। जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन उन क्षेत्रों में भी प्रभावी है जहाँ जल संसाधन सीमित हैं। यह भूमि, जल और वनस्पति की सुरक्षा भी कर सकता है।

जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन में चरण: जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन में मुख्य रूप से चार चरण होते हैं: पहचान चरण, पुनर्स्थापना चरण, सुरक्षा चरण, सुधार चरण। इन चार चरणों का विवरण निम्नलिखित है:

1. **पहचान चरण (Recognition Phase):** पहचान चरण में तीन महत्वपूर्ण कदम शामिल होते हैं:

i) **समस्याओं की पहचान (Recognition of Problems):** इस चरण में जलग्रहण क्षेत्र की समस्याओं की पहचान की जाती है। ये समस्याएँ कृषि रनऑफ से कीटनाशकों का प्रवेश या उद्योगों से प्रदूषकों का प्रवेश जैसी हो सकती हैं।

ii) **समस्या और उसके प्रभाव की निगरानी (Monitoring of Course of Problem and Its Impact):** इस चरण में जलग्रहण क्षेत्र का विश्लेषण और निगरानी पर जोर दिया जाता है। निगरानी के माध्यम से, हम यह पहचान सकते हैं कि जलग्रहण क्षेत्र और उसके आसपास विषैले रसायनों की उपस्थिति या अनुपस्थिति है या नहीं।

iii) **समस्याओं के वैकल्पिक समाधान का कार्यान्वयन (Implementation of Alternative Solution of Problems):** इस चरण में संबंधित समस्याओं के हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए सुधारात्मक उपाय लागू किए जाते हैं।

2. **पुनर्स्थापना चरण (Restoration Phase):** इस चरण में दो मुख्य कदम शामिल होते हैं:

(i) पहचान के लिए सर्वोत्तम मिट्टी का चयन (Select Best Soil for Identification): जलग्रहण क्षेत्र के लिए सबसे उपयुक्त मिट्टी का चयन किया जाता है।

(ii) समस्या के लिए उचित समाधान का भूमि पर प्रयोग (Apply Appropriate Solution for the Problem to Land): भूमि पर समस्या के समाधान के लिए उचित उपाय लागू किए जाते हैं।

3. **सुरक्षा चरण (Protection Phase):** इस चरण में आमतौर पर जलग्रहण क्षेत्र के स्वास्थ्य (जल गुणवत्ता) की सुरक्षा की जाती है और यह सुनिश्चित किया जाता है कि जलग्रहण क्षेत्र का सामान्य कार्य संचालन ठीक से हो। जलग्रहण क्षेत्र के सामान्य कार्य संचालन में शामिल हैं:

जल गुणवत्ता और अन्य अजैविक कारक

वनस्पति आवरण आदि

4. **सुधार चरण (Improvement Phase):** यह चरण जलग्रहण क्षेत्र के संपूर्ण सुधार पर जोर देता है। इस चरण में आमतौर पर कृषि, वन भूमि और सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। साथ ही, इस चरण में सामाजिक-आर्थिक स्थिति को भी ध्यान में रखा जाता है।

**जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन से संबंधित कार्यक्रम:**

**1) सूखा प्रवण क्षेत्रों का कार्यक्रम:** यह कार्यक्रम केंद्र सरकार (ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय) द्वारा 1973-74 में विशेष सूखा संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए शुरू किया गया था। यह कार्यक्रम भारत के गरम रेगिस्तानी क्षेत्रों (राजस्थान, हरियाणा), जम्मू और कश्मीर के शीत रेगिस्तान सहित लद्दाख, हिमाचल प्रदेश और गुजरात के लिए शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य पर्यावरणीय संतुलन (Ecological Balance) बनाए रखना है। यह कार्यक्रम जल, भूमि, पशुधन का उचित उपयोग और सूखे के प्रभाव को कम करने पर भी केंद्रित था।

**2) बारानी कृषि के लिए राष्ट्रीय जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम:** यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय द्वारा 1986-87 में शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य भूमि की उत्पादकता बढ़ाना और फलों, खाद्य, चारा और ईंधन संसाधनों का उत्पादन बढ़ाना है। यह कार्यक्रम जलग्रहण क्षेत्र के आधार पर जल संसाधनों के संरक्षण और उपयोग पर भी केंद्रित है।

## 11.4 वर्षा जल संचयन

**वर्षा जल संचयन:** वर्षा जल संचयन को परिभाषित किया जाता है कि वर्षा के पानी को एकत्रित करना और इसे विभिन्न उपयोगों के लिए अलग-अलग पात्रों में संग्रहित करना। जैसा कि आप जानते हैं, वर्षा जल सतही और भूजल का प्राथमिक स्रोत है। वर्षा धरती पर गिर सकती है, लेकिन वर्षा जल का सही उपयोग करना कठिन होता है क्योंकि यह अस्थिर और अनिश्चित होता है।

वर्षा जल संचयन एक तकनीक है जिसका उपयोग वर्षा के पानी को संग्रहित और सुरक्षित करने के लिए किया जाता है। इसे विभिन्न साधनों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के लिए संग्रहित किया जा सकता है, जैसे: पशुपालन, पेयजल, सिंचाई आदि। वर्षा का पानी कृत्रिम टैंकों में इकट्ठा किया जा सकता है। छत से संचयन भी वर्षा जल संग्रह का एक तरीका है।

वर्षा जल संचयन उन समुदायों के लिए उपयोगी है जो कम वर्षा वाले क्षेत्रों में रहते हैं। वे संग्रहित वर्षा जल का उपयोग करके जल संकट की स्थिति में भी मौसमी फसल की कटाई जारी रख सकते हैं। वर्षा जल संचयन का अर्थ वर्षा के पानी का संग्रह और भंडारण भी है, ताकि इसे बाद में उपयोग किया जा सके। जैसे ही वर्षा होती है, पानी को संग्रहण के उपयुक्त स्थान पर प्रवाहित किया जाता है। वर्षा जल संचयन एक पुरानी प्रथा है। अंतर यह है कि अब जल की मांग बहुत अधिक है, इसलिए वर्षा जल संचयन विशेष रूप से सूखे महीनों में जल की

आपूर्ति सुनिश्चित करता है। आधुनिक तकनीकों ने इस प्रक्रिया को स्थापित किया है और अब इसे सरल और अधिक कुशल बनाया जा रहा है।

विधियाँ वर्षा जल संचयन के लिए विभिन्न विधियाँ उपलब्ध हैं:

- वर्षा जल को भंडारण टैंक या सतह के नीचे संग्रहित किया जा सकता है। इस संग्रहित जल को अंततः पाइपों की मदद से आवश्यक स्थानों तक पहुँचाया जाता है।
- वर्षा जल को संचालित और साफ पात्रों में इकट्ठा किया जा सकता है, जिसे आपात स्थिति में विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।
- वर्षा जल संचयन के कई तरीके हैं। ये विधियाँ व्यावसायिक गतिविधियों के लिए बहुत प्रभावी होती हैं, जबकि कुछ विधियाँ केवल घरेलू उपयोग के लिए उपयुक्त होती हैं। सामान्य वर्षा जल संचयन विधियाँ निम्नलिखित हैं:

**1. सतही जल संचयन प्रणाली (Surface Water Collection Systems):** जैसा कि आप जानते हैं, सतही जल (Surface Water) पृथ्वी की सतह के ऊपर पाया जाता है। जब वर्षा होती है, तो यह सामान्यतः ढलानों के नीचे बहती है और किसी नीचले स्थान की ओर चली जाती है। सतही जल संचयन प्रणाली वर्षा जल को अन्य क्षेत्रों में बहने से पहले संग्रहित करने की अनुमति देती है। सतही जल संचयन प्रणालियों के उदाहरण हैं नदियाँ, तालाब, कुएँ। इन प्रणालियों में जल को पाइपों की मदद से निर्देशित किया जा सकता है। यह संग्रहित जल विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

**2) छत संचयन प्रणाली (Rooftop System):** यह तकनीक बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हर घर वर्षा जल को इस विधि से संग्रहित कर सकता है। छत संचयन प्रणाली वर्षा जल संचयन की सबसे स्वीकृत विधियों में से एक है क्योंकि संग्रहित जल स्वच्छ, शुद्ध होता है और मानव उपयोग के लिए इसे शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। इस विधि में, घर, स्कूल या किसी भी भवन की छत पर सीमेंट का टैंक बनाया जाता है। वर्षा जल को पाइपों की मदद से दूसरे टैंक में संग्रहित किया जाता है। दूसरा टैंक भूमि के नीचे बनाया जाता है ताकि वर्षा जल को पर्याप्त मात्रा में संग्रहित किया जा सके।

**3) बांध (Dams):** जैसा कि आप जानते हैं, बांध ऐसे अवरोध हैं जिन्हें जल संग्रहित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। वर्षा जल सीधे इन बांधों में संग्रहित हो सकता है। बांध में संग्रहित जल का अधिकांश भाग सिंचाई (Irrigation) के लिए उपयोग किया जाता है और उपचार के बाद घरेलू उपयोग के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। बांधों की निर्माण विधि के कारण यह अधिक मात्रा में वर्षा जल संचयन के लिए भी उपयोगी हैं।

**4) भू-तल के नीचे टैंक (Underground Tanks):** भू-तल के नीचे टैंक भी वर्षा जल संग्रह और भंडारण के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन टैंकों को भूमि में खोदकर और फिर सीमेंट से सुरक्षित किया जाता है ताकि जल का रिसाव कम किया जा सके। टैंक का शीर्ष भाग भी संपूर्ण रूप से सील किया जाता है। यह विधि मूल्यवान इसलिए भी है क्योंकि इन टैंकों में वाष्पीकरण की दर बहुत कम होती है, क्योंकि ये टैंक सतह के नीचे स्थित होते हैं जहाँ सूरज की रोशनी अच्छी तरह नहीं पहुँचती।

**5) रेन सॉसर (Rain Saucer):** यह तकनीक उन स्थानों पर लागू होती है जहाँ छत संचयन (Rooftop) उपयुक्त या संभव नहीं है।

रेन सॉसर छाता जैसी आकृति के होते हैं। ये आमतौर पर पाइपों से जुड़े होते हैं, जहाँ वर्षा जल इकट्ठा किया जाता है। रेन सॉसर छत संचयन विधियों की तुलना में बड़े क्षेत्र को कवर करते हैं।

**6) जल संग्रह भंडार (Water Collection Reservoirs):** यह विधि पूरी तरह सुरक्षित नहीं है और इस तरीके से संग्रहित वर्षा जल प्रदूषित हो सकता है। हालांकि, इस जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सकता है। इस विधि में सड़कों या फुटपाथ से वर्षा जल संग्रहित किया जाता है।

**7) बैराज (Barrage):** इस विधि में एक ऐसा बांध होता है जिसमें कई खुलने और बंद होने वाले छिद्र होते हैं, जिससे इसके माध्यम से बहने वाले जल को नियंत्रित किया जा सकता है। यह आमतौर पर बड़ा होता है और पर्याप्त मात्रा में जल संग्रहित करने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

**8) ढलान (Slopes):** इस विधि में जब वर्षा जल भूमि पर बहता है तो यह ढलानों के आधार पर इकट्ठा हो जाता है। जब भारी वर्षा होती है, तो जल का स्तर पहाड़ी की चोटी तक बढ़ सकता है। यह विधि वर्षा जल संचयन का सरल और प्राकृतिक तरीका है।

**9) खाइयाँ (Trenches):** इस विधि में वर्षा जल को खाइयों के माध्यम से कृषि भूमि तक पहुँचाया जाता है। यह वर्षा जल संचयन की सबसे अच्छी पारंपरिक विधियों में से एक है और आज भी व्यापक रूप से उपयोग की जाती है।

**10) वर्षा जल बैरल (Rain Barrels):** वर्षा जल संग्रह के लिए वर्षा जल बैरल का भी उपयोग किया जाता है। ये विशेष रूप से जल संग्रह के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं और दुकानों से खरीदे जा सकते हैं। ये बैरल छतों पर गिरने वाले वर्षा जल के संग्रह के लिए उपयोग किए जाते हैं।

**वर्षा जल संचयन के लाभ:** जैसा कि आप जानते हैं, वर्षा जल में अल्पतम अशुद्धियाँ (Minimum Impurities) होती हैं; इसलिए इसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है। वर्षा जल संचयन के कई लाभ हैं, जिन्हें चित्र-4 में संक्षेपित किया गया है और नीचे चर्चा की गई है।

**घरेलू उपयोग के लिए जल (Water for Domestic Use):** वर्षा जल संचयन इस लिए लाभकारी है क्योंकि यह घरेलू उपयोग के लिए जल का स्रोत प्रदान करता है। संग्रहित जल का उपयोग सफाई, धुलाई और खाना पकाने में किया जा सकता है। उपचार के बाद, वर्षा जल पेयजल के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। यह घरों में जल प्राप्त करने का सबसे सरल तरीका है। वर्षा जल का उपयोग शौचालय में किया जा सकता है, जिससे पेयजल की बचत होती है, जो केवल खाना पकाने और पीने के लिए उपयोग किया जाता।

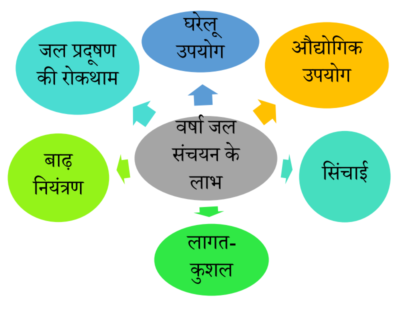

चित्र-4: वर्षा जल संचयन के लाभ

**औद्योगिक उपयोग के लिए जल (Water for Industrial Use):** विभिन्न उद्योग भी वर्षा जल संचयन पर ध्यान दे सकते हैं और इसे विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं में उपयोग कर सकते हैं। औद्योगिक उपयोग के लिए वर्षा जल सामान्यतः बड़े पैमाने पर संग्रहित किया जाता है। ऐसे उद्योग अपने स्वयं के बांध या भूमिगत टैंक विकसित कर सकते हैं ताकि वर्षा जल संग्रहित किया जा सके। औद्योगिक उद्देश्यों के लिए वर्षा जल संचयन विशेष रूप से बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए।

**पूरक जल स्रोत (Supplementary Water Source):** जैसा कि आप जानते हैं, विभिन्न क्षेत्रों में जल संकट विशेष रूप से सूखे या गर्मी के मौसम में होता है। यह संकट अपर्याप्त वर्षा और उच्च वाष्पीकरण दर के कारण उत्पन्न होता है। सूखे के दौरान जल स्रोत प्राप्त करना कठिन हो सकता है। जल की मांग बढ़ने के कारण जल की कीमतें भी बढ़ जाती हैं। इसलिए, वर्षा जल संचयन को सूखे के मौसम के लिए तैयारी करने का एक तरीका माना जाता है।

**सिंचाई (Irrigation):** जैसा कि आप जानते हैं, भारत की कृषि पूरी तरह वर्षा जल पर निर्भर है। जब वर्षा सामान्यतः कम होती है, तो इसका सीधा प्रभाव फसलों की उत्पादन दर पर पड़ता है। वर्षा जल संचयन कृषि के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वर्षा जल संग्रहित होने के बाद इसे विशेष रूप से सूखे के मौसम में उपयोग किया जा सकता है। इससे किसानों को बेहतर उत्पादन प्राप्त करने में मदद मिलती है।

**लागत-कुशल (Cost Effective):** वर्षा विश्व के हर हिस्से में होती है। जैसा कि आप जानते हैं, यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया और प्रकृति का उपहार है। यदि हम बरसात के मौसम में पर्याप्त जल संग्रहित कर लें, तो हमें बाद में जल के लिए भुगतान करने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि हमारे पास पूरे गर्मी के मौसम में पर्याप्त जल भंडार उपलब्ध रहेगा। वर्षा जल संचयन हमारे पैसे और जल पर होने वाले खर्च की बचत करता है।

**संग्रहित जल का विश्वसनीय प्रवाह (Reliable Flow of Harvested Water):** हालांकि वर्षा जल संचयन वर्षा या वर्षा की मात्रा पर निर्भर करता है, लेकिन एक बार वर्षा जल संग्रहित हो जाने पर, जल की आपूर्ति सुनिश्चित हो जाती है। वर्षा जल संचयन तकनीक से संग्रहण स्थल से निरंतर और विश्वसनीय जल प्रवाह प्रदान किया जा सकता है, जब तक कि संग्रहित जल समाप्त न हो जाए।

**बाढ़ के प्रभावों को कम करना (Mitigates/Reduces the Impacts of Floods):** वर्षा जल संचयन बाढ़ के प्रभावों को कम करने या नियंत्रित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब वर्षा जल खाइयों (Trenches) के माध्यम से कृषि भूमि में पहुँचता है, तो हम वर्षा जल संचयन तकनीक के माध्यम से इसके प्रवाह को नियंत्रित कर सकते हैं। वर्षा जल संचयन तकनीक किसी क्षेत्र में बाढ़ को रोकती है। जैसा कि आप जानते हैं, बाढ़ के हानिकारक प्रभाव बहुत खतरनाक, महंगे और बड़े पैमाने पर होते हैं। इसलिए, वर्षा जल संचयन तकनीक किसी क्षेत्र में बाढ़ के प्रभावों को कम करने का एक प्रभावी और उचित तरीका है।

**अवसंरचना निर्माण में उपयोग (Construction of Infrastructure):** वर्षा जल संचयन (RWH) निर्माण गतिविधियों में भी उपयोग किया जा सकता है। जैसा कि आप जानते हैं, निर्माण कार्यों में बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है। वर्षा जल संचयन इन गतिविधियों के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।

**सावधानियाँ (Precautions):** वर्षा जल संचयन एक महत्वपूर्ण तकनीक है जो वर्षा जल को संग्रहित और सुरक्षित करने में मदद करती है। हालांकि, वर्षा जल संचयन के दौरान निम्नलिखित सावधानियाँ अपनाना आवश्यक है:

- वर्षा जल को पूर्व-फ़िल्टर (Pre-filter) किया जाना चाहिए ताकि अशुद्धियाँ/प्रदूषण हटाया जा सके और जल सुरक्षित हो।
- पेयजल के रूप में उपयोग करने से पहले वर्षा जल को उबालकर किसी भी रोगाणु को नष्ट किया जाना चाहिए।

- वर्षा जल को संग्रहण पात्रों में इकट्ठा किया जाना चाहिए। ये पात्र किसी भी विषैले पदार्थ या रसायन से मुक्त होने चाहिए।
- वर्षा शुरू होने से पहले संग्रहण बिंदुओं की पहचान कर लें। वर्षा जल संचयन आमतौर पर मानसून के दौरान किया जाता है, और इस मौसम में कई रोग फैलने की संभावना होती है। इसलिए, ताजे वर्षा जल का पीने के लिए उपयोग न करें।

**वर्षा जल संचयन की हानियाँ:** वर्षा जल संचयन के कई लाभों के अलावा, इसके कुछ हानिकारक पक्ष भी हैं, जिनकी नीचे चर्चा की गई है:

1) अतिरिक्त खर्च (Extra Expenditure): वर्षा जल संचयन के लिए अतिरिक्त खर्च की आवश्यकता होती है। वर्षा जल का उपचार (Treatment) भी अतिरिक्त लागत मांगता है। जब हम नगरपालिका द्वारा प्रदत्त जल का उपयोग करते हैं, तब यह खर्च आवश्यक नहीं होता। वर्षा जल संचयन विधि में भंडारों की सफाई और रख-रखाव के लिए अतिरिक्त खर्च की आवश्यकता होती है। भूमिगत जल टैंक का रख-रखाव और सफाई आसान काम नहीं है, और बांध का रख-रखाव भी बहुत महंगा होता है। इस अतिरिक्त खर्च के कारण वर्षा जल संचयन का विचार कम आकर्षक प्रतीत होता है।

2) बड़ी मेहनत और संसाधनों की आवश्यकता (Required Huge Efforts and Resources): बांध और भूमिगत टैंक का निर्माण आसान काम नहीं है। जब हम वर्षा जल संचयन शुरू करते हैं, तो हमें संसाधनों की महत्वपूर्ण मात्रा खर्च करनी होगी। हालांकि, कुछ सस्ते विकल्प भी उपलब्ध हैं, लेकिन ये पर्याप्त मात्रा में वर्षा जल संग्रहित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

3) वर्षा पर निर्भरता (Depend on Rainfall): जैसा कि आप जानते हैं, वर्षा जल संचयन पूरी तरह वर्षा पर निर्भर करता है। इसलिए, यह विधि अविश्वसनीय है और केवल वर्षा के समय ही संभव है।

4) सीमित भंडारण (Limited Storage): वर्षा जल संचयन में हम केवल सीमित मात्रा में जल संग्रहित कर सकते हैं। यदि वर्षा तीन महीनों तक भी हो, तो हम सभी जल को संग्रहित नहीं कर सकते, क्योंकि भंडारण क्षमता सीमित होती है।

5) प्रदूषण का जोखिम (Risk of Contamination): वर्षा जल यदि सावधानीपूर्वक संग्रहित और संरक्षित न किया जाए, तो यह प्रदूषित हो सकता है। प्रदूषित जल विभिन्न बीमारियों का कारण बन सकता है, विशेष रूप से जब इसका उपयोग उपचार के बिना किया जाए। जैसा कि आप जानते हैं, जलजनित रोगों का उपचार बहुत महंगा होता है। कुछ घरों की छतों पर रासायनिक पदार्थ और संदूषक हो सकते हैं, जो वर्षा जल में मिल सकते हैं। ऐसा जल पीने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके अलावा, विभिन्न औद्योगिक गतिविधियाँ (विशेषकर $NO_2$ और $SO_2$ के उत्सर्जन के कारण) अम्लीय वर्षा (Acid Rain) का कारण बनती हैं। अम्लीय वर्षा जल का संग्रहण और उपयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इसे सिंचाई में उपयोग करने से फसलों की मृत्यु भी हो सकती है, क्योंकि यह मिट्टी को क्षार करती है और पौधों के विकास के लिए अअनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करती है।

6) वन्यजीवन के लिए जल की कमी (Lack of Water for Wildlife): जैसा कि आप जानते हैं, जंगली जानवर प्राकृतिक स्रोतों जैसे नदियाँ, धाराएँ, तालाब आदि से जल पीते हैं और गर्म मौसम में शीतलन के

लिए भी इन जल स्रोतों का उपयोग करते हैं। वर्षा जल संचयन इन जल स्रोतों में जल की मात्रा को कम कर देता है। इसलिए, कई जंगली जानवर जल की कमी के कारण मर सकते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, वर्षा एक महत्वपूर्ण मौसमीय घटना है। यह सतही और भूजल स्रोतों का प्रमुख स्रोत है और फसलों की वृद्धि, भूजल का पुनर्भरण आदि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्षा जल संचयन (RWH) एक प्रथा है, जिसे काफ़ी समय से लागू किया जा रहा है। कई गाँवों ने इस विधि का पालन करके जल को संग्रहित और सुरक्षित किया है। जैसा कि आप जानते हैं, जलवायु में परिवर्तन और मानवीय गतिविधियाँ निश्चित रूप से वैश्विक स्तर पर जल की कमी का कारण बनती हैं। वर्षा जल संचयन ऐसे समय के लिए एक उपयुक्त तैयारी है, जब पारंपरिक जल स्रोत सूख जाएँ; तब भी हम संग्रहित जल का उपयोग कई उद्देश्यों के लिए कर सकते हैं। वर्षा जल संचयन की सबसे अच्छी बात यह है कि इस प्रक्रिया से जल का सुरक्षित संग्रह किया जा सकता है। हालांकि, वर्षा जल संचयन के दौरान हमें कुछ महत्वपूर्ण सावधानियाँ अपनानी चाहिए। जब हम नवाचार और तकनीक का उपयोग करते हैं, तो वैज्ञानिक/अनुसंधानकर्ता वर्षा जल संचयन की बेहतर विधियाँ विकसित कर सकते हैं और संरक्षण तकनीकों में सुधार कर सकते हैं।

# 11.5 सूक्ष्म सिंचाई

जैसा कि आप जानते हैं, ताजे पानी के अधिकांश स्रोत सिंचाई के लिए उपयोग किए जाते हैं। यदि हम कृषि क्षेत्र में पानी बचाने के लिए विभिन्न तकनीकों का विकास कर सकें, तो हम इस प्राकृतिक संसाधन को संरक्षित कर सकते हैं। सूक्ष्म सिंचाई को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह मिट्टी के ऊपर और नीचे सीधे कम मात्रा में पानी की बार-बार आपूर्ति है; सामान्यतः इसे छोटे-छोटे बूँदों, लगातार बूँदों या छोटे धाराओं के रूप में, जल वितरण लाइन के साथ रखे गए एमिटर (emitter) के माध्यम से किया जाता है।
सूक्ष्म सिंचाई जिसे स्थानीयकृत सिंचाई, कम मात्रा में सिंचाई, कम प्रवाह वाली सिंचाई या ट्रिकल सिंचाई भी कहा जाता है। यह एक ऐसी सिंचाई पद्धति है जिसमें पारंपरिक तरीकों की तुलना में कम दबाव और कम जल प्रवाह का उपयोग किया जाता है। सूक्ष्म सिंचाई आमतौर पर कृषि में रो-कॉर्प (row crops), बागबानी (orchards), दाख के बगीचे (vineyards) आदि के लिए उपयोग की जाती है। यह तकनीक बागवानी, नर्सरी, व्यावसायिक और निजी बागों में भी इस्तेमाल की जाती है। यह सिंचाई की वह पद्धति है जो पानी और उर्वरकों की बचत करती है। इस तकनीक में पानी और उर्वरक को पौधों की जड़ों में धीरे-धीरे पहुँचाया जाता है। इस तकनीक में पाइपों, नियंत्रक वाल्व (controlling valves), ड्रिपर्स और ट्यूबों का एक नेटवर्क शामिल होता है।
कभी-कभी आप जमीन को पानी से भरी हुई पाते हैं और कभी-कभी वही जमीन पूरी तरह सूखी होती है। इस प्रकार की अनियमितता कृषि को बहुत कठिन बना देती है। पानी का यह असमान वितरण फसलों को गंभीर नुकसान पहुँचाता है। इसलिए ऐसी उपयुक्त तकनीक की तत्काल आवश्यकता है, जिसके माध्यम से किसान सिंचाई के लिए पानी का सतत और कुशल उपयोग कर सकें।

**सूक्ष्म सिंचाई तकनीक की आवश्यकता**

कृषि भूमि को अत्यधिक उपजाऊ बनाने के लिए पर्यावरण के प्रति संवेदनशील और किसान समुदायों के सामाजिक आधारों को संरक्षित करने में सक्षम मौजूदा भूमि, पानी और श्रम संसाधनों से अधिक उत्पादन प्राप्त

करने में मदद करना, बिना किसी पारिस्थितिक या सामाजिक असंतुलन के अधिक कृषि आय उत्पन्न करने और बढ़ाने के लिए खेत और खेत से बाहर रोजगार प्रदान करने के लिए।

**सामान्यतः सूक्ष्म सिंचाई की दो प्रकार की तकनीकें अपनाई जाती हैं:**

ऑनलाइन सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली – यह आम, संतरा, नींबू, चीकू आदि जैसे बाग़बानी फसलों के लिए उपयोगी है।

इनलाइन सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली – यह सब्जियों, मिर्च, कपास, प्याज, केला आदि जैसी फसलों के लिए उपयोग की जाती है।

**सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में कदम:** स्रोत से पानी की उपलब्धता का पता लगाएँ। यह स्रोत बोअरवेल और ट्यूबवेल हो सकते हैं। क्षेत्र का स्थलाकृतिक सर्वेक्षण करें। हर माह/अवधि में पानी की आवश्यकता को नोट करें। विशिष्ट फसलों के लिए पानी की आवश्यकता की गणना करें। प्रत्येक सेक्शन में वाल्व लगाया जाना चाहिए। सेक्शन बनाते समय बिजली की उपलब्धता के घंटे सुनिश्चित करें।

**सूक्ष्म सिंचाई में उपयोग किए जाने वाले घटक इस प्रकार हैं:**

- दबावयुक्त जल स्रोत
- जल फिल्टर या छानने की प्रणाली, रेत पृथक्करण यंत्र, फर्टिगेशन सिस्टम (उर्वरक मिश्रण प्रणाली)
- बैकफ़्लो (पानी के उल्टे बहाव) रोकने वाला यंत्र
- दबाव नियंत्रण वाल्व
- वितरण पाइप लाइनें (मुख्य बड़े व्यास की पाइप, साथ में द्वितीयक छोटे व्यास की पाइप और पाइप फिटिंग्स)
- हाथ से संचालित, इलेक्ट्रॉनिक या हाइड्रोलिक नियंत्रण वाल्व और सुरक्षा वाल्व
- छोटे व्यास की पॉलीथीन ट्यूब
- कनेक्शन बनाने के लिए पॉली फिटिंग्स और सहायक उपकरण
- एमिटर या ड्रिपर, सूक्ष्म स्प्रे हेड, इनलाइन ड्रिपर या इनलाइन ड्रिप ट्यूब

सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों में, पंप और वाल्व को मैन्युअली या कंट्रोलर द्वारा स्वचालित रूप से संचालित किया जा सकता है। कई बड़े सूक्ष्म सिंचाई सिस्टम में छोटे एमिटर के बंद होने से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के फिल्टर का उपयोग किया जाता है। आधुनिक तकनीकें अब ऐसी पेशकश कर रही हैं जो क्लॉगिंग को रोकती हैं। कुछ स्वदेशी प्रणालियाँ फिल्टर के बिना भी स्थापित की जाती हैं, क्योंकि पीने योग्य पानी में बहुत कम कण होते हैं। हालांकि, निर्माता हमेशा सुझाव देते हैं कि फिल्टर का उपयोग किया जाना चाहिए।

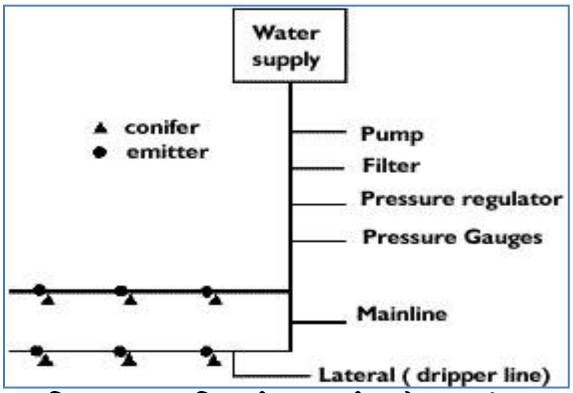


**चित्र-5: सूक्ष्म सिंचाई का कार्य करने का तरीका**

सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों में शुद्ध किए गए नगर निगम का पानी उपयोग किया जाता है। सरकार द्वारा सुझाए गए नियम और विनियम आमतौर पर ऐसे पानी को हवा में स्प्रे करने की अनुमति नहीं देते जो पूरी तरह से शुद्ध न हो। किसान पानी के साथ उर्वरकों का उपयोग कर सकते हैं, और इस प्रक्रिया को फर्टिगेशन और केमिकेशन कहा जाता है। फर्टिगेशन विभिन्न प्रकार के इंजेक्टर जैसे डायाफ्राम पंप, पिस्टन पंप या एस्पिरेटर की मदद से किया जा सकता है। रासायनिक पदार्थ तब जोड़े जा सकते हैं जब सिस्टम सिंचाई कर रहा हो। पारंपरिक तरीकों की तुलना में सूक्ष्म सिंचाई लगभग 90% उर्वरक बचा सकती है।

सूक्ष्म सिंचाई पानी की बचत में मदद कर सकती है क्योंकि यह वाष्पीकरण और गहरे जल निकास (deep drainage) को कम करती है। इसके अलावा, सूक्ष्म सिंचाई उन विभिन्न रोगों को रोक सकती है जो पानी के माध्यम से पत्तियों के संपर्क से फैलते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ पानी की आपूर्ति सीमित होती है, वहाँ सूक्ष्म सिंचाई का उपयोग करके भूमि की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। सूक्ष्म सिंचाई तकनीक में, पानी को पौधों की जड़ों में बहुत ही कम प्रवाह दर पर लगाया जाता है, अर्थात् 1.0 लीटर/घंटा से कम।

**सूक्ष्म सिंचाई के लाभ:** सूक्ष्म सिंचाई के कई लाभ हैं, जिनकी नीचे चर्चा की गई है:

- स्थानीयकृत पानी की आपूर्ति और कम लीचिंग (leaching) के कारण उर्वरक और पोषक तत्वों की हानि न्यूनतम होती है।
- उत्पादकता में वृद्धि।
- भूमि समतलीकरण (field leveling) की आवश्यकता नहीं।
- लगभग 95% पानी की बचत।
- जड़ों के आस-पास (rhizosphere) नमी बनाए रखी जा सकती है।
- मृदा कटाव (soil erosion) से रोकथाम।
- घास-पत्था (weed) के विकास को रोका जा सकता है।
- कम श्रम लागत।
- फर्टिगेशन कम उर्वरक अपव्यय के साथ किया जा सकता है।
- पत्तियाँ सूखी रहती हैं, जिससे फसलों में रोग लगने की संभावना कम होती है।
- उर्वरक की दक्षता बढ़ती है और उर्वरक की बचत होती है।
- ऊर्जा की बचत।

**सूक्ष्म सिंचाई के नुकसान:** सूक्ष्म सिंचाई विधियों के कई लाभों के बावजूद, इसके कुछ नुकसान भी हैं। सूक्ष्म सिंचाई के कुछ नुकसान नीचे दिए गए हैं:

- सूक्ष्म सिंचाई की प्रारंभिक लागत अधिक होती है।
- सूर्य की गर्मी सूक्ष्म सिंचाई में उपयोग की जाने वाली ट्यूबों को प्रभावित कर सकती है, जिससे उपकरणों की टिकाऊपन कम हो जाती है।
- उपकरणों में जाम (clogging) और जैव-जाम (bio-clogging) हो सकता है।
- यदि हर्बीसाइड्स को सक्रिय करने के लिए स्प्रिंकलर सिंचाई की आवश्यकता हो, तो सूक्ष्म सिंचाई अस्वीकार्य हो सकती है।

- फसल कटाई के बाद, ड्रिप टेप/सूक्ष्म टेप जैसे उपकरणों की सफाई में अधिक लागत लगती है।
- चूहे, आदि कई जानवर उपकरणों (PVC पाइप आदि) को नुकसान पहुँचा सकते हैं, जिससे किसानों के खर्च में वृद्धि होती है।

# 11.6 प्रकरण अध्ययन – पानी पंचायत

पानी पंचायत आंदोलन की शुरुआत वर्ष 1974 में महाराष्ट्र राज्य के पुणे जिले के पुरंदर तालुका के सूखा-ग्रस्त क्षेत्र में हुई थी। इस आंदोलन की शुरुआत श्री विलासराव साळुंखे ने की थी। श्री विलासराव साळुंखे, जिन्हें "पानी बाबा" के नाम से भी जाना जाता है, का जन्म 18 फरवरी 1937 को महाराष्ट्र के सांगली जिले में हुआ था। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य पानी के समान वितरण (equitable distribution of water) की सरल अवधारणा पर आधारित था। उन्होंने समाज के सभी वर्गों में पानी के महत्व और जल संसाधनों के समान अधिकार के प्रति शिक्षा और जन-जागरूकता को बढ़ावा दिया। वे ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन से संबंधित समस्याओं को लेकर अत्यंत चिंतित थे। वर्ष 1972-73 में महाराष्ट्र में आए भीषण सूखे के दौरान उन्होंने कई सूखा प्रभावित गाँवों का दौरा किया। स्थिति का अवलोकन करने के बाद उन्होंने महाराष्ट्र सरकार को जल संसाधन विकास से संबंधित गतिविधियाँ लागू करने का सुझाव दिया।

**ग्राम गौरव प्रतिष्ठान:** ग्राम गौरव प्रतिष्ठान (GGP) एक परोपकारी ट्रस्ट है, जिसकी स्थापना महाराष्ट्र के गंभीर रूप से सूखा-ग्रस्त क्षेत्र में स्थित नायगांव गाँव में की गई थी। यही वह स्थान है जहाँ विलासराव साळुंखे ने अपने कार्य की शुरुआत की थी।

श्री विलासराव साळुंखे ने स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी और सहयोग से पानी के समान वितरण का प्रयोग किया। इस स्वैच्छिक संगठन के माध्यम से जल अधिकारों की समानता पर आधारित यह आंदोलन पूरे महाराष्ट्र में लोकप्रिय हुआ, जिसे "पानी पंचायत" के नाम से जाना गया। विलासराव साळुंखे की पानी पंचायत की यह क्रांतिकारी अवधारणा एक बहुत ही सरल और महत्वपूर्ण सिद्धांत पर आधारित थी कि "पानी एक सामूहिक संपत्ति (common property resource) है और इसलिए यह सभी के लिए सुलभ होना चाहिए।" पानी पंचायत आंदोलन ने उन गाँवों को पूरी तरह बदल दिया जहाँ कभी बंजर भूमि थी; अब वहाँ समृद्धि और प्रचुर संसाधनों का वातावरण स्थापित हो गया है।

**पानी पंचायत के सिद्धांत:** समानता (Equity) पानी पंचायत का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है। पानी पंचायत मांग आधारित प्रबंधन (Demand Management), सामुदायिक भागीदारी (Community Participation), भूमिहीनों के अधिकार (Rights of Landless) और संसाधन की स्थिरता (Sustainability) पर भी बल देती है। पानी पंचायत का मानना है कि हर परिवार के सदस्य को खेती के लिए आवश्यक पानी प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। पानी पंचायत के मुख्य सिद्धांत नीचे सारांशित किए गए हैं:

- पानी का बँटवारा परिवार के आकार के आधार पर किया जाना चाहिए, भूमि स्वामित्व के आधार पर नहीं।
- ऐसी फसलें नहीं बोई जानी चाहिएं जिन्हें पानी की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

- कृषि पैटर्न (फसल प्रणाली) समूह की आपसी सहमति से तय किया जाएगा।
- पानी के अधिकार भूमि के अधिकार से जुड़े नहीं होंगे।
- जिस भूमि को इस परियोजना के तहत पानी दिया गया है, उसे "पानी पंचायत" की अनुमति के बिना बेचा नहीं जा सकता।
- सिंचाई योजनाएँ किसानों के साझा प्रयासों से सामूहिक हित के लिए बनाई जाएँगी।
- पानी कर (Water Tax) प्रत्येक वर्ष दो किस्तों में, पानी पंचायत द्वारा निर्धारित समय सीमा के भीतर जमा किया जाना चाहिए।
- परियोजना के दौरान आवश्यक सभी उपकरण "पानी पंचायत" के पास सुरक्षित रखे जाएँगे। परियोजना से संबंधित सभी दावे पानी पंचायत द्वारा ही निपटाए जाएँगे।
- "पानी पंचायत" को कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार होगा, और उनका वेतन/मानदेय भी पानी पंचायत द्वारा ही निर्धारित किया जाएगा।
- पानी पंचायत प्रत्येक माह दो बैठकें आयोजित करेगी, जिनमें किसानों की सभी समस्याओं को दर्ज कर आगे की कार्यवाही की जाएगी।
- जो सदस्य परियोजना के कार्य में गंभीर समस्या उत्पन्न करता है या "पानी पंचायत" के आदेशों की अवहेलना करता है, उसकी सदस्यता रद्द कर दी जाएगी।
- परियोजना का निर्माण, प्रबंधन, जल वितरण और फसल की निगरानी सभी सदस्यों की सामूहिक जिम्मेदारी होगी।

यह संगठन सतत विकास के माध्यम से पूरे गाँव में पानी का समान वितरण सुनिश्चित करता है। पानी पंचायत विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम, जन-जागरूकता अभियान और सतत उत्पादन गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी भी करती है।

**पानी पंचायत का मिशन:** पानी पंचायत का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक तकनीकों पर आधारित जैविक खेती (Organic Farming) के माध्यम से समग्र कृषि प्रणाली (Holistic Farming System) का विकास करना है। जैसा कि आप जानते हैं, आज पूरी दुनिया मानवजनित गतिविधियों (Anthropogenic Activities) से उत्पन्न आर्थिक और पारिस्थितिक समस्याओं का सामना कर रही है, विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में। इन गतिविधियों में उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग शामिल है। पानी पंचायत यह भी सुनिश्चित करती है कि भूमि पर निर्भर जनसंख्या को आजीविका हेतु पर्याप्त जल उपलब्ध हो। पानी पंचायत का एक और मिशन है प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सुरक्षा, विशेषकर जल संसाधनों की रक्षा। पानी पंचायत समाज के कमजोर वर्गों को जल अधिकार (Water Rights) भी प्रदान करती है। यह संगठन कृषि आय की सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करता है और लोगों को वैकल्पिक आजीविका के साधन उपलब्ध कराने में सहायता करता है। साथ ही, पानी पंचायत सतत विकास के लिए जैविक खेती को प्रोत्साहित करती है।

**पानी पंचायत की दृष्टि (Vision):** पानी पंचायत की दृष्टि लोगों और पर्यावरण के बीच सामंजस्य (Harmony) को बढ़ावा देना है। पानी पंचायत का लक्ष्य एक जलागम (Watershed) मॉडल विकसित

करना भी है। यह मॉडल जल समानता (Water Equity) के सिद्धांत पर आधारित होगा। यह जलागम मॉडल कृषि और संसाधन संरक्षण के क्षेत्र में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दर्शन (Philosophy) और प्रौद्योगिकी (Technology) के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करेगा।

# सारांश

इस इकाई में हमने जल संसाधन संरक्षण, जलागम प्रबंधन (Watershed Management), वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting), सूक्ष्म सिंचाई (Micro-Irrigation) और पानी पंचायत के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। अब तक आपने यह सीखा है कि:

- असतत जल उपयोग (Unsustainable Water Use) दो तरीकों से विकसित हो सकता है पहला, जल के भंडार (stocks) और प्रवाह (flow) में परिवर्तन करके, जिससे पानी की उपलब्धता समय या स्थान के अनुसार बदल जाती है; और दूसरा, संसाधन से मिलने वाले लाभों की मांग में परिवर्तन के कारण, जो जीवन स्तर, प्रौद्योगिकी, जनसंख्या स्तर या सामाजिक ढाँचे में बदलाव से उत्पन्न होते हैं।
- वाटरशेड (Watershed)" शब्द का प्रयोग पहली बार 1920 में किया गया था और यह सीमाओं को दर्शाने के लिए उपयोग किया गया था। वाटरशेड पृथ्वी का वह क्षेत्र होता है जो जल निकासी (drainage) से सीमित होता है। वाटरशेड प्रबंधन तकनीक सामान्यतः वर्षा प्रधान क्षेत्रों में उपयोग की जाती है।
- आकार, रूप, जल निकासी और भूमि उपयोग के आधार पर वाटरशेड को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-मैक्रो वाटरशेड (Macro Watershed): 1,000 – 10,000 हेक्टेयर, माइक्रो वाटरशेड (Micro Watershed): 100 – 1,000 हेक्टेयर, मिनी वाटरशेड (Mini Watershed): 10 – 100 हेक्टेयर, माइली वाटरशेड (Mille Watershed): 1 – 10 हेक्टेयर।
- वाटरशेड प्रबंधन के मुख्य उद्देश्य हैं खाद्य, चारा और ईंधन का उत्पादन, प्रदूषण को कम करना, बाढ़ नियंत्रण, जल भंडारण, वन्यजीव संरक्षण, मृदा अपरदन को रोकना, मृदा संरक्षण, मत्स्य पालन विकास और भूजल पुनर्भरण।
- वाटरशेड प्रबंधन के चार मुख्य चरण होते हैं पहचान चरण (Recognition Phase), पुनर्स्थापन चरण (Restoration Phase), संरक्षण चरण (Protection Phase) और सुधार चरण (Improvement Phase)।
- वर्षा जल संचयन (Rain Water Harvesting - RWH) एक तकनीक है जिसके माध्यम से वर्षा के पानी को विभिन्न तरीकों से एकत्र और संग्रहित किया जाता है, ताकि इसका उपयोग पशुपालन, पेयजल, सिंचाई आदि उद्देश्यों के लिए किया जा सके। वर्षा का पानी कृत्रिम टैंकों (Artificial Tanks) में एकत्र किया जा सकता है। छत जल संचयन (Rooftop Harvesting) भी वर्षा जल एकत्र करने की एक विधि है।
- जल संचयन के कई तरीके हैं, जैसे सतही जल संग्रह प्रणाली (Surface Water Collection Systems), छत संग्रह प्रणाली (Rooftop System), बांध (Dams), भूमिगत टैंक

(Underground Tanks), रेन सॉसर (Rain Saucer), जल संग्रह जलाशय (Reservoirs), बैराज (Barrage), ढलानें (Slopes), खाइयाँ (Trenches) और रेन बैरल (Rain Barrels)।

- वर्षा जल संचयन के मुख्य लाभ हैं घरेलू उपयोग हेतु जल, औद्योगिक उपयोग हेतु जल, अतिरिक्त जल स्रोत, सिंचाई, कम लागत, विश्वसनीय जल प्रवाह, बाढ़ के प्रभाव को कम करना और बुनियादी ढाँचे के निर्माण में सहयोग।
- वर्षा जल संचयन की कुछ कमियाँ भी हैं, जैसे अतिरिक्त खर्च, अधिक प्रयास और संसाधनों की आवश्यकता, वर्षा पर निर्भरता, सीमित भंडारण क्षमता, प्रदूषण का खतरा, सफाई और रखरखाव में अतिरिक्त लागत, और वन्यजीवों के लिए जल की कमी।
- सूक्ष्म सिंचाई (Micro-Irrigation) को स्थानीयकृत सिंचाई, कम मात्रा सिंचाई, कम प्रवाह सिंचाई या ट्रिकल सिंचाई के नाम से भी जाना जाता है।
- सूक्ष्म सिंचाई में उपयोग किए जाने वाले मुख्य घटक हैं दबावयुक्त जल स्रोत, जल फिल्टर या छानने की प्रणाली, रेत पृथक्करण यंत्र (Sand Separator), फर्टिगेशन सिस्टम (Venturi Injector), केमिकेशन उपकरण, बैकफ्लो रोकने वाला उपकरण, दबाव नियंत्रण वाल्व (Pressure Control Valve), मुख्य पाइप (Main Pipe), छोटी पाइपें, पाइप फिटिंग्स, छोटे व्यास की पॉलीथीन ट्यूब, और कनेक्शन के लिए पॉली फिटिंग्स और सहायक उपकरण आदि।
- सूक्ष्म सिंचाई (Micro-Irrigation) के कई लाभ हैं -स्थानीयकृत सिंचाई प्रणाली के कारण उर्वरक और पोषक तत्वों की हानि न्यूनतम होती है और लीचिंग (leaching) कम होती है। इससे फसल उत्पादन में वृद्धि होती है, क्षेत्र समतलीकरण की आवश्यकता नहीं होती, मृदा अपरदन (soil erosion) को रोका जा सकता है, खरपतवारों की वृद्धि कम होती है, श्रम लागत कम आती है, फर्टिगेशन (fertigation) न्यूनतम उर्वरक अपव्यय के साथ किया जा सकता है। इसके अलावा, फसलों की पत्तियाँ सूखी रहती हैं, जिससे रोगों की संभावना कम होती है, उर्वरक की दक्षता बढ़ती है, उर्वरक की बचत होती है और ऊर्जा की बचत (energy saving) भी होती है।
- सूक्ष्म सिंचाई की कुछ कमियाँ भी हैं इसकी प्रारंभिक लागत (initial cost) अधिक होती है। सूर्य की गर्मी (heat of sun) से पाइपों पर प्रभाव पड़ सकता है, जिससे उपकरणों की टिकाऊपन (durability) घट जाती है। क्लॉगिंग (clogging) या बायो-क्लॉगिंग (bio-clogging) की समस्या भी उपकरणों में उत्पन्न हो सकती है। यदि शाकनाशी (herbicides) को सक्रिय करने के लिए स्प्रिंकलर सिंचाई की आवश्यकता हो, तो माइक्रो-सिंचाई स्वीकार्य नहीं होती। माइक्रो टेप (micro-tape) की सफाई पर अधिक लागत आती है और चूहे या चूहे जैसे जीव इन उपकरणों को नुकसान पहुँचा सकते हैं।
- पानी पंचायत आंदोलन (Pani Panchayat Movement) की शुरुआत 1974 में महाराष्ट्र राज्य के पुणे ज़िले के पुरंधर तालुका के सूखा प्रभावित क्षेत्र में की गई थी। पानी पंचायत के मुख्य सिद्धांत (Principles of Pani Panchayat) निम्नलिखित हैं पानी का वितरण परिवार के आकार के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि भूमि स्वामित्व (land holding) के आधार पर। अधिक जल मांग वाली फसलें नहीं उगाई जानी चाहिए। समूह की आपसी सहमति (mutual

consultation) से कृषि पद्धति (agricultural pattern) तय की जानी चाहिए। पानी के अधिकार (rights of water) को भूमि अधिकार (rights of land) से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। जिस भूमि को इस परियोजना के अंतर्गत पानी प्राप्त होता है, उस भूमि को "पानी पंचायत" की अनुमति के बिना बेचा नहीं जा सकता।

**टर्मिनल प्रश्न**

**1 (a)** रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

पानी पंचायत आंदोलन की शुरुआत महाराष्ट्र राज्य के सूखा प्रभावित क्षेत्र ………… ज़िले में वर्ष ………… में की गई थी। इस आंदोलन की शुरुआत श्री विलासराव सालुंखे द्वारा की गई थी। श्री विलासराव सालुंखे, जिन्हें आमतौर पर ………… के नाम से जाना जाता है, का जन्म ………… को महाराष्ट्र के सांगली ज़िले में हुआ था। वे जल के समान वितरण की सरल अवधारणा पर केंद्रित थे। उन्होंने जल के महत्व और जल संसाधनों की समानता के प्रति सभी में शिक्षा और जन-जागरूकता फैलाने का कार्य किया। वे ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित समस्याओं को लेकर अत्यंत चिंतित थे। उन्होंने वर्ष 1972–73 के दौरान महाराष्ट्र के अनेक सूखा प्रभावित गाँवों का दौरा किया। स्थिति का निरीक्षण करने के बाद, उन्होंने महाराष्ट्र सरकार को ………… विकासात्मक गतिविधियाँ लागू करने का सुझाव दिया।

**2 (a)** जल संरक्षण क्यों महत्वपूर्ण है? समझाइए।

**(b)** वाटरशेड प्रबंधन (जलागम प्रबंधन) क्या है?

**3 (a)** जलागम प्रबंधन के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

**(b)** जलागम प्रबंधन के चरणों को बताइए।

**4 (a)** वर्षा जल संचयन (रेन वाटर हार्वेस्टिंग) की परिभाषा दीजिए। सामान्य वर्षा जल संचयन की विधियों के बारे में लिखिए।

**5 (a)** वर्षा जल संचयन के लाभ और हानियों पर चर्चा कीजिए।

**(b)** सूक्ष्म सिंचाई (माइक्रो-इरिगेशन) के लाभों का वर्णन कीजिए।

**(c)** सूक्ष्म सिंचाई की हानियाँ क्या हैं?

**6 (a)** रिक्त स्थानों को उचित शब्दों से भरें।

जैसा कि आप जानते हैं, अधिकांश मीठे जल संसाधनों का उपयोग ………… उद्देश्य के लिए किया जाता है। यदि हम कृषि क्षेत्र में जल संरक्षण हेतु विभिन्न ………… विकसित कर सकें, तो हम इस प्राकृतिक संसाधन को सुरक्षित या संरक्षित कर सकते हैं। सूक्ष्म सिंचाई (माइक्रो-इरिगेशन) को परिभाषित किया जा सकता है मिट्टी के ऊपर और नीचे ………… मात्रा में जल के बार-बार अनुप्रयोग के रूप में; सामान्यतः ………… , ………… और छोटी धाराओं के रूप में जो जल आपूर्ति रेखा के साथ लगाए गए उत्सर्जकों (emitters) के माध्यम से दी जाती हैं। सूक्ष्म सिंचाई को ………… या कम मात्रा सिंचाई, कम प्रवाह सिंचाई या टपक सिंचाई (trickle irrigation) के नाम से भी जाना जाता है। यह एक ऐसी सिंचाई विधि है जिसमें ……………. की तुलना में कम दबाव और प्रवाह की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म सिंचाई का

उपयोग सामान्यतः कृषि में कतार वाली फसलों, बागों, अंगूर के बागों आदि के लिए किया जाता है। यह तकनीक बागवानी, नर्सरी, व्यावसायिक और निजी उद्यानों आदि में भी प्रयुक्त होती है। यह ऐसी सिंचाई पद्धति है जो ………… और ………… की बचत करती है।

**(b)** मैक्रो-वाटरशेड का क्षेत्रफल लगभग 1,000-10,000 हेक्टेयर होना चाहिए। (हाँ/नहीं)

**(c)** फर्टिगेशन का लाभ है-(सूक्ष्म सिंचाई / वर्षा जल संचयन)

**(d)** विलासराव सालुंखे, जिन्हें पानी बाबा के नाम से जाना जाता है, का संबंध है- (पानी पंचायत / जलागम प्रबंधन / चिपको आंदोलन / अप्पिको आंदोलन)

**7 (a)** सूक्ष्म सिंचाई में प्रयुक्त घटकों के बारे में लिखिए।

**(b)** पानी पंचायत के सिद्धांतों, मिशन और विज़न के बारे में लिखिए।

**टर्मिनल प्रश्नों के उत्तर**

**1 (a)** पुरंदर तालुका, 1974, पानी बाबा, 18 फरवरी 1937, महाराष्ट्र, पानी, ग्रामीण क्षेत्र, जल संसाधन
**2 (a)** अनुभाग 11 & 11.2 देखें, **(b)** अनुभाग 11.3 देखें,
**3 (a)** अनुभाग 11.3 देखें (Fig-2), **(b)** अनुभाग 11.3 देखें
**4 (a)** अनुभाग 11.4 देखें,
**5(a)** अनुभाग 11.4 देखें **(b)** अनुभाग 11.5 देखें (c) अनुभाग 11.5 देखें
**6 (a)** सिंचाई, तकनीकें, पानी, कम मात्रा, अलग-अलग बूंदें, निरंतर बूंदें, स्थानीयकृत सिंचाई, स्थानीय सिंचाई, पानी, उर्वरक **(b)** हाँ, **(c)** सूक्ष्म सिंचाई **(d)** पानी पंचायत
**7 (a)** अनुभाग 11.5 देखें, **(b)** अनुभाग 11.6 देखें

# इकाई 12: जैविक विविधता

इकाई संरचना

**12.0 शिक्षण उद्देश्य**
**12.1 परिचय**
**12.2 जैव विविधता के प्रकार**
12.2.1 **आनुवंशिक विविधता**
12.2.2 **प्रजातीय विविधता**
12.2.3 **पारिस्थितिकी तंत्र विविधता**
**12.3 जैव विविधता का महत्व**
**12.4 भारत और विश्व की जैव विविधता**
**12.5 जैव विविधता के मूल्य**
**12.6 जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र का कार्यकरण**
**12.6.1 ऊर्जा प्रवाह**
**12.6.2 भोजन श्रृंखला और भोजन जाल**
**12.6.3 पारिस्थितिकी पिरामिड**
**12.6.4 पोषक चक्रण**
**12.6.5 उत्पादकता**
**12.7 जैव विविधता का आकलन**
12.7.1 **जैव विविधता मापने के कारक**
12.7.2 **जैव विविधता आकलन का महत्व**
**सारांश**

## 12.0 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित की व्याख्या करने में सक्षम होंगे:

- जैव विविधता का परिचय और उसके प्रकार
- जैव विविधता का महत्व
- जैव विविधता के मूल्य
- पारिस्थितिकी तंत्र के घटक, संरचना और कार्य
- जैव विविधता का मूल्यांकन

## 12.1 परिचय (Introduction)

'Biodiversity' शब्द ग्रीक शब्द Bios (अर्थात् जीवन) और लैटिन शब्द Diversitas (अर्थात् रूप या भिन्नता) से बना है। यह पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवन के विभिन्न रूपों (पौधे, पशु, कवक और सूक्ष्मजीव) को संदर्भित करता है। 'Biological Diversity' शब्द का प्रयोग सबसे पहले थॉमस लवजॉय (Thomas Lovejoy) ने 1980 में किया था, जबकि 'Biodiversity' शब्द वॉल्टर जी. रोज़न (Walter G. Rosen) ने 1986 में वॉशिंगटन में आयोजित *National Forum on Biodiversity* के दौरान अंकित किया गया था (सार्कर, 2019)। जैव विविधता या जैविक विविधता की सीमा सबसे छोटे ज्ञात जीवन रूप *Nanobes*

(जिसका व्यास केवल 20-150 नैनोमीटर होता है) और सूक्ष्मतम ज्ञात बैक्टीरिया (Unwins, 1999) से लेकर लगभग 110 फीट लंबे *Blue Whale* तक फैली है। जीवन के विभिन्न रूप अत्यधिक ठंड से लेकर अत्यधिक गर्म वाले वातावरण तक हर परिस्थिति में पाए जाते हैं। यह विविधता पृथ्वी पर जीवन की सीमा को दर्शाती है।

जैव विविधता की कोई एक निश्चित या मानकीकृत परिभाषा नहीं है। समय के अनुसार, इसे समझाने के लिए अलग-अलग वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं।

**कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ**

**Bartkowski और सहयोगी (2015):** जैव विविधता को किसी जैविक तंत्र में विभिन्न आनुवंशिक, प्रजातीय और पारिस्थितिकीय स्तरों पर पाई जाने वाली विविधता के रूप में परिभाषित किया गया है।

**Convention on Biological Diversity, 1992 (संयुक्त राष्ट्र पृथ्वी शिखर सम्मेलन, रियो डी जनेरियो):** "जैव विविधता को सभी स्रोतों में पाई जाने वाली परिवर्तनशीलता के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें भूमि (स्थलीय), समुद्री और जलीय पारिस्थितिक तंत्र तथा वे पारिस्थितिक जटिलताएँ शामिल हैं जिनका वे हिस्सा हैं। इसमें प्रजातियों के भीतर की विविधता, प्रजातियों के बीच की विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता शामिल है।"

**Noss (1990):** "जैव विविधता केवल किसी निश्चित क्षेत्र में आनुवंशिक, प्रजातीय और पारिस्थितिक स्तरों पर पाई जाने वाली विविधता तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें अंतःप्रजातीय पारस्परिक क्रियाएँ, जैव-भूरासायनिक चक्र और प्राकृतिक व्यवधान भी शामिल होने चाहिए। इसमें विविधता सूचकांक और मात्रात्मक कारकों की सीमा को सम्मिलित किया जाना चाहिए और इन्हें जैविक अव्यवस्था का संकेतक भी माना जाना चाहिए।"

**Díaz और सहयोगी (2009):** जैव विविधता को किसी जैविक प्रणाली में प्रचुरता, संख्या, संरचना, अंतःक्रियाएँ, स्थानिक वितरण, जनसंख्या, प्रजातियाँ, समुदाय और उनके कार्य, जीनोटाइपिक और फीनोटाइपिक गुण, तथा परिदृश्य इकाइयों के रूप में परिभाषित किया गया है। यह आनुवंशिक, प्रजातीय और पारिस्थितिकी तंत्र विविधताओं के बीच की अंतःक्रिया है।

## 12.2 जैव विविधता के प्रकार

सामान्यतः, जैव विविधता के तीन मुख्य प्रकार होते हैं: आनुवंशिक विविधता, प्रजातीय विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र विविधता (चित्र 1)। इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है:

**चित्र 1. जैव विविधता के प्रकार**

## 12.2.1 आनुवंशिक विविधता

यह किसी प्रजाति या जनसंख्या के भीतर आनुवंशिक संरचना में पाई जाने वाली भिन्नताओं को दर्शाता है। संसार का प्रत्येक जीव अपने आनुवंशिक पदार्थ में एक-दूसरे से भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, मनुष्यों में जुड़वाँ (Twins) भी अपने आनुवंशिक निर्माण में पूरी तरह समान नहीं होते और एक-दूसरे से अनेक विविधताएँ प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार, धान, जौ, मक्का आदि फसलों में भी उसी प्रजाति के भीतर विविधता देखी जाती है। एक ही प्रजाति के भीतर रंग, आकार, सुगंध, आकृति और पोषक तत्वों की मात्रा जैसी विशेषताओं में अंतर पाया जाता है। यही आनुवंशिक विविधता प्रजातियों को पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुकूल बनने, प्रतिक्रिया देने, विकास (Evolution) और नई प्रजातियों के उद्भव (Speciation) में सक्षम बनाती है (Carvalho et al., 2019)।

## 12.2.2 प्रजातीय विविधता

यह जैव विविधता का सबसे बुनियादी स्तर है। प्रजातियाँ बड़े समूहों में पाई जाती हैं और उनकी भौतिक तथा जैविक विशेषताएँ अलग-अलग होती हैं। ये प्रजातियाँ खाद्य जाल (Food web) में व्यक्तिगत रूप से या समूह के रूप में कार्य करती हैं। प्रजातियाँ आपस में विभिन्न प्रकार की अंतःक्रियाओं (जैसे प्रतिस्पर्धा, सहजीविता आदि) के माध्यम से जुड़ी होती हैं और मिलकर पारिस्थितिकी तंत्र की गतिकी (ecosystem dynamics) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रजातीय विविधता को प्रजाति की प्रचुरता (species richness) और सापेक्ष प्रचुरता (relative abundance) से मापा जाता है (White et al., 2018)।

## 12.2.3 पारिस्थितिकी तंत्र विविधता

जैसा कि आप जानते हैं, एक पारिस्थितिकी तंत्र जीवित और निर्जीव घटकों तथा उनके बीच होने वाली अंतःक्रियाओं से मिलकर बनता है। पारिस्थितिकी तंत्र विविधता को किसी क्षेत्र के भीतर पाए जाने वाले विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों की विविधता के रूप में परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए, पर्वत, रेगिस्तान, चारागाह और मैंग्रोव वन अलग-अलग प्रकार की पारिस्थितिकी तंत्र विविधता को दर्शाते हैं। इस प्रकार की पारिस्थितिकीय विविधता अपेक्षाकृत अधिक स्थिर और उत्पादक होती है, क्योंकि यह प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों को सहन करने में सक्षम होती है (Brierley et al., 2016; Kumar et al., 2019)।

**समुदाय और पारिस्थितिकी तंत्र में निम्न 3 स्तरों की विविधता पाई जाती हैं**

- समुदाय के भीतर की विविधता (Alpha diversity)
- समुदायों के बीच की विविधता (Beta diversity)
- सम्पूर्ण परिदृश्य या भौगोलिक क्षेत्र में आवासों की विविधता (Gamma diversity)

**Alpha, Beta और Gamma Diversities**

Whittaker (1972) ने जैव विविधता को विभिन्न भौगोलिक स्तरों पर मापने के लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया:

- **अल्फा डाइवर्सिटी (Alpha Diversity):** यह किसी विशेष क्षेत्र या पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर की विविधता है, जिसे सामान्यतः उस क्षेत्र में उपस्थित प्रजातियों की संख्या (species richness) द्वारा मापा जाता है।
- **बीटा डाइवर्सिटी (Beta Diversity):** यह दो पारिस्थितिकी तंत्रों के बीच की विविधता की तुलना है, जिसे प्रजातियों के परिवर्तन की मात्रा से आँका जाता है।
- **गामा डाइवर्सिटी (Gamma Diversity):** यह किसी बड़े क्षेत्र के भीतर पाई जाने वाली कुल विविधता को दर्शाती है। Hunter (2002) के अनुसार, यह भौगोलिक स्तर पर प्रजातीय विविधता का माप है।

# 12.3 जैव विविधता का महत्व

जैसा कि आप जानते हैं, जैव विविधता का नुकसान पारिस्थितिक तंत्रों पर गहरे प्रभाव डाल सकता है क्योंकि प्रजातियों के बीच जटिल परस्पर संबंध होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी एक प्रजाति का विलुप्त होना दूसरी प्रजाति के विलुप्त होने का कारण बन सकता है। जैव विविधता मानव जनसंख्या के जीवन और कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका प्रभाव हमारी सेहत और कृषि तथा जंगली जानवरों से भोजन प्राप्त करने की हमारी क्षमता पर पड़ता है।

## 12.3.1 मानव स्वास्थ्य

कई दवाएँ प्राकृतिक रसायनों से प्राप्त होती हैं जिन्हें विभिन्न जीव उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, कई पौधे ऐसे यौगिक बनाते हैं जो उन्हें कीड़ों और अन्य जानवरों से बचाते हैं जो उन्हें खाते हैं। इन यौगिकों में से कुछ मानव औषधियों के रूप में भी कार्य करते हैं। वे आधुनिक समाज जो भूमि से जुड़े रहते हैं, अक्सर अपने क्षेत्र में उगने वाले पौधों के औषधीय उपयोग का व्यापक ज्ञान रखते हैं। यूरोप में सदियों से पौधों के औषधीय उपयोग के ज्ञान को *हर्बल्स* नामक पुस्तकों में संकलित किया जाता था। मानव ही नहीं, अन्य बड़े वानर जैसे ओरंगुटान, चिंपैंज़ी, बोनोबो और गोरिल्ला को भी औषधीय कारणों से पौधों का उपयोग करते देखा गया है।
आधुनिक औषधि विज्ञान भी पौधों से प्राप्त यौगिकों के महत्व को मान्यता देता है। पौधों से प्राप्त महत्वपूर्ण दवाओं के उदाहरण हैं: एस्पिरिन, कोडीन, डिगॉक्सिन, एट्रोपिन और विनक्रिस्टीन। पहले कई दवाएँ सीधे पौधों से निकाली जाती थीं, लेकिन अब उन्हें संश्लेषित किया जाता है। अनुमान है कि एक समय 25% आधुनिक दवाओं में कम से कम एक पौधे का अर्क होता था। अब यह संख्या घटकर लगभग 10% रह गई है क्योंकि प्राकृतिक पौधों के तत्वों को सिंथेटिक संस्करणों से बदला जा रहा है। एंटीबायोटिक्स, जिन्होंने विकसित देशों में स्वास्थ्य और आयु में असाधारण सुधार किया है, मुख्य रूप से कवक और बैक्टीरिया से प्राप्त होते हैं।
हाल के वर्षों में, पशुओं के विष और ज़हरों पर उनके औषधीय उपयोग की संभावनाओं के लिए गहन शोध हुआ है। 2007 तक, FDA ने पाँच ऐसी दवाओं को मंजूरी दी जो पशु विषों पर आधारित थीं और जिनका उपयोग उच्च रक्तचाप, पुराना दर्द और मधुमेह जैसी बीमारियों के इलाज में किया जाता है। अन्य पाँच दवाएँ क्लिनिकल परीक्षण में थीं और कम से कम छह अन्य देशों में उपयोग की जा रही थीं। इन ज़हरों के स्रोत स्तनधारी, साँप, छिपकली, उभयचर, मछलियाँ, घोंघे, ऑक्टोपस और बिच्छू तक हैं।

इन दवाओं से अरबों डॉलर का मुनाफा तो होता ही है, साथ ही ये लोगों का जीवन भी बेहतर बनाती हैं। दवा कंपनियाँ लगातार नए प्राकृतिक यौगिकों की तलाश में रहती हैं जिन्हें दवा के रूप में उपयोग किया जा सके। अनुमान है कि दवा अनुसंधान और विकास में लगभग एक-तिहाई खर्च प्राकृतिक यौगिकों पर किया जाता है और 1981 से 2002 के बीच बाज़ार में आने वाली लगभग 35% नई दवाएँ इन्हीं पर आधारित थीं।

अंततः, यह भी कहा गया है कि मनुष्य एक जैव विविधता से भरपूर दुनिया में रहकर मानसिक रूप से भी लाभान्वित होता है। इस विचार के प्रमुख समर्थक प्रसिद्ध कीट विज्ञानी ई. ओ. विल्सन हैं। उनका तर्क है कि मानव का विकासात्मक इतिहास हमें प्राकृतिक वातावरण में जीने के लिए अनुकूलित करता है और कृत्रिम वातावरण मनुष्य की सेहत और कल्याण पर तनाव डालते हैं। प्राकृतिक दृश्यों के मानसिक पुनरुद्धारक लाभों पर किए गए शोध इस विचार की पुष्टि करते हैं।

## 12.3.2 कृषि

मानव कृषि की शुरुआत 10,000 वर्ष से अधिक पहले हुई थी और तब से मानव समूह विभिन्न फसलों की किस्मों का प्रजनन और चयन करते आए हैं। यह फसल विविधता, अलग-अलग मानव जनसंख्या की सांस्कृतिक विविधता से मेल खाती थी। उदाहरण के लिए, आलू का पालतूकरण लगभग 7,000 वर्ष पहले पेरू और बोलीविया के मध्य एंडीज़ क्षेत्र में हुआ। इस क्षेत्र में लोग पहाड़ों से अलग-थलग बस्तियों में रहते थे। वहाँ उगने वाले आलू सात प्रजातियों के हैं और उनकी किस्मों की संख्या संभवतः हज़ारों में है। प्रत्येक किस्म को विशेष ऊँचाई, मिट्टी और जलवायु की परिस्थितियों के अनुसार पाला गया है। यह विविधता ऊँचाई के बड़े उतार-चढ़ाव, सीमित मानव गतिशीलता और अलग-अलग खेतों में फसल चक्र की आवश्यकताओं से प्रेरित थी।

आलू कृषि विविधता का केवल एक उदाहरण है। प्रत्येक पौधा, पशु और कवक जिसे मनुष्यों ने उगाया है, अपने जंगली पूर्वजों से पाला गया है और खाद्य मूल्य, उगने की परिस्थितियों के अनुकूलन तथा कीट प्रतिरोध जैसी आवश्यकताओं के अनुसार विविध किस्में विकसित हुई हैं। आलू एक प्रसिद्ध उदाहरण है कि कम फसल विविधता कितनी खतरनाक हो सकती है। दुखद आयरिश आलू अकाल (1845–1852 ई.) के दौरान, आयरलैंड में उगाई जाने वाली एकमात्र आलू की किस्म पर फफूंदी का प्रकोप हुआ और सारी फसल नष्ट हो गई। परिणामस्वरूप अकाल, मौत और बड़े पैमाने पर पलायन हुआ। रोग-प्रतिरोध फसल विविधता बनाए रखने का प्रमुख लाभ है और आज की समकालीन फसलों में विविधता की कमी इसी तरह के खतरे उत्पन्न करती है।

नई किस्में बनाने की क्षमता, उपलब्ध विविध किस्मों और संबंधित जंगली प्रजातियों पर निर्भर करती है। ये जंगली रूप नए जीन संस्करणों का स्रोत होते हैं जिन्हें मौजूदा किस्मों में मिलाकर नई विशेषताएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। यदि फसल से संबंधित जंगली प्रजातियाँ खो जाती हैं तो फसल सुधार की संभावना भी समाप्त हो जाएगी।

1920 के दशक से, सरकारी कृषि विभागों ने बीज बैंकों में फसलों की किस्मों को संरक्षित करना शुरू किया ताकि फसल विविधता बनी रहे। लेकिन इस प्रणाली में खामियाँ हैं क्योंकि दुर्घटनाओं से बीज की किस्में खो सकती हैं और उन्हें वापस पाना असंभव है। 2008 में, नॉर्वे के स्पिट्सबर्गेन द्वीप पर *स्वालबार्ड ग्लोबल सीड वॉल्ट* शुरू किया गया, जहाँ विश्वभर से बीज संग्रहित किए जाते हैं। यदि किसी क्षेत्रीय बीज बैंक में बीज नष्ट

हो जाएँ तो उन्हें स्वालबार्ड से पुनः प्राप्त किया जा सकता है। यह भंडार आर्कटिक द्वीप की चट्टानों के भीतर गहराई में स्थित है, जहाँ का तापमान और नमी बीजों के लंबे समय तक जीवित रहने के लिए उपयुक्त है।

हालाँकि फसलें मुख्यतः हमारे नियंत्रण में हैं, लेकिन उन्हें उगाने की क्षमता उन पारिस्थितिक तंत्रों की जैव विविधता पर निर्भर करती है जहाँ वे उगाई जाती हैं। फसलें मिट्टी में उगती हैं और यद्यपि कुछ कृषि मिट्टियों को कीटनाशक उपचार से बाँझ बना दिया जाता है, अधिकांश मिट्टियों में जीवों की अपार विविधता होती है जो पोषक तत्वों का चक्र बनाए रखती है। ये जीव जैविक पदार्थ को पोषक तत्वों में तोड़ते हैं और मिट्टी की बनावट बनाए रखते हैं जिससे पानी और ऑक्सीजन का संतुलन फसलों की वृद्धि के लिए बना रहता है। इन जीवों का कार्य मानव द्वारा बदलना व्यावहारिक रूप से असंभव है। ऐसे कार्यों को *पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ* कहा जाता है।

भोजन उत्पादन से संबंधित अन्य प्रमुख पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ हैं – पौधों का परागण और फसल कीट नियंत्रण। अनुमान है कि अमेरिका में केवल मधुमक्खी परागण से प्रति वर्ष 1.6 बिलियन डॉलर का लाभ होता है; अन्य परागणकर्ता 6.7 बिलियन डॉलर तक योगदान देते हैं। अमेरिका में 150 से अधिक फसलें परागण पर निर्भर हैं।

लेकिन उत्तर अमेरिका में मधुमक्खी आबादी में भारी गिरावट देखी गई है, जिसे *कॉलोनी कोलैप्स डिसऑर्डर* कहा जाता है। इसके कारण अस्पष्ट हैं। अन्य परागणकर्ताओं में विविध मधुमक्खियाँ, कीट और पक्षी शामिल हैं। यदि ये प्रजातियाँ खो जाती हैं तो परागण-निर्भर फसलें उगाना असंभव हो जाएगा।

अंततः, मनुष्य फसल कीटों (मुख्यतः कीड़ों) के साथ भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा करता है। कीटनाशक इन कीटों को नियंत्रित करते हैं, लेकिन यह महंगे हैं और समय के साथ अप्रभावी हो जाते हैं क्योंकि कीट आबादियाँ अनुकूलन कर लेती हैं। ये कीटनाशक लाभकारी कीटों (जैसे मधुमक्खियों) को भी मारते हैं और किसानों तथा उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को जोखिम में डालते हैं। इसके अलावा, वे खेतों से निकलकर नदियों, झीलों और समुद्र तक के अन्य पारिस्थितिक तंत्रों को भी नुकसान पहुँचा सकते हैं।

पारिस्थितिकीविद मानते हैं कि कीट नियंत्रण का अधिकांश काम वास्तव में प्राकृतिक शिकारी और परजीवी करते हैं। एक समीक्षा लेख में पाया गया कि जिन 74% अध्ययनों ने परिदृश्य की जटिलता (जैसे जंगल और परती खेत) का कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं पर प्रभाव देखा, उनमें जितनी अधिक जटिलता थी, कीट नियंत्रण उतना ही बेहतर था। एक प्रयोगात्मक अध्ययन ने दिखाया कि *पी अफिड्स* (अल्फाल्फा का एक प्रमुख कीट) के कई शत्रुओं को शामिल करने से अल्फाल्फा की पैदावार उल्लेखनीय रूप से बढ़ गई। यह दर्शाता है कि शत्रुओं की विविधता एकल शत्रु से अधिक प्रभावी होती है।

कीट शत्रुओं की विविधता का नुकसान अनिवार्य रूप से भोजन उत्पादन को अधिक कठिन और महँगा बना देगा। बढ़ती हुई विश्व जनसंख्या को भोजन उत्पादन की बढ़ती लागत और अन्य चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

## 12.3.3 जंगली भोजन स्रोत

फसलें उगाने और पालतू पशु पालने के अलावा, मनुष्य जंगली आबादियों से भी भोजन प्राप्त करता है, मुख्यतः जंगली मछलियों से। लगभग एक अरब लोगों के लिए जलीय संसाधन पशु प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। लेकिन 1990 से वैश्विक मत्स्य उत्पादन में गिरावट आई है। बड़े प्रयासों के बावजूद, पृथ्वी पर बहुत कम

मत्स्य पालन सतत रूप से प्रबंधित किए जाते हैं। मत्स्य विलुप्ति शायद ही कभी पूरी प्रजाति के विलुप्त होने तक पहुँचती है, बल्कि यह समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के कट्टर पुनर्गठन का कारण बनती है। इसमें किसी प्रमुख प्रजाति का इतना अधिक दोहन हो जाता है कि वह पारिस्थितिक दृष्टि से एक गौण भूमिका में आ जाती है। मनुष्यों के लिए भोजन स्रोत खोने के अलावा, ये परिवर्तन अन्य कई प्रजातियों को भी प्रभावित करते हैं, जिनके परिणामों की भविष्यवाणी करना कठिन या असंभव होता है। मत्स्य उद्योग का पतन उन स्थानीय मानव समुदायों पर गहरे और दीर्घकालिक प्रभाव डालता है जो इसमें काम करते हैं। इसके अतिरिक्त, उन आबादियों के लिए सस्ता प्रोटीन स्रोत खो जाना, जो इसे बदलने का सामर्थ्य नहीं रखते, जीवन-यापन की लागत बढ़ा देता है और समाज को अन्य तरीकों से भी सीमित करता है। सामान्यतः, मत्स्य पालन से प्राप्त मछलियों में बदलाव आया है बड़ी प्रजातियाँ अत्यधिक शिकार का शिकार हो चुकी हैं और अब छोटे प्रजातियों का अधिक शिकार किया जा रहा है। अंततः, इसका परिणाम जलीय तंत्रों को भोजन स्रोत के रूप में खो देना हो सकता है।

## 12.3.4 जैव विविधता और जंगली खाद्य स्रोत

फसलों की खेती और खाद्य पशुओं को पालने के अलावा, मनुष्य जंगली आबादियों से भी खाद्य संसाधन प्राप्त करते हैं, विशेषकर जंगली मछलियों की आबादी से। लगभग एक अरब लोगों के लिए जलीय संसाधन पशु प्रोटीन का मुख्य स्रोत प्रदान करते हैं। लेकिन 1990 के बाद से वैश्विक मत्स्य उत्पादन में कमी आई है। पर्याप्त प्रयासों के बावजूद, पृथ्वी पर बहुत कम मत्स्य उद्योगों का स्थायी रूप से प्रबंधन किया जाता है। मत्स्य उद्योग का पतन प्रायः किसी प्रजाति के पूर्ण विलुप्त होने का कारण नहीं बनता, बल्कि समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के गहन पुनर्गठन का कारण बनता है। इसमें किसी प्रमुख प्रजाति का इतना अधिक दोहन किया जाता है कि वह पारिस्थितिक दृष्टि से एक गौण भूमिका निभाने लगती है। मनुष्यों के लिए खाद्य स्रोत खोने के अलावा, ये परिवर्तन कई अन्य प्रजातियों को भी प्रभावित करते हैं, जिनके प्रभावों का अनुमान लगाना कठिन या असंभव होता है। मत्स्य उद्योग का पतन उन स्थानीय मानव समुदायों पर गहरा और दीर्घकालिक असर डालता है, जो इस पर कार्य करते हैं। इसके अलावा, सस्ते प्रोटीन स्रोत की हानि उन आबादियों के लिए जीवन-यापन की लागत बढ़ा देती है, जो इसे किसी अन्य स्रोत से बदल पाने में सक्षम नहीं होतीं, और इस प्रकार समाज अन्य तरीकों से भी सीमित हो जाता है। सामान्यतः, मत्स्य उद्योग से प्राप्त मछलियाँ छोटी प्रजातियों की ओर स्थानांतरित हो गई हैं और बड़ी प्रजातियों का अत्यधिक दोहन हो चुका है। अंततः, इसका परिणाम स्पष्ट रूप से यह हो सकता है कि जलीय तंत्र खाद्य स्रोत के रूप में समाप्त हो जाएँ।

## 12.4 भारत और विश्व की जैव विविधता

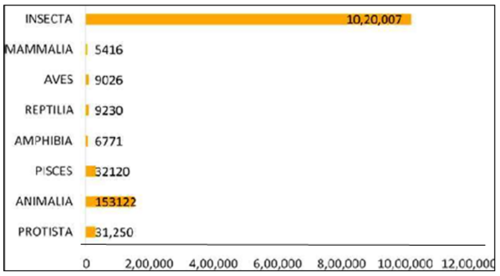

चित्र 2. विश्व की प्रजातियों का वर्गीकरण समूह (Source: Zoological Survey of India, ZSI, 2014)

भारत में 10 प्रमुख जैव-भौगोलिक क्षेत्र (Bio-geographic zones) और 27 जैव-भौगोलिक प्रांत (Bio-geographical

provinces) पाए जाते हैं, जो अपनी विशिष्ट जैविक संरचना के आधार पर विभाजित हैं। प्रत्येक जैविक प्रांत की अपनी अलग वनस्पति और जीव-जंतु संरचना होती है (तालिका 1)। विश्व की भूमि पर लगभग 8.74 मिलियन यूकैरियोट्स (Eukaryotes) प्रजातियाँ पाई जाती हैं और महासागरों में लगभग 2.21 मिलियन यूकैरियोट्स की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भूमि पर लगभग 10,000 प्रोकैरियोट्स (Prokaryotes) प्रजातियाँ और समुद्र में लगभग 1,300 प्रोकैरियोट्स पाई जाती हैं।

दुनिया में लगभग 7.7 मिलियन पशु प्रजातियाँ और 3,00,000 से अधिक पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं (Mora et al., 2011)। इनमें से लगभग 1,399,189 प्रजातियाँ एनिमेलिया (Animalia) जगत की हैं, जबकि भारत में 92,873 प्रजातियाँ इस जगत से संबंधित हैं, जो विश्व का 6.64% है (ZSI, 2014)। दुनिया में लगभग 3,17,950 पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भारत में इनकी संख्या 29,015 है, जो विश्व की कुल पौधों की प्रजातियों का लगभग 9.13% है (BSI, 2013)। भारत और विश्व में कीट (Insecta), स्तनधारी (Mammalia), पक्षी (Aves), सरीसृप (Reptilia), मछलियाँ (Pisces), एनिमेलिया (Animalia), प्रोटिस्टा (Protista) की कुल संख्या चित्र 2 और 3 में दी गई है।

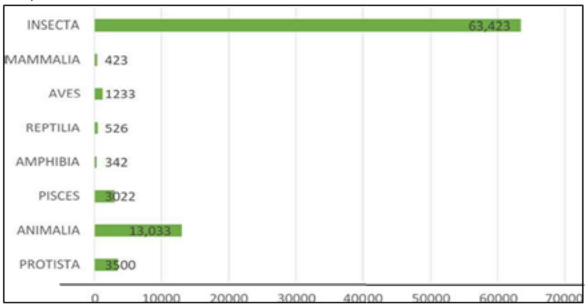


चित्र 3. भारत की वर्गिकी समूह प्रजातियाँ (भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, ZSI, 2014)

भारत में लगभग:

- 7,200 शैवाल (Algae) की प्रजातियाँ
- 2,500 ब्रायोफाइट्स (Bryophytes)
- 1,269 प्टेरिडोफाइट्स (Pteridophytes)
- 75 जिम्नोस्पर्म्स (Gymnosperms)
- 18,000 से अधिक एंजियोस्पर्म्स (Angiosperms) पाई जाती हैं।

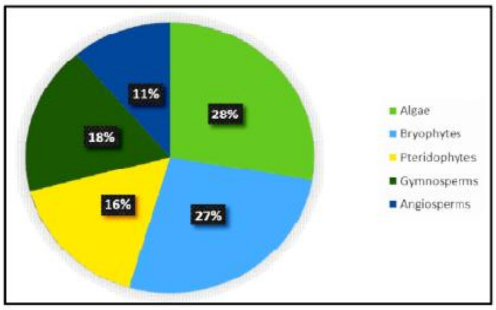


**Fig. 4. Percentage of floral diversity in India (Source: Botanical Survey of India, BSI, 2013).**

भारत में लगभग 9.13% पुष्पीय विविधता (Floral diversity) पाई जाती है और केवल एंजियोस्पर्म्स (Angiosperms) ही कुल पौधों की विविधता का 27% से अधिक योगदान करते हैं (चित्र 4)।

**तालिका 1. भारत में जैव-भौगोलिक क्षेत्रों का वितरण**

| जैव-भौगोलिक क्षेत्र | जैव-भौगोलिक प्रांत |
|---|---|
| अतिहिमालय | लद्दाख पर्वत,तिब्बती पठार, अतिहिमालय: सिक्किम |

| | |
|---|---|
| (Trans-Himalayas) | |
| हिमालय | उत्तर-पश्चिमी हिमालय, पश्चिमी हिमालय, मध्य हिमालय, पूर्वी हिमालय |
| भारतीय मरुस्थल | कच्छ, थार मरुस्थल |
| अर्ध-शुष्क (Semi-arid) | पंजाब के मैदान (अर्ध-शुष्क), गुजरात, राजपुताना |
| पश्चिमी घाट | मालाबार मैदान, पश्चिमी घाट की पर्वत श्रृंखलाएँ |
| दक्कन प्रायद्वीप | मध्य उच्चभूमि, छोटा नागपुर, पूर्वी उच्चभूमि, मध्य पठार, दक्षिणी दक्कन |
| गंगा के मैदान | निचले गंगा के मैदान, ऊपरी गंगा के मैदान |
| तटवर्ती क्षेत्र | पश्चिमी तट, पूर्वी तट, लक्षद्वीप |
| उत्तर-पूर्व भारत | असम के मैदान, शिलांग पठार |
| द्वीप | अंडमान-निकोबार |

**(स्रोत: मिनिस्ट्री ऑफ़ एनवायरनमेंट एंड फॉरेस्ट्स, 2009; सिंह एवं चतुर्वेदी, 2017)**

## 12.5 जैव विविधता के मूल्य

जैव विविधता मानव जाति के पृथ्वी पर अस्तित्व के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने जीवन की लगभग प्रत्येक आवश्यकता जैसे भोजन, ऊर्जा, औषधि, आवास आदि की पूर्ति के लिए जैव विविधता पर निर्भर करता है। जैव विविधता पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है (Dietsch et al., 2016)। यह विभिन्न पारिस्थितिक सेवाएँ प्रदान करती है और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं के संरक्षण, पुनर्स्थापन तथा निरंतरता के लिए अत्यावश्यक है। जैव विविधता जैव-भूरासायनिक चक्रों को बनाए रखने, नदियों व नालों जैसे जल स्रोतों के वर्षभर प्रवाह को बनाए रखने, मृदा निर्माण, बाढ़ नियंत्रण, मृदा अपरदन से बचाव, वायुमंडल में वायु का संचार एवं शुद्धिकरण, पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण तथा सभी जीवों के जीवन-समर्थन में सहायक होती है। निम्नलिखित प्रत्यक्ष एवं परोक्ष मूल्य जैव विविधता के हैं (Seddon et al., 2016)।

### 12.5.1 जैव विविधता के प्रत्यक्ष मूल्य

**(i) उपभोग्य उपयोग मूल्य (Consumptive use value):** उपभोग्य उपयोग से आशय उन संसाधनों के प्रत्यक्ष उपभोग से है जो बिना बाज़ार से गुज़रे सीधे उपयोग में लाए जाते हैं। जैव विविधता प्रत्यक्ष रूप से भोजन, आश्रय, औषधियाँ, प्रोटीन, एंज़ाइम, वसा, सूक्ष्म एवं स्थूल पोषक तत्व, पेय पदार्थ, शैक्षणिक व वैज्ञानिक उद्देश्यों हेतु नमूने, पर्यटन तथा विभिन्न व्यावसायिक कार्यों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है (Thapa et al., 2020)। उदाहरण के लिए, एलोवेरा का औषधीय गुणों के कारण प्रत्यक्ष सेवन किया जाता है, लकड़ी ईंधन हेतु प्रयुक्त होती है और शिकार के बाद जानवरों का प्रत्यक्ष उपभोग किया जाता है।

**(ii) उत्पादक उपयोग मूल्य (Productive use value):** उत्पादक उपयोग मूल्य का संबंध उन वस्तुओं से है जो बाज़ार में बेची जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ जैव विविधता का अध्ययन इसके उत्पादक मूल्यों के लिए करते हैं। कृषि वैज्ञानिक जैव विविधता का उपयोग फसलों की उपज एवं गुणवत्ता में सुधार हेतु करते हैं। जैव प्रौद्योगिकीविद पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों के विभिन्न आनुवंशिक गुणों का अध्ययन करते हैं। जीवों से श्रेष्ठ लक्षण चुनकर नई उन्नत किस्में (रोग प्रतिरोधी एवं अधिक उपज देने वाली) विकसित की जा

सकती हैं। यह बेहतर पशुधन (अधिक पोषण मूल्य एवं तीव्र वृद्धि वाला) विकसित करने में भी सहायक है (Jactel et al., 2018)। औषधि विशेषज्ञ पौधों एवं पशुओं से प्राप्त संसाधनों का उपयोग विभिन्न औषधियों के उत्पादन हेतु कच्चे माल के रूप में करते हैं।

## 12.5.2 जैव विविधता के परोक्ष मूल्य

**(i) सामाजिक मूल्य (Social values):** प्राचीन काल से ही लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जैव विविधता की रक्षा करते रहे हैं। विशेषकर भारत में, लोग विभिन्न पौधों, पशुओं, जल स्रोतों, पत्थरों और पर्वतों की पूजा करते थे क्योंकि वे उनके अस्तित्व में सहायक थे और अत्यंत सम्मानित माने जाते थे। पहले जनसंख्या कम होने के कारण आवश्यकताएँ भी सीमित थीं, इसलिए अधिकांश जैव विविधता संरक्षित रहती थी (Griffiths et al., 2019)। आज भी कई आदिवासी लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से वनों पर निर्भर हैं। अनेक स्वदेशी लोग जैव विविधता के संरक्षण में सहायक होते हैं, क्योंकि वे केवल पुराने वृक्षों की शाखाएँ ही लकड़ी के लिए काटते हैं और युवा वृक्षों की केवल पत्तियाँ ही पशुधन हेतु उपयोग करते हैं। आधुनिक लोग जैव विविधता के संरक्षण के प्रति कम चिंतित हैं। वे केवल अपने स्वार्थ की परवाह करते हैं और जितना संभव हो उतना एक साथ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जिससे कभी-कभी अपूरणीय क्षति हो जाती है (Evers et al., 2018)।

**(ii) नैतिक एवं चारित्रिक मूल्य (Ethical and moral values):** जैव विविधता का संरक्षण करना मानव जाति का नैतिक दायित्व है। यह पृथ्वी इस संसार की प्रत्येक प्रजाति की है और मनुष्यों को यह अधिकार नहीं है कि वे किसी प्रजाति को केवल इसलिए हानि पहुँचाएँ क्योंकि वह उनके लिए उपयोगी नहीं है। नैतिक मूल्य जैव विविधता के संरक्षण से जुड़े हैं, जैसे— पशु तस्करी, अवैध गतिविधियाँ जैसे क्लोनिंग, जानवरों के साथ अमानवीय व्यवहार, जैव चोरी (biopiracy), अनधिकृत पशु परीक्षण, शिकार, मरुस्थलीकरण और अनियंत्रित वनों की कटाई (Antonelli एवं Perrigo, 2018)। लेकिन जनसंख्या विस्फोट के कारण संसाधनों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए लाभ को नैतिकता और चारित्रिक मूल्यों से अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

**(iii) सौंदर्यात्मक मूल्य (Aesthetic values):** जैव विविधता हमारी पृथ्वी की सुंदरता का रहस्य है। विभिन्न प्रकार के पौधे, पशु, फूल और पक्षी महान सौंदर्यात्मक मूल्य प्रदान करते हैं। इससे जुड़ी कई मनोरंजनात्मक गतिविधियाँ हैं, जैसे पक्षी अवलोकन, तितली उद्यान, रिवर राफ्टिंग, राष्ट्रीय उद्यान, एक्वेरियम और वनस्पति उद्यान (Collins et al., 2017)।

**(iv) आर्थिक मूल्य (Economic values):** जैव विविधता का अत्यधिक आर्थिक महत्व है। भोजन, जो मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, जैव विविधता की ही उपज है। कृषि क्षेत्र तथा विभिन्न उद्योग जैव विविधता उत्पादों पर निर्भर हैं। जैव विविधता उत्पादों से उत्पन्न राजस्व किसी भी देश की प्रगति के लिए अत्यावश्यक है (Hanley et al., 2015)।

**(v) वैज्ञानिक मूल्य (Scientific values):** पौधों, पशुओं, कीटों आदि की कई प्रजातियों पर विभिन्न शोध कार्य किए जा चुके हैं और ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई कार्य अभी शेष हैं। यह वैज्ञानिक ज्ञान उन कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है जो मानव जाति के लिए अत्यंत मूल्यवान हैं (Titley et al., 2017)। COVID-19 महामारी के दौरान हमने जैव विविधता संरक्षण के कई सबक सीखे। COVID-19 परीक्षण में प्रयुक्त एक एंज़ाइम *Thermus aquaticus* नामक जीवाणु से प्राप्त होता है, जिसे अमेरिका के येलोस्टोन नेशनल पार्क के एक गीजर में खोजा गया था (Buchanan, 2021)।

# 12.6 जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र का कार्यकरण

जिस प्रकार हम किसी जीव की संरचना और कार्यप्रणाली को समझने के लिए उसकी बाह्य एवं आंतरिक आकृति-विज्ञान (morphology) तथा शरीर-क्रिया विज्ञान (physiology) का अध्ययन करते हैं, उसी प्रकार हम पारिस्थितिकी तंत्र को भी उसकी संरचनात्मक एवं क्रियात्मक विशेषताओं—सभी सजीव (जैविक) और निर्जीव (अजैविक) घटकों का अध्ययन करके समझ सकते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र के निरंतर संचालन हेतु इसके संरचनात्मक एवं क्रियात्मक गुणों का आपसी संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है, और इनका एकीकृत अध्ययन हमें पारिस्थितिकी तंत्र की गतिकी की पूर्ण अवधारणा प्रदान करता है। एक पारिस्थितिकी तंत्र का अपना एक कार्य होता है; इसकी प्रत्येक इकाई कोई विशेष कार्य करती है, और जब सभी इकाइयों के कार्यों को जोड़ा जाता है, तो यह पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के कार्य को परिभाषित करता है। यहाँ *कार्य* का अर्थ है गतिविधि प्रदर्शित करना, न कि यह कि जीव जानबूझकर पारिस्थितिकी-स्तरीय प्रक्रियाओं में कोई उद्देश्यपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र का कार्यकरण पौधों, पशुओं और सूक्ष्मजीवों की सामूहिक जीवनगत गतिविधियों तथा उन गतिविधियों (भोजन करना, बढ़ना, चलना, अपशिष्ट उत्सर्जन आदि) के उनके परिवेश की भौतिक और रासायनिक दशाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को दर्शाता है। एक सक्रिय पारिस्थितिकी तंत्र अपनी प्रकारानुसार विशिष्ट जैविक और रासायनिक गतिविधियाँ प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए, एक कार्यशील वन पारिस्थितिकी तंत्र में पौध उत्पादन की दर, कार्बन का भंडारण, और पोषक तत्वों का चक्रण उन अधिकांश वनों के लिए विशिष्ट होते हैं। यदि उस वन को कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र (agroecosystem) में बदल दिया जाए, तो उसका कार्यकरण बदल जाता है।

"पारिस्थितिकी तंत्र का कार्य" की अवधारणा एक ऐसे दृष्टिकोण पर आधारित है जो पूरे तंत्र और उसमें प्रत्येक घटक द्वारा निभाई गई भूमिकाओं पर केंद्रित है। हालाँकि, पारिस्थितिकी तंत्र के कार्यकरण की यह धारणा सामाजिक हितों तक भी विस्तारित होती है। Giller इत्यादि (2004) ने पारिस्थितिकी तंत्र के कार्यकरण को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है—

1. **पारिस्थितिकी तंत्र प्रक्रियाएँ (Ecosystem processes)**
2. **पारिस्थितिकी तंत्र गुणधर्म (Ecosystem properties)**
3. **पारिस्थितिकी तंत्र मूल्य (Ecosystem values)** (जो वस्तुओं और सेवाओं से मिलकर बनते हैं)।

उदाहरण के लिए, झील पारिस्थितिकी तंत्र का कार्य उन प्रक्रियाओं और कारणात्मक संबंधों से संबंधित होता है जो एक पारिस्थितिक तंत्र को उत्पन्न करते हैं इसमें जीवों की भूमिकाएँ, विभिन्न प्रजातियों के जीवों के बीच अंतःक्रियाएँ, तंत्र को बनाए रखने वाली समग्र प्रक्रियाएँ, विभिन्न जनसंख्याओं की दीर्घकालिक गतिकी, पूरे

तंत्र का कुल जैवभार, उसमें ऊर्जा एवं पोषक तत्वों का प्रवाह, और अंततः वे सेवाएँ भी शामिल हैं जो यह मनुष्यों या अन्य जीवों को प्रदान करता है।

## 12.6.1 ऊर्जा प्रवाह

एक पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों, पशुओं और उनके पर्यावरण के बीच निरंतर अंतःक्रिया होती है, जिसके परिणामस्वरूप पदार्थों का उत्पादन और आदान-प्रदान होता है। इन पदार्थों के चक्रण हेतु आवश्यक ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है। हरे पौधे, जिन्हें उत्पादक या स्वपोषी (autotrophs) कहा जाता है, सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं। इस संग्रहीत रूप में ऊर्जा को अन्य जीव ग्रहण करते हैं और आगे अन्य जीवों तक पहुँचाते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान कुछ मात्रा में ऊर्जा जीवित तंत्र से बाहर भी नष्ट हो जाती है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को ऊर्जा का प्रवाह कहा जाता है। किसी भी आयाम का पारिस्थितिकी तंत्र हो सकता है, जहाँ जैविक और अजैविक तंत्र ऊर्जा के निरंतर प्रवाह में शामिल रहते हैं। एक पारिस्थितिकी तंत्र में कार्यात्मक प्रक्रियाएँ उसकी संरचना से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती हैं और इसके विपरीत भी। उदाहरण के लिए, ऊर्जा का प्रवाह पारिस्थितिकी तंत्र की पोषण श्रृंखला या आहार संरचना (trophic structure) पर आधारित होता है:

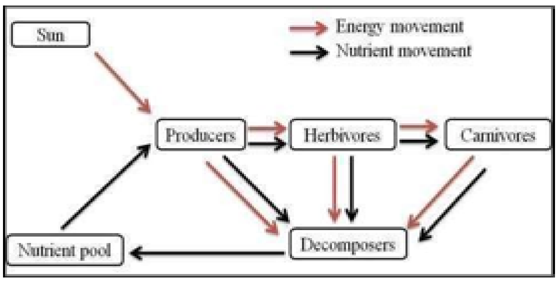


**चित्र 5.** पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा और पोषक तत्वों की गति का एक सांकेतिक निरूपण। ऊर्जा का प्रवाह **एकदिशीय और गैर-चक्रीय** होता है, जबकि पोषक तत्वों की गति **चक्रीय** होती है।

**उत्पादक (Producers):** पौधे

**उपभोक्ता (Consumers):** शाकाहारी, मांसाहारी और सर्वाहारी

**अपघटक (Decomposers):** सूक्ष्मजीव

ऊर्जा सूर्य से प्राथमिक उत्पादकों तक, वहाँ से शाकाहारियों तक और फिर विभिन्न स्तरों के मांसाहारियों तक प्रवाहित होती है। इसे सामान्यतः पारिस्थितिकी तंत्र के **पोषण स्तर** (trophic levels)/पोषण संरचना (trophic structure) कहा जाता है। ऊर्जा का

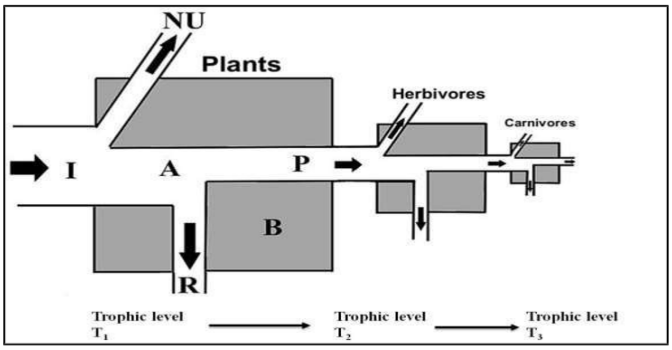


Fig. 6. An expanded three link energy food chain (1. Plants, 2. Herbivores, and 3. Carnivores) illustrating the relationship between food flow diagrams and energy transfer. The transfer of energy becomes degraded, dispersed, and diminished as the energy within a food chain flows from one trophic level to the other. Abbreviations: I=input, A=assimilation, R=respiration, NU=not utilized, P=production, B=biomass (Source:https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/c/c5/EnergyFlowTransformity.jpg)

प्रवाह एकदिशीय (unidirectional) और गैर-चक्रीय (non-cyclic) होता है (चित्र 5)।

एक ऊर्जा प्रवाह मॉडल अथवा ऊर्जा प्रवाह आरेख पोषण स्तरों का ऐसा निरूपण है, जिसमें यह दर्शाया जाता है कि प्रत्येक स्तर पर ऊर्जा के अंतरण के दौरान कितनी ऊर्जा प्रवेश करती है और कितनी नष्ट हो जाती है (चित्र 6)। इस प्रकार का मॉडल सबसे पहले 1942 में लिंडेमैन (Lindeman) ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने यह मान्यता दी थी कि पौधों और जानवरों को पोषण स्तरों में वर्गीकृत किया जा सकता है और ऊर्जा के एक पोषण स्तर से दूसरे तक जाने की प्रक्रिया पर ऊष्मागतिकी (thermodynamics) के नियम लागू होते हैं।

रेमंड लिंडेमैन (1942) के अनुसार "दस प्रतिशत नियम (Ten Percent Law)": जब ऊर्जा का अंतरण एक पोषण स्तर/संरचना (trophic level/structure) से दूसरे पोषण स्तर पर होता है, तो केवल लगभग 10 प्रतिशत ऊर्जा ही उपयोग में आती है। शेष ऊर्जा अंतरण के दौरान नष्ट हो जाती है, श्वसन (respiration) में टूटकर खर्च होती है, अथवा उच्चतर पोषण स्तरों में अधूरी पाचन प्रक्रिया के कारण खो जाती है।

ऊर्जा के "सार्वभौमिक मॉडल" (universal model) में, किसी व्यक्तिगत जीव अथवा प्रजाति की जनसंख्या में ऊर्जा के वितरण को जीवित संरचना या जैवभार (biomass) को एक बॉक्स के रूप में दर्शाया जाता है (चित्र 7)।

- ग्रहण की गई ऊर्जा (Ingested energy) - I **:** स्वपोषी (autotrophs) के मामले में यह प्रकाश है और परपोषी (heterotrophs) के मामले में यह भोजन है।
- समाहित ऊर्जा (Assimilated energy) - A **:** यह वह भाग है जो जीव द्वारा उपयोग के लिए ग्रहण कर लिया जाता है।
- अनुपयोगी ऊर्जा (Non-usable energy) -NU **:** यह वह भाग है जिसे जीव बाहर निकाल देता है।

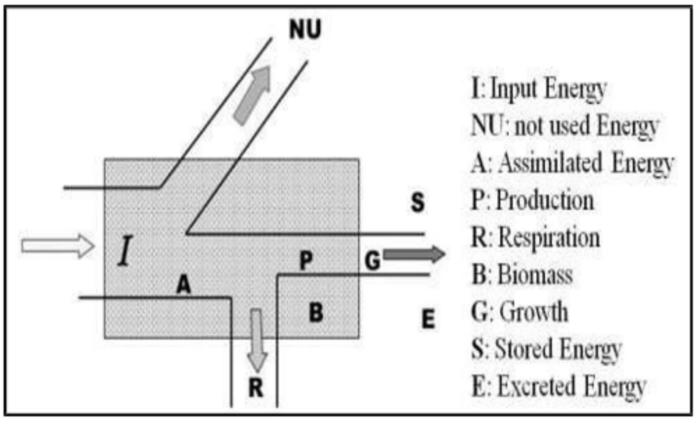


Fig. 7. A "universal" model of energy flow in a generalized ecosystem (based on Odum 1963). I = input or ingested energy; NU = not utilized energy; A = assimilated energy; P = production; R = respiration; B = biomass; G = growth; S = stored energy; E = excreted energy

समाहित ऊर्जा (A) का एक बड़ा हिस्सा श्वसन (Respiration, R) में उपयोग करना आवश्यक होता है, जिससे शरीर को कार्यशील और मरम्मत योग्य बनाए रखने के लिए अस्तित्व ऊर्जा (existence energy) प्राप्त हो। ऊर्जा का एक भाग वृद्धि और प्रजनन (Production, P) के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जबकि एक अन्य भाग संचय (Storage, S) के रूप में रखा जा सकता है ताकि आगे ऊर्जा की आवश्यकता होने पर उसका उपयोग किया जा सके। P और R के बीच ऊर्जा का विभाजन किसी भी व्यक्तिगत जीव और प्रजाति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

प्राथमिक उत्पादक (Primary producers) सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को भोजन के रूप में रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं। इससे दो प्रमुख प्रकार के ऊर्जा भंडार (energy pools) निर्मित होते हैं—

1. **सजीव कार्बनिक पदार्थ (Living organic matter)**-पौधों का जैवभार (plant biomass)
2. **निर्जीव कार्बनिक पदार्थ (Non-living organic matter)**-पौधों का अवशिष्ट या अपशिष्ट (plant detritus)

ये दोनों ऊर्जा भंडार ऊर्जा अंतरण के दो प्रमुख मार्गों (pathways) का आधार बनाते हैं (चित्र 8)।

- **जैवभक्षी अथवा चराई मार्ग (Biophagic or grazing pathway):** इसमें शाकाहारी जीव (herbivores) सीधे जीवित कार्बनिक पदार्थ का उपभोग करते हैं।
- **अपघटन अथवा सप्रोभक्षी मार्ग (Detritus or saprophagic pathway):** इसमें अपशिष्ट (detritus) को अपघटक जीव (detritivores या saprovores) उपभोग करते हैं।

जैवभक्षी मार्ग का अनुसरण करने वाले जीव पारिस्थितिकी तंत्र के जैवभक्षी उपतंत्र (biophagic subsystem) का निर्माण करते हैं, जबकि अपघटन मार्ग का अनुसरण करने वाले जीव अपघटन उपतंत्र (decomposition subsystem) का निर्माण करते हैं।

सभी परपोषी जीव (heterotrophic organisms), जो भोजन के लिए स्वपोषियों (प्राथमिक उत्पादकों) पर निर्भर होते हैं, द्वितीयक उत्पादक (secondary producers) कहलाते हैं। इनके द्वारा संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ को द्वितीयक उत्पादन (secondary production) कहा जाता है।

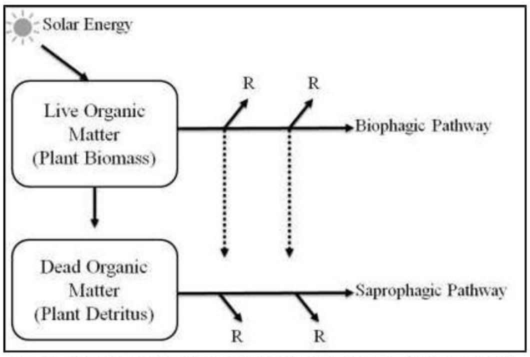

Fig. 8. Energy pools and associated pathways of energy transfer

## 12.6.2 भोजन श्रृंखला और भोजन जाल

अत्यधिक संख्या में सूक्ष्म फाइटोप्लवक (phytoplankton) और अन्य मैक्रोफाइट्स (macrophytes) ऊर्जा के स्थिरीकरण का प्राथमिक कार्य करते हैं। ये प्राथमिक उत्पादक (primary producers) शाकाहारियों द्वारा खाए जाते हैं, जिन्हें आगे विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में मांसाहारी या शिकारी खाते हैं। पौधों द्वारा स्थिर की गई ऊर्जा का, जीवों की एक श्रृंखला के माध्यम से—जहाँ एक जीव दूसरे को खाता है और स्वयं किसी अन्य द्वारा खाया जाता है—स्थानांतरण भोजन श्रृंखला (food chain) कहलाता है। भोजन श्रृंखला का एक विशिष्ट उदाहरण घासभूमि पारिस्थितिक तंत्र (grassland ecosystem) में देखा जा सकता है, जैसा कि चित्र 9 में दर्शाया गया है।

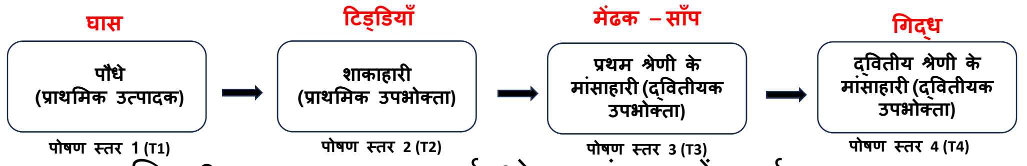

चित्र 9. एक सामान्य चराई भोजन श्रृंखला में ऊर्जा का प्रवाह

हालाँकि, भोजन संबंध इतने सरल नहीं होते; बल्कि वे जटिल होते हैं। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में जीवों के बीच पोषण संबंध (trophic relationship) हमेशा सरल श्रृंखला के रूप में नहीं होते, बल्कि एक जटिल जाल का निर्माण करते हैं। यह जाल-सदृश पोषण संबंध भोजन जाल (food web) कहलाता है। चूँकि प्रत्येक पोषण स्तर (trophic level) में कई प्रजातियाँ हो सकती हैं, ऐसे जीव जो एक ही प्रकार के जीवों पर भोजन करते हैं और स्वयं को खाने वाले भी समान जीव होते हैं, उन्हें ट्रॉफिक प्रजाति (trophic species) कहा जाता है (Briand और Cohen, 1984)। भोजन जाल का विश्लेषण पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता (ecosystem dynamics) को समझने में महत्वपूर्ण है, विशेषकर सीमित यूरीफैगी (limited euryphagy) और यूरीफैगस (euryphagous) प्राथमिक एवं द्वितीयक उपभोक्ताओं के संदर्भ में (चित्र 10)।

Paine (1980) के अनुसार भोजन जाल के तीन प्रकार दर्शाए जा सकते हैं:

1. **संपर्क भोजन जाल (connectedness webs)** – 'कौन किसे खाता है' की अवधारणा पर आधारित, जो आहार संबंधों पर ज़ोर देता है।
2. **ऊर्जा प्रवाह भोजन जाल (energy flow food webs)** – जहाँ भोजन जाल में ऊर्जा के प्रवाह का अनुमान लगाया जाता है और संसाधन एवं उपभोक्ता के बीच ऊर्जा प्रवाह को मापा जाता है।
3. **कार्यात्मक भोजन जाल (functional food webs)** – प्रजातियों के समुदाय की संरचना पर प्रभाव के आधार पर विकसित किया गया।

भोजन जाल को अन्य प्रकारों में भी वर्णित किया गया है:

- **स्रोत जाल (source webs)**: वे जीव जिन्हें एक या अधिक प्रकार के जीव खाते हैं, उनके शिकारी और आगे के संबंध।
- **सिंक जाल (sink webs)**: वे जीव जो एक या अधिक प्रकार के जीवों को खाते हैं, उनके शिकार और आगे की कड़ियाँ (अवरोही पोषण स्तरों पर)।
- **समुदाय जाल (community webs)**: परिभाषित आवास क्षेत्र में प्रजातियों के एक समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं।

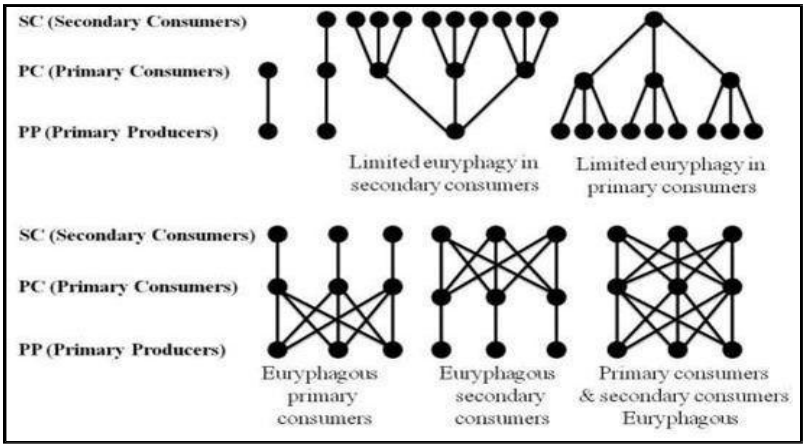


**चित्र 10. पारिस्थितिक तंत्र में भोजन श्रृंखलाओं और भोजन जालों का परस्पर जुड़ा हुआ नेटवर्क**

## 12.6.3 पारिस्थितिकी पिरामिड

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में प्राथमिक उत्पादकों (primary producers), प्रथम और द्वितीय स्तर के उपभोक्ताओं (consumers) तथा शीर्ष मांसाहारियों (top carnivores) की संख्या, जैव-भार (biomass) और ऊर्जा सामग्री के बीच एक संबंध पाया जाता है। इन संबंधों को आरेखात्मक रूप में दर्शाया जाता है, जिन्हें पारिस्थितिकी पिरामिड कहा जाता है।

पारिस्थितिकी पिरामिड तीन प्रकार के होते हैं—

1. संख्या का पिरामिड (Pyramid of Numbers)
2. जैव-भार का पिरामिड (Pyramid of Biomass)
3. ऊर्जा अथवा उत्पादकता का पिरामिड (Pyramid of Energy or Productivity)

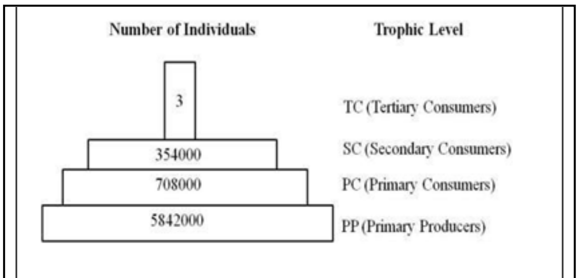

चित्र 11 घासभूमि पारितंत्र में संख्या का पिरामिड

संख्या और जैव-भार के पिरामिड सीधे (upright), उल्टे (inverted) या किसी अन्य आकार के हो सकते हैं, किंतु ऊर्जा का पिरामिड सदैव सीधा (upright) अथवा त्रिकोणीय आकार का होता है। **संख्या का पिरामिड** वह होता है जिसमें प्रत्येक पोषण स्तर (trophic level) पर उपस्थित जीवों की संख्या प्रति इकाई क्षेत्रफल गिनी जाती है और उसे आरेख में अंकित किया जाता है (चित्र 11)।

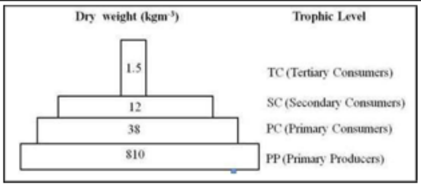

चित्र 12 घासभूमि पारितंत्र में जैव-भार का पिरामिड

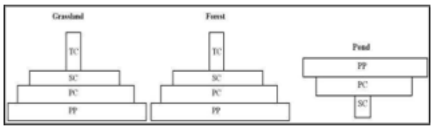

चित्र 13 विभिन्न पारितंत्रों (Ecosystems) में जैव-भार का पिरामिड

**जैव-भार का पिरामिड** वह है जिसमें प्रत्येक पोषण स्तर पर उपलब्ध कुल जैव-भार को सूखे भार (dry weight) या कैलोरी मान (caloric value) प्रति इकाई क्षेत्रफल के रूप में मापा और अंकित किया जाता है (चित्र 12 और 13)।

**ऊर्जा अथवा उत्पादकता का पिरामिड** वह है जिसमें प्रत्येक पोषण स्तर पर प्रति इकाई समय ऊर्जा प्रवाह को मापा और आरेखित किया जाता है (चित्र 14)।

ऊर्जा प्रवाह का पिरामिड अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह पोषण स्तरों के बीच वास्तविक क्रियात्मक संबंधों को दर्शाता है। ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम (second law of thermodynamics) यह बताता है कि उत्पादक स्तर से उच्चतर पोषण स्तरों की ओर ऊर्जा प्रवाह क्रमशः घटता जाता है। परिणामस्वरूप ऊर्जा का पिरामिड सदैव एक विशिष्ट सीधा त्रिकोणीय आकार ग्रहण करता है, जो ऊर्जा या

उत्पादकता में क्रमिक कमी को दर्शाता है। हालाँकि ऊर्जा के पिरामिड का आकार जीवों के आकार या उनके उपापचय (metabolism) की दर से प्रभावित नहीं होता, लेकिन संख्या और जैव-भार के पिरामिड प्रभावित हो सकते हैं।

कभी-कभी पशुओं का प्रति इकाई क्षेत्रफल पर जैव-भार पौधों से अधिक हो सकता है, किंतु उनकी उत्पादन दर (production per unit time per unit area) पौधों की तुलना में कहीं कम होती है। ऊर्जा पिरामिड, पारिस्थितिकी तंत्र में पोषण स्तरों का एक दृश्य प्रस्तुतिकरण है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा विभिन्न पोषण स्तरों से होकर पूरे पारिस्थितिकी तंत्र में प्रवाहित होती है। लगभग 10% ऊर्जा ही एक पोषण स्तर से अगले स्तर तक स्थानांतरित होती है, जिसके कारण अत्यधिक बड़ी संख्या में पोषण स्तरों का निर्माण संभव नहीं हो पाता (चित्र 14 देखें)। इसलिए पिरामिड के निचले स्तर पर अधिक मात्रा में जैव-भार का होना आवश्यक है ताकि उच्चतर पोषण स्तरों की ऊर्जा और जैव-भार की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके (चित्र 15 देखें)

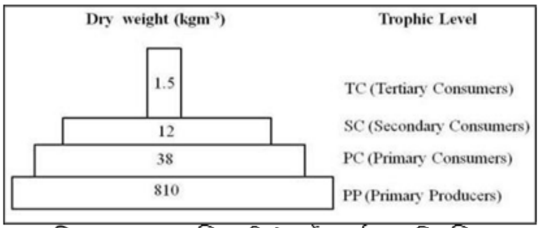


चित्र 14. घासभूमि पारितंत्र में ऊर्जा का पिरामिड

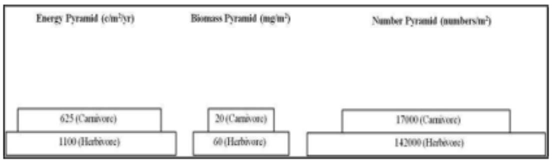


चित्र 15. मिशिगन के एक पुराने क्षेत्र में ऊर्जा, जैव-भार और संख्या के पिरामिड की तुलना (ओडम 1971 से संशोधित

## 12.6.4 पोषक चक्रण

परिस्थितिक तंत्रों (ecosystems) में दो प्रक्रियाएँ एक साथ चलती हैं ऊर्जा का एकदिशीय प्रवाह और पोषक तत्त्वों का चक्रण। जीवन का निर्वाह केवल ऊर्जा पर ही नहीं बल्कि उन प्रमुख तत्त्वों की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है, जो विभिन्न जीवन प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक होते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय और गैर-चक्रीय होता है, जबकि पोषक तत्त्वों का संचलन चक्रीय होता है। प्रकाश-संश्लेषण (photosynthesis) के दौरान प्रकाश ऊर्जा का रासायनिक ऊर्जा में रूपांतरण होता है और विभिन्न अकार्बनिक तत्त्व तथा यौगिक उत्पादकों (producers) के प्रोटोप्लाज़्म में सम्मिलित हो जाते हैं। इनमें मुख्यतः प्रकाश-संश्लेषण अभिक्रिया के प्रत्यक्ष घटक – कार्बन डाइऑक्साइड, जल – तथा प्रोटोप्लाज़्मिक संश्लेषण के लिए आवश्यक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर, मैग्नीशियम (मैक्रोन्यूट्रिएंट्स) और थोड़ी मात्रा में आवश्यक अन्य पोषक तत्व (माइक्रोन्यूट्रिएंट्स) शामिल होते हैं। जब हरे पौधों का उपभोग शाकाहारी जीव करते हैं, तो न केवल कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन के रूप में संग्रहीत रासायनिक ऊर्जा उन तक पहुँचती है, बल्कि पोषक तत्त्व भी स्थानांतरित होते हैं। इसी प्रकार, ऊर्जा और पोषक तत्त्व शाकाहारी जीवों से मांसाहारी जीवों तक तथा विभिन्न आहार स्तरों (trophic levels) से अपघटक जीवों (decomposers) तक पहुँचते हैं। इस प्रकार, ऊर्जा और पोषक तत्त्वों का प्रवाह एक पारिस्थितिकी तंत्र में समानांतर रूप से चलता है।

हालाँकि, भोजन श्रृंखला में ऊर्जा क्रमशः कम होती जाती है, परंतु पोषक तत्त्व घटते नहीं हैं। अंततः पोषक तत्त्वों वाला प्रोटोप्लाज़्म अपघटन (decomposition) की प्रक्रिया से गुजरता है, जिससे पोषक तत्त्व पर्यावरण में मुक्त होते हैं और पुनः उपयोग तथा पुनर्चक्रण (recycling) के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। पोषक चक्रण की प्रकृति किसी पारिस्थितिकी तंत्र में भौतिक, रासायनिक और जैविक कारकों की अंतःक्रिया से गहराई से जुड़ी होती है।

चूँकि पारिस्थितिकी तंत्र खुले तंत्र (open systems) होते हैं, वे इनपुट और आउटपुट की प्रणाली के माध्यम से विभिन्न जैव-भू-रासायनिक प्रक्रियाओं (biogeochemical processes) में भाग लेते हैं। व्यापक रूप से, एक पारिस्थितिकी तंत्र में दो आपस में संबंधित पोषक बजट प्रणालियाँ होती हैं:

- **तंत्र-आधारित (intra-system) पोषक चक्रण**
- **बाह्य-तंत्र (extra-system) पोषक स्थानांतरण** (चित्र 16)।

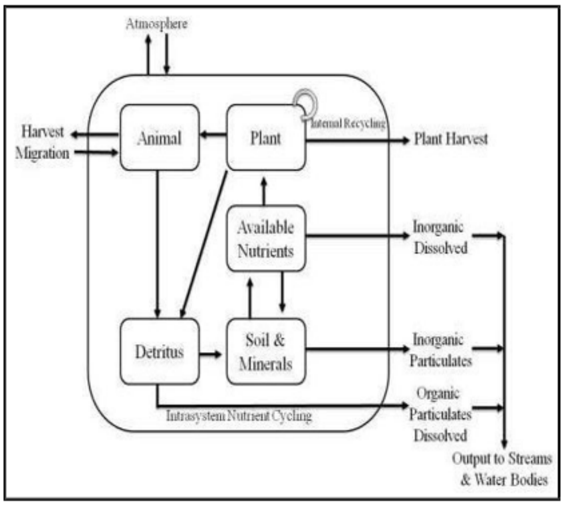


चित्र 16. प्रणाली के भीतर पोषक तत्व चक्रण तथा प्रणाली के बाहर पोषक तत्व स्थानांतरण का एक सामान्यीकृत मॉडल

तंत्र-आधारित चक्रण का संबंध किसी पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक और अजैविक घटकों के बीच पोषक तत्त्वों के संचलन से होता है। इसमें विभिन्न आहार स्तरों पर इनपुट और आउटपुट तथा भंडारों और अवसादों (sediments) के बीच आदान-प्रदान शामिल होता है। दूसरी ओर, बाह्य-तंत्र स्थानांतरण का संबंध किसी पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य पारिस्थितिकी तंत्रों के साथ इनपुट और आउटपुट से होता है।

## 12.6.5 उत्पादकता (Productivity)

दर ((rate), ऊर्जा का पिरामिड एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक। हरे पौधों द्वारा ऊर्जा के स्थिरीकरण (fixation) की दर, किसी निश्चित क्षेत्र में निश्चित समयावधि के भीतर सरल अकार्बनिक पदार्थों से कार्बनिक पदार्थ के उत्पादन की दर को नियंत्रित करती है। इस ऊर्जा स्थिरीकरण की दर तथा उससे उत्पन्न कार्बनिक बायोमास में वृद्धि को प्राथमिक उत्पादकता (Primary Productivity) कहा जाता है।अतः, प्राथमिक उत्पादकता को पौधों द्वारा प्रकाश ऊर्जा (radiant energy) को कार्बनिक पदार्थों के रूप में स्थिर करने तथा उसके बाद शाकाहारी, मांसाहारी एवं अपघटक (detritivores) द्वारा उस स्थिर ऊर्जा के उपयोग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

सामान्य रूप से, किसी निश्चित क्षेत्र में, निश्चित समयावधि में पौधों द्वारा स्थिर की गई कुल ऊर्जा को सकल प्राथमिक उत्पादकता (Gross Primary Productivity - GPP) कहा जाता है। इस ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पौधों के श्वसन (respiration) में चयापचय क्रियाओं (metabolic activities) के लिए

मुक्त हो जाता है। इसलिए, शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता (Net Primary Productivity - NPP) सकल उत्पादकता से कम होती है, क्योंकि इसमें पौधों के श्वसन द्वारा हुई ऊर्जा हानि को घटाकर शेष ऊर्जा का भंडारण (कार्बनिक पदार्थों के रूप में) व्यक्त किया जाता है।

उत्पादकों (Producers) से स्थिर ऊर्जा का एक हिस्सा परपोषी जीवों (heterotrophs) को स्थानांतरित होता है, जो जीवित पदार्थ खाते हैं, जबकि शेष ऊर्जा मृत कार्बनिक पदार्थ (detritus) के भंडार में बदल जाती है, जिसे वे परपोषी जीव उपयोग करते हैं जो मृत कार्बनिक पदार्थ पर निर्भर रहते हैं।

भोजन-जाल (food web) में पारिस्थितिक उत्पादकता एक पिरामिडनुमा संरचना में दिखाई देती है। सामान्यतः पौधे भोजन-जाल की कुल उत्पादकता का 90% से अधिक योगदान करते हैं, शाकाहारी अधिकांश शेष भाग का, और मांसाहारी 1% से भी कम।

प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) के दौरान ऊर्जा स्थिरीकरण की दर और मात्रा कई कारकों से प्रभावित होती है, जैसे:

- प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक मूलभूत रासायनिक घटकों (जल, पोषक तत्व, घुले हुए पदार्थ आदि) की उपलब्धता,
- भौतिक एवं जैविक कारकों में दैनिक और मौसमी परिवर्तन,
- किसी पारिस्थितिकी तंत्र में प्रजातियों की विविधता आदि।

इन कारकों की उपलब्धता में अंतर के कारण, विश्व के विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में उत्पादकता की मात्रा में भी बड़ा अंतर पाया जाता है।

एक सतत (sustainable) पारिस्थितिकी तंत्र संसाधनों के उपभोग और उत्पादन के बीच संतुलन पर आधारित होता है। इसके विपरीत, संसाधनों का असतत (unsustainable) उपयोग लंबे समय में उत्पादकता को कम करता है और पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित कर देता है।

## 12.7 जैव विविधता का आकलन

प्रजातियों या जनसंख्या स्तर पर जैव विविधता के मापन का उद्देश्य किसी परिदृश्य में उपस्थित प्रजातियों की संख्या तथा उनकी आपेक्षिक प्रचुरता का एक सूचकांक प्राप्त करना होता है। इस खंड में हम जैव विविधता को जैविक संगठन के तीन स्तरों पर मापने के उपायों का अध्ययन करेंगे:

1. प्रजाति के भीतर / आनुवंशिक (genetic) स्तर
2. प्रजाति स्तर
3. पारितंत्र (ecosystem) स्तर

अधिकांश वर्गीकरणों की तरह, जैव विविधता के विभिन्न स्तरों पर मापन तकनीकों के बीच कुछ अंशों में समानता होगी।

### 12.7.1 जैव विविधता मापने के कारक

जैव विविधता को अलग–अलग तरीकों से मापा जा सकता है। विविधता को मापते समय मुख्यतः दो कारक ध्यान में रखे जाते हैं: **समृद्धि (richness)** और **समानता (evenness)**।

(A) विविधता मापने का अर्थ

(i) पैमाने (Scales)

(ii) समृद्धि (Richness)

(iii) समानता (Evenness)

(iv) विविधता (Diversity)

**(i) पैमाने (Scales)**

(a) अल्फा विविधता (Alpha Diversity): किसी विशेष क्षेत्र, समुदाय या पारितंत्र के भीतर की विविधता।

(b) बीटा विविधता (Beta Diversity): विभिन्न आवासों (habitats) के बीच की विविधता का अभिव्यक्ति।

(c) गामा विविधता (Gamma Diversity): किसी क्षेत्र के भीतर विभिन्न पारितंत्रों की कुल विविधता का मापन।

**(ii) प्रजाति समृद्धि (Species Richness)**

- किसी आवास (habitat) में विभिन्न प्रजातियों की संख्या।
- जितनी अधिक प्रजातियाँ, उतना ही अधिक समृद्ध आवास।

**(iii) प्रजाति समानता (Species Evenness)**

(a) किसी वातावरण में प्रत्येक प्रजाति की संख्या कितनी निकट (लगभग बराबर) है, इसका संदर्भ।

(b) समुदाय में प्रजातियों के बीच प्रचुरता (abundance) की समानता।

(c) समुदाय की प्रजातियों के बीच समानता (equitability) का मापन।

किसी क्षेत्र में जितनी अधिक प्रजाति समृद्धि (species richness) और प्रजाति समानता (species evenness) होगी, उस क्षेत्र की जैव विविधता उतनी ही अधिक होगी।

**(iv) विविधता सूचकांक (Diversity Indices)**

विविधता सूचकांक किसी समुदाय (community) में प्रजातियों की विविधता का गणितीय मापन है। यह सूचकांक प्रजातियों की दुर्लभता (rarity), सामान्यता (commonness), आपेक्षिक प्रचुरता (relative abundance) और समुदाय संरचना (community composition) के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है, केवल प्रजाति समृद्धि से आगे जाकर।

**(a) शैनन-वीनर विविधता सूचकांक (Shannon-Wiener Diversity Index):** किसी दिए गए क्षेत्र में उपस्थित प्रजातियों की संख्या प्रजातियों के बीच व्यक्तियों का वितरण शैनन-वीनर सूचकांक प्रजाति विविधता की गणना के लिए व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है। इसे निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जाता है:

$$H=-\Sigma(Ni/N)\ \log_2(Ni/N)$$

जहाँ,

Σ = प्रजातियों का योग

Ni = iवीं प्रजाति के व्यक्तियों की संख्या

N = सभी प्रजातियों के कुल व्यक्तियों की संख्या

**(b) सिम्पसन का सूचकांक (Simpson's Index):** यह सूचकांक दो बातों को ध्यान में रखता है:

- प्रजाति समृद्धि (Species Richness)
- प्रजाति समानता (Species Evenness)

सिम्पसन का सूचकांक (D) निकालने के लिए पहले उस क्षेत्र का यादृच्छिक नमूना (random sampling) लिया जाता है।

D का मान हमेशा 0 से 1 के बीच होता है। उच्च मान (1 के निकट): अधिक विविधता दर्शाता है। निम्न मान (0 के निकट): कम विविधता दर्शाता है।

उदाहरण: यदि किसी आवास का SDI (Simpson's Diversity Index) 0.5 है और किसी अन्य का 0.35 है, तो 0.5 वाला आवास अधिक विविध माना जाएगा।

$$D=1-[\Sigma(n/N)^2]$$

जहाँ, n = किसी विशेष प्रजाति के व्यक्तियों की संख्या; N = सभी प्रजातियों के कुल व्यक्तियों की संख्या; Σ = 'योग' (sum of)

## 12.7.2 जैव विविधता आकलन का महत्व

- संरक्षण के लिए प्रमुख क्षेत्रों की पहचान करना तथा संरक्षण प्राथमिकताओं को निर्धारित करना। किसी क्षेत्र का रैंकिंग करना विशेष मूल्यों के आधार पर, जैसे: दुर्लभता (rarity), विविधता, विखंडन (fragmentation), आवास की स्थिति, लचीलापन (resilience), खतरे तथा पारितंत्र प्रक्रियाएँ।
- यदि जैव विविधता का स्तर उचित है, तो यह पारितंत्र को सुदृढ़ बनाता है ताकि वह जलवायु परिवर्तन (climate change) और आक्रामक प्रजातियों (invasive species) जैसे तनावों का बेहतर सामना कर सके।
- समय के साथ होने वाले परिवर्तनों का पता लगाना, जो सदियों से मानव जाति के लिए एक चुनौती रहा है।
- जैव विविधता की स्थिति और प्रवृत्तियों का आकलन करना सतत विकास रणनीतियों (sustainable development strategies) के लिए अत्यंत आवश्यक है।
- जैव विविधता मनुष्यों और पृथ्वी की भलाई के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। पारिस्थितिक समुदाय (ecological communities) उन पारिस्थितिक और विकासवादी प्रक्रियाओं को बनाए रखते हैं जो जीवन को बनाए रखने में सहायक हैं। ये आवश्यक हैं ताकि:
- पृथ्वी का रासायनिक संतुलन (chemical balance) बना रहे
- जलवायु (climate) को संतुलित रखा जा सके
- मिट्टी (soil) का नवीनीकरण हो सके
- प्रजातियों की विविधता संरक्षित रह सके

- पौधों, जानवरों और अन्य प्रजातियों का अपना अंतर्निहित मूल्य (intrinsic worth) होता है।
- कोई क्षेत्र या प्रणाली पारितंत्रों के लिए जितनी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, उसका जैव विविधता पर सकारात्मक प्रभाव उतना ही अधिक होता है।

# सारांश

जैव विविधता (Biological diversity / Biodiversity) पृथ्वी पर विद्यमान जीवन रूपों की विविधता है। यह मानव जाति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैव विविधता हमें विभिन्न पारिस्थितिक सेवाएँ (ecological services) प्रदान करती है जो मनुष्यों के जीवन के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त, यह हमें नैतिक (moral) और आर्थिक (economical) दृष्टि से भी अनेक उपयोगी वस्तुएँ उपलब्ध कराती है। जैव विविधता पर अत्यधिक दोहन (overexploitation) और जलवायु परिस्थितियों में परिवर्तन ने इसके अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। साथ ही, केवल व्यावसायिक मूल्य के लिए जैव विविधता का अनुचित उपयोग इसे बहुत तेजी से क्षय (depletion) की ओर ले जा रहा है। कई पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण जीव एवं पौधे, अत्यधिक उपयोग/अत्यधिक दोहन के कारण विलुप्त हो गए हैं, जैसे: डोडो (Raphus cucullatus); ऊन वाला मैमथ (Woolly Mammoth – Mammuthus primigenius). आजकल, उपलब्ध प्रजातियों को बचाने के लिए, विशेषकर जो विलुप्ति के कगार पर हैं, संरक्षण के अनेक तरीके अपनाए जा रहे हैं, जैसे: इन-सीटू संरक्षण (In-situ conservation); एक्स-सीटू संरक्षण (Ex-situ conservation). इस प्रकार, इस पुस्तक का यह अध्याय जैव विविधता के मूल्य (values), खतरे (threats), पारितंत्र की संरचना और क्रियाएँ (ecosystem structure & function) तथा जैव विविधता का आकलन (biodiversity assessment) को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करता है।

# इकाई 13: जैविक विविधता

**इकाई संरचना**

**13.0 शिक्षण उद्देश्य**
**13.1 परिचय**
**13.2 जैव विविधता के हॉटस्पॉट**
13.2.2 **वैश्विक जैव विविधता हॉटस्पॉट: एशिया-प्रशांत**
13.2.3 **हॉटस्पॉट संरक्षण पहल**
13.2.4 **भारत के जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स**
**13.4 हॉटस्पॉट्स के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य**
**13.5 हॉटस्पॉट्स में जैव विविधता के ह्रास के कारण**
**13.6 प्रजातियों का विलुप्त होना**
**13.6.1 प्राकृतिक विलुप्ति के कारण**
**13.7 IUCN रेड लिस्ट श्रेणियाँ**
13.7.1 **परिचय**
13.7.2 **IUCN वैश्विक संरक्षित क्षेत्र कार्यक्रम**
**13.8 IUCN रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटन्ड स्पीशीज़**
**13.9 रेड डेटा बुक; भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची**
**13.10 रेड डेटा बुक में सूचीबद्ध श्रेणियाँ**
**13.11 भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची**

## 13.0 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होंगे:

- जैव विविधता हॉटस्पॉट की अवधारणा को समझना
- भारत में जैव विविधता हॉटस्पॉट
- जैव विविधता हॉटस्पॉट का संरक्षण और रखरखाव
- विलुप्ति की दर किसी भी समय वैश्विक जैव विविधता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है
- प्राकृतिक पृष्ठभूमि विलुप्तियों के मुख्य कारणों को जानना
- संकटग्रस्त प्रजातियों की IUCN श्रेणियाँ
- रेड डाटा बुक क्या है?
- रेड डाटा बुक में अंकित श्रेणियाँ
- भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची

# 13.1 परिचय

जैव विविधता हॉटस्पॉट वे क्षेत्र होते हैं जो मुख्य रूप से अक्षुण्ण प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों का समर्थन करते हैं और जहाँ इन पारिस्थितिक तंत्रों से संबंधित स्थानीय प्रजातियाँ और समुदाय अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व करते हैं। ये ऐसे क्षेत्र भी होते हैं जहाँ स्थानीय स्थानिक (endemic) प्रजातियों की अधिक विविधता पाई जाती है अर्थात ऐसी प्रजातियाँ जो हॉटस्पॉट के बाहर नहीं पाई जातीं या बहुत कम पाई जाती हैं।

- **जैव विविधता हॉटस्पॉट की अवधारणा नॉर्मन मायर्स (Norman Myers)** ने अपने दो लेख *"The Environmentalist"* (1988 और 1990) में दी थी। 1988 में उन्होंने सबसे पहले दस उष्णकटिबंधीय वनों के "हॉटस्पॉट" पहचाने, जो पौधों के उच्च स्थानिकता स्तर और आवास हानि के गंभीर स्तर से विशेषता प्राप्त थे।
- 1990 में मायर्स ने और आठ हॉटस्पॉट जोड़े, जिनमें चार भूमध्यसागरीय प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र शामिल थे।
- **कंज़र्वेशन इंटरनेशनल (CI)** ने 1989 में मायर्स के हॉटस्पॉट को अपने संस्थागत ढांचे के रूप में अपनाया। 1996 में संगठन ने हॉटस्पॉट की अवधारणा का पुनर्मूल्यांकन करने का निर्णय लिया। तीन साल बाद एक व्यापक वैश्विक समीक्षा की गई, जिसमें जैव विविधता हॉटस्पॉट की पहचान के लिए मात्रात्मक मानदंड प्रस्तुत किए गए।

1999 में, CI ने "Hotspots: Earth's Biologically Richest and Most Endangered Terrestrial Eco regions" नामक पुस्तक में 25 जैव विविधता हॉटस्पॉट की पहचान की। सामूहिक रूप से, इन क्षेत्रों में विश्व के लगभग 44% पौधे और 35% स्थलीय कशेरुकी स्थानिक रूप से पाए गए, जबकि इनका क्षेत्रफल ग्रह की भूमि सतह का केवल 11.8% था। इस भूमि क्षेत्र का 87.8% हिस्सा अपने मूल विस्तार से घट चुका था, और परिणामस्वरूप यह जैव विविधता पृथ्वी की भूमि सतह के केवल 1.4% तक सीमित रह गई। 2005 में, CI ने एक अद्यतन संस्करण प्रकाशित किया: "Hotspots Revisited: Earth's Biologically Richest and Most Endangered Terrestrial Eco regions"।

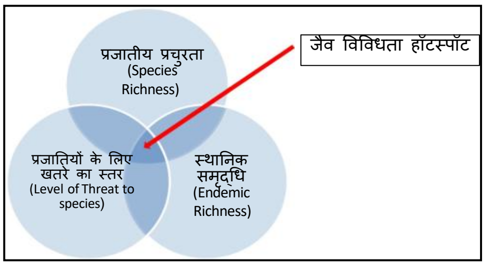


# 13.2 जैव विविधता के हॉटस्पॉट

## 13.2.1. वैश्विक जैव विविधता हॉटस्पॉट्स: विश्व

वर्तमान में कुल 35 जैव विविधता हॉटस्पॉट्स (Biodiversity Hotspots) हैं। पहले ये हॉटस्पॉट्स पृथ्वी की भूमि सतह के लगभग 15.7% हिस्से में फैले हुए थे। लेकिन अब तक इनके लगभग 86% आवास (habitat) नष्ट हो चुके हैं। वर्तमान में इन हॉटस्पॉट्स के शेष सुरक्षित क्षेत्र केवल 2.3% भूमि सतह पर बचे हैं।

जैव विविधता हॉटस्पॉट्स में स्थानिक प्रजातियों (endemic species) की संख्या विशेष रूप से बहुत अधिक होती है। हर हॉटस्पॉट को गंभीर खतरों का सामना करना पड़ रहा है और इनकी मूल प्राकृतिक वनस्पति का कम से कम 70% हिस्सा पहले ही नष्ट हो चुका है। विश्व की कुल पौधों की प्रजातियों का 50% से अधिक और सभी स्थलीय कशेरुक प्राणियों (terrestrial vertebrates) का 42% हिस्सा इन्हीं 35 हॉटस्पॉट्स में पाया जाता है।

**I. अफ्रीका (Africa)**

अफ्रीकी महाद्वीप में कुल 08 हॉटस्पॉट्स हैं, जिनमें पौधों और जानवरों की अपार विविधता पाई जाती है, जिनमें से कई प्रजातियाँ केवल यहीं मिलती हैं।

1. केप फ्लोरिस्टिक क्षेत्र (Cape Floristic Region)
2. पूर्वी अफ्रीका के तटीय वन (Coastal Forests of Eastern Africa)
3. ईस्टर्न अफ्रोमॉन्टेन (Eastern Afromontane)
4. गिनी के पश्चिमी अफ्रीकी वन (Guinean Forests of West Africa)
5. हॉर्न ऑफ़ अफ्रीका (Horn of Africa)
6. मेडागास्कर और हिंद महासागर द्वीप (Madagascar and the Indian Ocean Islands)
7. मापुटालैंड-पॉन्डोलैंड-अल्बानी (Maputaland-Pondoland-Albany)
8. सुक्यूलेंट कारो (Succulent Karoo)

**II. एशिया-प्रशांत (Asia-Pacific)**

इस क्षेत्र में बड़े भूभाग के साथ-साथ प्रशांत महासागर में स्थित कई द्वीप शामिल हैं। यहाँ कुल 14 हॉटस्पॉट्स हैं:

1. ईस्ट मेलानेशियन आइलैंड्स (East Melanesian Islands)
2. हिमालय (Himalaya)
3. इंडो-बर्मा (Indo-Burma)
4. जापान (Japan)
5. दक्षिण-पश्चिम चीन के पर्वत (Mountains of Southwest China)
6. न्यू कैलेडोनिया (New Caledonia)
7. न्यू ज़ीलैंड (New Zealand)
8. फ़िलिपीन्स (Philippines)
9. पोलिनेशिया- माइक्रोनेशिया (Polynesia-Micronesia)
10. दक्षिण-पश्चिम ऑस्ट्रेलिया (Southwest Australia)
11. पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के वन (Forests of Eastern Australia)
12. सुंडालैंड (Sundaland)
13. वॉलेसिया (Wallacea)

14. पश्चिमी घाट और श्रीलंका (Western Ghats and Sri Lanka)

**III. यूरोप और मध्य एशिया (Europe and Central Asia)**

भूमध्यसागरीय बेसिन से लेकर मध्य एशिया के पर्वतों तक फैले हुए इन 4 हॉटस्पॉट्स में अद्वितीय विविधता है:

1. कॉकसस (Caucasus)
2. इरानो-एनाटोलियन (Irano-Anatolian)
3. भूमध्यसागरीय बेसिन (Mediterranean Basin)
4. मध्य एशिया के पर्वत (Mountains of Central Asia)

**IV. उत्तर और मध्य अमेरिका (North and Central America)**

इस क्षेत्र में हजारों वर्ग किलोमीटर का महत्वपूर्ण आवास मौजूद है। कुल 4 हॉटस्पॉट्स हैं:

1. कैलिफ़ोर्निया फ्लोरिस्टिक प्रांत (California Floristic Province)
2. कैरिबियन द्वीप (Caribbean Islands)
3. माद्रीन पाइन-ओक वुडलैंड्स (Madrean Pine-Oak Woodlands)
4. मेसोअमेरिका (Mesoamerica)

**V. दक्षिण अमेरिका (South America)**

ब्राज़ील के सेराडो से लेकर ट्रॉपिकल एंडीज़ तक, दक्षिण अमेरिका पृथ्वी पर सबसे समृद्ध और विविध जीवन वाला क्षेत्र है। कुल 5 हॉटस्पॉट्स हैं:

1. अटलांटिक वन (Atlantic Forest)
2. सेराडो (Cerrado)
3. चिली के शीतकालीन वर्षा-वल्दिवियन वन (Chilean Winter Rainfall-Valdivian Forests)
4. तुम्बेस-चोको-मैग्डालेना (Tumbes-Chocó-Magdalena)
5. ट्रॉपिकल एंडीज़ (Tropical Andes)

**सबसे "गरम" हॉटस्पॉट्स (Hottest Hotspots)**

कुछ हॉटस्पॉट्स में अन्य की तुलना में स्थानिक प्रजातियों की संख्या बहुत अधिक है। इनके मूल्यांकन में पाँच मुख्य कारकों को देखा गया: स्थानिक प्रजातियों की संख्या, प्रति क्षेत्रफल स्थानिक प्रजातियाँ, पौधों और कशेरुक प्राणियों की विविधता, आवास हानि का स्तर। इन सभी कारकों को समान महत्व नहीं दिया जा सकता, लेकिन तुलनात्मक अध्ययन में 8 सबसे प्रमुख हॉटस्पॉट्स सामने आए:

1. मेडागास्कर (Madagascar)
2. फ़िलिपीन्स (Philippines)
3. सुंडालैंड (Sundaland)
4. ब्राज़ील के अटलांटिक वन (Brazil’s Atlantic Forests)
5. कैरिबियन द्वीप (Caribbean Islands)

6. इंडो-बर्मा क्षेत्र (Indo-Burma Region)
7. पश्चिमी घाट और श्रीलंका (Western Ghats & Sri Lanka)
8. तंज़ानिया/केन्या के ईस्टर्न आर्क और तटीय वन (Eastern Arc & Coastal Forests of Tanzania/Kenya)

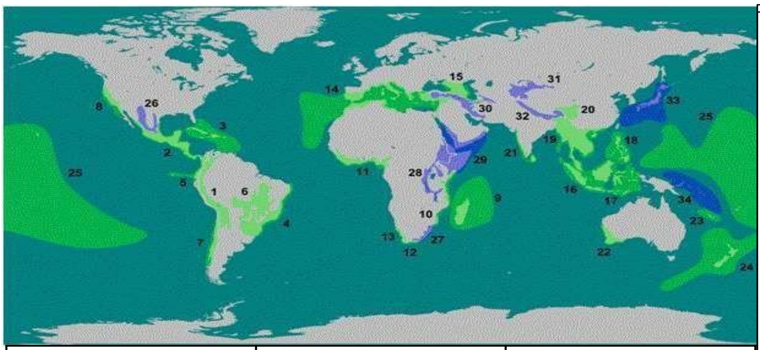

| | | |
|---|---|---|
| 1. उष्णकटिबंधीय एंडीज<br>2. मेसोअमेरिका<br>3. कैरेबियन द्वीप<br>4. अटलांटिक वन<br>5. तुंबेस-चोको-मैग्डालेना<br>6. सैराडो<br>7. चिली का शीतकालीन वर्षावन-वाल्डिवियन वन<br>8. कैलिफोर्निया पुष्पीय प्रांत<br>9. मेडागास्कर और हिंद महासागर द्वीप 10. पूर्वी अफ्रीका के तटीय वन<br>11. पश्चिम अफ्रीका के गिनी वन<br>12. केप पुष्पीय क्षेत्र | 13. रसीला कारोओ<br>14. भूमध्यसागरीय बेसिन<br>15. कांकेशस<br>15. सुंदरलैंड<br>17. वॉलेस<br>18. फिलीपींस<br>19. इंडो-बर्मा<br>20. दक्षिण पश्चिम चीन के पर्वत<br>21. घाट और श्रीलंका<br>22. दक्षिण पश्चिम ऑस्ट्रेलिया<br>23. न्यू कैलेडोनिया<br>24. न्यूज़ीलैंड<br>25. पोलिनेशिया और माइक्रोनेशिया | 26. मैड्रेन पाइन-ओक वुडलैंड<br>27. मापुटालैंड-पोंडोलैंड-एल्बनी<br>28. पूर्वी अफ्रोमॉन्टेन<br>29. हॉर्न ऑफ अफ्रीका<br>30. ईरानो-एनाटोलियन<br>31. मध्य एशिया के पर्वत<br>32. पूर्वी हिमालय<br>33. जापान<br>• मुख्यतः होक्काइडो में पौधे<br>• होक्काइडो में स्तनधारी<br>34. पूर्वी मेलानीशियाई द्वीप |

यह मानचित्र 34 जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स को दर्शाता है। ये वे क्षेत्र हैं जो जैव-विविधता की हानि से पीड़ित हैं और जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। नॉर्मन मायर्स ने प्रारंभ में पच्चीस जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स (हरे रंग में 1-25) बताए थे और बाद में मिट्टरमेयर ने नौ हॉटस्पॉट्स (नीले रंग में 26-34) जोड़े।

http://www.drishtiias.com/upsc-exam-gs-resources-

इनमें मेडागास्कर, फ़िलिपीन्स और सुंडालैंड सभी पाँच मानकों में सबसे ऊपर हैं। इसके बाद ब्राज़ील का अटलांटिक वन और कैरिबियन चार मानकों में शीर्ष पर हैं। इनमें से कुछ क्षेत्रों (मेडागास्कर, फ़िलिपीन्स और कैरिबियन) का क्षेत्रफल बहुत छोटा है, जिससे इनकी महत्वता और भी बढ़ जाती है।

**जैव विविधता हॉटस्पॉट**

**मेगा-विविध देश (Mega-diverse Countries)**

मेगा-विविधता की अवधारणा किसी देश में कुल प्रजातियों की संख्या और प्रजाति स्तर तथा उच्च वर्गीकरण स्तर पर स्थानिकता (Endemism) की डिग्री पर आधारित है। वर्ल्ड कंज़र्वेशन मॉनिटरिंग सेंटर ने जुलाई 2000 में 17 मेगा-विविध देशों को मान्यता दी, जिनमें शामिल हैं:

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. ऑस्ट्रेलिया | 6. भारत | 11. ब्राज़ील | 16. संयुक्त राज्य अमेरिका |
| 2. कांगो | 7. इंडोनेशिया | 12. कोलंबिया | 17. वेनेज़ुएला |
| 3. मेडागास्कर | 8. मलेशिया | 13. इक्वाडोर | |
| 4. दक्षिण अफ्रीका | 9. पापुआ न्यू गिनी | 14. मैक्सिको | |
| 5. चीन | 10. फ़िलिपींस | 15. पेरू | |

यह देशों का समूह पृथ्वी की सतह का 10% से भी कम भाग घेरता है, लेकिन पृथ्वी पर पाई जाने वाली 70% से अधिक जैव विविधता का समर्थन करता है।

यह अवधारणा सबसे पहले रसेल मिट्टरमायर ने 1988 में विकसित की थी, ताकि संरक्षण कार्यों को प्राथमिकता दी जा सके। प्राइमेट संरक्षण प्राथमिकताओं के विश्लेषण के आधार पर, उन्होंने पाया कि केवल चार देश सभी प्राइमेट प्रजातियों के दो-तिहाई का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके बाद इस विश्लेषण को अन्य स्तनधारियों, पक्षियों, सरीसृपों, उभयचरों, पौधों और कीटों के चुनिंदा समूहों तक विस्तारित किया गया।

ये देश प्रमुख रूप से उष्णकटिबंधीय वर्षावनों, कोरल रीफ्स और अन्य महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस मूल्यांकन के परिणाम *Megadiversity: Earth's biologically wealthiest nations* (मिटरमायर, गिल और मिटरमायर, 1997, सेमैक्स, मैक्सिको) में प्रकाशित हुए।

## 13.2.2 वैश्विक जैव विविधता हॉटस्पॉट: एशिया-प्रशांत

1. **ईस्ट मेलानीज़ियन द्वीप**: कभी लगभग पूरी तरह सुरक्षित रहे 1,600 ईस्ट मेलानीज़ियन द्वीप अब तेजी से बढ़ते आवास नुकसान के कारण हॉटस्पॉट घोषित किए गए हैं।
2. **हिमालय**: हिमालय हॉटस्पॉट विश्व के सबसे ऊँचे पर्वतों का घर है, जिनमें माउंट एवरेस्ट भी शामिल है।
3. **इंडो-बर्मा**: समेटे इंडो-बर्मा का 2 मिलियन किमी$^2$ से अधिक उष्णकटिबंधीय एशिया आज भी अपनी जैविक संपदाओं का खुलासा कर रहा है।
4. **जापान**: जापानी द्वीपसमूह दक्षिण के आर्द्र उपोष्ण कटिबंध से लेकर उत्तर के शीतोष्ण क्षेत्र तक फैला हुआ है, जिससे विविध जलवायु और पारिस्थितिक तंत्र पाए जाते हैं।
5. **दक्षिण-पश्चिम चीन के पर्वत**: जलवायु और स्थलाकृति में नाटकीय विविधता के कारण यहां अनेक प्रकार के आवास मिलते हैं, जिनमें दुनिया की सबसे अधिक स्थानिक (endemic) प्रजातियों वाली समशीतोष्ण वनस्पति भी शामिल है।
6. **न्यू कैलेडोनिया**: दक्षिण प्रशांत महासागर में न्यू जर्सी के आकार का यह द्वीप कम से कम पाँच स्थानिक पादप परिवारों का घर है।
7. **न्यूज़ीलैंड**: पहाड़ों से बना यह द्वीपसमूह, जो कभी समशीतोष्ण वर्षावनों से ढका हुआ था, असाधारण स्तर की स्थानिक प्रजातियों को आश्रय देता है।
8. **फ़िलिपींस**: 7,100 से अधिक द्वीपों वाला यह क्षेत्र दुनिया के सबसे जैविक रूप से समृद्ध देशों में से एक है।
9. **पोलिनेशिया-माइक्रोनेशिया**: 4,500 द्वीपों वाला यह हॉटस्पॉट दक्षिण प्रशांत महासागर में फैला है और वर्तमान वैश्विक विलुप्ति संकट का केंद्र है।
10. **दक्षिण-पश्चिम ऑस्ट्रेलिया**: यहां के जंगल, वुडलैंड्स, झाड़-झंखाड़ और हीथ उच्च स्तर की स्थानिक पौधों और सरीसृप प्रजातियों से समृद्ध हैं।
11. **पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के वन**: यह हॉटस्पॉट क्वींसलैंड और न्यू साउथ वेल्स राज्यों की तटीय पट्टी से लेकर अंतर्देशीय क्षेत्रों और ग्रेट डिवाइडिंग रेंज तक फैला है। इस क्षेत्र में 1500 से अधिक स्थानिक वाहिकीय पौधे पाए जाते हैं।

12. **सुंडालैंड**: सुंडालैंड हॉटस्पॉट की अद्भुत वनस्पति और जीव-जंतु यहां तेजी से बढ़ते औद्योगिक वानिकी दबावों के कारण खतरे में हैं।
13. **वाललेशिया**: यहां की वनस्पति और जीव-जंतु इतने विविध हैं कि इस क्षेत्र के हर द्वीप को सुरक्षित संरक्षित क्षेत्र की आवश्यकता है।
14. **पश्चिमी घाट और श्रीलंका**: जनसंख्या दबाव के कारण यहां के वनों पर लकड़ी और कृषि भूमि की भारी मांग का गहरा प्रभाव पड़ा है।

**जैव विविधता हॉटस्पॉट की रक्षा और संरक्षण**

हॉटस्पॉट औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त या शासित क्षेत्र नहीं होते। हालांकि, किसी क्षेत्र की पहचान जैव विविधता हॉटस्पॉट के रूप में होने से वहां संरक्षण निवेश की संभावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, इन व्यापक क्षेत्रों के भीतर संरक्षण के लिए अन्य औपचारिक संरक्षित क्षेत्र भी शामिल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, IUCN संरक्षित क्षेत्र प्रबंधन श्रेणियों I-VI के आधार पर हॉटस्पॉट्स के मूल विस्तार का औसतन 12% हिस्सा संरक्षित क्षेत्रों के अंतर्गत आता है।

## 13.2.3 हॉटस्पॉट संरक्षण पहल

जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स के भीतर कुल भू-भाग का केवल एक छोटा प्रतिशत ही अब संरक्षित है। कई अंतर्राष्ट्रीय संगठन विभिन्न तरीकों से जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स को संरक्षित करने के लिए कार्य कर रहे हैं।

**क्रिटिकल इकोसिस्टम पार्टनरशिप फंड (CEPF)** सात गैर-सरकारी और निजी क्षेत्र के संगठनों (जिसमें *कंजरवेशन इंटरनेशनल* भी शामिल है) का एक गठबंधन है। यह एक वैश्विक कार्यक्रम है जो दुनिया भर के संगठनों को अनुदान प्रदान करता है, जो जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स की रक्षा करने में लगे हैं। जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स का उपयोग प्रमुख फाउंडेशनों और *ग्लोबल एनवायरनमेंट फैसिलिटी (GEF)* द्वारा भी वैश्विक संरक्षण में निवेश को लक्षित करने के लिए किया जाता है।

**वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर** ने एक प्रणाली विकसित की है जिसे *"ग्लोबल 200 ईकोरीजन"* कहा जाता है। इसका उद्देश्य 14 स्थलीय, 3 मीठे पानी और 4 समुद्री आवास प्रकारों में से प्रत्येक के भीतर संरक्षण के लिए प्राथमिकता वाले ईकोरीजन का चयन करना है। इन्हें उनकी प्रजातियों की प्रचुरता, स्थानिकता, वर्गीकरणीय विशिष्टता, असामान्य पारिस्थितिक या विकासवादी घटनाओं और वैश्विक दुर्लभता के आधार पर चुना जाता है। सभी जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स में कम से कम एक *ग्लोबल 200 ईको रीजन* (Ecoregion) शामिल होता है।

**बर्डलाइफ़ इंटरनेशनल** ने 218 *"एंडेमिक बर्ड एरिया" (EBAs)* की पहचान की है, जिनमें से प्रत्येक में दो या अधिक ऐसी पक्षी प्रजातियाँ पाई जाती हैं जो दुनिया में कहीं और नहीं मिलतीं। बर्डलाइफ़ इंटरनेशनल ने दुनिया भर में 11,000 से अधिक *महत्वपूर्ण बर्ड एरिया* की भी पहचान की है।

**प्लांट लाइफ़ इंटरनेशनल** कई कार्यक्रमों का समन्वय करता है जिनका उद्देश्य *महत्वपूर्ण प्लांट एरिया* की पहचान करना है।

**अलायंस फॉर ज़ीरो एक्सटिंक्शन** कई वैज्ञानिक संगठनों और संरक्षण समूहों की पहल है, जो दुनिया की सबसे अधिक संकटग्रस्त स्थानिक प्रजातियों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए सहयोग करते हैं। उन्होंने 595 स्थलों की पहचान की है, जिनमें बड़ी संख्या में बर्डलाइफ़ के *महत्वपूर्ण बर्ड एरिया* शामिल हैं।

**नेशनल ज्योग्राफिक सोसाइटी** ने हॉटस्पॉट्स का एक विश्व मानचित्र तैयार किया है और *आर्कव्यू शेप-फाइल* (ArcView) व *मेटाडेटा* विकसित किया है, जिसमें जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स और प्रत्येक हॉटस्पॉट में पाई जाने वाली व्यक्तिगत संकटग्रस्त जीव-जंतुओं का विवरण शामिल है। यह जानकारी *कंजरवेशन इंटरनेशनल* से उपलब्ध है।

## 13.2.4 भारत के जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स

दुनिया के लगभग 200 देशों में से केवल 17 देशों में 70% जैव-विविधता पाई जाती है। इन्हें *"मेगा डाइवर्स"* देश कहा जाता है। भारत भी इन मेगा डाइवर्स देशों में से एक है। विश्व के कुल भू-भाग का केवल 2.4% और मीठे पानी का 4% भाग भारत में होने के बावजूद, यहाँ दर्ज प्रजातियों का 7.3% पाया जाता है। इस आधार पर भारत दुनिया का तीसरा सबसे मेगा डाइवर्स देश है (ब्राज़ील और कोस्टा रिका के बाद)। भारत में प्रजातियों का सबसे अधिक संकेंद्रण *पश्चिमी घाट की अगस्त्यमलाई पहाड़ियों* में पाया जाता है।

**भारत के जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स**

| Group | Number | % of world species |
|---|---|---|
| स्तनधारी | 350 | 7.6% |
| पक्षी | 1224 | 12.6% |
| उभयचर | 197 | 4.4% |
| सरीसृप | 408 | 6.2% |
| मछलियाँ | 2546 | 11.7% |
| पुष्पीय पौधे | 15000 | 6% |

http://conceptedu.blogspot.in/2013/03/biodiversityhotspots-in-india-india.html

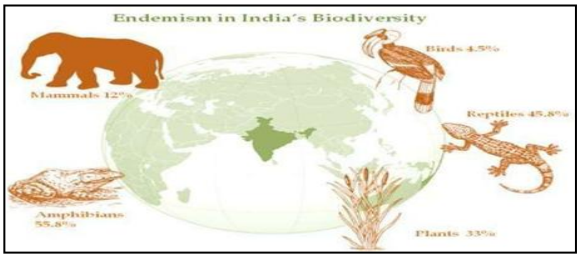


http://thewesternghats.indiabiodiversity.org/biodiversity_in_india

### 13.2.4.1 भारत में स्थानिक और आनुवंशिक विविधता के प्रमुख हॉटस्पॉट्स

भारत में 4 प्रमुख जैव-विविधता हॉटस्पॉट्स पाए जाते हैं। ये हैं:

1. **हिमालय** – इसमें संपूर्ण भारतीय हिमालयी क्षेत्र शामिल है (साथ ही पाकिस्तान, तिब्बत, नेपाल, भूटान, चीन और म्यांमार का हिस्सा भी)।
2. **इंडो-बर्मा** – इसमें पूरा उत्तर-पूर्वी भारत (असम और अंडमान द्वीप समूह को छोड़कर) शामिल है। इसके अतिरिक्त म्यांमार, थाईलैंड, वियतनाम, लाओस, कंबोडिया और दक्षिणी चीन भी इसमें आते हैं।
3. **सुंडालैंड्स** – इसमें निकोबार द्वीप समूह शामिल है (साथ ही इंडोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, ब्रुनेई और फिलीपींस भी)।

4. **पश्चिमी घाट और श्रीलंका** – इसमें संपूर्ण पश्चिमी घाट (और श्रीलंका) शामिल हैं।

| **क्रम संख्या** | **हॉटस्पॉट्स** | **जैव-भौगोलिक क्षेत्र** |
|---|---|---|
| 1 | काराकोरम और लद्दाख | ट्रांस-हिमालय |
| 2 | कुमाऊँ और गढ़वाल हिमालय | पश्चिमी हिमालय |
| 3 | शिवालिक | हिमालय |
| 4 | सिक्किम हिमालय | पूर्वी हिमालय |
| 5 | अरुणाचल प्रदेश | पूर्वी हिमालय |
| 6 | लुशाई पहाड़ियाँ | उत्तर-पूर्व भारत |
| 7 | तुरा-खासी पहाड़ियाँ | मेघालय |
| 8 | अरावली | अर्ध-शुष्क क्षेत्र |
| 9 | बुंदेलखंड | मध्य भारत का पठार |
| 10 | छोटा-नागपुर का पठार | दक्कन का पठार |
| 11 | पंचमढ़ी-सतपुड़ा पर्वतमाला | दक्कन का पठार |
| 12 | उड़ीसा के सिमलीपाल और जयपुर पहाड़ियाँ | दक्कन (पूर्वी घाट) |
| 13 | बस्तर और कोरापुट पहाड़ियाँ | दक्कन का पठार |
| 14 | विशाखापत्तनम पहाड़ियाँ और अराकू | पूर्वी घाट |
| 15 | तिरुपति-कडप्पा पहाड़ियाँ | पूर्वी घाट |
| 16 | मराठवाड़ा की पहाड़ियाँ | दक्कन का पठार |
| 17 | सौराष्ट्र कच्छ | दक्कन का पठार |
| 18 | महाबलेश्वर-खंडाला पर्वतमाला | पश्चिमी घाट |
| 19 | अगुम्बे-फोंडा पर्वतमाला | पश्चिमी घाट |
| 20 | रत्नागिरी और कोलाबा पर्वतमाला | पश्चिमी घाट |
| 21 | नीलगिरि | पश्चिमी घाट |
| 22 | साइलेंट वैली और वायनाड | पश्चिमी घाट |
| 23 | अन्नामलाई | पश्चिमी घाट |
| 24 | इडुक्की-सबरिगिरि | पश्चिमी घाट |
| 25 | कालकाड और अगस्त्यमलाई पहाड़ियाँ | पश्चिमी घाट |
| 26 | अंडमान और निकोबार | द्वीपसमूह |
| 24 | इडुक्की-सबरिगिरि | पश्चिमी घाट |

**http://www.biologydiscussion.com/biodiversity/hotspots-of-biodiversity-in-india/7142**

1. हिमालया

http://bsienvis.nic.in/files/Biodiversity%20Hotspots%20in%20India.pdf

**प्रजातीय विविधता और स्थानिकता**

| टाक्सोनोमिक | स्पीशीज | एंडेमिक | एंडेमिस्म |
|---|---|---|---|
| पोधे | 10,000 | 3,160 | 31.6 |
| स्तनधारी | 300 | 12 | 4.0 |
| पक्षी | 977 | 15 | 1.5 |
| सरीसृप | 176 | 48 | 27.3 |
| उभयचर | 105 | 42 | 40.0 |
| स्वच्छ जलीय जीव | 269 | 33 | 12.3 |

http://bsienvis.nic.in/files/Biodiversity%20Hotspots%20in%20India.pdf

- यह क्षेत्र भूटान, पूर्वोत्तर भारत तथा दक्षिणी, मध्य और पूर्वी नेपाल को सम्मिलित करता है।
- हिमालय पर्वतों का अचानक 500 मीटर से कम ऊँचाई से 8,000 मीटर से अधिक ऊँचाई तक उठाव विभिन्न प्रकार की पारिस्थितिक तंत्रों को जन्म देता है। इनमें तलहटी के समीप पाए जाने वाले जलोढ़ घास के मैदान और उपोष्णकटिबंधीय चौड़ी पत्ती वाले वन से लेकर मध्य पहाड़ियों में समशीतोष्ण चौड़ी पत्ती वाले वन, ऊँची पहाड़ियों में मिश्रित शंकुधारी और शंकुधारी वन, तथा वृक्ष रेखा से ऊपर अल्पाइन घास के मैदान शामिल हैं।

**जैव विविधता**

- हिमालयी हॉटस्पॉट में लगभग 163 वैश्विक स्तर पर संकटग्रस्त प्रजातियाँ (वनस्पति और जीव-जंतु दोनों) पाई जाती हैं, जिनमें एक सींग वाला गैंडा [असुरक्षित] तथा जंगली एशियाई जल भैंसा [संकटग्रस्त] शामिल हैं।

- हिमालय में अनुमानतः 10,000 प्रजातियों के पौधे पाए जाते हैं, जिनमें से एक-तिहाई स्थानिक (endemic) हैं और विश्व के अन्य कहीं नहीं मिलते।
- इस क्षेत्र को लंबे समय से आदिम पुष्पीय पौधों का समृद्ध केंद्र माना जाता है और इसे लोकप्रिय रूप से "प्रजातिकरण की जन्मभूमि" (Cradle of Speciation) कहा जाता है।
- यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधों के जंगली रिश्तेदारों से भी समृद्ध है, जैसे चावल, केला, नींबू (साइट्रस), अदरक, मिर्च, जूट और गन्ना।
- इसे पाँच वाणिज्यिक महत्व की ताड़ प्रजातियों – नारियल, सुपारी, पामिरा पाम, शुगर पाम और जंगली खजूर – की उत्पत्ति और विविधीकरण का केंद्र भी माना जाता है। चाय (Thea sinensis) का इस क्षेत्र में पिछले 4,000 वर्षों से खेती की जा रही है। यहाँ कई जंगली और संबंधित चाय की प्रजातियाँ भी मिलती हैं, जिनकी पत्तियों का उपयोग चाय के विकल्प के रूप में किया जाता है। ये प्रजातियाँ उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में अपने प्राकृतिक आवास में पाई जाती हैं।
- टैक्सोल पौधा (*Taxus wallichiana*) इस क्षेत्र में विरल रूप से पाया जाता है और इसके अत्यधिक दोहन के कारण, कैंसर के उपचार में उपयोग होने वाली औषधि के निष्कर्षण के लिए, इसे "रेड डाटा श्रेणी" में सूचीबद्ध किया गया है।
- कुछ संकटग्रस्त स्थानिक पक्षी प्रजातियाँ जैसे हिमालयन बटेर और वेस्टर्न ट्रैगोपन यहाँ पाई जाती हैं। इसके अलावा, एशिया के कुछ सबसे बड़े और अत्यधिक संकटग्रस्त पक्षी जैसे हिमालयी गिद्ध और सफेद पेट वाला बगुला (White-bellied heron) भी यहीं पाए जाते हैं।
- स्तनधारी जीवों में गोल्डन लंगूर, हिमालयी थार, पिग्मी हॉग, लंगूर, एशियाई जंगली कुत्ते, आलसी भालू (Sloth bear), गौर, मृग (Muntjac), सांभर, हिम तेंदुआ, काला भालू, नीली भेड़, टाकिन, गंगा डॉल्फिन, जंगली जल भैंसा और स्वैम्प डियर (दलदली हिरण) हिमालयी क्षेत्र को अपना घर बनाते हैं।

**2. इंडो-बर्मा क्षेत्र**

**http://bsienvis.nic.in/files/Biodiversity%20Hotspots%20in%20India.pdf**

**प्रजातीय विविधता और स्थानिकता**

| वर्गीकरण समूह | कुल प्रजातियाँ | स्थानिक प्रजातियाँ | स्थानिकता (%) |
|---|---|---|---|
| पौधे | 13,500 | 7,000 | 51.9 |
| स्तनधारी | 433 | 73 | 16.9 |
| पक्षी | 1,266 | 64 | 5.1 |
| सरीसृप | 522 | 204 | 39.1 |
| उभयचर | 286 | 154 | 53.8 |
| मीठे पानी की मछलियाँ | 1,262 | 553 | 43.8 |

http://bsienvis.nic.in/files/Biodiversity%20Hotspots%20in%20India.pdf

- इंडो-बर्मा क्षेत्र कई देशों में फैला हुआ है। यह पूर्वी बांग्लादेश से लेकर मलेशिया तक विस्तृत है और इसमें ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण का पूर्वोत्तर भारत, म्यांमार, चीन के युन्नान प्रांत का दक्षिणी भाग, लाओ पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपब्लिक, कंबोडिया, वियतनाम और थाईलैंड शामिल हैं।
- इंडो-बर्मा क्षेत्र लगभग 20 लाख वर्ग किलोमीटर उष्णकटिबंधीय एशिया में फैला हुआ है। चूँकि यह हॉटस्पॉट इतने बड़े भू-भाग और कई प्रमुख स्थलरूपों (landforms) में फैला है, इसलिए इस क्षेत्र में जलवायु और आवास (climate and habitat) के पैटर्न की बहुत अधिक विविधता पाई जाती है।

**जैव विविधता**

- पिछले कुछ दशकों में इस क्षेत्र का बड़ा हिस्सा तेजी से क्षीण (deteriorate) हो रहा है।
- यह क्षेत्र कई प्राइमेट (Primates) प्रजातियों का घर है, जैसे बंदर, लंगूर और गिब्बन। इनकी आबादी केवल कुछ सौ की संख्या तक सीमित रह गई है।
- कई प्रजातियाँ, विशेषकर कुछ मीठे पानी के कछुए, इस क्षेत्र की स्थानिक (endemic) प्रजातियाँ हैं।
- इस क्षेत्र में लगभग 1,300 पक्षी प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें संकटग्रस्त प्रजातियाँ भी शामिल हैं:
- व्हाइट-ईयर्ड नाइट-हेरोन (White-eared night-heron) [संकटग्रस्त]
- ग्रे-क्राउनड क्रोशियास (Grey-crowned crocias) [संकटग्रस्त]
- ऑरेंज-नेक्ड पार्ट्रिज (Orange-necked partridge) [असुरक्षित]
- अनुमान लगाया गया है कि इस हॉटस्पॉट में लगभग 13,500 पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से आधे से अधिक स्थानिक हैं।
- यहाँ ऑर्किड और अदरक की अनेक प्रजातियाँ मिलती हैं (केवल थाईलैंड में ही 1,000 से अधिक ऑर्किड प्रजातियाँ पाई जाती हैं)। इसके अलावा कई उष्णकटिबंधीय कठोर लकड़ी वाले वृक्ष

(tropical hardwood trees) भी यहाँ मिलते हैं, जिनमें डिप्टेरोकार्प (Dipterocarp) प्रजातियाँ और वाणिज्यिक दृष्टि से मूल्यवान सागौन (Teak – *Tectona grandis*) शामिल हैं।

### 3. पश्चिमी घाट और श्रीलंका

- पश्चिमी घाट, जिन्हें "सह्याद्रि पर्वत" भी कहा जाता है, भारत के दक्षिण-पश्चिमी भागों के पर्वतीय वनों और श्रीलंका के दक्षिण-पश्चिमी उच्चभूमि क्षेत्रों (highlands) को सम्मिलित करते हैं।
- इन क्षेत्रों में आर्द्र पर्णपाती वन (moist deciduous forests) और वर्षा वन (rainforests) पाए जाते हैं। यह क्षेत्र उच्च प्रजातीय विविधता (high species diversity) और उच्च स्थानिकता (endemism) प्रदर्शित करता है
- भारत के दक्षिण में स्थित श्रीलंका भी प्रजातीय विविधता से अत्यंत समृद्ध देश है।
- अतीत में कई हिमयुगीय कालों (glaciation events) के दौरान श्रीलंका और भारत एक लगभग 140 किमी चौड़े भू-सेतु (land bridge) द्वारा जुड़े रहे थे।
- इस हॉटस्पॉट का कुल क्षेत्रफल मूल रूप से लगभग 1,82,500 वर्ग किलोमीटर था। लेकिन भारी जनसंख्या दबाव के कारण अब केवल 12,445 वर्ग किलोमीटर (लगभग 6.8%) ही अपनी प्राकृतिक अवस्था (pristine condition) में बचा है।

http://bsienvis.nic.in/files/Biodiversity%20Hotspots%20in%20India.pdf

**प्रजातीय विविधता और स्थानिकता**

| वर्गीकरण समूह | कुल प्रजातियाँ | स्थानिक प्रजातियाँ | स्थानिकता (%) |
|---|---|---|---|
| पौधे | 5,916 | 3,049 | 51.5 |
| स्तनधारी | 140 | 18 | 12.9 |
| पक्षी | 458 | 35 | 7.6 |
| सरीसृप | 267 | 174 | 65.2 |
| उभयचर | 178 | 130 | 73.0 |
| मीठे पानी की मछलियाँ | 191 | 139 | 72.8 |

**जैव विविधता**

- पश्चिमी घाट में वर्षा के पैटर्न में व्यापक भिन्नता तथा क्षेत्र की जटिल भौगोलिक संरचना के कारण यहाँ **वनस्पति की अत्यधिक विविधता** देखने को मिलती है।
- कुछ प्रमुख कुल (families) और वंश (genera) की प्रजातियों में उच्च स्थानिकता पाई जाती है:
    - **Impatiens** की 86 प्रजातियों में से 76 स्थानिक हैं।
    - **Dipterocarpus** की 13 प्रजातियों में से 12 स्थानिक हैं।
    - **Calamus** की 25 प्रजातियों में से 23 स्थानिक हैं।
    - ***Podocarpus* (=Nageia) *wallichianus*** (एकमात्र जिम्नोस्पर्म वृक्ष) भी पूरी तरह स्थानिक है।
    - 490 दर्ज वृक्ष प्रजातियों में से 308 स्थानिक हैं।
    - 267 ऑर्किड प्रजातियों में से 130 स्थानिक हैं।
- इस हॉटस्पॉट में 6,000 से अधिक संवहनी पौधों (vascular plants) की प्रजातियाँ 2,500 से अधिक वंशों से संबंधित हैं, जिनमें से 3,000 से अधिक प्रजातियाँ स्थानिक हैं। विश्व की कई महत्वपूर्ण मसालों (spices) की उत्पत्ति पश्चिमी घाट से हुई है, जैसे काली मिर्च और इलायची। लगभग 235 स्थानिक पुष्पीय पौधे संकटग्रस्त माने जाते हैं।
- श्रीलंका में भी पौधों की विविधता और स्थानिकता अत्यधिक है: यहाँ 3,210 पुष्पीय पौधों की प्रजातियाँ 1,052 वंशों से संबंधित हैं, जिनमें से 916 प्रजातियाँ और 18 वंश पूरी तरह स्थानिक हैं। द्वीप की 55 से अधिक Dipterocarp प्रजातियों में से केवल एक को छोड़कर बाकी सभी केवल श्रीलंका में पाई जाती हैं। लगभग 350 फर्न प्रजातियाँ यहाँ पाई जाती हैं। लगभग 433 पौधों की प्रजातियाँ और कम से कम 5 वंश केवल श्रीलंका और पश्चिमी घाट तक सीमित हैं।
- इस क्षेत्र के दुर्लभ जीव-जंतु शामिल हैं: एशियाई हाथी, नीलगिरि थार, नीलगिरि लंगूर, उड़ने वाली गिलहरी (Flying squirrel), भारतीय बाघ, शेर-पूंछ मकाक (Lion-tailed macaque) [सभी संकटग्रस्त], भारतीय विशाल गिलहरी (Indian Giant Squirrel) [कम चिंता]
- पश्चिमी घाट में प्रजातियों की सबसे अधिक एकाग्रता अगस्त्यमलाई पहाड़ियों (दक्षिणी छोर पर) में पाई जाती है। यहाँ 450 से अधिक पक्षी प्रजातियाँ, लगभग 140 स्तनधारी प्रजातियाँ, 260 सरीसृप प्रजातियाँ, और 175 उभयचर प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से 60% से अधिक सरीसृप और उभयचर केवल यहीं स्थानिक हैं। यद्यपि यह जैव विविधता असाधारण है, आज यह गंभीर रूप से संकटग्रस्त है।
- इस हॉटस्पॉट की वनस्पति मूल रूप से **1**,90,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैली हुई थी। आज यह घटकर केवल 43,000 वर्ग किलोमीटर रह गई है। श्रीलंका में अब केवल 1.5% मूल वन क्षेत्र (forest cover) ही शेष बचा है।

**3. सुंडालैंड (Sundaland)**

- सुंडालैंड पृथ्वी के सबसे समृद्ध जैविक हॉटस्पॉट्स (biological hotspots) में से एक है। संयुक्त राष्ट्र (United Nations) ने वर्ष 2013 में इन द्वीपों को विश्व जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र (World Biosphere Reserve) घोषित किया।

http://bsienvis.nic.in/files/Biodiversity%20Hotspots%20in%20India.pf

**प्रजातीय विविधता और स्थानिकता**

| वर्गीकरण समूह | कुल प्रजातियाँ | स्थानिक प्रजातियाँ | स्थानिकता (%) |
|---|---|---|---|
| पौधे | 25,000 | 15,000 | 60.0 |
| स्तनधारी | 380 | 172 | 45.3 |
| पक्षी | 769 | 142 | 18.5 |
| सरीसृप | 452 | 243 | 53.8 |
| उभयचर | 244 | 196 | 80.3 |
| मीठे पानी की मछलियाँ | 950 | 350 | 36.8 |

- यह दक्षिण-पूर्व एशिया का एक क्षेत्र है जो इंडो-मलायन द्वीपसमूह (Indo-Malayan Archipelago) के पश्चिमी भाग को कवर करता है। इसमें थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, ब्रुनेई और इंडोनेशिया शामिल हैं। भारत का प्रतिनिधित्व इस क्षेत्र में निकोबार द्वीपसमूह करता है।
- इन द्वीपों में अत्यंत समृद्ध स्थलीय (terrestrial) और समुद्री (marine) पारिस्थितिकी तंत्र पाया जाता है, जिसमें मैंग्रोव वन, कोरल रीफ (प्रवाल भित्तियाँ) और सीग्रास बिस्तर (seagrass beds) शामिल हैं।
- यहाँ लगभग 25,000 संवहनी पौधों की प्रजातियाँ (vascular plant species) पाई जाती हैं, जिनमें से लगभग 15,000 (60%) प्रजातियाँ दुनिया में कहीं और नहीं मिलतीं। एक विशेष पौधों का परिवार Scyphostegiaceae केवल इसी हॉटस्पॉट में पाया जाता है और इसे *Scyphostegia borneensis* नामक एकल वृक्ष प्रजाति (जो बोर्नियो में मिलती है) द्वारा दर्शाया गया है।

- इस हॉटस्पॉट के उल्लेखनीय पौधों में रैफ्लेसिया (Rafflesia) वंश की प्रजातियाँ शामिल हैं — जिनकी 16 प्रजातियाँ अत्यंत बड़े फूलों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक, Rafflesia arnoldii, दुनिया का सबसे बड़ा फूल है, जिसका व्यास एक मीटर तक होता है।
- सुंडालैंड की समुद्री जैव विविधता (marine biodiversity) में अनेक प्रजातियाँ शामिल हैं, जैसे — व्हेल (Whales), डॉल्फ़िन (Dolphins), डुगोंग (Dugong), कछुए (Turtles), मगरमच्छ (Crocodiles), मछलियाँ (Fishes), झींगे (Prawns), लॉब्स्टर (Lobsters), कोरल (Corals) और सीशेल्स (Sea Shells)।
- इस जैव विविधता के लिए मुख्य खतरा समुद्री संसाधनों के अत्यधिक दोहन (over-exploitation) से उत्पन्न होता है। इसके अलावा, द्वीपों के वनों की रक्षा भी आवश्यक है ताकि पारिस्थितिक संतुलन बना रहे।

**होप स्पॉट्स (Hope Spots)**

- होप स्पॉट महासागर का वह क्षेत्र होता है जिसे उसकी वन्यजीव विविधता (wildlife) और महत्वपूर्ण जलमग्न आवासों (underwater habitats) के कारण विशेष संरक्षण (special protection) की आवश्यकता होती है।
- अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह तथा लक्षद्वीप द्वीपसमूह को IUCN (अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ) और मिशन ब्लू (Mission Blue) संगठन की महासागर विज्ञानी सिल्विया एरल (Sylvia Earle) द्वारा नए "होप स्पॉट्स" के रूप में नामित किया गया है। यह संगठन महासागरों के अध्ययन और संरक्षण में सक्रिय रूप से कार्यरत है।
- अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह में दुनिया की कुछ अद्वितीय पक्षी और पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। वहीं लक्षद्वीप के मामले में वहाँ के कोरल रीफ (प्रवाल भित्तियाँ) समुद्री पर्यावरण के प्रति अत्यंत संवेदनशील हैं और उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है।

## 13.4 हॉटस्पॉट्स के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य

जैव विविधता हॉटस्पॉट्स (Biodiversity Hotspots) की पारिस्थितिक समृद्धि के कारण, ये क्षेत्र प्रायः महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ (ecosystem services) प्रदान करते हैं। अनुमान लगाया गया है कि यद्यपि हॉटस्पॉट्स पृथ्वी की सतह का केवल 2.3% भाग हैं, वे वैश्विक पारिस्थितिकी सेवाओं का लगभग 35% प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, इन हॉटस्पॉट्स में लगभग 2.08 अरब लोग निवास करते हैं, जिससे इन क्षेत्रों द्वारा प्रदान की जाने वाली पारिस्थितिक सेवाओं का महत्व और बढ़ जाता है। जैव विविधता हॉटस्पॉट्स में विभिन्न प्रकार के मानवीय भूमि उपयोग शामिल हो सकते हैं — ग्रामीण और शहरी दोनों — साथ ही विभिन्न प्रकार के संरक्षित क्षेत्र (protected areas) भी पाए जाते हैं, जो भिन्न-भिन्न शासन प्रणालियों के अंतर्गत आते हैं। इस कारण से, इन क्षेत्रों में सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों (social and cultural values) की विविधता भी देखने को मिलती है।

हालाँकि, इन सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की उपस्थिति क्षेत्र को जैव विविधता हॉटस्पॉट के रूप में पहचानने से स्वतंत्र (irrespective) होती है।

# 13.5 हॉटस्पॉट्स में जैव विविधता के ह्रास के कारण

जैव विविधता हॉटस्पॉट्स में प्रजातियों के संकटग्रस्त होने के चार मुख्य कारण हैं:

**1. आवास विनाश (Habitat Destruction):** लगभग 30 वर्ष पहले तक, इन हॉटस्पॉट क्षेत्रों का अधिकांश भाग दुर्गम और दूरस्थ था। परंतु, बेहतर बुनियादी ढाँचे (infrastructure) के कारण इन क्षेत्रों तक मानवों की पहुँच बढ़ गई है। लकड़ी की कटाई (logging), कृषि का विस्तार, और मानव बस्तियों में वृद्धि जैसी गतिविधियों ने वनों के विनाश और नदियों के प्रदूषण को जन्म दिया है। इसके परिणामस्वरूप प्रजातियों के आवास क्षेत्र सिकुड़ रहे हैं और उनका वितरण खंडित (fragmented) हो गया है। सरकार द्वारा आवास गलियारे (habitat corridors) स्थापित करने की योजना बनाई गई थी, लेकिन अधिकांश क्षेत्रों में ये योजनाएँ लागू नहीं हो सकी हैं। खनन (mining), बड़े बाँधों का निर्माण, और राजमार्ग निर्माण जैसी गतिविधियों ने भी आवासों को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

**2. संसाधनों का दुरुपयोग (Resource Mismanagement):** नियमन के अभाव में बढ़ते पर्यटन (tourism) ने प्रदूषण और पर्यावरणीय क्षरण (environmental degradation) को बढ़ावा दिया है। उदाहरणस्वरूप, ऋषिकेश जैसे तीर्थ स्थल और देहरादून जैसे हिल स्टेशन, जो कभी हिमालय की निर्मल पर्वतमालाओं में बसे थे, अब व्यावसायिक रूप से प्रदूषित स्थलों में परिवर्तित हो चुके हैं। देहरादून में निर्माण गतिविधियों का अत्यधिक विस्तार हो रहा है, और यहाँ तक कि अवैध प्रवासियों का आगमन भी बढ़ा है। हिमालय के धार्मिक स्थल, जहाँ लाखों श्रद्धालु आते हैं, अब औषधीय पौधों के व्यापार के केंद्र बन चुके हैं, जिससे वहाँ की वनस्पतियों को खतरा है।

**3. अवैध शिकार (Poaching):** बाघ, गैंडा और हाथी जैसे बड़े स्तनधारी कभी पूर्ण विलुप्ति के कगार पर थे। हालाँकि, 1970 के दशक से संरक्षणवादियों के प्रयासों ने इनकी आबादी को स्थिर और पुनर्जीवित किया है, फिर भी बाघ की खाल, हाथी के दाँत (ivory), बाघ के दाँत और गैंडे के सींग के व्यापार अब भी लाभदायक और व्यापक हैं।

**4. जलवायु परिवर्तन (Climate Change):** यद्यपि IPCC द्वारा 2035 तक हिमालयी ग्लेशियरों के पिघलने की भविष्यवाणी वापस ले ली गई है, फिर भी अनेक ग्लेशियर वास्तव में तेजी से पिघल रहे हैं। पश्चिमी घाटों (Western Ghats) में हुए अध्ययनों से पता चला है कि कर्नाटक के पतझड़ी और सदाबहार वन सबसे अधिक जोखिम में हैं। भारत सरकार के एक आकलन के अनुसार, जलवायु परिवर्तन से इस क्षेत्र के तापमान, वर्षा पैटर्न और जल-स्तरों पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है।

# 13.6 प्रजातियों का विलुप्त होना

विलुप्ति (Extinction), विशेष रूप से प्रजातीय विलुप्ति (species extinction), का अर्थ है किसी प्रजाति के अंतिम सदस्य की मृत्यु। चूँकि यह परिभाषा "प्रजाति" की अवधारणा पर निर्भर है, इसलिए प्रजाति की परिभाषा में अस्पष्टता विलुप्ति की अवधारणा को भी प्रभावित करती है। उदाहरणस्वरूप, मानव (Homo)

और चिंपैंजी (Pan) की वंशावलियाँ लगभग 1.2 करोड़ वर्ष पूर्व किसी सामान्य पूर्वज से विभाजित हुईं। यदि किसी प्रजाति की जनसंख्या दो भागों में विभाजित होकर दो नई प्रजातियों में विकसित हो जाए, तो मूल प्रजाति का "वास्तविक" विलुप्त होना नहीं कहा जा सकता। इसे छद्म-विलुप्ति (pseudo-extinction) या विकासात्मक शाखाकरण (cladogenesis) कहा जाता है।

जीवाश्म (fossil) अध्ययनों से अक्सर यह पता लगाना कठिन होता है कि कोई प्रजाति वास्तव में विलुप्त हुई या केवल छद्म-विलुप्त। उदाहरण के लिए, यदि हम मानव और चिंपैंजी के सामान्य पूर्वज के जीवाश्म का अध्ययन करें, तो वह प्रजाति लगभग 1 से 10 मिलियन वर्षों तक अस्तित्व में रही और फिर लगभग 1.2 करोड़ वर्ष पूर्व "विलुप्त" हो गई। लेकिन आणविक वंशवृक्ष (molecular phylogenetics) से पता चलता है कि वह प्रजाति वास्तव में विकसित होकर दो नई प्रजातियों में परिवर्तित हुई थी। किसी विलुप्त प्रजाति को अक्सर प्रजातियों की सूची या वंशवृक्ष में † (डैगर चिन्ह) द्वारा दर्शाया जाता है। आज कई प्रजातियाँ जैसे अफ्रीकी हाथी विलुप्ति के कगार पर हैं। IUCN (International Union for Conservation of Nature) की रेड लिस्ट में इन्हें "थ्रेटेंड" (Threatened) या "एंडेंजर्ड" (Endangered) श्रेणियों में रखा जाता है। कई प्रजातियाँ जो अब जंगली अवस्था में विलुप्त (Extinct in the Wild) हैं, उन्हें चिड़ियाघरों और वनस्पति उद्यानों में एक्स-सीटू संरक्षण (ex-situ conservation) के माध्यम से संरक्षित किया जा रहा है।

## 13.6.1 प्राकृतिक विलुप्ति के कारण

पृथ्वी पर अब तक हुई अधिकांश विलुप्तियाँ प्राकृतिक कारणों से हुई हैं, न कि मानवजनित (anthropogenic) कारणों से। मानव जाति केवल लगभग 3 लाख वर्ष पुरानी है, जबकि पृथ्वी पर जीवन का इतिहास लगभग 4 अरब वर्ष पुराना है। विलुप्ति की दर किसी भी समय पर जैव विविधता को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। अधिकांश विलुप्तियाँ प्राकृतिक या पृष्ठभूमि विलुप्तियाँ होती हैं जैसे किसी व्यक्ति की मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है। प्राकृतिक विलुप्तियों के कई कारण होते हैं:

**प्रजातियों के बीच संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा (interspecific competition)** जैसे समुद्री प्लवक (plankton) प्रजातियों के बीच भोजन के लिए संघर्ष। इस स्थिति में अधिक अनुकूलित (fit) प्रजातियाँ कमज़ोर प्रजातियों को विलुप्त कर देती हैं।

**आवास परिवर्तन (habitat change)** जैसे मरुस्थलीकरण (desertification) से अनेक प्रजातियाँ अपने पर्यावरण के अनुरूप नहीं रह पातीं और विलुप्त हो जाती हैं।

**वैश्विक स्तर की आपदाएँ (global catastrophes)** जैसे क्षुद्रग्रहों के टकराव (asteroid impact) या वैश्विक हिमनदकरण (glaciation) ने अनेक प्रजातियों को समाप्त किया। उदाहरणतः क्षुद्रग्रह के टकराने से वायुमंडल में धूल फैलकर सूर्य के प्रकाश को रोक देती है, जिससे पौधे मर जाते हैं और पूरा खाद्य जाल टूट जाता है।

**जलवायु परिवर्तन (Climate Change)** स्थानीय स्तर पर झीलों या नदियों के सूखने से स्थानिक प्रजातियाँ (endemic species) विलुप्त हो सकती हैं। चूँकि ये प्रजातियाँ केवल एक ही स्थान पर पाई जाती हैं, उनका स्थानीय विलुप्त होना वैश्विक विलुप्ति के समान होता है।

इसी कारण से, संरक्षण कार्यक्रम (conservation programmes) उन क्षेत्रों को प्राथमिकता देते हैं जिन्हें हॉटस्पॉट्स कहा जाता है — जहाँ अत्यधिक स्थानिकता (endemism) और 70% से अधिक आवास हानि (habitat loss) हो चुकी है। हालाँकि, हॉटस्पॉट की परिभाषा मुख्यतः संवहनी पौधों (vascular plants) पर आधारित है, यह शैवाल (algae), कवक (fungi), प्रोटोजोआ (protozoa) या बैक्टीरिया जैसी अन्य जीव श्रेणियों को सम्मिलित नहीं करती। वैश्विक जलवायु परिवर्तन (global climate change) ने इतिहास में कई बार महाविलुप्तियों (mass extinctions) को जन्म दिया है — जैसे पर्मियन महाविलुप्ति (Permian Mass Extinction) या अंतिम हिम युग के दौरान उच्च अक्षांशों की प्रजातियों का नाश।

# 13.7 IUCN रेड लिस्ट श्रेणियाँ

## 13.7.1 परिचय

प्रकृति संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ (IUCN – International Union for Conservation of Nature) एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो प्रकृति संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग (sustainable use) के क्षेत्र में कार्य करता है। यह विश्व का अग्रणी अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण संगठन है। इसका मुख्यालय ग्लैंड (Gland), स्विट्ज़रलैंड में स्थित है।

**इतिहास (History)**

IUCN की स्थापना 18 अक्टूबर, 1948 को फॉन्टेनब्लो (Fontainebleau), फ्रांस में की गई थी। यह संगठन विश्व स्तर पर प्रजातियों की संरक्षण स्थिति का सबसे व्यापक डेटाबेस (global conservation status inventory) रखता है। IUCN को सरकारों, सदस्य संगठनों, द्विपक्षीय (bilateral) और बहुपक्षीय (multilateral) एजेंसियों द्वारा वित्तपोषित किया जाता है।

यह संगठन विश्व में प्रजातियों की संरक्षण स्थिति पर सर्वोच्च प्राधिकरण (main authority) माना जाता है। भारत 1969 में IUCN का राज्य सदस्य बना। IUCN का भारत कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है, जिसकी स्थापना 2007 में की गई थी।

**IUCN का प्रतीक चिह्न (Logo of IUCN)**

IUCN ने कई प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय संधियाँ तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिनमें शामिल हैं:

**a.** जैव विविधता पर अभिसमय (Convention on Biological Diversity – CBD)

**b.** विलुप्तप्राय प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर अभिसमय (CITES)

**c.** विश्व धरोहर अभिसमय (World Heritage Convention)

**d.** रामसर अभिसमय (Ramsar Convention) — आर्द्रभूमियों (Wetlands) पर

**IUCN के कार्य**

IUCN मुख्यतः IUCN रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटेंड स्पीशीज़ (IUCN Red List of Threatened Species) के संकलन और प्रकाशन के लिए जाना जाता है। यह सूची विश्वभर की प्रजातियों की संरक्षण स्थिति का मूल्यांकन (assessment of conservation status) करती है। IUCN का मुख्य उद्देश्य है — समाजों को प्रकृति की विविधता के संरक्षण के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित और सहायता करना। इसका लक्ष्य प्रकृति की रक्षा करना और प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग (sustainable utilization) को बढ़ावा देना है। साथ ही, यह गरीबी उन्मूलन (poverty alleviation), जलवायु परिवर्तन (climate change), जैव विविधता संरक्षण (biodiversity conservation) और लैंगिक समानता (gender equality) के विषयों को भी एकीकृत करता है।

**IUCN की गतिविधियाँ (Activities of IUCN)**

IUCN पर्यावरण और पारिस्थितिकी से संबंधित विभिन्न विषयों पर कार्य करता है। इसके प्रमुख कार्यक्षेत्र निम्नलिखित हैं: (स्रोत: IUCN – https://www.iucn.org/theme)

**a) व्यवसाय और जैव विविधता:** उद्देश्य है कि व्यवसायिक मूल्यों को इस दिशा में परिवर्तित करना कि वे प्रकृति में निवेश करें और अधिक सतत (sustainable) दृष्टिकोण अपनाएँ।

**b) जलवायु परिवर्तन:** जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों का आकलन करना और प्रकृति-आधारित समाधान (nature-based solutions) विकसित करना जैसे पारिस्थितिक तंत्रों का संरक्षण, प्रबंधन और पुनर्स्थापन।

**c) पारिस्थितिक तंत्र प्रबंधन:** स्वस्थ पारिस्थितिक तंत्र सुनिश्चित करना जो खाद्य, जल, जलवायु नियंत्रण (climate regulation) और प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा जैसी सेवाएँ प्रदान करें।

**वन संरक्षण (Forest Conservation)**

**a)** समुद्री और ध्रुवीय पर्यावरणों का संरक्षण
**b)** वैश्विक प्रजाति कार्यक्रम मनुष्यों और प्रकृति दोनों के लिए प्रजातियों को बचाने हेतु समर्पित।
**c)** जल संरक्षण और प्रबंधन
**d)** प्राकृतिक विश्व धरोहर स्थल

## 13.7.2 IUCN वैश्विक संरक्षित क्षेत्र कार्यक्रम

IUCN ने संरक्षण के लिए कई महत्वपूर्ण संसाधन और डेटाबेस विकसित किए हैं, जिनमें शामिल हैं:

**a)** Conservation Tools (संरक्षण उपकरण)

**b)** IUCN Red List of Threatened Species (विलुप्तप्राय प्रजातियों की रेड लिस्ट)

**c)** IUCN Red List of Ecosystems (पारिस्थितिक तंत्र की रेड लिस्ट)

**d)** Key Biodiversity Areas (मुख्य जैव विविधता क्षेत्र)

**संरक्षण उपकरण (Conservation Tools)**

IUCN का मुख्य उद्देश्य है ज्ञान साझा करना। इसके ज्ञान उत्पाद में विभिन्न संरक्षण डेटाबेस और उपकरण शामिल हैं। IUCN द्वारा विकसित प्रमुख संरक्षण डेटाबेस की सूची:

- IUCN रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटन्ड स्पीशीज़
- IUCN रेड लिस्ट ऑफ इकोसिस्टम्स
- World Database on Key Biodiversity Areas
- संरक्षित क्षेत्रों की स्थिति और प्रबंधन से संबंधित जानकारी।
- ECOLEX — पर्यावरणीय कानून (Environmental Law) से संबंधित एक वैश्विक डाटाबेस।

## 13.8 IUCN रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटन्ड स्पीशीज़

IUCN रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटन्ड स्पीशीज़ की स्थापना वर्ष 1964 में की गई थी। यह सूची विश्वभर में ज्ञात जैविक प्रजातियों की संरक्षण स्थिति का सबसे व्यापक वैश्विक अभिलेख है। यह सूची उन वनस्पतियों, प्राणियों और अन्य जीवों की स्थिति का वैज्ञानिक और निष्पक्ष मूल्यांकन प्रदान करती है जो विलुप्ति के खतरे का सामना कर रहे हैं।

प्रकृति संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ (IUCN) ने इस मूल्यांकन प्रणाली को 1994 में औपचारिक रूप से प्रस्तुत किया। इस प्रणाली में स्पष्ट मापदंड और श्रेणियाँ निर्धारित की गई हैं, जिनकी सहायता से किसी भी प्रजाति की विलुप्ति की संभावना के आधार पर उसकी संरक्षण स्थिति निर्धारित की जाती है। IUCN रेड लिस्ट में प्रजातियों को कुल नौ (9) श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है (जैसा कि चित्र 1 में दर्शाया गया है)।

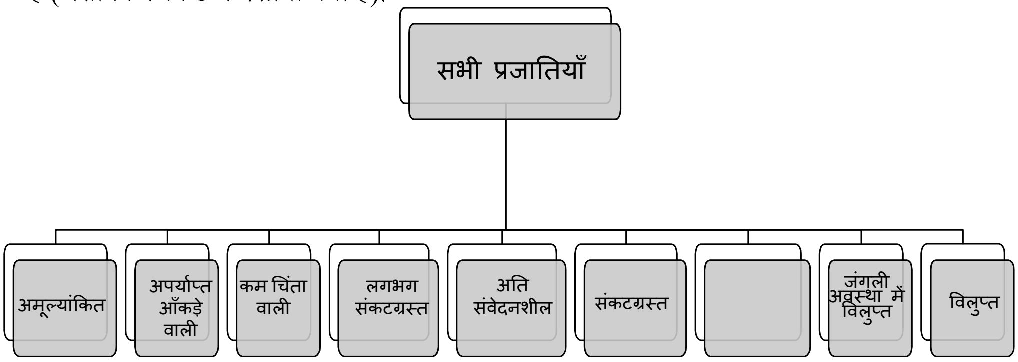


**चित्र 1 : IUCN रेड लिस्ट की विभिन्न श्रेणियाँ प्रदर्शित करता है**

**वर्गीकरण के मानदंड (Criteria for Classification):** IUCN प्रणाली किसी भी प्रजाति के विलुप्ति जोखिम (risk of extinction) का मूल्यांकन करने के लिए पाँच मात्रात्मक मानदंडों (five quantitative criteria) का उपयोग करती है। ये हैं —

1. जनसंख्या में गिरावट की दर (Rate of population decline):
2. भौगोलिक वितरण क्षेत्र (Geographic range):
3. जनसंख्या का आकार (Population size):
4. प्रजाति का आकार या आवास क्षेत्र (Species size or habitat area)
5. विलुप्ति की संभावना (Probability of extinction): उपरोक्त सभी मापदंडों के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि क्या उस प्रजाति के जंगली अवस्था (in the wild) में विलुप्त होने की संभावना अधिक है या नहीं।

**तालिका 1 : रेड लिस्ट के अंतर्गत विभिन्न श्रेणियों का निरूपण**

| **IUCN श्रेणी (Category)** | **विवरण** | **उदाहरण** |
|---|---|---|
| विलुप्त (Extinct) | जब किसी प्रजाति का अंतिम जीवित सदस्य मर चुका हो और उसके जीवित होने की कोई यथोचित संभावना न हो, तो उसे विलुप्त (Extinct) श्रेणी में रखा जाता है। | डोडो (Dodo) |
| जंगली अवस्था में विलुप्त (Extinct in the Wild) | ब कोई प्रजाति केवल पालन-पोषण (captivity), खेती (cultivation) या अपने प्राकृतिक आवास से बाहर स्थापित आबादी (naturalized population) के रूप में ही जीवित हो, तो उसे जंगली अवस्था में विलुप्त (Extinct in the Wild) कहा जाता है। | Alagoas curassow (अलागोआस कुरासो) |
| अत्यंत संकटग्रस्त (Critically Endangered) | ब किसी प्रजाति के निकट भविष्य में जंगली अवस्था में विलुप्त होने की अत्यधिक संभावना हो, तो उसे अत्यंत संकटग्रस्त (Critically Endangered) श्रेणी में रखा जाता है। | घड़ियाल (Gharial) |
| संकटग्रस्त (Endangered) | जब उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि कोई प्रजाति विलुप्ति के गंभीर खतरे का सामना कर रही है और उसकी संख्या में लगातार कमी आ रही है, तो उसे संकटग्रस्त (Endangered) श्रेणी में रखा जाता है। | बाघ (Tiger) |
| अति संवेदनशील (Vulnerable) | जब कोई प्रजाति Critically Endangered (CR) या Endangered (EN) नहीं है, परंतु मध्यम अवधि में जंगली अवस्था में विलुप्ति का उच्च जोखिम है, तो उसे अति संवेदनशील (Vulnerable) श्रेणी में रखा जाता है। | ध्रुवीय भालू (Polar Bear) |
| लगभग संकटग्रस्त (Near Threatened) | जब किसी प्रजाति का मूल्यांकन किया गया हो और वह वर्तमान में CR, EN या VU श्रेणियों में नहीं आती, परंतु भविष्य में संकटग्रस्त श्रेणी में आने की संभावना हो, तो उसे लगभग संकटग्रस्त (Near Threatened) कहा जाता है। | ब्लू-बिल्ड डक (Blue-billed Duck) |
| कम चिंता वाली (Least Concern) | जब किसी प्रजाति का मूल्यांकन किया गया हो और वह CR, EN, VU या NT में नहीं आती, और वह विस्तृत रूप से पाई जाती हो तथा संख्या में प्रचुर (abundant) हो, तो उसे कम चिंता वाली (Least Concern) श्रेणी में रखा जाता है। | |
| अपर्याप्त आँकड़े वाली | जब किसी प्रजाति के वितरण क्षेत्र (distribution) या जनसंख्या स्थिति | |

| | | |
|---|---|---|
| (Data Deficient) | (population status) के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं होती, तो उसे अपर्याप्त आँकड़े वाली (Data Deficient) श्रेणी में रखा जाता है। यह ध्यान देना चाहिए कि Data Deficient श्रेणी खतरे की श्रेणी नहीं है। | |
| अमूल्यांकित (Not Evaluated) | जब किसी प्रजाति का अभी तक IUCN के मानदंडों के अनुसार मूल्यांकन नहीं किया गया, तो उसे अमूल्यांकित (Not Evaluated) श्रेणी में रखा जाता है। | |

## 13.9 रेड डेटा बुक; भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची

### 13.9.1 रेड डेटा बुक क्या है?

यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे उन दुर्लभ और विलुप्तप्राय प्रजातियों (rare and endangered species) के अभिलेख (record) के रूप में तैयार किया गया है, जिनमें पौधे, जानवर, कवक (fungi) और कुछ स्थानीय उप-प्रजातियाँ (local sub-species) शामिल हैं, जो किसी राज्य या देश के क्षेत्र में पाई जाती हैं। इसे IUCN रेड लिस्ट (IUCN Red List) भी कहा जाता है। यह एक सार्वजनिक दस्तावेज़ है, जो हमें अनुसंधान, निगरानी और संरक्षण रणनीतियों से संबंधित जानकारी प्रदान करता है, विशेष रूप से उन प्रजातियों के लिए जो दुर्लभ या विलुप्त होने के कगार पर हैं। कई प्रजातियाँ बिना किसी जानकारी के ही बहुत पहले विलुप्त हो चुकी हैं। इसीलिए, अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union for Conservation of Nature - IUCN), जिसकी स्थापना 1964 में हुई थी, ने इन सभी दुर्लभ और संकटग्रस्त प्रजातियों का अभिलेख रेड डेटा बुक में रखना प्रारंभ किया। इस दस्तावेज़ को रूसी रेड डेटा बुक (Russian Red Data Book) भी कहा जाता है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति रूसी संघ से हुई थी। यह पुस्तक विभिन्न रंगों के कोडित सूचना पत्रकों से बनी होती है, जिन्हें विभिन्न वनस्पति और जीव-जंतुओं की प्रजातियों के अस्तित्व पर खतरे के स्तर के अनुसार व्यवस्थित किया गया है। विभिन्न रंगों के पत्रक संकटग्रस्त प्रजातियों की अलग-अलग श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

| क्रम सं. | पत्रक का रंग | संकटग्रस्त प्रजातियों की श्रेणी |
|---|---|---|
| 1. | काला | वे प्रजातियाँ जो विलुप्त (Extinct) हो चुकी हैं। |
| 2. | लाल | वे प्रजातियाँ जो विलुप्ति के अत्यधिक खतरे (Greater risk of extinction) में हैं। |
| 3. | अंबर / पीला-नारंगी | वे प्रजातियाँ जो अन्य प्रजातियों के हमले (Being attacked by other species) का सामना कर रही हैं। |
| 4. | सफेद | वे प्रजातियाँ जो दुर्लभ (Rare species) हैं। |
| 5. | हरा | वे प्रजातियाँ जो सुरक्षित या गैर-खतरनाक (Non-dangerous species) हैं। |
| 6. | धूसर / ग्रे | वे प्रजातियाँ जो संकटग्रस्त (Endangered), असुरक्षित (Vulnerable) या दुर्लभ (Rare) मानी जाती हैं। |

## 13.9.2 रेड डेटा बुक के उद्देश्य (Goals of Red Data Book)

IUCN (1996) ने रेड डेटा बुक के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं —

1. वैश्विक स्तर पर प्रजातियों और उप-प्रजातियों की स्थिति के बारे में वैज्ञानिक रूप से आधारित जानकारी देना।
2. संकटग्रस्त जैव विविधता (threatened biodiversity) की मात्रा और उसके महत्व की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना।
3. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करना ताकि जैव विविधता का संरक्षण सुनिश्चित हो सके।
4. जैव विविधता के संरक्षण के लिए आवश्यक कार्यों का मार्गदर्शन करने हेतु जानकारी उपलब्ध कराना।

**रेड डेटा बुक के लाभ (Advantages of Red Data Book)**

1. यह दुर्लभ और विलुप्तप्राय प्रजातियों का अभिलेख रखती है, जिससे किसी प्रजाति के विलुप्त होने के खतरे की आसानी से पहचान की जा सकती है।
2. यह वनस्पति और जीव-जंतुओं की सभी श्रेणियों (जैसे पौधे, जानवर और अन्य उप-प्रजातियाँ) का अभिलेख रखती है।
3. इस पुस्तक में दी गई जानकारी का उपयोग वैश्विक स्तर पर वर्गीकरण (taxa) का मूल्यांकन करने में किया जा सकता है।
4. प्रजातियों के विलुप्त होने के जोखिम को कम करने के लिए विभिन्न रणनीतियाँ पहले से विकसित की जा सकती हैं।

**रेड डेटा बुक की कमियाँ (Disadvantages of Red Data Book)**

- विलुप्त और वर्तमान प्रजातियों की पूर्ण सूची इस पुस्तक में उपलब्ध नहीं है।
- सूक्ष्मजीवों (micro-organisms) की विभिन्न दुर्लभ और विलुप्तप्राय प्रजातियों की जानकारी इस पुस्तक में उपलब्ध नहीं है।

# 13.10 रेड डेटा बुक में सूचीबद्ध श्रेणियाँ

रेड डेटा बुक में सूचीबद्ध विभिन्न श्रेणियों के बीच संबंधों का एक चित्रात्मक निरूपण चित्र 1 में दर्शाया गया है।

**विलुप्त (Extinct – EX)**

किसी टैक्सन (Taxon) को *विलुप्त* तब कहा जाता है जब इस बात में कोई उचित संदेह न हो कि उसका अंतिम जीव (individual) मर चुका है — अर्थात् वह अपनी प्राकृतिक (wild) और संवर्धित (cultivated) दोनों अवस्थाओं में अब कहीं भी मौजूद नहीं है।

**वन्य अवस्था में विलुप्त (Extinct in the Wild – EW)**

किसी टैक्सन को *वन्य अवस्था में विलुप्त* तब माना जाता है जब वह केवल संवर्धन (cultivation), कैद (captivity) या अपने प्राकृतिक क्षेत्र (natural range) से बहुत दूर किसी स्थानीयकृत जनसंख्या (naturalized population) के रूप में ही जीवित हो। यदि किसी प्रजाति के ज्ञात या अपेक्षित निवास स्थान (habitat) में व्यापक सर्वेक्षण (exhaustive surveys) के बावजूद, उचित समय (दैनिक, मौसमी, वार्षिक) पर कोई भी व्यक्ति नहीं पाया जाता, तो उसे *वन्य अवस्था में विलुप्त* माना जाता है।

**अति संकटग्रस्त (Critically Endangered – CR)**

किसी टैक्सन को *अति संकटग्रस्त* तब कहा जाता है जब वह निकट भविष्य में वन्य अवस्था में विलुप्त होने के अत्यधिक जोखिम का सामना कर रहा हो। मानदंड (Criteria):

- **a.** 3 पीढ़ियों या 10 वर्षों में क्षेत्र (range) में 80% की कमी।
- **b.** 250 से कम पौधे और घटती संख्या।
- **c.** 50 से कम परिपक्व पौधे।
- **d.** 10 वर्षों या 3 पीढ़ियों में 50% विलुप्ति की संभावना।

**संकटग्रस्त (Endangered – EN)**

किसी टैक्सन को संकटग्रस्त तब कहा जाता है जब वह अति संकटग्रस्त नहीं है, परंतु वह निकट भविष्य में वन्य अवस्था में विलुप्त होने के बहुत अधिक खतरे में है।

- **a.** 3 पीढ़ियों या 10 वर्षों में क्षेत्र में 50% की कमी।
- **b.** 5000 वर्ग किलोमीटर से कम क्षेत्रफल या 500 वर्ग किलोमीटर से कम अधिवास और जनसंख्या में गिरावट।
- **c.** 2500 से कम पौधे और घटती संख्या।
- **d.** 250 से कम परिपक्व पौधे।
- **e.** 20 वर्षों या 5 पीढ़ियों में 20% विलुप्ति की संभावना।

**असुरक्षित (Vulnerable – VU)**

किसी टैक्सन को असुरक्षित तब कहा जाता है जब वह अति संकटग्रस्त या संकटग्रस्त नहीं है, परंतु मध्यम अवधि के भविष्य में वन्य अवस्था में विलुप्त होने के उच्च जोखिम में है।

- **a.** 3 पीढ़ियों या 10 वर्षों में क्षेत्र में 20% की कमी।
- **b.** 10,000 से कम पौधे और घटती संख्या।
- **c.** 1,000 से कम परिपक्व पौधे, या बहुत कम क्षेत्रफल (100 वर्ग किमी से कम), या 5 से कम स्थानों पर उपस्थिति।
- **d.** 100 वर्षों में 10% विलुप्ति की संभावना।

**निम्न जोखिम (Lower Risk – LR)**

किसी टैक्सन को निम्न जोखिम तब कहा जाता है जब उसका मूल्यांकन किया जा चुका हो और वह अति संकटग्रस्त, संकटग्रस्त या असुरक्षित श्रेणियों में नहीं आता हो। इसकी तीन उप-श्रेणियाँ होती हैं:

**संरक्षण-निर्भर (Conservation Dependent–cd):** वे प्रजातियाँ जिनका संरक्षण किसी निरंतर कार्यक्रम पर निर्भर करता है; यदि यह कार्यक्रम बंद हो जाए, तो वे संकटग्रस्त हो जाएँगी।

**निकट-संकटग्रस्त (Near Threatened–nt):** वे प्रजातियाँ जो संरक्षण-निर्भर तो नहीं हैं, परंतु असुरक्षित (Vulnerable) श्रेणी के निकट हैं।

**कम से कम चिंता वाली (Least Concern–lc):** वे प्रजातियाँ जो संरक्षण निर्भर या निकट-संकटग्रस्त किसी भी श्रेणी में नहीं आतीं।

**डेटा अभाव (Data Deficient–DD)**

किसी टैक्सन को डेटा अभाव तब कहा जाता है जब उसके वितरण (distribution) या जनसंख्या स्थिति (population status) के आधार पर विलुप्ति के जोखिम का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मूल्यांकन करने हेतु पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं होती। ऐसी प्रजातियाँ भली-भाँति अध्ययन की गई हो सकती हैं,परंतु जनसंख्या संख्या या वितरण संबंधी उपयुक्त आंकड़े अनुपलब्ध होते हैं।

**अप्रयुक्त / अप्रशोधित (Not Evaluated–NE)**

किसी टैक्सन को अप्रयुक्त तब कहा जाता है जब उसका अब तक विलुप्ति के मानदंडों के आधार पर मूल्यांकन नहीं किया गया हो।

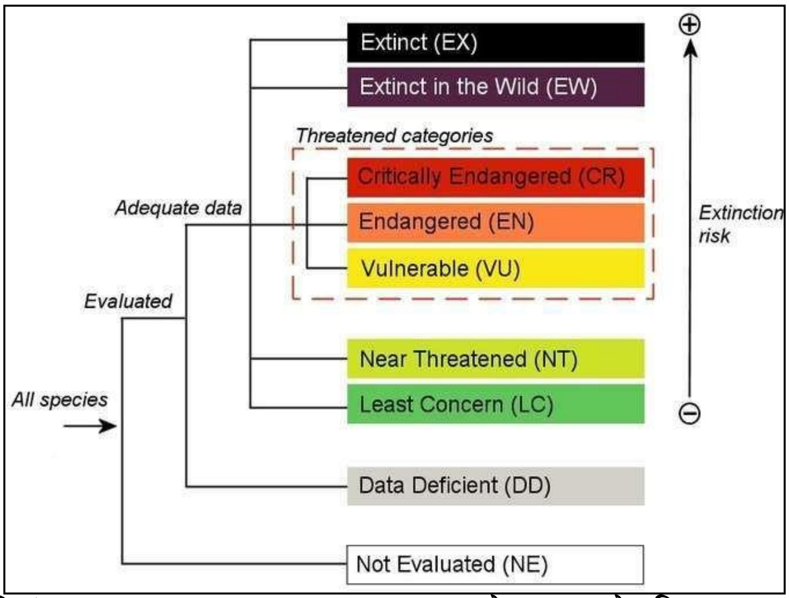


**चित्र 1. श्रेणियों की संरचना (Structure of the Categories) (स्रोत: IUCN रेड लिस्ट)**

## 13.11 भारत में संकटग्रस्त वनस्पति और जीव-जंतुओं की सूची

भारत में पाए जाने वाले संकटग्रस्त पौधों (Endangered Plants in India)

| पौधे का नाम | अन्य नाम | क्षेत्र | स्थिति |
|---|---|---|---|
| *Polygala irregularis* | मिल्कवॉर्ट (Milkwort) | गुजरात | दुर्लभ |
| *Lotus corniculatus* | बर्ड्स फुट (Bird's Foot) | गुजरात | दुर्लभ |
| *Amentotaxus assamica* | असम कैटकिन यू (Assam Catkin Yew) | अरुणाचल प्रदेश | संकटग्रस्त |

| | | | |
|---|---|---|---|
| *Psilotum nudum* | मोआ, स्केलेटन, फोर्क फर्न, व्हिस्क फर्न | कर्नाटक | दुर्लभ |
| *Diospyros celibica* | आबनूस वृक्ष (Ebony Tree) | कर्नाटक | संकटग्रस्त |
| *Actinodaphne lawsonii* | — | केरल | संकटग्रस्त |
| *Acacia planifrons* | छतरी वृक्ष (Umbrella Tree), कुडैवेल (तमिल) | तमिलनाडु | दुर्लभ |
| *Abutilon indicum* | इंडियन मेलो (Indian Mallow), थुथी (तमिल), अथिबला (संस्कृत) | तमिलनाडु | दुर्लभ |
| *Chlorophytum tuberosum* | मुसली (Musli) | तमिलनाडु | — |
| *Chlorophytum malabaricum* | मलाबार लिली (Malabar Lily) | तमिलनाडु | संकटग्रस्त |
| *Nymphaea tetragona* | — | जम्मू कश्मीर | संकटग्रस्त/ धमकीग्रस्त |
| *Belosynapsis vivipara* | स्पाइडर वॉर्ट (Spider Wort) | मध्य प्रदेश | दुर्लभ एवं संकटग्रस्त |
| *Colchicum luteum* | — | हिमाचल प्रदेश | दुर्लभ एवं संकटग्रस्त |
| *Pterospermum reticulatum* | मलयूरम, मलवरम | केरल तमिलनाडु | दुर्लभ / संकटग्रस्त |
| *Ceropegia odorata* | जीमिकंदा (Gujarat) | गुजरात, राजस्थान | संकटग्रस्त |

भारत में पाए जाने वाले संकटग्रस्त जानवर (Endangered animals in India)

**संकटग्रस्त पक्षी (Endangered Birds of India)**

| **प्रजाति का नाम** | **सामान्य / अन्य नाम** | **स्थिति (IUCN)** |
|---|---|---|
| *Ardea insignis* | श्वेत उदर बगुला | अति संकटग्रस्त |
| *Ardeotis nigriceps* | ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (सोन चिड़िया) | अति संकटग्रस्त |
| *Eurynorhynchus pygmeus* | स्पून-बिल्ड सैंडपाइपर | अति संकटग्रस्त |
| *Grus leucogeranus* | साइबेरियन क्रेन | अति संकटग्रस्त |

| | | |
|---|---|---|
| *Gyps bengalensis* | व्हाइट-रंप्ड वल्चर (सफेद पृष्ठ गिद्ध) | अति संकटग्रस्त |
| *Gyps indicus* | इंडियन वल्चर (भारतीय गिद्ध) | अति संकटग्रस्त |
| *Gyps tenuirostris* | स्लेंडर-बिल्ड वल्चर | अति संकटग्रस्त |
| *Ophrysia superciliosa* | हिमालयन क्वेल (हिमालयी बटेर) | अति संकटग्रस्त |
| *Rhodonessa caryophyllacea* | पिंक-हेडेड डक (गुलाबी सिर वाली बतख) | संभवतः विलुप्त / अति संकटग्रस्त |
| *Sarcogyps calvus* | रेड-हेडेड वल्चर (लाल सिर वाला गिद्ध) | अति संकटग्रस्त |
| *Vanellus gregarius* | सोशिएबल लैपविंग | संकटग्रस्त |
| *Rhyticeros narcondami* | नारकोंडम हॉर्नबिल | संकटग्रस्त |

**संकटग्रस्त मछलियाँ (Endangered Fishes of India)**

| **प्रजाति का नाम** | **सामान्य / अन्य नाम** | **स्थिति (IUCN)** |
|---|---|---|
| *Carcharhinus hemiodon* | पांडिचेरी शार्क | अति संकटग्रस्त |
| *Glyphis gangeticus* | गंगा शार्क | अति संकटग्रस्त |
| *Labeo potail* | डेक्कन लाबियो | संकटग्रस्त |
| *Pristis zijsron* | लॉन्गकॉम्ब सॉफिश (आरी मछली) | अति संकटग्रस्त |

**संकटग्रस्त सरीसृप और उभयचर (Endangered Reptiles and Amphibians of India)**

| **प्रजाति का नाम** | **सामान्य / अन्य नाम** | **स्थिति (IUCN)** |
|---|---|---|
| *Batagur kachuga* | रेड-क्राउन रूफड टर्टल (लाल-मुकुट वाला कछुआ) | अति संकटग्रस्त |
| *Dermochelys coriacea* | लेदरबैक समुद्री कछुआ | संकटग्रस्त |
| *Eretmochelys imbricata* | हॉकस्बिल समुद्री कछुआ | अति संकटग्रस्त |
| *Gavialis gangeticus* | घड़ियाल | अति संकटग्रस्त |
| *Indirana gundia* | गुंडिया इंडियन मेंढक | संकटग्रस्त |
| *Indirana phrynoderma* | टोड-स्किन मेंढक | संकटग्रस्त |
| *Ingerana charlesdarwini* | चार्ल्स डार्विन का मेंढक | संकटग्रस्त |

| | | |
|---|---|---|
| *Raorchestes munnarensis* | मुन्नार बुश मेंढक | संकटग्रस्त |
| *Raorchestes ponmudi* | पोनमुडी बुश मेंढक | संकटग्रस्त |
| *Raorchestes sanctisilvaticus* | सेक्रेड ग्रोव बुश मेंढक | संकटग्रस्त |
| *Raorchestes shillongensis* | शिलांग बबल-नेस्ट मेंढक | संकटग्रस्त |
| *Rhacophorus pseudomalabaricus* | अनैमलाई फ्लाइंग मेंढक | संकटग्रस्त |

**स्तनधारी (Mammals)**

| **वैज्ञानिक नाम (Scientific Name)** | **सामान्य नाम (Common Name)** | **हिंदी नाम (Hindi Name)** |
|---|---|---|
| *Biswamoyopterus biswasi* | Namdapha flying squirrel | नामदाफा उड़न गिलहरी |
| *Canis himalayensis* | Himalayan wolf | हिमालयी भेड़िया |
| *Cervus canadensis hanglu* | Kashmir stag | कश्मीर का हैंगुल / कश्मीर हिरण |
| *Crocidura andamanensis* | Andaman shrew | अंडमान छछूंदर |
| *Dicerorhinus sumatrensis* | Sumatran rhinoceros | सुमात्रा गैंडा |
| *Millardia kondana* | Kondana soft-furred rat | कोंडाना नरम-रोएँदार चूहा |
| *Porcula salvania* | Pygmy hog | बौन सुअर / छोटा जंगली सूअर |
| *Viverra civettina* | Malabar large-spotted civet | मलाबार बड़ा धब्बेदार सिवेट |
| *Ailurus fulgens* | Red panda | लाल पांडा |
| *Balaenoptera musculus* | Blue whale | नीली व्हेल |
| *Balaenoptera physalus* | Fin whale | फिन व्हेल |
| *Bos grunniens* | Yak | याक |
| *Bubalus arnee* | Wild water buffalo | जंगली भैंसा |
| *Capra aegagrus* | Wild goat | जंगली बकरी |
| *Caprolagus hispidus* | Hispid hare | खुरदुरा खरगोश |
| *Elephas maximus* | Asian elephant | एशियाई हाथी |
| *Eupetaurus cinereus* | Woolly flying squirrel | ऊनी उड़न गिलहरी |

| | | |
|---|---|---|
| *Lutrogale perspicillata* | Smooth-coated otter | चिकनी त्वचा वाला ऊदबिलाव |
| *Macaca arctoides* | Stump-tailed macaque | ठूंठ-पूंछ वाला मकाक |
| *Macaca silenus* | Lion-tailed macaque | सिंह-पूंछ मकाक |
| *Martes gwatkinsii* | Nilgiri marten | नीलगिरी मार्टेन |
| *Neofelis nebulosa* | Clouded leopard | धुंधला तेंदुआ |
| *Nilgiri tragus hylocrius* | Nilgiri tahr | नीलगिरी तहर |
| *Panthera tigris tigris* | Bengal tiger | बंगाल टाइगर / शेर |
| *Pantholops hodgsonii* | Tibetan antelope | तिब्बती मृग |
| *Platanista gangetica gangetica* | Ganges River dolphin | गंगा नदी डॉल्फिन |
| *Pteropus faunulus* | Nicobar flying fox | निकोबार उड़न लोमड़ी |
| *Rattus palmarum* | Palm rat | ताड़ चूहा |
| *Rucervus duvaucelii* | Barasingha | बारहसिंगा |
| *Tetracerus quadricornis* | Four-horned antelope | चौसिंगा |
| *Trachypithecus johnii* | Nilgiri langur | नीलगिरी लंगूर |
| *Uncia uncia* | Snow leopard | हिम तेंदुआ |
| *Ursus thibetanus* | Asian black bear | एशियाई काला भालू |

# इकाई-14: जैव विविधता संरक्षण

इकाई संरचना

**14.0 शिक्षण उद्देश्य**
**14.1 परिचय**
**14.1.1 जैव विविधता संरक्षण की रणनीतियाँ**
**14.2. जैव विविधता संरक्षण विधियाँ**
**14.2.1. अंत: स्थलीय संरक्षण**
**14.2.2 बाह्य- स्थलीय संरक्षण**
**14.2.3 इन-विट्रो तकनीकें**
**14.3. अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता संरक्षण का ढाँचा**
**14.4. जैव विविधता संरक्षण हेतु राष्ट्रीय ढांचा**
**14.5. जैव विविधता संरक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका**
**14.5.1. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी द्वारा जैव विविधता संरक्षण की संभावनाएँ**
**14.5.1.1. जैव विविधता संरक्षण में ICT के प्रमुख योगदान क्षेत्र**
**14.6. जैव विविधता संरक्षण में स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान (ITK) की भूमिका**
**14.6.1 स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान**
**14.6.2 स्वदेशी ज्ञान का महत्व**
**14.6.3 जैव विविधता और स्वदेशी ज्ञान के बीच संबंध**
**14.6.4. जैव विविधता संरक्षण पर पारंपरिक ज्ञान**
**14.6.4.1. स्थानीय वनस्पति प्रबंधन**
**14.6.4.2. पवित्र चट्टानों में जैव विविधता**
**14.6.4.3. कृषि जैव विविधता**
**14.6.4.4. औषधीय पौधों की खेती**
**14.6.4.5. पारंपरिक आदर्श**
**14.6.4.6. पारंपरिक ज्ञान, जल और जैव विविधता**
**14.6.4.7. पारंपरिक ज्ञान को व्यवहार में शामिल करना**
**सारांश**

## 14.0 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई में आप निम्नलिखित जैव विविधता संरक्षण की विधियों को समझ पाएँगे:

- अंत: स्थलीय (In-situ) संरक्षण
- बाह्य- स्थलीय (Ex-situ) संरक्षण
- संरक्षण की ऊतक संवर्धन (In-vitro) तकनीकें
- जैव विविधता संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय रूपरेखा
- जैव विविधता संरक्षण हेतु राष्ट्रीय रूपरेखा
- जैव विविधता संरक्षण में पारंपरिक/स्वदेशी ज्ञान की भूमिका

# 14.1 परिचय

1992 में रियो डी जेनेरियो में आयोजित संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन ने जैव विविधता संरक्षण के मुद्दे को पूरी दुनिया के घरों तक पहुँचाया और इसे विश्व नेताओं के कार्यसूची में एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में स्थापित किया। यद्यपि जैव विविधता के प्रति जागरूक लोगों की संख्या और विविधता बढ़ी है, फिर भी यह बुनियादी समझ कि जैव विविधता क्या है, इसका मानव जीवन के लिए क्या महत्व है, और इसे कैसे सुरक्षित किया जा सकता है, आज भी अधूरी है।

इन समस्याओं को हल करने के प्रयास में विश्व संरक्षण संघ (IUCN) ने "जैव विविधता" की परिभाषा को स्पष्ट करने और इसके महत्व को दिखाने का प्रयास किया है। केवल "आनुवंशिक संरचना" तक सीमित रहने के बजाय, IUCN जैव विविधता की व्याख्या इस प्रकार करता है कि इसमें सभी पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों की प्रजातियाँ तथा वे पारिस्थितिक तंत्र (सहित पारिस्थितिक प्रक्रियाएँ) शामिल हैं जिनसे वे जुड़े हुए हैं।

सामान्यतः जैव विविधता को तीन स्तरों पर देखा जाता है—

- आनुवंशिक विविधता (Genetic Diversity)
- प्रजातीय विविधता (Species Diversity)
- पारिस्थितिक तंत्र विविधता (Ecosystem Diversity)

यह एक जटिल ताना-बाना है जिसमें जीवधारी निर्जीव पदार्थों और विभिन्न पर्यावरणीय प्रवणताओं (gradients) के साथ परस्पर क्रिया करके सभी स्तरों पर जीवन को बनाए रखते हैं (McNeely, 1990)। इन स्तरों में से प्रत्येक मानव जाति को अत्यधिक और अक्सर अमूल्य आर्थिक और सामाजिक लाभ प्रदान करता है। यद्यपि यह मान्यता प्राप्त है कि कुल जैव विविधता का एक बहुत बड़ा प्रतिशत कुछ गिने-चुने उष्णकटिबंधीय देशों में पाया जाता है, फिर भी समशीतोष्ण क्षेत्रों और जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में भी महत्वपूर्ण विविधता मौजूद है।

जैव विविधता संरक्षण विभिन्न तरीकों से किया जाता है:

**Ex-situ विधियाँ**: इनमें वनस्पति उद्यान, चिड़ियाघर, जीन बैंक और बंदी प्रजनन कार्यक्रमों में प्रजातियों का संरक्षण शामिल है।

**In-situ विधियाँ:** इनमें संरक्षण क्षेत्रों का उपयोग जैविक जानकारी के "भंडार" के रूप में किया जाता है।

कई वैज्ञानिकों और संरक्षणवादियों का मानना है कि जब तक ऐसे साधन उपलब्ध नहीं हो जाते जिनसे लाखों प्रजातियों और किस्मों में से यह पहचाना जा सके कि किनका आर्थिक महत्व है, तब तक प्राकृतिक क्षेत्रों की सुरक्षा के माध्यम से In-situ संरक्षण ही संसाधनों को बनाए रखने का मुख्य तरीका होना चाहिए। हालाँकि, एक कठोर संरक्षण दृष्टिकोण को व्यवहार में लाना लगभग असंभव है और समय के साथ इसे बनाए रखना और भी कठिन है।

जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास की तात्कालिक आवश्यकता विशेषकर विकासशील देशों में को देखते हुए, एक उपयुक्त दृष्टिकोण यह होगा कि उच्च प्रभाव वाले विकास कार्यों के विकल्प तलाशे जाएँ और In-situ संरक्षण की सावधानीपूर्वक तैयार की गई रणनीतियाँ लागू की जाएँ, जिनमें संरक्षित क्षेत्रों को विकास योजनाओं के हिस्से के रूप में शामिल किया जाए।

दुर्भाग्य से, उस "विकास मिश्रण" (development mix) को तैयार करना आसान नहीं है, क्योंकि इसमें नैतिक, तकनीकी और आर्थिक सभी प्रकार के विकल्प शामिल होते हैं। Wilson (1984) के अनुसार: "निकट भविष्य के लिए सर्वोत्तम का चयन करना आसान है। दूर भविष्य के लिए सर्वोत्तम का चयन करना भी आसान है। लेकिन निकट और दूर—दोनों भविष्यों के लिए सर्वोत्तम का चयन करना कठिन कार्य है, जो अक्सर आंतरिक रूप से विरोधाभासी होता है और जिसके लिए अभी तक नैतिक संहिताएँ निर्मित नहीं हुई हैं।"

हालाँकि एकीकृत क्षेत्रीय विकास योजना नैतिक श्रेष्ठता का दावा नहीं करती, लेकिन यह ऐसे अत्यंत कठिन निर्णय लेने के लिए एक ढाँचा अवश्य प्रदान करती है। यह स्पष्ट है कि जैव विविधता संरक्षण को विकास योजनाओं का अभिन्न हिस्सा बनाना अनिवार्य है।

### 14.1.1 जैव विविधता संरक्षण की रणनीतियाँ

जैविक विविधता एक स्वस्थ, रहने योग्य और सतत ग्रह की मुख्य नींव है, लेकिन बढ़ते शोषण और प्राकृतिक आपदाओं के कारण महत्वपूर्ण प्रजातियों की संख्या तेजी से घट रही है। बड़ी संख्या में जीवधारी प्राकृतिक और मानव-जनित (Anthropogenic) कारणों से हानि या विलुप्ति का सामना कर रहे हैं। अनुमान है कि लगभग 60,000 से 1,00,000 प्रजातियाँ, जिनका विविध आर्थिक उपयोग है, विलुप्त होने के खतरे में हैं और इन्हें सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। इसलिए पारिस्थितिकी तंत्र, प्रजाति और जीन पूल स्तरों पर जैव विविधता को संरक्षित करने और वर्तमान व आने वाली पीढ़ियों के लिए इसके सतत उपयोग को सक्षम बनाने हेतु तत्काल उपायों की आवश्यकता है। संरक्षण का अर्थ है— परिदृश्य, पारिस्थितिक तंत्र और प्रजातियों का संरक्षण, संरक्षणात्मक प्रबंधन, सुरक्षा और पुनर्स्थापन।

किसी जीवधारी का संरक्षण प्राकृतिक या कृत्रिम आवास में किया जा सकता है अथवा इसे जर्मप्लाज़्म (जैसे जीवाणु संवर्धन, पशु ऊतक, बीज आदि) के रूप में भी सुरक्षित रखा जा सकता है। विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों ने जैव विविधता संरक्षण के लिए कई प्रयास किए हैं। इसमें In-situ और Ex-situ दोनों दृष्टिकोण शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, In-vitro तकनीक का उदय, Ex-situ संरक्षण के सहायक के रूप में, संकटग्रस्त प्रजातियों को बचाने के लिए अत्यधिक आशाजनक माना जा रहा है। वर्तमान समय की आवश्यकता यह है कि पारंपरिक और उभरती प्रौद्योगिकियों को मिलाकर जैव विविधता और आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण किया जाए ताकि सतत विकास सुनिश्चित हो सके।

संरक्षण की दिशा में पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है मौजूदा जैव विविधता का ज्ञान एकत्र करना। कहा गया है कि पृथ्वी पर लाखों पौधों और पशु प्रजातियों का वास है, जिनमें से केवल कुछ की ही पहचान हो पाई है। इसलिए, टैक्सोनॉमिस्टों की आवश्यकता है कि वे अधिक से अधिक प्रजातियों की पहचान और गणना करें ताकि जैव विविधता ह्रास को मापते समय अधिक सटीक अनुमान लगाए जा सकें। इसके बाद, आवास, प्रजातियों और संरक्षण प्राथमिकताओं के आधार पर उचित योजनाएँ और नीतियाँ तैयार की जानी चाहिए। अंतिम चरण में इन संरक्षण रणनीतियों का सख्त कार्यान्वयन आवश्यक है, जिसके लिए कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करना होगा।

साथ ही, आम जनता में इस बारे में जागरूकता बढ़ाना भी ज़रूरी है कि कैसे अत्यधिक शोषण भविष्य में नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इसके अलावा, यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सभी विकसित और

विकासशील देश आपस में समन्वय करें, अपने क्षेत्र में मौजूद जैव विविधता से संबंधित जितनी संभव हो उतनी जानकारी साझा करें और इस लक्ष्य को प्राप्त करने में एक-दूसरे की सहायता करें।

# 14.2. जैव विविधता संरक्षण विधियाँ

## 14.2.1. अंत: स्थलीय संरक्षण

अंत: स्थलीय संरक्षण, जीवों का उनके प्राकृतिक आवास में संरक्षण है जहाँ विकासात्मक प्रगति जारी रहती है। यथास्थान दृष्टिकोण में विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्रों के समूह या संरक्षित क्षेत्रों के एक नेटवर्क के माध्यम से उच्च जैव विविधता वाले क्षेत्रों का संरक्षण शामिल है। ये स्थलीय या समुद्री क्षेत्र हैं, जिनका उद्देश्य विशेष रूप से जैविक विविधता और उससे जुड़े संसाधनों की रक्षा करना है। यह सबसे उपयुक्त विधि है क्योंकि प्रजातियों का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवासों में किया जा रहा है। इसमें राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभयारण्य, पवित्र उपवन और जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र शामिल हैं।

**1. राष्ट्रीय उद्यान**

राष्ट्रीय उद्यान सरकार के अधीन संरक्षित क्षेत्र होते हैं, जो किसी भी प्रकार के मानवीय हस्तक्षेप से मुक्त होते हैं। ये वन्य जीवन और उनके प्राकृतिक आवासों के संरक्षण के लिए बनाए गए छोटे-छोटे संरक्षित क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में चराई, वानिकी आदि गतिविधियों की अनुमति नहीं है।
कुछ प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान निम्न हैं–

1. **गिर राष्ट्रीय उद्यान**, गुजरात
2. **जिम कॉर्बेट राष्ट्रीय उद्यान**, उत्तराखंड
3. **काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान**, असम
4. **बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान**, कर्नाटक
5. **तडोबा राष्ट्रीय उद्यान**, महाराष्ट्र
6. **कान्हा राष्ट्रीय उद्यान**, मध्य प्रदेश
7. **मानस राष्ट्रीय उद्यान**, असम
8. **केबुल लामजाओ राष्ट्रीय उद्यान**, मणिपुर

**ii) वन्यजीव अभयारण्य (Wildlife Sanctuaries)**

**वन्यजीव अभयारण्य** जंगली वनस्पतियों और प्राणियों के संरक्षण के लिए समर्पित क्षेत्र होते हैं। ये भी राष्ट्रीय उद्यानों की तरह ही सरकारी स्वामित्व वाले संरक्षित क्षेत्र होते हैं, किंतु इनमें कुछ सीमित मानवीय गतिविधियाँ जैसे लकड़ी की कटाई, वन उत्पादों का संग्रहण, और पारंपरिक कृषि अनुमति प्राप्त होती हैं, बशर्ते कि ये गतिविधियाँ प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में हस्तक्षेप न करें।
भारत के कुछ प्रमुख वन्यजीव अभयारण्य

1. बांदीपुर वन्यजीव अभयारण्य, कर्नाटक
2. भितरकनिका वन्यजीव अभयारण्य, ओडिशा
3. हूलॉन्ग गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य, असम
4. दाचिगाम वन्यजीव अभयारण्य, जम्मू और कश्मीर
5. सुंदरबन वन्यजीव अभयारण्य, पश्चिम बंगाल
6. केवलादेव पक्षी अभयारण्य, राजस्थान (अब राष्ट्रीय उद्यान घोषित)
7. पेरियार वन्यजीव अभयारण्य, केरल
8. कालाकाड मुंडनथुराई वन्यजीव अभयारण्य, तमिलनाडु

**iii) पवित्र उपवन (Sacred Groves)**

पवित्र उपवन विभिन्न आकारों के वन खंड (forest fragments) होते हैं जिन्हें स्थानीय समुदायों द्वारा संरक्षित किया जाता है और जिनका धार्मिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व होता है। इन क्षेत्रों में शिकार, लकड़ी कटाई जैसी आर्थिक गतिविधियाँ सख्ती से निषिद्ध होती हैं। भारत में पवित्र उपवनों को केंद्रीय कानूनों द्वारा सुरक्षा प्राप्त नहीं होती, लेकिन इन्हें स्थानीय लोगों और कुछ गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) द्वारा संरक्षित किया जाता है। उदाहरण के लिए:

- राजस्थान के थार मरुस्थल में *बिश्नोई समुदाय* द्वारा संरक्षित झाड़ी वनों (scrub forests) का संरक्षण,
- नर्मदा नदी के किनारे *चांदोड़* के पास स्थित *पवित्र हिंदू उपवन*, जिसे स्थानीय समुदाय पूजते हैं।

भारत का सबसे बड़ा पवित्र उपवन *उत्तराखंड के चमोली जिले के गणचार* के पास स्थित हरियाली उपवन (या "हरेला" पर्व से संबंधित) माना जाता है। एक अनुमान के अनुसार, भारत में लगभग 14,000 से 1,00,000 तक पवित्र उपवन विद्यमान हैं।

**iv) जैवमंडलीय संरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves)**

जैवमंडलीय संरक्षित क्षेत्र एक विशेष प्रकार के संरक्षित क्षेत्र होते हैं, जहाँ मानव समुदाय भी इस पारिस्थितिक प्रणाली का अभिन्न अंग होते हैं। एक जैवमंडलीय संरक्षित क्षेत्र मुख्यतः तीन भागों में विभाजित होता है:

1. मुख्य क्षेत्र (Core Zone): यह क्षेत्र एक प्रतिनिधि पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) का सबसे कम प्रभावित या अप्रभावित भाग होता है। यहाँ कोई मानवीय हस्तक्षेप नहीं होता।
2. बफर क्षेत्र (Buffer Zone): यह मुख्य क्षेत्र को घेरे रहता है, और इसमें अनुसंधान, शिक्षा, और प्रशिक्षण जैसी गतिविधियाँ नियंत्रित रूप से की जाती हैं।

3. संक्रमण क्षेत्र (Transition Zone): यह वह क्षेत्र होता है जहाँ स्थानीय लोगों और प्रशासन के बीच सहयोग के माध्यम से सतत विकास और जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा दिया जाता है।

इसका उद्देश्य जैव विविधता का संरक्षण करना, स्थायी आर्थिक एवं मानव विकास को बढ़ावा देना, तथा शोध, निगरानी, शिक्षा और सूचना के लिए सहयोग प्रदान करना है। भारत के 18 जैवमंडलीय संरक्षित क्षेत्रों में से 9 को UNESCO के "मानव और जैवमंडल कार्यक्रम (Man and the Biosphere Program)" में शामिल किया गया है। भारत में जैवमंडलीय संरक्षित क्षेत्रों की सूची

1. नीलगिरी, पश्चिमी घाट (1986)
2. नंदादेवी, उत्तराखंड (1988)
3. नोकरेक, मेघालय (1988)
4. मन्नार की खाड़ी, तमिलनाडु (1989)
5. सुंदरबन, पश्चिम बंगाल (1989)
6. मानस, असम (1989)
7. ग्रेट निकोबार, अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह (1989)
8. सिमलीपाल, ओडिशा (1994)
9. दिब्रू-सैखोवा, असम (1997)
10. दिहांग-दिबांग, अरुणाचल प्रदेश (1998)
11. पचमढ़ी, मध्य प्रदेश (1999)
12. कंचनजंघा, सिक्किम (2000)
13. अगस्थ्यमलाई, पश्चिमी घाट (2001)
14. अचनकमार-अमरकंटक, मध्य प्रदेश (2005)
15. कच्छ, गुजरात (2008)
16. शीत मरुस्थल, हिमाचल प्रदेश (2009)
17. शेषाचलम, आंध्र प्रदेश (2010)
18. पन्ना, मध्य प्रदेश (2011)

**भारत में संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क**

| संरक्षित क्षेत्र | संख्या |
|---|---|
| राष्ट्रीय उद्यान | 103 |
| वन्यजीव अभयारण्य | 543 |
| जैवमंडलीय संरक्षित क्षेत्र | 18 |
| सामुदायिक संरक्षित क्षेत्र | 45 |
| संरक्षण आरक्षित क्षेत्र | 73 |

कुल संरक्षित क्षेत्र: 1,62,024.69 वर्ग किलोमीटर (भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 4.93%). स्रोत: www.wiienvis.nic.in *(जुलाई, 2017)*

## 14.2.2 बाह्य-स्थलीय संरक्षण

बाह्य- स्थलीय संरक्षण या "स्थल के बाहर संरक्षण" का तात्पर्य है जैव विविधता के तत्वों की रक्षा उनके प्राकृतिक आवासों से बाहर करना। इस विधि में यद्यपि विकासात्मक प्रक्रिया (evolutionary progression) रुक जाती है, परंतु वांछित जीन (genes) संरक्षित रहते हैं। यह रणनीति विशेष रूप से लुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण में सहायक होती है। यह विधि कृषि क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि कुछ पालित पौधे (domesticated plants) प्राकृतिक आवास में बिना मानवीय सहायता के जीवित नहीं रह सकते — ऐसे पौधों को विभिन्न बाह्य-स्थान तकनीकों से संरक्षित किया जाता है। इसमें सम्मिलित हैं:

1. **प्राणी उद्यान (Zoological Gardens):** ऐसे स्थान जहाँ पशुओं को बाड़ों में सीमित कर रखा जाता है, जनसामान्य को शैक्षणिक और मनोरंजन उद्देश्यों से प्रदर्शित किया जाता है, तथा संरक्षण हेतु प्रजनन (breeding) भी किया जा सकता है।
2. **वनस्पति उद्यान (Botanical Gardens):** ये ऐसे उद्यान होते हैं जहाँ विभिन्न प्रकार के पौधों को प्राकृतिक आवास से बाहर कृत्रिम रूप से बनाए गए वातावरण में उगाया जाता है। इनका उद्देश्य संरक्षण, अनुसंधान और शिक्षा होता है।
3. **वृक्ष उद्यान (Arboreta):** ये वनस्पति उद्यानों की एक विशेष श्रेणी हैं जो मुख्यतः वृक्षों के संरक्षण और अध्ययन के लिए समर्पित होते हैं।
4. **नर्सरी (Nurseries):** वे स्थान जहाँ पौधों को बीजling अवस्था तक उगाया जाता है, विशेषतः सजावटी पौधों (ornamental plants) के लिए।
5. **फील्ड जीन बैंक (Field Gene Banks):** इनमें पौधों की आनुवंशिक विविधता को सजीव पौधों के रूप में संरक्षित किया जाता है जो लगातार वृद्धि करते हैं और नियमित रखरखाव की आवश्यकता होती है। ये संसाधनों तक सुलभ पहुँच प्रदान करते हैं, परंतु इनका रखरखाव महंगा होता है और इन्हें प्राकृतिक आपदाओं, कीटों और रोगजनकों से खतरा रहता है। उदाहरण: केंद्रीय धान अनुसंधान संस्थान (Central Rice Research Institute), ओडिशा में 42,000 धान की किस्में संरक्षित हैं।
6. **प्राणियों का बंदी प्रजनन (Captive Breeding):** पशुओं को संरक्षित वातावरण में प्रजनन कराकर उन्हें पुनः जंगल में छोड़ा जा सकता है।
7. **पौधों का कृत्रिम प्रवर्धन (Artificial Propagation of Plants):** प्राकृतिक रूप से न बढ़ने वाले पौधों को कृत्रिम तरीकों से उगाया जाता है।
8. **इन-विट्रो तकनीक (In-vitro Techniques):** प्रयोगशाला आधारित विधियाँ जिनमें पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों की जैव विविधता को संरक्षित किया जाता है, जैसे कि: जर्मप्लाज़्म बैंकों (Germplasm Banks) में संग्रहण, ऊतक संवर्धन विधि (Tissue Culture) से प्रवर्धन, क्रायोप्रिज़र्वेशन (Cryopreservation) द्वारा संरक्षण, कृत्रिम बीज निर्माण, धीमी वृद्धि वाली कल्चर (Slow-Growth Cultures) का रख-रखाव, तथा डीएनए क्लोन (DNA Clones) के रूप में दीर्घकालिक संरक्षण।

## 14.2.3 इन-विट्रो तकनीकें

**i) जर्मप्लाज़्म बैंक (Germplasm Banks)**

जर्मप्लाज़्म बैंक या जैव-बैंक (Bio-banks) वे स्थान होते हैं जहाँ तापमान, आर्द्रता आदि को नियंत्रित करके जैविक सामग्री को संरक्षित किया जाता है। संरक्षित सामग्री के आधार पर इन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे:

- सीड बैंक (Seed Banks)
- जीन बैंक (Gene Banks)
- डीएनए बैंक (DNA Banks)

ये बैंक सामान्यतः बीज, शुक्राणु और अंडाणु को संरक्षित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। इन-विट्रो तकनीकों द्वारा बहुत ही कम स्थान में पौधों और प्राणियों की विशाल विविधता को संरक्षित किया जा सकता है, और साथ ही संरक्षित जैविक सामग्री की वैज्ञानिक पहचान की प्रामाणिकता भी सुनिश्चित होती है।

इसके अतिरिक्त, यह विधियाँ:

- सामग्री के जिम्मेदार उपयोग को बढ़ावा देती हैं,
- सभी पक्षों के बीच समान लाभ वितरण सुनिश्चित करती हैं,
- तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय इन-विट्रो बैंकों के साथ नेटवर्किंग के माध्यम से ज्ञान और सामग्री के आदान-प्रदान को सुगम बनाती हैं।

**जर्मप्लाज़्म बैंकों में संरक्षित सामग्री के तीन प्रकार होते हैं:**

- **बेस कलेक्शन (Base Collection):** ऐसे नमूने जिन्हें दीर्घकालिक संरक्षण के लिए रखा जाता है, और जिनका नियमित वितरण के लिए उपयोग नहीं किया जाता।
- **सक्रिय संग्रह (Active Collection):** ऐसे नमूने जिनकी *मध्यम अवधि* तक जीवनीयता (viability) बनी रहती है (लगभग 30 वर्ष तक), और आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध कराए जाते हैं।
- **कार्यशील संग्रह (Working Collection):** ऐसे नमूने जो प्रजनकों या शोधकर्ताओं द्वारा विभिन्न प्रयोगों एवं फसल सुधार कार्यक्रमों के लिए आसानी से उपलब्ध होते हैं।

**ii) बीज बैंक (Seed Banks)**

पौधों की प्रजातियों के मामले में, बीज आनुवंशिक विविधता को दीर्घकाल तक संरक्षित करने का एक सुविधाजनक माध्यम होते हैं। क्योंकि:

- इनका आकार छोटा होता है,
- संभालना आसान होता है,
- रखरखाव कम लागत वाला होता है,
- और ये लंबे समय तक जीवित रह सकते हैं।

बीज बैंकों में बीजों को -10°C से -20°C के तापमान पर संग्रहीत किया जाता है, जहाँ सिलिका जेल (Silica Gel) का उपयोग नमी को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। आमतौर पर, कम तापमान और

कम नमी की स्थिति में बीज अपनी जीवनीयता को लंबे समय तक बनाए रखते हैं कई मामलों में अनिश्चित काल तक।

इस विधि की प्रमुख विशेषताएँ:

- भंडारण में सुविधा,
- कम स्थान की आवश्यकता,
- कम श्रम लागत,
- बड़ी संख्या में नमूनों का संरक्षण,
- तथा कम लागत में अधिक संरक्षण।

इसलिए, बीजों के रूप में सामग्री का भंडारण बाह्य-स्थान संरक्षण की सबसे व्यापक और मूल्यवान विधियों में से एक माना जाता है। हालांकि, कुछ सीमाएँ भी हैं: बीज बैंक कुछ विशेष परिस्थितियों में अप्रभावी सिद्ध होते हैं, जैसे:

- रिकैल्सिट्रेंट बीज (Recalcitrant Seeds): वे बीज जो सूखने और जमने की स्थिति में मर जाते हैं या जीवनीयता खो देते हैं।
- शाकीय (Vegetative) प्रजनन द्वारा उत्पन्न पौधे, जो बीजों के माध्यम से नहीं उगते।
- आनुवंशिक रूप से संशोधित सामग्री (Genetically Modified Materials) जो अक्सर स्थिर नहीं होती।

प्रसिद्ध बीज बैंक परियोजनाएँ

- **मिलेनियम सीड बैंक परियोजना:** यह परियोजना रॉयल बोटैनिकल गार्डन, क्यू से जुड़ी हुई है।अक्टूबर, 2009 में इस परियोजना ने दुनिया की समस्त जंगली पौधों की प्रजातियों के 10% संरक्षण का लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। इस परियोजना से जुड़े 17 देशों के 47 पौध संरक्षण संगठन वर्ष 2020 तक विश्व की 25% पौध प्रजातियों को संरक्षित करने का लक्ष्य लेकर चल रहे थे।
- **सीजीआईएआर (CGIAR) के तहत अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान:** "Consultative Group on International Agricultural Research (CGIAR)", वॉशिंगटन द्वारा समन्वित 10 अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान, फसलों पर केंद्रित हैं और इनके पास प्रचुर बीज संग्रहण है।
- **स्वालबार्ड ग्लोबल सीड वॉल्ट (Svalbard Global Seed Vault):** यह बीज भंडार 26 फरवरी 2008 को नॉर्वे के पास, उत्तर ध्रुव से 600 मील दूर, स्थापित किया गया था। यहाँ पर विश्व की मुख्य फसलों के 4.5 अरब बीज नमूनों को सुरक्षित रखने की क्षमता है। मार्च 2013 तक इसमें 7,70,000 बीज नमूने संरक्षित किए जा चुके थे।
- **राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR), नई दिल्ली, भारत:** यहाँ 2.47 लाख प्रजातियों की 3.43 लाख से अधिक नमूनों को संरक्षित किया गया है, जिसमें 28,000 जंगली प्रजातियों के नमूने भी शामिल हैं।

**iii) ऊतक संवर्धन (Tissue Culture)**

ऊतक संवर्धन एक इन-विट्रो तकनीक है, जो पादप कोशिकाओं की "टोटिपोटेंसी" की अवधारणा पर आधारित है। सेलुलर टोटिपोटेंसी वह क्षमता है जिसमें एक एकल कोशिका से पूरा नया पौधा विकसित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में परिपक्व कोशिकाएँ पुनः विभाजन की अवस्था में लौटती हैं और फिर पुनः विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में विकसित होती हैं, जिससे एक नया जीव उत्पन्न होता है। ऊतक संवर्धन की विशेषताएँ:

- ➢ यह तकनीक लुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।
- ➢ इसमें कई मूल्यवान प्रजातियों को कम स्थान, सुरक्षित और रोग-मुक्त वातावरण में संग्रहीत किया जा सकता है।
- ➢ प्रजनन और गुणन की प्रक्रिया भी सरल होती है।
- ➢ माइक्रोप्रोपेगेशन के लिए जीवाणु संस्कृति, कोशिकाएँ या अंग (प्राणियों के मामले में) और बीज, कटिंग्स या शाकीय प्रजनन भाग (पौधों के मामले में) का उपयोग किया जाता है। लेकिन इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं:
- ➢ यह प्रक्रिया श्रम, संसाधनों और समय की दृष्टि से महंगी होती है।
- ➢ कभी-कभी इसमें सोमाक्लोनल विचलन या रूपात्मक क्षमता की हानि देखी जाती है।

**ऊतक संवर्धन द्वारा संरक्षित पौधे:**

- *Ulmus americana* (ऊल्मउस अमेरिकाना) वृक्ष की परिपक्व प्रजातियाँ, जो डच एल्म रोग (Dutch Elm Disease) की महामारी से बची थीं और रोग प्रतिरोधी स्रोत मानी जाती हैं, को परिपक्व पत्तियों को एक्सप्लांट (Explant) के रूप में लेकर ऊतक संवर्धन तकनीक से संरक्षित किया गया है। (Shukla et al., 2012)
- जीवंती (*Leptadenia reticulata*) एक औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण, संकटग्रस्त तथा काष्ठीय लता (woody climber) प्रजाति है। इसे पत्ती को एक्सप्लांट के रूप में उपयोग कर संरक्षित किया गया है। *(Patel et al., Jan 2014a)*
- चुपाट / करालुमा (*Caralluma edulis*) थार रेगिस्तान की स्थानिक तथा संकटग्रस्त, खाद्य प्रजाति है। इसे नोडल खंडो को एक्सप्लांट के रूप में उपयोग कर ऊतक संवर्धन द्वारा संरक्षित किया गया है। *(Patel et al., 2014b)*
- ओर्किस लनाटा (*Orchis lanata*)- यह प्रजाति दक्षिण यूरोप की मूल निवासी है और भारत के कश्मीर तथा कुमाऊँ क्षेत्रों में संकटग्रस्त मानी जाती है। इसे कॉलस निर्माण (callus formation) की विधि द्वारा संरक्षित किया गया है। *(Shreshta and Joshi, 1992)*
- कुटकी / नीली कुटकी (*Gentiana kurroo*)- एक औषधीय रूप से महत्वपूर्ण पौधा, जो केवल कश्मीर और हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है (स्थानिक)। इसे संरक्षित करने के लिए बगल की कलियों का उपयोग कर ऊतक संवर्धन किया गया है। *(Sharma et al., 1993)*

**iv) क्रायो-संरक्षण (Cryopreservation)**

क्रायो-संरक्षण या हिम-संरक्षण एक ऐसी तकनीक है, जिसमें जर्मप्लाज़्म को -196°C के अत्यंत निम्न तापमान (जो कि तरल नाइट्रोजन का तापमान है) पर संरक्षित किया जाता है। इस तकनीक का मूल सिद्धांत है किसी भी संस्कृति को इस अवस्था में लाना जहाँ कोशिका विभाजन एवं चयापचय शून्य हो जाए, जिससे सभी जैविक क्रियाएँ पूर्णतः रुक जाती हैं। यह तकनीक प्राणी मूल की ऊतकों जैसे कोशिका संस्कृतियाँ, शुक्राणु, अंडाशयी/भ्रूणीय ऊतक सम्पूर्ण भ्रूण को संरक्षित करने में सहायक है, विशेषतः पशुपालन कार्यक्रमों के लिए। इसके अतिरिक्त, सूक्ष्मजीवों, शैवाल, कीटों एवं अन्य जीवों का भी क्रायो-संरक्षण संभव है, जिनका भविष्य में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान में उपयोग किया जा सकता है।

**v) कृत्रिम बीज (Artificial Seeds)**

सोमैटिक भ्रूण इन्हें कृत्रिम या सिंथेटिक बीजों के रूप में संरक्षित किया जा सकता है। इन भ्रूणों को सोडियम एलगिनेट, कैल्शियम एलगिनेट, पॉलीएक्रिलामाइड जैल जैसे जैल से लेपित किया जाता है ताकि वे सूखने से बच सकें। इसके बाद इन भ्रूणों को उपयुक्त मात्रा में निर्जलित किया जाता है, और फिर इन्हें धीमी वृद्धि विधि या क्रायो-संरक्षण के लिए रखा जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राकृतिक बीजों के साथ किया जाता है। उदाहरण Mentha arvensis (औषधीय रूप से महत्वपूर्ण पौधा, पुदीना की एक जाति) की शूट टिप्स और नोडल खंडों को सोडियम एलगिनेट के मोतियों में संलग्न कर इन-विट्रो पुनर्जनन और संरक्षण किया गया है। (Islam and Bari, 2014)

**vi) डीएनए क्लोन (DNA Clones)**

डीएनए (DNA) जो कि कोशिका की वंशानुगत इकाई है का उपयोग संकटग्रस्त पौध प्रजातियों के संरक्षण के लिए प्रभावी रूप से किया जा सकता है। इस विधि में जर्मप्लाज़्म को डीएनए खंडों के रूप में क्लोन किया जाता है, और इन्हें कॉस्मिड्स, प्लास्मिड्स, बैक्टीरियोफेज जैसे वेक्टर में डाला जाता है। पॉलीमरेज़ चेन रिएक्शन (Polymerase Chain Reaction - PCR) और जीन क्लोनिंग तकनीकों की मदद से अब केवल कुछ मात्रा में ऊतक से पूरे पौधे के जीनोम का संग्रह संभव है। यह तकनीक विशेष रूप से उन संकटग्रस्त प्रजातियों के लिए उपयोगी है जहाँ जीवित नमूने बहुत कम संख्या में उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त मृत ऊतकों (जैसे हर्बेरियम) से भी डीएनए निकाला जा सकता है, जो ऐसी जानकारी प्रदान करता है जो जीवित ऊतकों के मरने के बाद अन्यथा खो जाती। यह विधि केवल तभी प्रयोग की जाती है जब कोई अन्य विकल्प संभव नहीं हो, क्योंकि यह तकनीकी रूप से जटिल होती है, अत्यधिक लागत वाली होती है तथा अत्यधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अभी तक प्राकृतिक डीएनए से पूरे जीव की पुनर्रचना संभव नहीं है, परंतु किसी विशिष्ट जीन को अलग कर जैविक अभियांत्रिकी में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार, इस तकनीक से मूल्यवान जीन या डीएनए खंडों का संरक्षण संभव है, जो भविष्य में संकटग्रस्त प्रजातियों के पुनर्निर्माण या अनुसंधान में सहायक हो सकते हैं।

# 14.3. अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता संरक्षण का ढाँचा

**a) विश्व धरोहर सम्मेलन (The World Heritage Convention):** यह सम्मेलन 1972 में शुरू किया गया था और तब से यह सांस्कृतिक संपत्तियों के संरक्षण के लिए उत्तरदायी रहा है। इसके अंतर्गत वर्तमान में 190 सदस्य देश हैं। यह सम्मेलन लोगों के बीच धरोहर स्थलों के प्रति ज्ञान, जागरूकता एवं सराहना को बढ़ावा देता है।

**b) प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय संघ (IUCN) (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources):** जिसे अब विश्व संरक्षण संघ (World Conservation Union - WCU) भी कहा जाता है। इसकी स्थापना 1948 में हुई थी। उद्देश्य था कि सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को एक साथ लाकर जैव विविधता और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और उनके स्थायी उपयोग को स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ावा देना। वर्तमान में इसमें 81 देशों की सदस्यता है। इसका मुख्यालय ग्लैंड, स्विट्ज़रलैंड में स्थित है।

**c) संकटग्रस्त प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन (CITES) (Convention on International Trade in Endangered Species):** यह सम्मेलन मार्च 1973 में वॉशिंगटन डी.सी. में हस्ताक्षरित हुआ। इसका उद्देश्य था जंगली जीवों और वनस्पतियों के अत्यधिक दोहन और उनके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबंध लगाना। वर्तमान में CITES के 178 सदस्य देश हैं। इस सम्मेलन के अंतर्गत लगभग 30,000 प्रजातियाँ संरक्षित की गई हैं।

d) **जैव विविधता पर सम्मेलन (CBD) (Convention on Biological Diversity):** यह सम्मेलन 29 दिसंबर, 1993 को लागू हुआ। इसके तीन मुख्य उद्देश्य हैं जैव विविधता का संरक्षण, उसका स्थायी उपयोग, और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से उत्पन्न लाभों का न्यायसंगत और समान वितरण। इसे 193 देशों, जिनमें भारत भी शामिल है, ने अपनाया है।

e) **खाद्य और कृषि के लिए पौध आनुवंशिक संसाधनों की अंतर्राष्ट्रीय संधि (ITPGRFA) (International Treaty for Plant Genetic Resources for Food and Agriculture):** इसे सामान्यतः "अंतर्राष्ट्रीय बीज संधि" कहा जाता है। यह एक व्यापक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जो जैव विविधता सम्मेलन के साथ तालमेल में कार्य करता है। इसका उद्देश्य खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना, विश्व के पौध आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण, आदान-प्रदान और स्थायी उपयोग और उनके उपयोग से उत्पन्न लाभों का न्यायसंगत एवं समान वितरण है।

f) **अंतर्राष्ट्रीय महत्व के आर्द्रभूमियों पर रामसर सम्मेलन (Ramsar Convention on Wetlands of International Importance):** यह सम्मेलन 1971 में प्रारंभ हुआ था। इसका उद्देश्य था आर्द्रभूमियों, मैंग्रोव और प्रवाल भित्तियों का संरक्षण। इसमें वर्तमान में 168 सदस्य देश हैं, और यह 21,431 आर्द्रभूमियों को कवर करता है।

g) **प्रवासी प्रजातियों पर सम्मेलन (The Convention on Migratory Species - CMS),** जिसे बॉन सम्मेलन भी कहा जाता है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय संधि है, जिसका उद्देश्य स्थलीय, जलीय और पक्षी प्रवासी प्रजातियों का संरक्षण करना है।

# 14.4. जैव विविधता संरक्षण हेतु राष्ट्रीय ढांचा

भारत सरकार (केंद्र व राज्य स्तर पर) ने जैव विविधता संरक्षण की रणनीतियों को लागू करने के लिए कई वन्यजीव अधिनियम बनाए हैं। प्रमुख भारतीय अधिनियम:

1. मद्रास जंगली हाथी संरक्षण अधिनियम, 1873
2. अखिल भारतीय हाथी संरक्षण अधिनियम, 1879
3. जंगली पक्षियों और पशुओं की रक्षा अधिनियम, 1912
4. बंगाल गैंडा संरक्षण अधिनियम, 1932
5. असम गैंडा संरक्षण अधिनियम, 1954
6. वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972: *संशोधित: 1983, 1986, 1991 में*
7. वन संरक्षण अधिनियम, 1980- *संशोधित: 1988 में*
8. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
9. जैव विविधता अधिनियम, 2002- *प्रवर्तन: 2004 से*
10. राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006

**संकटग्रस्त प्रजातियों के लिए विशेष परियोजनाएँ**: भारत में कुछ विशिष्ट परियोजनाएँ आरंभ की गई हैं, जिनका उद्देश्य संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण करना है। उदाहरण प्रोजेक्ट टाइगर-यह 1973 में शुरू हुआ, जिसका उद्देश्य बाघों का संरक्षण और उनके लिए बाघ अभयारण्य की स्थापना थी। इसी प्रकार की घड़ियाल परियोजना 1975 में , सिंह परियोजना-1952 में, हाथी परियोजना 1991-1992 में प्रारंभ की गई।

**भारतीय वन्यजीव बोर्ड (IBWL) (Indian Board of Wildlife):** यह भारत सरकार की प्रमुख सलाहकार संस्था है, जिसकी स्थापना 1952 में हुई थी। इसका पुनर्गठन 1991 में हुआ और इसके अध्यक्ष वर्तमान में भारत के प्रधानमंत्री होते हैं। देश में प्रजातियों की विविधता का संरक्षण, संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना, पारिस्थितिक सेवाओं का सतत उपयोग, और जैव विविधता को नुकसान पहुँचाने वाली अनैतिक गतिविधियों पर नियंत्रण। जैव विविधता के संरक्षण में कई गैर-सरकारी संगठन भी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं, जैसे: वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (WWF), भारतीय वन्यजीव संरक्षण सोसायटी, देहरादून, बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (BNHS), मुंबई, ये संगठन प्राकृतिक वनस्पतियों और जीवों के प्रबंधन एवं संरक्षण में सहायक होते हैं।

# 14.5. जैव विविधता संरक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

### सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी

पृथ्वी पर विविध पारिस्थितिक तंत्र पाए जाते हैं, जैसे कि वन, आर्द्रभूमियाँ, नदियाँ, महासागर, इन पारिस्थितिक तंत्रों से संपूर्ण पृथ्वी पर जीवित रहने वाले असंख्य जीवों, जिनमें मानव भी शामिल हैं, को जीवन

समर्थन प्राप्त होता है। वर्तमान में ज्ञात जीवों की संख्या लगभग 17.5 लाख प्रजातियाँ (1.75 million species) है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि, अभी 30 मिलियन से अधिक प्रजातियाँ (3 करोड़+) खोजी जानी शेष हैं। जैव विविधता का संकट अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) द्वारा 2012 में प्रकाशित "रेड लिस्ट" के अनुसार लगभग 20% कशेरुकी प्रजातियाँ लगभग 60% पौधों की प्रजातियाँ, कुल मिलाकर 30% सभी जीवों की प्रजातियाँ विलुप्ति के खतरे में हैं।

**जैव विविधता हानि को रोकने के प्रयास**

इस जैव विविधता हानि को रोकने के लिए जैव विविधता पर सम्मेलन के दसवें कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टी (COP10) की बैठक 2010 में नागोया, जापान में आयोजित की गई। इसमें "आइची जैव विविधता लक्ष्य (Aichi Biodiversity Targets)" अपनाए गए, जिनका उद्देश्य जैव विविधता संरक्षण हेतु रणनीतिक पहलों को लागू करना है। आइची जैव विविधता लक्ष्यों (Aichi Targets) के प्रमुख बिंदु सरकार और समाज के सभी स्तरों में जैव विविधता को मुख्यधारा में लाना, प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग (Sustainable Use) बढ़ावा देना, भागीदारीपूर्ण योजना, ज्ञान प्रबंधन, और क्षमता निर्माण के माध्यम से कार्यान्वयन को सुदृढ़ करना।

ICT का योगदान जैव विविधता संरक्षण में: डेटा संग्रहण और विश्लेषण के लिए ICT आधारित टूल्स (जैसे रिमोट सेंसिंग, GPS ट्रैकिंग, ड्रोन तकनीक आदि) का प्रयोग। प्रजातियों की निगरानी और उनकी आबादी पर नियंत्रण। रेड लिस्ट, जीव-आधारित डेटाबेस और वैश्विक सूचना तंत्र का निर्माण व उपयोग। ई-लर्निंग और जागरूकता अभियान, जिससे आम नागरिक भी संरक्षण में भागीदारी कर सकें। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन लर्निंग (ML) और बिग डेटा का प्रयोग भविष्यवाणी और संरक्षण योजनाओं में।

## 14.5.1. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी द्वारा जैव विविधता संरक्षण की संभावनाएँ

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) की मदद से बड़ी मात्रा में जानकारी को कुशलतापूर्वक एकत्रित, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जा सकता है। इस जानकारी का सकारात्मक उपयोग करके मानव व्यवहार, कार्य प्रक्रियाएँ और सामाजिक प्रणालियाँ भी अनुकूलित की जा सकती हैं। विगत वर्षों में, इन आंकड़ों का उपयोग अनेक क्षेत्रों में किया जाने लगा है, जिससे लोगों के संयुक्त ज्ञान के आधार पर विविध प्रकार की जानकारी का विश्लेषण करके नवीन मूल्य सृजित किए जा सकें। जैव विविधता के क्षेत्र में भी, विविध और जटिल जानकारियों का प्रभावी संग्रहण और उपयुक्त उपयोग जैव विविधता के ह्रास को रोकने एवं घटाने, सतत उपयोग को बढ़ावा देने, और जैव विविधता के संरक्षण एवं विस्तार में सहायक हो सकता है।

### 14.5.1.1. जैव विविधता संरक्षण में ICT के प्रमुख योगदान क्षेत्र

**ज्ञान (Knowledge):** पर्यावरण, जैव विविधता और मानव के साथ उसके अंत:संबंधों की मौलिक समझ प्रदान करना। रिमोट सेंसिंग के ज़रिए जीवों, तापमान, आर्द्रता की जानकारी प्राप्त करना। छवियों (image analysis) के माध्यम से प्रजातियों की पहचान। मोबाइल टर्मिनल्स की मदद से जीवों व पर्यावरण संबंधी जानकारी एकत्र करना।

**जागरूकता (Awareness):** व्यक्तियों एवं समुदायों में पर्यावरण और जैव विविधता की महत्ता के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाना।

**दृष्टिकोण (Attitude):** लोगों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना जिससे वे इसके संरक्षण में भाग लें।

**कौशल (Skills):** लोगों को पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान, पूर्वानुमान, रोकथाम और समाधान हेतु आवश्यक कौशल प्रदान करना। संसाधनों के सतत उपयोग एवं अनिश्चितताओं से निपटने की क्षमता विकसित करना।

**भागीदारी (Participation):** समाज और व्यक्तियों को संरक्षण की योजनाओं में सक्रिय भागीदारी का अवसर देना।

**विश्लेषण / मूल्यांकन (Analysis / Evaluation):** प्रजातियों, पारिस्थितिकी तंत्र और आवासों पर प्रभावों का मूल्यांकन।

**सूचना प्रबंधन (Information Management):** जीव संबंधी सूचना (जैसे प्रजातियाँ, जनसंख्या, आवास आदि) और आनुवंशिक सूचना के डेटाबेस का निर्माण और रखरखाव।

**निगरानी (Monitoring):** पर्यावरणीय परिवर्तनों और जीवों के व्यवहार की निगरानी एवं अवलोकन। शिक्षा और संप्रेषण: नेटवर्क संचार तकनीकों और चित्र/वीडियो वितरण तकनीकों के ज़रिए समाज को जागरूक करना।

**प्राथमिक क्षेत्रीय आर्थिक गतिविधियों में योगदान:** कृषि, मछली पालन, वानिकी जैसे क्षेत्रों में ICT का उपयोग करके उत्पादकता बढ़ाना, पर्यावरणीय विचारों को बढ़ावा देना, और जैव विविधता आधारित पारिस्थितिकी सेवाओं को संरक्षित करना।

**ICT के कुछ व्यावहारिक उपयोग:**

**1. विभिन्न शैक्षणिक संसाधनों तक पहुँच**

यह सूचना प्रौद्योगिकी (IT) जैव विविधता के संरक्षण में सहायता कर सकती है, क्योंकि यह जैव विविधता से संबंधित उन्नत डाटाबेस उन सभी लोगों के लिए उपलब्ध कराती है जिन्हें इंटरनेट तक पहुँच प्राप्त है। इन संसाधनों तक छात्रों से लेकर पेशेवरों तक, जमीनी स्तर पर कार्य करने वाले संगठनों/गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) से लेकर उच्च स्तरीय नीति निर्माताओं तक सभी पहुँच सकते हैं। इंटरनेट पर जैव विविधता के अध्ययन के लिए संसाधनों की कोई कमी नहीं है चाहे वह पारिस्थितिकी तंत्र, आनुवंशिक विविधता या प्रजातिगत विविधता से संबंधित हो। ये संसाधन हमें हमारे पारिस्थितिक तंत्र में जैव विविधता के महत्व, उस पर हमारी निर्भरता, और उसके संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने में मदद कर सकते हैं।

**2. शिक्षा और प्रशिक्षण**

विद्यालय, गैर-सरकारी संगठन (NGOs) और अन्य संस्थान अब अपने दूरस्थ शिक्षा (Distance Learning) कार्यक्रमों का विस्तार करने के लिए इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं। कुछ संस्थान ऐसे औपचारिक पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं जिनमें अनिवार्य असाइनमेंट्स होते हैं और जिनसे शैक्षणिक क्रेडिट्स प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि कुछ अन्य पाठ्यक्रम कम औपचारिक होते हैं। शिक्षक और प्रशासक (Administrators) शिक्षा प्रक्रिया में अपनी भूमिकाओं को बेहतर बनाने के लिए कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी (IT) का उपयोग कर सकते हैं। उदाहरणस्वरूप विशेषज्ञता का आसान साझा करना,

दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से व्यावसायिक विकास गतिविधियों में वृद्धि करना, शैक्षिक शोध और शिक्षण सामग्री (जैसे लेसन प्लान आदि) तक पहुँच प्राप्त करना, अपने कर्मचारियों के लिए इन-हाउस प्रशिक्षण प्रदान

करना, आदि। इसी प्रकार, जैव विविधता संरक्षण शिक्षा और संचार का उद्देश्य युवाओं, चिंतित नागरिकों, समाजों और नेताओं के रवैये और व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाना है, ताकि वे संरक्षण के समर्थन में आवाज़ उठाने वाले प्रेरक तत्व बन सकें।

संरक्षण और संसाधनों के सतत उपयोग (Sustainable Use) की शुरुआत हमारे घर से होती है। इसलिए, संरक्षण और संसाधनों के सतत उपयोग के बारे में जानकारी हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है, क्योंकि इससे न केवल संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ती है बल्कि आजिविका संसाधनों तक पहुँच और उनके सतत उपयोग को भी प्रोत्साहन मिलता है। सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) अपने विविध संचार माध्यमों के ज़रिए लोगों के एक हिस्से को प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से दूर रहने के लिए प्रेरित कर सकती है। बच्चे पर्यावरण के प्रति अधिक जागरूक और सक्रिय (environment conscious and proactive) बन सकते हैं, और बड़े होते-होते बेहतर आजीविका विकल्पों का चयन कर सकते हैं, जिससे वे अपने पर्यावरण को रहने योग्य और बेहतर स्थान बना सकते हैं। यदि ऐसा होता है, तो यह वास्तव में एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी! इसके बाद, ऐसे सभी प्रबुद्ध लोग (enlightened individuals), जो पहले से ही कुछ जानकारी, अनुभव और जागरूकता रखते हैं, वे इस आधार पर जन-जागरूकता अभियानों का विस्तार कर सकते हैं और हमारे पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) के लिए अपना योगदान दे सकते हैं। जैसा कि कहा जाता है "छोटे-छोटे प्रयास, बड़े बदलाव लाते हैं।

### 3. मोबाइल फोटो सिस्टम / क्लाउड सेवाएँ

जैव विविधता के संरक्षण और उसके सतत उपयोग के लिए PDCA (Plan–Do–Check–Act) चक्र को लागू करना अत्यंत आवश्यक है। सबसे पहले, यह ज़रूरी है कि यह सटीक रूप से समझा जाए कि लक्षित क्षेत्र में कौन-कौन से वन्यजीव और वनस्पतियाँ कहाँ और किस मात्रा में पाई जाती हैं इसे "Check" चरण कहा जाता है। इसके बाद, इस अध्ययन और निगरानी से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता है, ताकि वर्तमान स्थिति और समय के साथ होने वाले परिवर्तनों को समझा जा सके — यह "Act" चरण है। इसके पश्चात, विश्लेषण और मूल्यांकन के परिणामों के आधार पर संरक्षण और उपयोग की योजनाएँ (Preservation and Utilization Plans) तैयार की जाती हैं, जिनमें यह निर्धारित किया जाता है कि लक्षित क्षेत्र को कैसे संरक्षित और उपयोग किया जाएगा, कौन व्यक्ति या संस्था क्या कार्य करेगी, और कब तक — यह "Plan" चरण कहलाता है। इसके बाद, इन योजनाओं के अनुसार संरक्षण गतिविधियाँ और सतत उपयोग के कार्य लागू किए जाते हैं  यह "Do" चरण है। अंत में, इन कार्यों के परिणामों का उपयोग अगली योजना के लिए प्रतिक्रिया के रूप में किया जाता है, ताकि पूरी प्रक्रिया एक निरंतर सुधार चक्र बन जाए।

इस संदर्भ में, मोबाइल फोटो सिस्टम एक ऐसा उपकरण है, जिसका उपयोग अनुसंधान/निगरानी और विश्लेषण/मूल्यांकन जैसे चरणों में किया जा सकता है, जिससे जैव विविधता के संरक्षण और उपयोग को अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

# 14.6. जैव विविधता संरक्षण में स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान (ITK) की भूमिका

## 14.6.1 स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान

स्थानीय या पारंपरिक ज्ञान वह पारंपरिक ज्ञान है, जो हमारी स्थानीय समुदायों और समाजों में आदिकाल से विद्यमान है (Sharma, Bajracharya & Sitaula, 2009)। यह वह ज्ञान है जिसका उपयोग वे लोग करते आए हैं जिन्हें हम प्रथम बसने वाले कहते हैं जो बहुत लंबे समय से किसी क्षेत्र में रह रहे हैं और प्रकृति (नदी, भूमि और वन) के अत्यंत समीप हैं। दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो, उनका जीवन प्रकृति की निकटता पर निर्भर करता है और उनका जीवन-तंत्र अत्यंत विशिष्ट होता है, जो उन्होंने स्वयं विकसित किया होता है, न कि दूसरों से उधार लिया गया होता है यही स्थानीय या पारंपरिक ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान स्थानीय संस्कृति या समाज के लिए विशिष्ट होता है। दूसरे शब्दों में, स्थानीय लोगों द्वारा अर्जित ज्ञान, या किसी विशिष्ट संस्कृति या समाज से जुड़ा अनोखा ज्ञान, यही Indigenous Knowledge है (Berkes, 1999; उद्धृत: ICIMOD, 2007)। यह ज्ञान राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान संस्थानों द्वारा उत्पन्न ज्ञान से भिन्न होता है। यह स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने का आधार होता है जैसे कि कृषि, स्वास्थ्य सेवा, भोजन की तैयारी, शिक्षा, प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन, और ग्रामीण समुदायों में अन्य अनेक गतिविधियाँ (Warren, 1991)। Warren के अनुसार, आदिवासी या स्थानीय लोग स्वयं यह निर्णय लेते हैं कि वे प्रकृति से प्राप्त संसाधनों का उपयोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए कैसे करेंगे, और इसके लिए उन्हें किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं होती। स्थानीय ज्ञान वह सूचना या अनुभव है जो किसी समुदाय ने स्थानीय संस्कृति और पर्यावरण के अनुसार अनुकूलन के माध्यम से समय के साथ विकसित किया है, और जिसे वे निरंतर सुधारते और आगे बढ़ाते रहते हैं (Shrestha, Shrestha, Rai, Sadha & Shrestha, 2008)। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि स्थानीय या पारंपरिक ज्ञान की जड़ें एक विशिष्ट जीवन-दृष्टिकोण और संस्कृति की विशिष्ट अभिव्यक्ति प्रणाली में निहित हैं — जो दूसरों से उधार ली गई नहीं, बल्कि स्वयं की सृजित धरोहर है।

## 14.6.2 स्वदेशी ज्ञान का महत्व

स्थानीय या पारंपरिक ज्ञान का उपयोग ग्रामीण समुदायों द्वारा उनके जीवन के अनेक क्षेत्रों में किया जाता रहा है। कृषि में मल्चिंग विधि द्वारा मृदा की उर्वरता बनाए रखने से लेकर, जल चक्की के माध्यम से अनाज पीसने या कूटने के लिए पानी के उपयोग तक कृषि में कीट नियंत्रण हेतु राखके प्रयोग से लेकर, वनों में पोषक तत्वों की वृद्धि हेतु चयनात्मक दहन की विधि तक ऐसी अनेक पारंपरिक विधियाँ हैं जिनका उपयोग आदिवासी और ग्रामीण समुदायों ने अपने अस्तित्व और आजीविका के लिए किया है। Sharma, Bajracharya और Sitaula (2009) के अनुसार, यह पारंपरिक ज्ञान किसानों के अनुकूल, किफ़ायती, पर्यावरण के अनुकूल होता है, सामाजिक रूप से स्वीकार्य है और स्थानीय तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त होता है। इसमें अनेक प्रकार की व्यवहारिक तकनीकें और परंपराएँ शामिल हैं, जैसे बीजों का उपचार, भंडारण की पारंपरिक विधियाँ, बुआई और फसल कटाई के उपकरण एवं तकनीकें (Shrestha et al., 2008)।

हालाँकि स्थानीय ज्ञान प्रणाली में कुछ सीमाएँ अवश्य रही होंगी, लेकिन ग्रामीण लोगों ने प्रकृति द्वारा उत्पन्न कठोर परिस्थितियों में जीवित रहने के कौशल \विकसित किए। आज जब हम जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न प्रभावों को कम करने के लिए प्रयासरत हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय लोगों द्वारा विकसित पारंपरिक

ज्ञान उन परिस्थितियों में उपयोगी हो सकता है जहाँ अत्यधिक जलवायु घटनाओं का सामना करना पड़ता है। यह ज्ञान आधुनिक समय में कृषि और पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए मूल्यवान आधार सिद्ध हो सकता है।

स्थानीय ज्ञान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए, Limbu (2008) ने कहा है "लिंबू समुदाय (Limbu People), जो नेपाल के एक आदिवासी समूह हैं, उन्होंने पशुपालन और कृषि को एकीकृत कर अत्यंत सतत तरीके से आत्मनिर्भर खेती की है।" उनकी प्रमुख कृषि विधियाँ हैं संरक्षण जुताई, लघु तटबंध निर्माण फसल चक्रण, क्रमिक बुवाई, फार्मयार्ड एवं हरी खाद, समेकित कीट प्रबंधन।

इसके अतिरिक्त, लिंबू समुदाय अपने क्षेत्रों में भूस्खलन, बाढ़, और आग जैसी प्राकृतिक आपदाओं से पारंपरिक तरीकों द्वारा निपटते हैं। वे स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक विचारों का उपयोग करके रोकथाम अपनाते हैं। यद्यपि वे पर्यावरण और जैव विविधता के वैज्ञानिक संबंधों को गहराई से नहीं जानते, फिर भी वे अपने तरीके से संरक्षण में योगदान दे रहे हैं जैसे कि "देवीथान" और "रानीबन" जैसे स्थानों की स्थापना, जहाँ वनों के विशिष्ट हिस्सों की रक्षा की जाती है (Limbu, 2008, p.1)।

### 14.6.3 जैव विविधता और स्वदेशी ज्ञान के बीच संबंध

स्थानीय समुदाय प्रकृति के अत्यंत निकट रहते हैं और हमेशा से प्राकृतिक संसाधनों तथा जैव विविधता पर निर्भर रहे हैं। जैव विविधता और पारंपरिक ज्ञान (Indigenous Knowledge – IK) के बीच एक आपसी और पूरक संबंध होता है। पारंपरिक ज्ञान (IK) जैव विविधता के संरक्षण में सहायता करता है, और बदले में जैव विविधता उन स्थानीय समुदाय के अस्तित्व को बनाए रखती है जो इन प्राकृतिक संसाधनों के आसपास रहते हैं। इस प्रकार, वे हमेशा उन संसाधनों के संरक्षण के साथ जुड़े रहते हैं, क्योंकि यदि संसाधन संरक्षित हैं, तो वे उनका उपयोग कर सकते हैं; और यदि नहीं, तो उनकी आजीविका पर सीधा प्रभाव पड़ता है। आदिवासी समुदायों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधो ने जैव विविधता के सतत संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेष रूप से स्थल पर संरक्षण में अर्थात, संसाधनों का उनके प्राकृतिक रूप या प्राकृतिक आवास में संरक्षण (Shrestha et al., 2008)।

स्थानीय समुदाय किसी ऐसे जातीय समूह को कहा जा सकता है जो ऐतिहासिक रूप से किसी विशिष्ट क्षेत्र या देश से जुड़ा रहा हो, और जिसकी संस्कृति, भाषा, परंपरा तथा अन्य विशेषताएँ उस क्षेत्र की प्रमुख संस्कृति से भिन्न हों। ये समुदाय अपने स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों के साथ परस्पर संपर्क में रहते हैं और उन्हें मूल अवस्था में बनाए रखते हैं। ऐसे लोग, जिनकी संस्कृति समाज में अद्वितीय होती है, वे प्रकृति से प्राप्त संसाधनों पर निर्भर रहते हैं, इसलिए वे केवल अपने हित के बारे में नहीं सोचते, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक आवासों और प्रजातियों का संरक्षण भी करते हैं। लिंबू समुदाय इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। Subba (2006, उद्धृत: Limbu, 2008) के अनुसार, लिंबू लोग सैकड़ों औषधीय पौधों का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में करते हैं जैसे दस्त, कब्ज, हड्डी टूटना आदि।

इसी तरह, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाएँ भी स्थानीय जैव विविधता की रक्षा में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए, नेपाल के डोल्पा क्षेत्र में एक धार्मिक विश्वास प्रचलित है, जिसके अनुसार तेंदुए की हत्या करना वर्जित है। यह विश्वास उस क्षेत्र में हिम तेंदुए के संरक्षण में प्रमुख योगदानकर्ता साबित हुआ है। यह उदाहरण स्पष्ट रूप से दर्शाता है किआदिवासी लोग सदैव सतत विकास की दिशा में अग्रसर रहते हैं। उनका

स्थानीय और स्थान-आधारित ज्ञान हमेशा सतत विकास के सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करता है (Irwin, 1995; उद्धृत: Semali, Grim & Maretzki, 2006)।

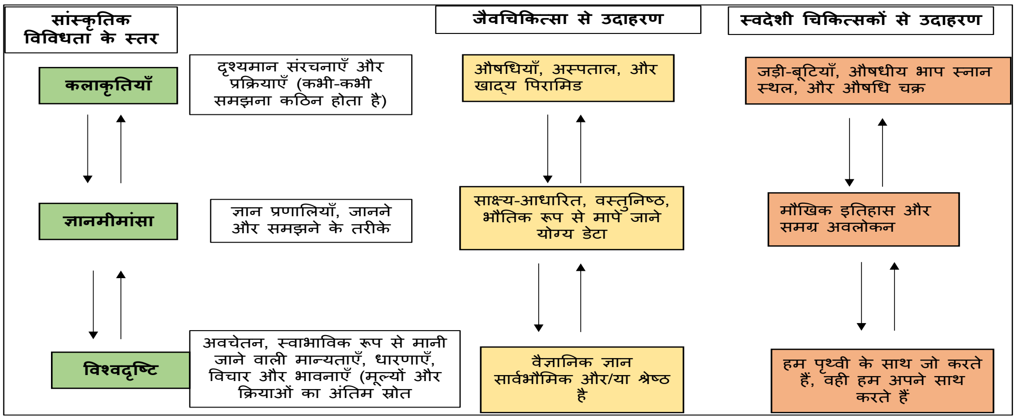


**Source: http://www.joe.org/joe/2005december/images/a1-fig1.gif**

ऊपर दिया गया चार्ट यह दर्शाता है कि पारंपरिक या स्थानीय ज्ञान प्रणाली किस प्रकार जैव-औषधि और अस्पतालों को विभिन्न महत्वपूर्ण औषधियों के निर्माण में सहयोग प्रदान करती है। यह ज्ञान मुख्य रूप से मौखिक परंपरा और अनुभवजन्य अवलोकन के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होता है।

## 14.6.4. जैव विविधता संरक्षण पर पारंपरिक ज्ञान

जैव विविधता संरक्षण के प्रयासों को प्रभावी बनाने के लिए, यह आवश्यक है कि वे संदर्भ-विशिष्ट स्थानीय ज्ञान और संस्थागत तंत्रों से सीख लें, जैसे कि सहयोग और सामूहिक कार्रवाई, पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान, कौशल और रणनीतियों का हस्तांतरण, भविष्य की पीढ़ियों के कल्याण के प्रति चिंता, स्थानीय संसाधनों पर निर्भरता, संसाधनों के दोहन में संयम, प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और सम्मान का दृष्टिकोण, औपचारिक रूप से संरक्षित क्षेत्रों के बाहर जैव विविधता का प्रबंधन, संरक्षण और सतत उपयोग, तथा घरों, गाँवों और व्यापक भू-दृश्यों के बीच उपयोगी प्रजातियों का आदान-प्रदान। ये सभी तत्व स्थानीय ज्ञान प्रणालियों की कुछ उपयोगी विशेषताएँ हैं (Pandey, 2002a)।

भारत में जैव विविधता संरक्षण से संबंधित पारंपरिक ज्ञान उतना ही विविध है जितनी कि यहाँ की 2753 समुदायों (Joshi et al., 1993) की विविधता — और यह विविधता उनके भौगोलिक वितरण, खेती की रणनीतियों, खाद्य आदतों, जीविकोपार्जन के तरीकों और सांस्कृतिक परंपराओं में भी परिलक्षित होती है।

### 14.6.4.1. स्थानीय वनस्पति प्रबंधन

हजारों वर्षों में स्थानीय लोगों ने वनस्पति प्रबंधन की विविध पद्धतियाँ विकसित की हैं, जो आज भी उष्णकटिबंधीय एशिया (Pandey, 1998), दक्षिण अमेरिका (Atran et al., 1999; Gomez-Pompa और Kaus, 1999), अफ्रीका (Getz et al., 1999; Infield, 2001) तथा विश्व के अन्य भागों (Brosius, 1997; Berkes, 1999) में प्रचलित हैं। लोग ऐसे नैतिक सिद्धांतों का भी पालन करते हैं जो अक्सर उन्हें अपने प्राकृतिक परिवेश के साथ संबंधों को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं (Callicott, 2001)। ऐसी पारंपरिक प्रणालियाँ प्रायः पारंपरिक वर्षा जल संचयन तकनीकों के साथ एकीकृत होती हैं, जो पेड़ों और अन्य

वनस्पतियों की वृद्धि को प्रोत्साहित करके भू-दृश्य की विषमता (विविधता) को बढ़ावा देती हैं, और परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं का संरक्षण और पोषण सुनिश्चित करती हैं (Pandey, 2002a)।

भारत में इन प्रणालियों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है:

1. धार्मिक परंपराएँ: मंदिरों के जंगल, मठों के वन, पवित्र वृक्ष
2. जनजातीय परंपराएँ: पवित्र वन, उपवन, वृक्ष
3. राजशाही परंपराएँ: शाही शिकार क्षेत्र, हाथी वन, शाही उद्यान
4. आजिविका परंपराएँ: सामाजिक-आर्थिक रूप से उपयोगी वनस्पति क्षेत्र

इन परंपराओं में यह कार्य शामिल होते हैं:

- लकड़ी और गैर-लकड़ी वनों के उत्पादों का एकत्रण और प्रबंधन
- संसाधनों के सीमित और संयमित उपयोग की परंपरागत आचार संहिताएँ
- वन संरक्षण, उत्पादन और पुनरुत्पादन के परंपरागत उपाय
- सांस्कृतिक स्थलों और कृषि वानिकी प्रणालियों में उपयोगी वृक्षों की खेती
- परंपरागत जल संचयन प्रणालियाँ जैसे – तालाब, कुंड, जलाशय और उनके आसपास वृक्षारोपण

ये प्रणालियाँ जैव विविधता का समर्थन करती हैं, जो यद्यपि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों की तुलना में कम होती है, लेकिन यह संसाधनों पर अत्यधिक दोहन को कम करने में सहायता करती हैं। उदाहरण के लिए, राजस्थान के शुष्क पारिस्थितिक तंत्रों में संसाधन प्रबंधन की 15 प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित हैं, जो जैव विविधता संरक्षण में सहायक हैं और भू-दृश्य की विषमता को बढ़ाती हैं। बिश्नोई समुदाय की पर्यावरणीय नैतिकता वन्यजीवों के प्रति करुणा की शिक्षा देती है तथा क्षेत्र में पाए जाने वाले प्रोसोपिस सिनेरेरिया (Prosopis cineraria) वृक्षों की कटाई को निषिद्ध करती है। बिश्नोई शिक्षाओं में कहा गया है — "यदि किसी वृक्ष को बचाने के लिए सिर (जीवन) देना पड़े, तो समझो यह सौदा सस्ता है।" (Pandey, 2002a)

भारत में, स्थानीय वनस्पति प्रबंधन की प्रथाएँ संभवतः स्थानीय समुदायों की मूलभूत पारिस्थितिक अवधारणाओं से उत्पन्न हुई हैं, जो "पारंपरिक समाजों में पारिस्थितिक तंत्र जैसी अवधारणाओं" (Berkes et al., 1998) में परिलक्षित होती हैं। इन प्रणालियों की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं: प्रकृति की इकाई को प्रायः भौगोलिक सीमाओं के आधार पर परिभाषित किया जाता है; और इस इकाई के भीतर मौजूद अजैविक घटक, वनस्पति, पशु, और मनुष्य सभी को आपस में परस्पर जुड़ा हुआ माना जाता है।

कई स्थानीय ज्ञान प्रणालियाँ अपने स्वभाव में विकसित वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल खाती हैं, जो पारिस्थितिक तंत्रों को अनिश्चित और असंयमनीय मानती हैं, तथा उनके प्रक्रियाओं को गैर-रेखीय, बहु-संतुलनयुक्त और अप्रत्याशित घटनाओं से भरा हुआ बताती हैं (Berkes et al., 1998)।

### 14.6.4.2. पवित्र चट्टानों (Sacred Cliffs) में जैव विविधता

चट्टानें भारत में पूरी तरह भूली-बिसरी सांस्कृतिक परिदृश्य इकाइयाँ हैं, जो विभिन्न प्रकार की वनस्पति और जीव प्रजातियों का आश्रय स्थल हैं। मनुष्यों की इन क्षेत्रों के प्रति विशेष आकर्षण और श्रद्धा के कारण देश के अनेक हिस्सों में चट्टानों को पवित्र माना जाता है। दुनिया के अन्य हिस्सों में भी पाया गया है कि ऐसी चट्टानें अविचलित प्राचीन वनों का समर्थन करती हैं, जिनमें छोटे, धीमी गति से बढ़ने वाले और दूर-दूर स्थित वृक्ष

प्रमुख होते हैं। ऊर्ध्वाधर चट्टानों पर प्रायः अत्यंत पुराने, विकृत और अत्यंत धीमी गति से बढ़ने वाले वृक्षों की आबादी पाई जाती है। धरती पर पाए जाने वाले सबसे प्राचीन और न्यूनतम रूप से प्रभावित वनीय आवासों में से कुछ इन्हीं चट्टानों पर पाए जाते हैं भले ही ये स्थान कृषि या औद्योगिक विकास क्षेत्रों के समीप क्यों न हों। चट्टानों पर पाए जाने वाले वृक्षों की आयु अक्सर वहाँ की पूरी वनस्पति समुदायों की आयु और वृद्धि दर का संकेत देती है। विश्वभर में चट्टानें ऐसे प्राचीन, धीमी वृद्धि वाले, खुले वनों का आश्रय देती हैं, जो मानव हस्तक्षेप से लगभग अछूते रहे हैं यहाँ तक कि जब वे कृषि और औद्योगिक गतिविधियों के समीप स्थित हों, जिनके कारण अन्य प्राकृतिक आवास नष्ट या परिवर्तित हो चुके हों (Larson et al., 1999, 2000a & b; Peterken, 1996)। भारत में ऐसे आवासों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। राजस्थान के उदयपुर और कोटा जिलों में की गई एक सर्वेक्षण में 7 चट्टानों की पहचान की गई जिन पर प्राचीन वनस्पतियाँ पाई गईं। इन चट्टानों पर 25 से अधिक वृक्ष प्रजातियाँ, तथा कई झाड़ियों और औषधीय पौधों की प्रजातियाँ पाई गईं।

भोपाल के आसपास के क्षेत्रों में 100 किलोमीटर के दायरे में 50 से अधिक चट्टानें पाई जाती हैं। राजस्थान की सर्वेक्षित सभी 7 चट्टानें पवित्र स्थल हैं। ये प्रायः नदी तट के खड़ी किनारों के साथ फैले पवित्र मार्गों का हिस्सा हैं, जिनमें कई मीटर की ऊर्ध्व गिरावट होती है। गायपर्नाथ चट्टान (Gaipernath Cliff) को वहाँ पाई जाने वाली पारंपरिक प्रजातियों जैसे लन्नेया कोरोमंडेलिका (*Lannea coromandelica*), बोसवेलिया सेराटा (*Boswellia serrata*), और स्टीरकुलिया युरेंस (Sterculia urens) — सहित लगभग 25 प्रजातियों से पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया।

प्रारंभिक परिणाम बहुत निराशाजनक रहे, लेकिन बाद में स्थानीय एथ्नो-फॉरेस्ट्री तकनीकों ने सफलता दिखाई। इनमें कॉपिसिंग वृक्ष प्रजातियों की टहनियों को चट्टानों की दरारों में ठूंस देना शामिल था। इसके अतिरिक्त, उन्हीं प्रजातियों के बीजों को गीली मिट्टी के गोले में रखकर दरारों में डालना भी उपयुक्त और आशाजनक तकनीक सिद्ध हुआ।

## 14.6.4.3. कृषि जैव विविधता

भारत के खेतों और खेतों के बीच अक्सर पौधों और छोटे जानवरों की कई प्रजातियों वाली वनस्पति की पट्टियाँ देखी जाती हैं। ये पट्टियाँ कई प्रकार से लाभकारी होती हैं। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ये पट्टियाँ प्राकृतिक क्रमिक विकास की प्रक्रियाओं को तेज करती हैं क्योंकि ये बीज फैलाने वाले जानवरों को आकर्षित करती हैं और जंगल के पौधों के बीजों की संख्या बढ़ाती हैं। इन पट्टियों के प्रभाव वायुबंध की तरह बीजों के वितरण के पैटर्न पर होते हैं (Harvey, 2000)। अलग-अलग पेड़ क्षेत्र में प्राकृतिक पुनरुत्पादन के लिए बीज प्रदान करते हैं। ये पट्टियाँ बीजों की संख्या और जैविक कनेक्टिविटी को बढ़ाती हैं। चूंकि ये पट्टियाँ कई प्रजातियों के बड़ी संख्या में बीजों को फँसाती हैं, इसलिए ये आगे पेड़ों की वृद्धि में मदद करती हैं। खुले खेतों की तुलना में, वनस्पति वाली खेतों की सीमाएं अधिक घनी और विविधता वाली बीज प्राप्त करती हैं। सभी प्रकार के बीज वितरण में मदद मिलती है, लेकिन पशु-प्रेरित (पक्षी, चमगादड़, स्तनधारी आदि) बीज अक्सर अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। अलग-अलग पेड़, झाड़ियाँ या अवशिष्ट पेड़ भी सहायक होते हैं। पूरे देश में बनाए गए खेतों की सीमाएं अक्सर स्वयं पुनरुत्पादित होती हैं और केवल प्रबंधन की आवश्यकता होती है क्योंकि ये बाधाएं

सांस्कृतिक परिदृश्य में पेड़ और झाड़ी के बीजों के जमाव को काफी बढ़ाती हैं। वास्तव में, इन पट्टियों में काफी जैव विविधता पाई जाती है। यह एक ऐसी प्रथा है जिसे बनाए रखना आवश्यक है क्योंकि इसके कई सामाजिक-आर्थिक लाभ भी हैं। पारंपरिक कृषि पारिस्थितिक तंत्रों का पौधों और जानवरों की विविधता को समर्थन देने में बड़ा महत्व है (जैसे, Kunte et al. 1998)। खेतों और कृषि पारिस्थितिक तंत्रों में पेड़ों की विविधता स्थानीय और औपचारिक ज्ञान के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम होती है। Karnataka में Shastri et al. (2002) के एक अध्ययन में पेड़ उगाने की प्रथाओं और संबंधित जैव विविधता के बारे में रोचक जानकारी मिली। Shastri et al. ने Sirsimakki कृषि पारिस्थितिक तंत्र के 1.7 हेक्टेयर क्षेत्र में 93 प्रजातियों के पेड़ पाए। गांव के पारिस्थितिक तंत्र के गैर-कृषि क्षेत्रों में 44 अतिरिक्त प्रजातियां पाई गईं, जिनमें सॉप्पिना बेट्टा, छोटे जंगल और रिजर्व जंगल शामिल थे। कुल मिलाकर कृषि पारिस्थितिक तंत्र में 556 पेड़ प्रति हेक्टेयर थे, जबकि गैर-कृषि पारिस्थितिक तंत्र में केवल 354 पेड़ प्रति हेक्टेयर थे। गांव में कुल पेड़ घनत्व 418.8 प्रति हेक्टेयर था। गांव के पारिस्थितिक तंत्र में 144 प्रजातियाँ और 2238 पेड़ (5.34 हेक्टेयर क्षेत्र में) पाए गए। गैर-कृषि पारिस्थितिक तंत्र में 104 प्रजातियाँ और 1286 पेड़ थे। होम-गार्डन में केवल 1.7 हेक्टेयर में 93 पेड़ प्रजातियां मिलीं। होम-गार्डन में पेड़ की प्रजातियाँ 20 से 40 के बीच होती हैं, जो Karnataka के गांवों के होम-गार्डन को मेक्सिको और ब्राजील के होम-गार्डन से अधिक जैव विविध बनाती हैं (Shastri et al. 2002)। खेती में पाई जाने वाली जीवित विविधता जीवित रहने और आजीविका के लिए आवश्यक है। एक उदाहरण है Kimata et al. (2000) द्वारा दक्षिण भारत में *Brachiaria ramosa* की खेती और वंशिककरण की प्रक्रिया। इसके दाने दक्षिण भारत में नौ पारंपरिक खाद्य तैयारियों में उपयोग किए जाते हैं। दूसरी फसल *Setaria glauca* है जो छोटे बाजरे (*Panicum sumatrense*) के साथ मिश्रित रूप में उगाई जाती है। उड़ीसा और दक्षिण भारत में इसके दानों का उपयोग छह पारंपरिक पूरक खाद्य बनाने में होता है। इन प्रजातियों के जंगली रूप धान और कुछ बाजरे के साथ विविध कृषि-पर्यावरणीय क्षेत्रों में पाए गए। वंशिकरण की प्रक्रिया में तीन चरण माने जाते हैं: पहला, जंगली पौधों और धान तथा बाजरे के साथ उगना; दूसरा, कोडो बाजरे के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगना; और तीसरा, स्वतंत्र फसल के रूप में।

## 14.6.4.4. औषधीय पौधों की खेती

भारत में स्थानीय लोग कई औषधीय पौधों की खेती करते हैं। सामाजिक- सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियाँ होम-गार्डन और आंगन में उगाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिमी हिमालय के नंदा देवी बायोस्फीयर रिजर्व के आस-पास, भोटिया समुदाय अपनी जीविका के लिए स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। यह समुदाय मौसमी और ऊँचाई के अनुसार प्रवास करता है और केवल 6 महीने (मई से अक्टूबर) तक बफर ज़ोन में रहता है। पिथोरागढ़ जिले के 5 गांवों के सर्वेक्षण में पाया गया कि भोटिया लोग अपनी कृषि भूमि पर औषधीय पौधों की खेती करते हैं। कुल 71 परिवारों में से 90% परिवारों ने 78% कुल खेती की गई भूमि (15.29 हेक्टेयर) पर औषधीय पौधों की खेती की। लगभग 12 औषधीय पौधों की प्रजातियाँ उगाई जाती हैं। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि 1996 में औषधीय पौधों की बिक्री से एक परिवार औसतन 2423 रुपये +/- 376.95 प्रति मौसम कमा रहा था (1996 में 38 रुपये = 1 अमेरिकी डॉलर)। इस प्रकार, हिमालय के उच्च क्षेत्रों में औषधीय पौधों की खेती को बढ़ावा देने से लोगों को अतिरिक्त आय के साथ-साथ जंगली प्रजातियों के संरक्षण में भी मदद मिल सकती है (Silori और Badola, 2000; Maikhuri et al. 1998)।

एक अन्य अध्ययन (Satyal et al. 2002) में कुमाऊँ उच्च हिमालय के पारंपरिक ज्ञान का पता चला कि भोटिया जनजाति इस क्षेत्र की 34 औषधीय पौधों की प्रजातियाँ उपयोग करती है। इनमें *Angelica glauca* और *Allium stracheyi* संकीर्ण क्षेत्रीय प्रजातियाँ हैं, और *Allium stracheyi, Picrorhiza kurrooa* तथा *Nardostachys grandiflora* भारतीय पौधों के रेड डेटा बुक में दर्ज हैं। दिलचस्प बात यह है कि औषधीय पौधों का वार्षिक उत्पादन पारंपरिक फसलों के वार्षिक उत्पादन के बराबर पाया गया है। इसलिए, खेती और कटाई से आजीविका सुरक्षा और प्रजातियों के संरक्षण में मदद मिल सकती है।

इसी तरह, पूर्वी भारत के कियोंझर जिले के जुआंग और मुंडा जनजाति 215 पौधों का उपयोग करती हैं, जो 150 वंशों और 82 परिवारों से संबंधित हैं (Mahapatra और Panda 2002)। यह क्षेत्र की जैव विविधता और जड़ी-बूटी चिकित्सा के पारंपरिक ज्ञान का एक बड़ा भंडार दर्शाता है। इस क्षेत्र की जनजातियाँ मशरूम, जंगली बेर, कंद और फूल जैसी कई अन्य वनस्पतियों पर भी निर्भर हैं, जिनका वे अपने भोजन और खाना पकाने के तेल में उपयोग करते हैं। क्षेत्र की जैव विविधता पर पारंपरिक ज्ञान को समझना सतत वन प्रबंधन की योजना बनाने में बहुत सहायक होगा

## 14.6.4.5. पारंपरिक आदर्श

इसी तरह, आधुनिकता के बावजूद भी पारंपरिक पारिस्थितिक आदर्श कई स्थानीय समाजों में आज भी जीवित हैं, हालांकि अक्सर सीमित रूपों में। ग्रामीण बंगाल के समाजों में पारंपरिक संसाधन उपयोग के नियमों और संबंधित सांस्कृतिक संस्थानों पर हुए शोध (Deb और Malhotra, 2001) से पता चलता है कि स्थानीय जैव विविधता के कई तत्व, चाहे उनका उपयोग मूल्य कुछ भी हो, स्थानीय सांस्कृतिक प्रथाओं द्वारा संरक्षित होते हैं। इनमें से कुछ का संरक्षण पर प्रत्यक्ष प्रभाव न भी हो, तब भी ये जीवन रूपों के आंतरिक या अस्तित्व मूल्य की सामूहिक प्रशंसा, और प्रकृति के प्रति प्रेम और सम्मान का प्रतीक होते हैं। पारंपरिक संरक्षण नीति देश की घटती जैव विविधता को काफी हद तक बचा सकती है, बशर्ते स्थानीय समुदायों को प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में कुछ भागीदारी मिले।

पारंपरिक आदर्श कई प्रथाओं में परिलक्षित होते हैं, जैसे पवित्र वन और पवित्र भूदृश्य। उत्तर-पूर्वी भारत का एक उदाहरण खासतौर पर उल्लेखनीय है (Tiwari et al. 1998)। मेघालय की जनजातियाँ – खासिस, गारो और जैंटिया – धार्मिक विश्वासों पर आधारित पर्यावरण संरक्षण की परंपरा रखती हैं। भारत के अन्य हिस्सों की तरह, इन समुदायों के पारंपरिक कानून के तहत विशेष जंगल के हिस्सों को पवित्र वन घोषित किया जाता है, जहां कोई उत्पाद निकालना मना होता है। ऐसे जंगल जैव विविधता से भरपूर होते हैं और कई लुप्तप्राय पौधों सहित दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ इनमें पाई जाती हैं। Tiwari et al. (1998) ने 79 पवित्र वन पहचाने, जिनमें कम से कम 514 प्रजातियाँ, 340 वंश और 131 परिवार के पौधे पाए गए। पवित्र वनों की स्थिति को उनकी छतरी (canopy) आवरण से मापा गया। लगभग 1.3% पवित्र वन क्षेत्र अप्रभावित था, 42.1% में घना जंगल था, 26.3% में विरल आवरण था और 30.3% खुला जंगल था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि पवित्र वनों की प्रजाति विविधता disturbed जंगलों से अधिक थी।

## 14.6.4.6. पारंपरिक ज्ञान, जल और जैव विविधता

सरल स्थानीय तकनीक और "जहाँ बारिश होती है, वहाँ पानी संचित करो" की नीति ने भारत के 6,60,000 गाँवों में 15 लाख पारंपरिक गांव तालाब, पोखर और मिट्टी की बांध बनाये हैं जो भारी मात्रा में वर्षा जल

संचित करते हैं और सामूहिक भूमि तथा कृषि पारिस्थितिक तंत्र में वनस्पति वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं (Pandey, 2001a)। यदि भारत आज ये तालाब बनाये, तो कम से कम 125 बिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च होने की संभावना है (Pandey, 2002a)।

मानव ने लगभग सभी ताजा पानी का उपयोग कर लिया है। आज मानवता कुल स्थलीय वाष्पोत्सर्जन का 26 प्रतिशत और भौगोलिक तथा समय के हिसाब से उपलब्ध बहाव का 54 प्रतिशत उपयोग करती है। अगले 30 वर्षों में नए बांधों के निर्माण से उपलब्ध बहाव में केवल 10 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है, जबकि इस दौरान जनसंख्या में 45 प्रतिशत से अधिक वृद्धि होगी (Postel et al., 1996)।

हजारों वर्षों से समाजों ने स्थानीय जल संचयन और प्रबंधन के कई तरीके विकसित किए हैं जो आज भी दक्षिण एशिया, अफ्रीका और अन्य हिस्सों में जीवित हैं (Agarwal और Narain, 1997)। ये प्रणाली अक्सर कृषि-वनरोपण (Wagachchi और Wiersum, 1997) और जातीय वनरोपण प्रथाओं (Pandey, 1998) के साथ जुड़ी होती हैं। हाल ही में सुझाव दिया गया है कि सतत जल प्रबंधन के लिए बाज़ार आधारित तंत्र जैसे उपयोगकर्ताओं से आपूर्ति और वितरण लागत वसूलना और प्रदूषकों से effluent (अपशिष्ट जल) उपचार शुल्क लेना समस्या का समाधान कर सकते हैं (Johnson et al., 2001)। ये उपाय आवश्यक हैं, परन्तु अकेले पर्याप्त नहीं हैं, इन्हें विभिन्न संस्कृतियों के वर्षाजल संचयन के स्थानीय ज्ञान से भी जोड़ना होगा (Pandey, 2001)।

दक्षिण एशिया में वर्षाजल संचयन की प्रथा कम से कम 5000 वर्षों से चल रही है। इसी तरह, बालिनी जल मंदिर नेटवर्क जटिल अनुकूलन प्रणाली के उदाहरण हैं जो बहुत उपयोगी हैं (Falvo 2000)। हालांकि प्राचीन काल से कई क्षेत्रों में जल संचालन के लिए कुदरती धरती कार्य ज्ञात हैं, पर दक्षिण एशिया के समान अनुपात में ये प्रणालियाँ अब व्यापक रूप से प्रचलित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण अमेरिका के मय निचले मैदानों में मिट्टी के ढांचे और जल संचयन के निशान पाए गए हैं (Mann, 2000)। ये प्रणाली मय लोगों द्वारा प्रागैतिहासिक कृषि और बोलिवियाई अमेज़न में मछली पालन के लिए प्रयोग की गई थी (Turner, 1974; Coe, 1979; Erickson, 2000)।

वर्षाजल संचयन को वैज्ञानिक रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयोगी पाया गया है (Li et al., 2000)। उदाहरण के लिए, नेगेव क्षेत्र में प्राचीन पत्थर के ढेर और जल नालियाँ पहाड़ी ढलानों पर पाई जाती हैं। क्षेत्रीय और प्रयोगशाला अध्ययनों से पता चलता है कि प्राचीन किसान जल संचयन में बहुत कुशल थे। उनकी पत्थरों को हटाने की विधि इस तरह थी कि केवल सतह पर पड़े पत्थर हटाए जाते थे, जो मिट्टी में दफन पत्थरों को छुआ नहीं जाता था। वर्षा के प्रयोगात्मक परीक्षणों के अनुसार, इस चयनात्मक पत्थर हटाने से प्राकृतिक मिट्टी की तुलना में छोटे वर्षा कार्यक्रमों में सतह से बहाव लगभग 250% बढ़ गया (Lavee et al., 1997)।

भारत में तालाबों और पोखरों के आसपास उगने वाले प्रमुख पेड़ वर्गों में Ficus (अंजीर) प्रमुख है, जिसे पूरे देश में सांस्कृतिक रूप से महत्व दिया गया है। यह एक कीस्टोन जीनस है और कई अन्य प्रजातियों का समर्थन करता है। 75 से अधिक देशों में 260 Ficus प्रजातियों के फलाहारी रिकॉर्ड से पता चलता है कि कुछ सरीसृप और मछलियों के अलावा, 1274 पक्षी और स्तनधारी प्रजातियाँ 523 वंशों और 92 परिवारों में अंजीर खाते हैं (Shanahan et al. 2001)।

### 14.6.4.7. पारंपरिक ज्ञान को व्यवहार में शामिल करना

किसी भी प्रयास में, जो जैव विविधता संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों की सततता के लिए पारंपरिक ज्ञान को एकीकृत करने का प्रयास करता है, यह सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है कि पारंपरिक ज्ञान को उसके सांस्कृतिक और संस्थागत संदर्भ से अलग नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक और संस्थागत पहलुओं के संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव उपयोगी हो सकते हैं:

1. प्रत्येक कार्यक्रम जो पारंपरिक ज्ञान के संवर्धन का उद्देश्य रखता है, उसे इस मान्यता पर आधारित होना चाहिए कि प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकार और भूमि-सुरक्षा ही पारंपरिक ज्ञान के प्रति सम्मान की मौलिक नींव हैं।

2. पारंपरिक समुदायों के बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

3. ऐसे नवोन्मेषी (innovative) प्रकल्प विकसित किए जाने चाहिए जो स्थानीय समुदायों की क्षमता को बढ़ाने (capacity enhancement) का लक्ष्य रखें ताकि वे अपने सांस्कृतिक और संस्थागत मानदंडों के अनुसार अपने पारंपरिक ज्ञान का उपयोग, अभिव्यक्ति और विकास कर सकें।

यद्यपि जैव विविधता संरक्षण और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए पारंपरिक ज्ञान का महत्व सर्वमान्य है, फिर भी इसके संवर्धन की दिशा में और कार्य की आवश्यकता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित बिंदु उपयोगी हो सकते हैं:

1. स्वदेशी ज्ञान का दस्तावेजीकरण और उसका प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में उपयोग बढ़ाना चाहिए। यह कार्य उन समुदायों की सहभागिता से किया जाना चाहिए जिनके पास यह ज्ञान है। इसमें केवल बाहरी विशेषज्ञों की दृष्टि नहीं, बल्कि स्थानीय लोगों की आंतरिक दृष्टि को भी समुचित स्थान मिलना चाहिए। दस्तावेज़ीकरण में केवल ज्ञान प्रणालियों का विवरण ही नहीं, बल्कि उनके अस्तित्व पर मंडराते खतरों की जानकारी भी शामिल होनी चाहिए। इस संदर्भ में जन जैव विविधता रजिस्टर एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं (Gadgil 1994, 1996; Gadgil et al. 2000)।

2. PBR कार्यक्रम स्थानीय पारिस्थितिक ज्ञान और परंपरागत बुद्धिमत्ता को औपचारिक रूप से संरक्षित करने और उनके सतत अभ्यास के लिए नए संदर्भ सृजित करता है। इसमें स्थानीय शैक्षणिक संस्थाएँ, शिक्षक, विद्यार्थी और एनजीओ मिलकर कार्य करते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया और दस्तावेज सतत, लचीली और सहभागी प्रबंधन प्रणालियों को बढ़ावा देने तथा स्थानीय समुदायों तक जैव संसाधनों से उत्पन्न आर्थिक लाभ पहुँचाने में सहायक हो सकते हैं। भारतीय परंपराओं से संबंधित प्राचीन ग्रंथों, जैसे कि औषधीय पौधों पर प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, का अनुवाद स्थानीय भाषाओं में किया जाना चाहिए और इन्हें स्थानीय समुदायों तक पहुँचाया जाना चाहिए। ऐसा अनुवाद आवश्यक है क्योंकि अधिकांश ग्रंथ संस्कृत जैसी भाषाओं में हैं जिन्हें आज बहुत कम लोग समझते हैं। दूसरी ओर, स्थानीय ज्ञान का औपचारिक वैज्ञानिक भाषा में अनुवाद करने से बाहरी शोधकर्ताओं, नीति-निर्माताओं और व्यवहारकर्ताओं को लोक ज्ञान प्रणालियों को समझने और समर्थन देने का अवसर मिलेगा।

3. स्थानीय ज्ञान के व्यवहारकर्ताओं के बीच सूचना के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना चाहिए।

4. पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों पर स्पष्ट और संक्षिप्त शैक्षिक सामग्री विकसित की जानी चाहिए, जो संप्रेषण कार्यक्रमों में नीति-निर्माताओं और आम जनता दोनों को स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों के महत्व और उनके सामने आने वाले खतरों के बारे में जानकारी देने में सहायक हो।

वैज्ञानिक संस्थानों की पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को समर्थन और सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, अब यह स्वीकार किया जा चुका है कि स्थानीय और औपचारिक ज्ञान प्रणालियों के बीच कोई वास्तविक विभाजन नहीं है हर ज्ञान प्रणाली कुछ मूलभूत मूल्यों, विश्वासों और प्रतिमानों पर आधारित होती है।

इसलिए, पारंपरिक ज्ञान की प्रकृति और दायरे पर व्यवस्थित अंतर्दृष्टि विकसित करने की आवश्यकता है। इस दिशा में निम्नलिखित गतिविधियाँ उपयोगी हो सकती हैं :

1. पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ विकसित की जाएँ ताकि पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों पर औपचारिक प्रशिक्षण और शिक्षा दी जा सके विशेष रूप से उन एजेंसियों, शोधकर्ताओं और व्यवहारकर्ताओं को जो समुदायों के साथ कार्य करते हैं। इस संदर्भ में भारतीय हिमालयी क्षेत्र (Indian Himalayan Region) में जी.बी. पंत हिमालयी पर्यावरण एवं विकास संस्थान (G.B. Pant Institute of Himalayan Environment and Development) द्वारा की गई नई पहलें सकारात्मक परिणाम दे रही हैं (Dhar et al., 2002)।

2. ऐसे अनुसंधान प्रकल्प विकसित किए जाएँ जो विशिष्ट परिस्थितियों में पारंपरिक ज्ञान के उपयोग की संभावनाओं और सीमाओं का मूल्यांकन करें। ये प्रकल्प केवल पहले चरण के अनुसंधान तक सीमित न रहें, जो स्थानीय ज्ञान प्रणालियों के मूल्य को सफल उदाहरणों के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। बल्कि, दूसरी पीढ़ी के अनुसंधान को विभिन्न परिस्थितियों और विषयों में ज्ञान प्रणालियों के अनुप्रयोग की तुलना पर केंद्रित होना चाहिए, ताकि "पारंपरिक सततता विज्ञान को आकार दिया जा सके।

3. क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन नीतियों में सम्मिलित करने के नए तरीकों का विकास किया जाना चाहिए।

## सारांश

जैव विविधता संरक्षण कई तरीकों से किया जाता है। एक्स-सिटु विधियाँ पौधशालाओं, चिड़ियाघरों, जीन बैंक और बंदी प्रजनन कार्यक्रमों में प्रजातियों के संरक्षण पर केंद्रित होती हैं। इन-सिटु विधियाँ प्राकृतिक क्षेत्रों को जैविक जानकारी के "गोदाम" के रूप में उपयोग करती हैं। कई वैज्ञानिक और संरक्षणकर्ता मानते हैं कि जब तक यह पता लगाने के लिए आसान तरीके नहीं मिल जाते कि करोड़ों प्रजातियों और प्रकारों में से कौन आर्थिक मूल्य रखती है, तब तक प्राकृतिक क्षेत्रों की सुरक्षा के माध्यम से इन-सिटु संरक्षण इन संसाधनों के संरक्षण का मुख्य माध्यम होना चाहिए।

यह अक्सर कहा जाता है कि क्या हम अपने अपेक्षाकृत स्थिर पर्यावरणीय परिस्थितियों को बनाए रख पाएंगे, जिन्होंने पिछले दस हज़ार वर्षों से मानव जीवन का समर्थन किया है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आने वाले दस से बीस वर्षों में हमारा व्यवहार कैसा होगा। हम वर्तमान में एक निर्णायक मोड़ पर हैं जहां यह तय होगा कि हम जैव विविधता के नुकसान को रोक पाएंगे या नहीं। ऐसे महत्वपूर्ण समय पर, "सूचना" और उसके "सकारात्मक उपयोग" को सही दिशा में बढ़ने के लिए आवश्यक कुंजी माना जाता है, ताकि हम जटिल प्राकृतिक पर्यावरणों को वैश्विक स्तर पर समझ सकें और साथ ही क्षेत्रीय और प्रजाति स्तर पर भी समझ विकसित कर सकें। इस अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण पहल को संबोधित करने के लिए, फुजित्सु समूह आईसीटी (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) के सकारात्मक उपयोग के आधार पर जैव विविधता संरक्षण और उसके सतत उपयोग के लिए निरंतर प्रयास करता रहेगा।

**टर्मिनल प्रश्न**

**सही विकल्प चुनें:**

**1.** किस तरीके में हम संकटग्रस्त प्रजातियों की रक्षा के लिए पूरे पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण करते हैं?

a) एक्स-सिटु संरक्षण

b) ऑफ-साइट संरक्षण

c) कोई संरक्षण नहीं

d) इन-सिटु संरक्षण

**2.** किस तरीके में हम उन जानवरों का संरक्षण करते हैं जिन्हें विलुप्ति से बचाने के लिए तुरंत कदम उठाना आवश्यक होता है?

a) इन-सिटु संरक्षण

b) ऑन-साइट संरक्षण

c) एक्स-सिटु संरक्षण

d) कोई संरक्षण नहीं

3. विश्व में कुल कितने बायोस्फीयर रिजर्व मौजूद हैं?

a) 24 b) 44 c) 14 d) 04

1. भारत में कुल कितने राष्ट्रीय उद्यान हैं?

a) 19 b) 90 c) 29 d) 120

5. निम्नलिखित में से किस तकनीक द्वारा संकटग्रस्त प्रजातियों के गामेट्स को लंबे समय तक जीवित और प्रजननक्षम स्थिति में संरक्षित किया जाता है?

a) बोटैनिकल गार्डन

b) क्रायोप्रिजर्वेशन तकनीक

c) चिड़ियाघर

d) वाइल्डलाइफ सफारी पार्क

6. निम्नलिखित में से कौन सा असामान्य है?

a) बोटैनिकल गार्डन

b) चिड़ियाघर

c) वाइल्डलाइफ सफारी पार्क

d) राष्ट्रीय उद्यान

**B. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें:**

1. जैव विविधता संरक्षण के विभिन्न तरीकों की व्याख्या करें।
2. इन-सिटु संरक्षण पर चर्चा करें।
3. एक्स-सिटु संरक्षण पर चर्चा करें।
4. जैव विविधता संरक्षण में स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान की भूमिका समझाइए।

# इकाई-15: जैव विविधता का संरक्षण एवं सतत उपयोग: राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहल

**इकाई संरचना**

**15.0 सीखने के उद्देश्य**
**15.1 प्रस्तावना**
**15.2 जैव विविधता के सतत उपयोग हेतु अंतर्राष्ट्रीय पहलें**
**15.2.1 मानव पर्यावरण पर स्टॉकहोम घोषणा, 1972**
**15.2.2 जैव विविधता पर सम्मेलन**
15.2.3 **खाद्य एवं कृषि हेतु पादप आनुवंशिक संसाधनों पर अंतर्राष्ट्रीय संधि**
15.2.4 **खेतिहर पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रबंधन हेतु वैश्विक रणनीति**
15.2.5 **साइट्स**
15.2.6 **रामसर आर्द्रभूमि सम्मेलन**
15.2.7 **क्योटो घोषणा (1995)**
**15.3 राष्ट्रीय जैव विविधता के सतत उपयोग पर भारत की पहलें**
15.3.1 **भारतीय वन अधिनियम, 1927**
15.3.2 **वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972**
15.3.4 **वन (संरक्षण) अधिनियम और भारत की वन नीतियाँ (1952, 1988)**
15.3.5 **अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासियों का अधिकार अधिनियम, 2006**
15.3.6 **वन अधिकार अधिनियम, संशोधन नियम, 2012**
15.3.7 **जैव विविधता अधिनियम, (2002)**

## 15.0 सीखने के उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझने में सक्षम होंगे:
- जैव विविधता के सतत उपयोग की आवश्यकता वाले क्षेत्रों की सूची बनाने में।
- जैव विविधता के सतत उपयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठाए गए विभिन्न पहलुओं को समझने में।
- जैव विविधता के सतत उपयोग के लिए राष्ट्रीय स्तर पर उठाए गए विभिन्न पहलुओं को समझने में।

## 15.1 प्रस्तावना

हमारे चारों ओर जो जैव विविधता आज देखने को मिलती है, वह एकाएक नहीं उत्पन्न हुई है, बल्कि इसके विकास में अरबों वर्षों का समय लगा है। यह पारिस्थितिक तंत्रों का एक अभिन्न हिस्सा है और मानव भी ऐसी ही एक प्रजाति है। किसी पारिस्थितिक तंत्र में सभी जीव रूप परस्पर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं और मिलकर जीवन का एक जाल (वेब ऑफ लाइफ) बनाते हैं। इसी जैव विविधता के माध्यम से हम अनेक

उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। एक पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्रजातियाँ जनसंख्या या विभिन्न जनसंख्या समूहों के रूप में रहती हैं, जिन्हें समुदाय कहा जाता है। ये आपस में तथा हमारे चारों ओर की मृदा, वायु और जल जैसे अजैविक घटकों के साथ परस्पर क्रिया करती हैं। जीवन की यह विविधता और इनका परस्पर संबंध, तथा पर्यावरण के अन्य घटकों के साथ अंतःक्रिया, मिलकर एक ऐसा तंत्र बनाते हैं जो मानव जीवन, उनके पालतू जानवरों और अन्य जैविक घटकों के अस्तित्व हेतु आवश्यक वस्तुएँ और सेवाएँ प्रदान करता है।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, विश्व की 40% अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जैविक संसाधनों के उपयोग पर आधारित है। अतः जैव विविधता के सतत उपयोग को जैव विविधता पर अभिसमय (CBD) के पहले अनुच्छेद में उल्लिखित तीन प्रमुख उद्देश्यों में से एक माना गया है। भारत में जैव विविधता का संरक्षण और उसका सतत उपयोग प्राचीन काल से ही हमारी संस्कृति और परंपराओं का हिस्सा रहा है। हमारे धार्मिक ग्रंथों, समुदाय आधारित संरक्षण परंपराओं, और पीपल, वट वृक्ष एवं तुलसी जैसे धार्मिक वृक्षों के प्रति सम्मान, तथा पर्वतों, नदियों, वनों, पौधों और पशुओं जैसे प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आदर भाव में इसकी झलक स्पष्ट रूप से मिलती है। जैव विविधता के संरक्षण और सतत उपयोग हेतु औपचारिक कानून, नीतियाँ और कार्यक्रम दशकों पूर्व से ही प्रचलन में हैं। समय के साथ भारत ने जैव विविधता के संरक्षण हेतु एक सुदृढ़ संस्थागत ढांचा, और सशक्त कानूनी तथा नीतिगत प्रणाली विकसित की है। देश की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के साथ-साथ जैव विविधता पर अभिसमय (CBD) के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं को ध्यान में रखते हुए, भारत इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति कर रहा है।

जब जैव विविधता पर अभिसमय (CBD) 1992 में लागू हुआ, तो इसके प्रमुख उद्देश्यों में से एक जैव विविधता के सतत उपयोग को बढ़ावा देना था। CBD के अनुच्छेद 2 के अनुसार: "जैव विविधता के घटकों का ऐसा उपयोग और उस दर पर उपयोग, जिससे जैव विविधता में दीर्घकालिक ह्रास न हो, और जिससे वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने की संभावनाएँ बनी रहें, उसे सतत उपयोग कहा जाता है।" यह विषय विवाद का कारण भी बना, क्योंकि सभी संबंधित पक्ष इस बात को लेकर स्पष्ट नहीं थे कि वास्तव में "सतत उपयोग" क्या है और इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। मानव जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताएँ भी बढ़ती जा रही हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति अधिकांशतः जैव विविधता या जैव विविधता आधारित उत्पादों से की जाती है। इसका परिणाम यह हुआ कि जैव विविधता पर अत्यधिक दबाव पड़ा। यह भी सत्य है कि जैव विविधता संसाधनों का अत्यधिक दोहन मुख्य रूप से औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा अपने हितों के लिए किया गया, लेकिन इसके दुष्परिणाम व्यापक रूप से देखे जा रहे हैं और सम्पूर्ण मानव जाति को इन नकारात्मक प्रभावों का सामना करना पड़ रहा है। जैव विविधता के क्षरण का प्रमुख कारण शहरी समुदायों की लालसा और औद्योगिक राष्ट्रों की आधुनिक जीवनशैली की इच्छाओं की पूर्ति है। इसके विपरीत, ग्रामीण और आदिवासी समुदायों की पारंपरिक जीवनशैली प्रायः जैव संसाधनों का संरक्षण करती है और उनके सतत उपयोग को सुनिश्चित करती है, जिससे ये संसाधन भविष्य की पीढ़ियों तक भी उपलब्ध रह सकें।

# 15.2 जैव विविधता के सतत उपयोग हेतु अंतर्राष्ट्रीय पहलें

## 15.2.1 मानव पर्यावरण पर स्टॉकहोम घोषणा, 1972

"मानव पर्यावरण पर सम्मेलन" 5 से 16 जून 1972 तक स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में आयोजित किया गया, जिसमें 107 से अधिक देशों ने भाग लिया। यह अब तक के सबसे सफल अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में से एक माना जाता है। दो सप्ताह की इस अवधि में सम्मेलन ने न केवल एक मूल घोषणा और संस्थागत तथा वित्तीय व्यवस्थाओं पर एक विस्तृत प्रस्ताव (Resolution) को अपनाया, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों, मानव बस्तियों, मानव स्वास्थ्य, क्षेत्रीय पारिस्थितिक तंत्र, पर्यावरण और विकास से संबंधित एक महत्वाकांक्षी कार्य योजना के तहत 109 सिफारिशें भी पारित की गई।

सम्मेलन के अंत में, प्रतिभागी देशों ने 26 सिद्धांतों को स्वीकार किया और घोषित किया, जिन्हें आगे चलकर "मानव पर्यावरण पर मैग्ना कार्टा" (Magna Carta of Human Environment) कहा गया। स्टॉकहोम घोषणा पर्यावरण संबंधी समस्याओं से निपटने की दिशा में किया गया पहला समग्र वैश्विक प्रयास था। स्टॉकहोम युग 1968 से 1987 तक फैला हुआ था। इसमें 1972 का स्टॉकहोम सम्मेलन और उसके पूर्ववर्ती वर्षों में आयोजित की गई कई प्रारंभिक बैठकें तथा आगामी दशक में उसकी सिफारिशों के कार्यान्वयन की प्रक्रियाएँ शामिल थीं। इस सम्मेलन की सफलता एक जटिल पूर्व-तैयारी प्रक्रिया पर आधारित थी, जिसके दौरान प्रमुख देशों के बीच अनेक मुद्दों पर सहमति बना ली गई थी, जिससे सम्मेलन के दौरान केवल कुछ ही विषयों को सुलझाना शेष रह गया। इस सम्मेलन की तैयारी मुख्य रूप से कॉन्फ्रेंस सचिवालय द्वारा की गई थी, जिसकी अध्यक्षता मॉरिस एफ. स्ट्रॉन्ग ने की थी, जो कनाडा की अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी के पूर्व अध्यक्ष थे।

मानव पर्यावरण पर घोषणा को दो भागों में विभाजित किया गया: भाग I में मानव और उसके पर्यावरण के बीच संबंधों को लेकर सात सत्य घोषणाएँ की गई। इसमें यह कहा गया कि "मनुष्य अपने पर्यावरण का सृजनकर्ता और उसकी उपज दोनों है", और यह पर्यावरण उसे शारीरिक अस्तित्व प्रदान करता है तथा बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास का अवसर देता है। इस भाग में यह भी कहा गया कि मानव पर्यावरण की रक्षा और उसका सुधार, एक महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दा है, जो लोगों की सामाजिक भलाई और आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। यह विश्व के सभी लोगों की तात्कालिक इच्छा है और विशेष रूप से विकासशील देशों की सरकारों की जिम्मेदारी भी है।

भाग II में 26 सिद्धांतों को बताया गया है, जो पर्यावरण की रक्षा और सुधार के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय नीति का आधार प्रदान करते हैं। स्टॉकहोम घोषणा का मुख्य उद्देश्य यह था कि हम अपनी मां पृथ्वी को स्वच्छ और स्वस्थ स्थिति में आगामी पीढ़ियों को सौंपें।

**स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धांत (Principles of Stockholm Declaration)**

**मानव केंद्रित दृष्टिकोण (Human-Centric):** सिद्धांत 1 और 15

**सिद्धांत 1:** मनुष्य को स्वतंत्रता, समानता और गरिमा व कल्याण युक्त जीवन के लिए उपयुक्त पर्यावरण में जीने का मूलभूत अधिकार है। साथ ही, वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने की उसकी एक गंभीर जिम्मेदारी भी है। इस संबंध में, वे नीतियाँ जो रंगभेद, नस्लीय भेदभाव,

उपनिवेशवाद और विदेशी प्रभुत्व जैसी व्यवस्थाओं को बढ़ावा देती हैं, निंदा योग्य हैं और उन्हें समाप्त किया जाना चाहिए।

**सिद्धांत 15:** पूर्व-चेतावनी सिद्धांत के अनुसार, मानव बस्तियों और शहरीकरण की योजना बनाते समय पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभावों से बचने और सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय लाभों को अधिकतम करने हेतु योजना बनाना आवश्यक है।

**सतत विकास (Sustainable** Development)**:** सिद्धांत 2, 3, 4, 5, 13 और 14

**सिद्धांत 2:** पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों जैसे वायु, जल, भूमि, वनस्पति, जीव-जंतु तथा प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के प्रतिनिधि नमूनों की वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षण हेतु सावधानीपूर्वक योजना या प्रबंधन आवश्यक है।

**सिद्धांत 3:** पृथ्वी की महत्वपूर्ण नवीकरणीय संसाधनों को उत्पन्न करने की क्षमता को बनाए रखना चाहिए और जहाँ संभव हो, उसका पुनर्स्थापन या सुधार किया जाना चाहिए।

**सिद्धांत 4:** वन्य जीवन और उसके आवासों की विरासत की रक्षा और विवेकपूर्ण प्रबंधन की विशेष जिम्मेदारी मनुष्य पर है, क्योंकि ये आज अनेक कारकों के कारण गंभीर संकट में हैं। अतः वन्य जीवन संरक्षण को आर्थिक विकास की योजना में विशेष महत्व मिलना चाहिए।

**सिद्धांत 5:** पृथ्वी के गैर-नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि उनका भविष्य में समाप्त हो जाना रोका जा सके और उनसे प्राप्त सभी लाभ पूरे मानव समुदाय के बीच समान रूप से वितरित किए जाएं।

**सिद्धांत 13:** राज्यों को अपनी विकास योजनाओं में एक एकीकृत और समन्वित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि विकास पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार की आवश्यकता के अनुरूप हो।

**सिद्धांत 14:** राज्यों को विकास और पर्यावरण के बीच टकराव को सुलझाने के लिए युक्तिसंगत योजना बनानी चाहिए।

**प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय कानून की झलक (Customary International Law): सिद्धांत 21**

**सिद्धांत 21:** प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और गतिविधियों पर कानूनी नियंत्रण स्थापित कर पर्यावरण को क्षति पहुँचने से रोका जाना चाहिए। यह सिद्धांत राज्यों को उनकी न्यायिक सीमाओं के भीतर पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी की ओर इंगित करता है।

**निवारक कदम (Preventive Actions):** सिद्धांत 6, 7, 15, 18 और 24

**सिद्धांत 6:** विषैले या अन्य हानिकारक पदार्थों तथा ऊष्मा के उत्सर्जन को रोका जाना चाहिए, यदि वे पर्यावरण की शुद्ध करने की क्षमता से अधिक मात्रा में हों। इससे पारिस्थितिकी तंत्र पर गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति से बचा जा सकता है। सभी लोगों के प्रदूषण के खिलाफ न्यायोचित संघर्ष का समर्थन किया जाना चाहिए।

**सिद्धांत 7:** राज्य उन सभी कदमों को उठाएँ जिससे समुद्रों में ऐसे पदार्थों द्वारा प्रदूषण को रोका जा सके जो मानव स्वास्थ्य, समुद्री जीवन व संसाधनों को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

**सिद्धांत 15:** (पुनरावृत्ति) मानव बस्तियों और शहरीकरण के लिए पूर्व नियोजन आवश्यक है ताकि पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव को रोका जा सके और समग्र सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय लाभ सुनिश्चित किए जा सकें।

**सिद्धांत 18:** पर्यावरणीय जोखिमों की पहचान, रोकथाम और समाधान के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि "पूर्व-चेतावनी सिद्धांत" को लागू किया जा सके और संपूर्ण मानवता का कल्याण सुनिश्चित हो।

**सिद्धांत 24:** पर्यावरणीय हानियों को रोकने के लिए बहुपक्षीय और द्विपक्षीय समझौतों या अन्य उपयुक्त तरीकों से सहयोग आवश्यक है।

**पीड़ितों को क्षतिपूर्ति (Compensation to Victims): सिद्धांत 22**

**सिद्धांत 22:** राज्य आपस में सहयोग करें और अंतर्राष्ट्रीय कानून को और अधिक विकसित करें ताकि प्रदूषण या पर्यावरणीय क्षति के पीड़ितों को उत्तरदायित्व और क्षतिपूर्ति प्रदान की जा सके, विशेषकर जब ऐसी क्षति किसी राज्य के अधिकार क्षेत्र से बाहर हुई हो।

**सहयोग (Cooperation): सिद्धांत 24 और 25**

**सिद्धांत 24:** सभी क्षेत्रों में की गई गतिविधियों के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय प्रभावों के प्रभावी नियंत्रण हेतु बहुपक्षीय या द्विपक्षीय समझौतों के माध्यम से सहयोग आवश्यक है।

**सिद्धांत 25:** राज्य यह सुनिश्चित करें कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार हेतु समन्वित और सक्रिय भूमिका निभाएँ। पर्यावरण की रक्षा और सुधार में व्यक्तियों, उद्यमों और समुदायों की जागरूक सोच और जिम्मेदार आचरण की भूमिका अत्यंत आवश्यक है।

**स्टॉकहोम घोषणा के बाद की पहलें(Aftermath of Stockholm Declaration)**

स्टॉकहोम घोषणा के प्रभावस्वरूप अनेक वैश्विक पर्यावरणीय संधियाँ आयोजित की गईं, जैसे:

- जंगली जीवों और वनस्पतियों की लुप्तप्राय प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर कन्वेंशन (CITES), 1973
- अपशिष्ट और अन्य पदार्थों के समुद्र में डंपिंग द्वारा प्रदूषण की रोकथाम हेतु कन्वेंशन, 1972
- जहाजों और विमानों से समुद्री प्रदूषण की रोकथाम हेतु कन्वेंशन, 1973

## 15.2.2 जैव विविधता पर सम्मेलन

रियो डी जेनेरो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र के इतिहास में अपने आकार और सरोकारों की व्यापकता के कारण एक अभूतपूर्व सम्मेलन था। यह सम्मेलन 1972 के पहले वैश्विक पर्यावरण सम्मेलन के 20 वर्ष बाद आयोजित हुआ था। इसका उद्देश्य था कि सरकारों को आर्थिक विकास की पुनः परिकल्पना करने और ऐसे उपाय खोजने में मदद करना, जिससे अप्रतिस्थापनीय प्राकृतिक संसाधनों की क्षति और प्रदूषण को रोका जा सके। लाखों लोगों ने विभिन्न क्षेत्रों से आकर इस प्रक्रिया में भाग लिया और अपने नेताओं को रियो भेजने के लिए प्रेरित किया, ताकि वे अन्य राष्ट्रों के साथ मिलकर आने वाली पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को सुरक्षित रखने के कठिन निर्णय ले सकें। सम्मेलन का मुख्य संदेश था: "केवल हमारे दृष्टिकोण और व्यवहार में पूर्ण परिवर्तन ही आवश्यक बदलाव ला सकता है।" इस संदेश को लगभग 10,000 पत्रकारों ने विश्वभर में पहुँचाया और करोड़ों लोगों ने इसे सुना। इसमें यह स्वीकार किया गया कि गरीबी तथा समृद्ध देशों की अत्यधिक उपभोग प्रवृत्तियाँ पर्यावरण पर अत्यधिक दवाब डालती हैं। सरकारों ने इस बात को स्वीकार किया

कि: "अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय योजनाओं को इस तरह परिवर्तित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक आर्थिक निर्णय में पर्यावरणीय प्रभावों को भी पूरी तरह से ध्यान में रखा जाए।" इसी सोच ने "इको-एफिशिएंसी" को सरकारों और उद्योगों के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत बना दिया।

**एजेंडा 21 और उसके प्रभाव**

दो सप्ताह तक चलने वाला यह सम्मेलन दिसंबर 1989 से शुरू हुई एक लंबी प्रक्रिया का चरम था, जिसमें संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों ने शिक्षा, योजना और बातचीत में भाग लिया। परिणामस्वरूप, "एजेंडा 21" को अपनाया गया जो कि वैश्विक स्तर पर सतत विकास के लिए एक विस्तृत कार्य योजना है। सम्मेलन के महासचिव मॉरिस स्ट्रॉन्ग ने इस शिखर सम्मेलन को मानवता के लिए "ऐतिहासिक क्षण" कहा। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यद्यपि एजेंडा 21 समझौतों और वार्ताओं के कारण कुछ हद तक कमजोर हो गया था, फिर भी यह अब तक की सबसे व्यापक और प्रभावशाली कार्य योजना है। आज भी इसकी क्रियान्वयन प्रक्रिया जारी है, और इसका पुनरावलोकन संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा जून 1997 में एक विशेष सत्र के दौरान किया गया।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन (Earth Summit) ने संयुक्त राष्ट्र (UN) की सभी आगामी सम्मेलनों को प्रभावित किया, जिनमें मानवाधिकार, जनसंख्या, सामाजिक विकास, महिलाओं और मानव बस्तियों के बीच संबंध तथा पर्यावरणीय रूप से सतत विकास की आवश्यकता पर विचार किया गया। उदाहरण के लिए, 1993 में वियना में आयोजित विश्व मानवाधिकार सम्मेलन (World Conference on Human Rights) ने लोगों के स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार और विकास के अधिकार पर विशेष बल दिया ये ऐसे विवादास्पद मुद्दे थे, जिन्हें रियो सम्मेलन से पहले कुछ सदस्य देशों द्वारा विरोध का सामना करना पड़ा था।

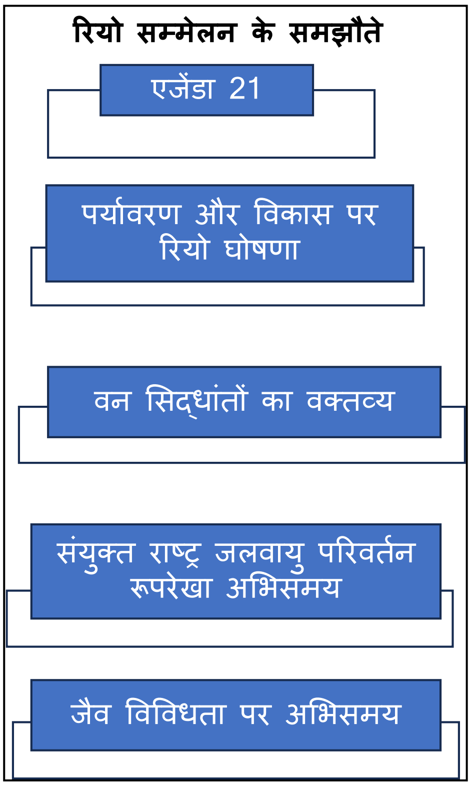

**रियो सम्मेलन के प्रमुख सिद्धांत (1992)**

**सिद्धांत 1:** मानव प्राणी सतत विकास से संबंधित चिंताओं के केंद्र में हैं। उन्हें प्रकृति के साथ सामंजस्य में एक स्वस्थ और उत्पादक जीवन जीने का अधिकार है।

**सिद्धांत 2:** संयुक्त राष्ट्र के चार्टर और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के अनुसार, राज्यों को अपनी पर्यावरणीय और विकास नीतियों के अनुसार अपने संसाधनों का उपयोग करने का सार्वभौम अधिकार है। साथ ही, यह उनकी ज़िम्मेदारी है कि उनकी अधिकार-सीमा या नियंत्रण के अंतर्गत होने वाली गतिविधियाँ अन्य राज्यों या राष्ट्रीय अधिकार-सीमा से परे क्षेत्रों के पर्यावरण को क्षति न पहुँचाएँ।

**सिद्धांत 3:** विकास का अधिकार इस प्रकार पूरा किया जाना चाहिए कि वह वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की विकासात्मक और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा करे।

**सिद्धांत 4:** सतत विकास प्राप्त करने के लिए पर्यावरण संरक्षण विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होना चाहिए और इसे विकास से अलग नहीं किया जा सकता।

**सिद्धांत 5:** सभी राज्य और सभी लोग गरीबी उन्मूलन के अनिवार्य कार्य में सहयोग करें, क्योंकि यह सतत विकास के लिए आवश्यक शर्त है। इससे जीवन-स्तर में असमानता कम होगी और विश्व की अधिकांश जनसंख्या की आवश्यकताओं की बेहतर पूर्ति होगी।

**सिद्धांत 6:** विकासशील देशों, विशेष रूप से अल्प-विकसित और पर्यावरणीय रूप से अत्यधिक संवेदनशील देशों की विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। पर्यावरण और विकास के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय कार्रवाई सभी देशों के हितों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखे।

**सिद्धांत 7:** राज्य वैश्विक साझेदारी की भावना में पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य और अखंडता को संरक्षित, सुरक्षित और पुनर्स्थापित करने में सहयोग करेंगे। यद्यपि सभी देशों की साझा ज़िम्मेदारी है, परंतु विकसित देशों को यह स्वीकार करना चाहिए कि उनकी समाजिक और आर्थिक गतिविधियों से वैश्विक पर्यावरण पर अधिक दबाव पड़ता है, इसलिए वे विशेष दायित्व वहन करते हैं।

**सिद्धांत 8:** सभी लोगों के लिए उच्च जीवन-स्तर और सतत विकास प्राप्त करने हेतु, राज्यों को असतत उत्पादन और उपभोग के पैटर्न को घटाना और समाप्त करना चाहिए तथा उपयुक्त जनसांख्यिकीय नीतियों को बढ़ावा देना चाहिए।

**सिद्धांत 9:** राज्य सतत विकास के लिए स्वदेशी क्षमता-विकास को सुदृढ़ करने में सहयोग करें, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के आदान-प्रदान द्वारा वैज्ञानिक समझ को बढ़ाएँ, और नई व नवाचारी प्रौद्योगिकियों के विकास, अनुकूलन, प्रसार और स्थानांतरण को प्रोत्साहित करें।

**सिद्धांत 10:** पर्यावरण से संबंधित मुद्दों का सर्वोत्तम समाधान सभी संबंधित नागरिकों की भागीदारी से, संबंधित स्तर पर किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर, प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण से संबंधित जानकारी तक उचित पहुँच प्राप्त होनी चाहिए विशेष रूप से वह जानकारी जो सार्वजनिक प्राधिकरणों के पास उपलब्ध है, जिसमें उनके समुदायों में खतरनाक पदार्थों और गतिविधियोंसे संबंधित जानकारी भी शामिल हैऔर प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए। राज्यों को चाहिए कि वे जन-जागरूकता और सार्वजनिक भागीदारी बढ़ावा देने के लिए, जानकारी को व्यापक रूप से उपलब्ध कराएँ। न्यायिकऔर प्रशासनिक कार्यवाहियों तक प्रभावी पहुँच प्रदान की जानी चाहिए, जिसमें उपचार और निवारण का अधिकार शामिल हो।

**सिद्धांत 11:** राज्यों को प्रभावी पर्यावरणीय कानून बनाना चाहिए। पर्यावरणीय मानक, प्रबंधन उद्देश्यों और प्राथमिकताओं को उस पर्यावरणीय और विकासात्मक संदर्भ को प्रतिबिंबित करना चाहिए, जिस पर वे लागू होते हैं। कुछ देशों द्वारा लागू मानक अन्य देशों, विशेषकर विकासशील, के लिए अनुचित और अवांछित आर्थिक एवं सामाजिक लागत वाले हो सकते हैं। सतत विकास को इस संदर्भ में देखा जाना चाहिए कि उनके समाजों द्वारा वैश्विक पर्यावरण पर कितना दबाव डाला जा रहा है, और वे किन प्रौद्योगिकियों तथा वित्तीय संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं।

**सिद्धांत 12:** राज्य एक सहयोगी और खुली अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली को बढ़ावा देने हेतु सहयोग करें, जो सभी देशों में आर्थिक विकास और सतत विकास को प्रोत्साहित करे, ताकि पर्यावरणीय क्षरण की समस्याओं का बेहतर समाधान किया जा सके। पर्यावरणीय उद्देश्यों के लिए व्यापार नीति के उपाय ऐसे माध्यम नहीं बनने चाहिए जो मनमाने या अनुचित भेदभाव या अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर छिपे हुए प्रतिबंध के रूप में कार्य करें। आयातक देश के अधिकार क्षेत्र के बाहर पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिए एकतरफा कार्रवाइयों से बचा जाना चाहिए। सीमा-पार या वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं से संबंधित उपाय, जहाँ तक संभव हो, अंतरराष्ट्रीय सहमति के आधार पर होने चाहिए।

**सिद्धांत 13:** राज्यों को प्रदूषण और अन्य पर्यावरणीय क्षति के पीड़ितों के लिए दायित्व और मुआवज़े से संबंधित राष्ट्रीय कानून विकसित करने चाहिए। राज्यों को यह भी चाहिए कि वे शीघ्र और अधिक दृढ़तापूर्वक सहयोग करें, ताकि पर्यावरणीय क्षति के प्रतिकूल प्रभावों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय कानून का और विकास किया जा सके विशेष रूप से उन गतिविधियों के लिए जो उनके अधिकार-क्षेत्र या नियंत्रण के अंतर्गत संचालित होती हैं, लेकिन जिनसे उनकी सीमा से बाहर के क्षेत्रों को क्षति पहुँचती है।

**सिद्धांत 14:** राज्य इस बात पर सहयोग करें कि पर्यावरण को गंभीर हानि पहुँचाने वाली या मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक गतिविधियों और पदार्थों का अन्य देशों में स्थानांतरण या पुनर्स्थापन न किया जाए।

**सिद्धांत 15:** पर्यावरण की रक्षा के लिए सावधानी सिद्धांत को व्यापक रूप से लागू किया जाना चाहिए। यदि गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति का खतरा हो, तो वैज्ञानिक निश्चितता के अभाव को रोकथाम के उपायों में देरी का कारण नहीं बनाया जाना चाहिए।

**सिद्धांत 16:** राष्ट्रीय प्राधिकरणों को चाहिए कि वे पर्यावरणीय लागतों को आंतरिक करें और आर्थिक उपकरणों का उपयोग करें, इस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कि प्रदूषक को प्रदूषण की लागत वहन करनी चाहिए, सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए और अंतरराष्ट्रीय व्यापार व निवेश को विकृत किए बिना।

**सिद्धांत 17:** ऐसी गतिविधियों के लिए, जिनसे पर्यावरण पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो, एक सक्षम राष्ट्रीय प्राधिकरण के निर्णय के अधीन पर्यावरणीय प्रभाव आकलन किया जाना चाहिए।

**सिद्धांत 18:** राज्य अन्य राज्यों को तुरंत सूचित करें जब प्राकृतिक आपदाएँ या अन्य आपात स्थितियाँ उनके पर्यावरण पर अचानक हानिकारक प्रभाव डाल सकती हैं। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को प्रभावित राज्यों की सहायता के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।

**सिद्धांत 19:** राज्य संभावित रूप से प्रभावित राज्यों को अग्रिम और समय पर सूचना दें और उनसे ईमानदारीपूर्वक परामर्श करें जब किसी गतिविधि से सीमा-पार पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो।

**सिद्धांत 20:** महिलाएँ पर्यावरण प्रबंधन और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अतः सतत विकास प्राप्त करने में उनका पूर्ण सहभाग आवश्यक है।

**सिद्धांत 21:** विश्व के युवाओं की सृजनशीलता, आदर्शवाद और साहस को वैश्विक साझेदारी के निर्माण हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए ताकि सतत विकास और सभी के लिए बेहतर भविष्य सुनिश्चित हो सके।

**सिद्धांत 22:** आदिवासी लोग, उनके समुदाय और अन्य स्थानीय समुदाय पर्यावरण प्रबंधन और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्यों को उनकी पहचान, संस्कृति और हितों को मान्यता और समर्थन देना चाहिए तथा सतत विकास में उनकी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

**सिद्धांत 23:** जो लोग दमन, प्रभुत्व या कब्जे के अधीन हैं, उनके पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा की जानी चाहिए।

**सिद्धांत 24:** युद्ध स्वभावतः सतत विकास के लिए विनाशकारी है। इसलिए राज्यों को युद्ध के समय पर्यावरण की सुरक्षा हेतु अंतरराष्ट्रीय कानून का पालन करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उसके और विकास में सहयोग करना चाहिए।

**सिद्धांत 25:** शांति, विकास और पर्यावरण संरक्षण परस्पर निर्भर और अविभाज्य हैं।

**सिद्धांत 26:** राज्यों को सभी पर्यावरणीय विवादों का शांतिपूर्ण और उचित तरीकों से समाधान करना चाहिए, संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुरूप।

**सिद्धांत 27:** राज्य और लोग, इस घोषणा में निहित सिद्धांतों को लागू करने और सतत विकास के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय कानून के आगे के विकास में, सद्भावना और साझेदारी की भावना से सहयोग करें।

**रियो सम्मेलन के निष्कर्ष (1992)**

पृथ्वी शिखर सम्मेलन ने आर्थिक प्रगति के नए दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की। इसे एक नए युग की शुरुआत के रूप में सराहा गया, और इसकी सफलता का मापदंड उसके समझौतों के स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर क्रियान्वयन को माना गया। शिखर सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि यह समझते थे कि आवश्यक परिवर्तन लाना आसान नहीं होगा: यह एक बहु-चरणीय प्रक्रिया होगी; यह विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न गति से घटित होगी; और इसके लिए वर्तमान में धन व्यय करना आवश्यक होगा, ताकि भविष्य में कहीं अधिक वित्तीय और पर्यावरणीय लागतों से बचा जा सके। शिखर सम्मेलन के प्रमुख परिणाम इस प्रकार हैं:

- **संयुक्त राष्ट्र सतत विकास आयोग (UN Commission on Sustainable Development)**

पृथ्वी शिखर सम्मेलन ने महासभा से आग्रह किया कि वह आर्थिक और सामाजिक परिषद के अंतर्गत इस आयोग की स्थापना करे। इसका उद्देश्य था सरकारों, व्यवसायों, उद्योगों और अन्य गैर-सरकारी समूहों द्वारा उन सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को लाने की दिशा में कार्रवाई को समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करना, जो सतत विकास के लिए आवश्यक हैं। प्रत्येक वर्ष, आयोग पृथ्वी शिखर सम्मेलन के समझौतों के कार्यान्वयन की समीक्षा करता है, सतत विकास में शामिल सरकारों और प्रमुख समूहों को नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान करता है, और जहाँ आवश्यक हो, अतिरिक्त रणनीतियाँ तैयार करके एजेंडा 21 को सुदृढ़ करता है। यह आयोग सरकारों और प्रमुख समूहों के बीच संवाद को प्रोत्साहित करता है तथा साझेदारी का निर्माण करता है, जिन्हें विश्व स्तर

पर सतत विकास प्राप्त करने की कुंजी माना जाता है। आयोग के कार्यों को कई अंतर-सत्रीय बैठकों और सरकारों, अंतरराष्ट्रीय संगठनों तथा प्रमुख समूहों द्वारा प्रारंभ की गई गतिविधियों से समर्थन मिला। जून 1997 में, महासभा ने पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बाद की समग्र प्रगति की समीक्षा के लिए एक विशेष सत्र आयोजित किया।

एक बहुवर्षीय विषयगत कार्य कार्यक्रम के अंतर्गत, आयोग ने एजेंडा 21 के प्रारंभिक कार्यान्वयन की चरणबद्ध निगरानी की।

प्रत्येक क्षेत्रीय विषय जैसे स्वास्थ्य, मानव बस्तियाँ, मीठा जल, विषैले रसायन और खतरनाक अपशिष्ट, भूमि, कृषि, मरुस्थलीकरण, पर्वत, वन, जैव विविधता, वायुमंडल, महासागर और सागर — की समीक्षा 1994 से 1996 के बीच की गई।

अधिकांश "अंतर-क्षेत्रीय" मुद्दों की समीक्षा प्रतिवर्ष की जाती है। ये वे मुद्दे हैं जिन्हें संबोधित करना आवश्यक है ताकि क्षेत्रीय क्षेत्रों में की जाने वाली कार्रवाई प्रभावी हो सके। इन्हें निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किया गया है: सततता के महत्वपूर्ण तत्व व्यापार और पर्यावरण, उत्पादन और उपभोग के पैटर्न, गरीबी से मुकाबला, जनसांख्यिकीय गतिशीलता; वित्तीय संसाधन और तंत्र; शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण-अनुकूल प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण, तकनीकी सहयोग और क्षमता निर्माण; निर्णय-निर्माण; मुख्य समूहों की गतिविधियाँ जैसे व्यापार और श्रमिक संगठन।

1995 में, आयोग ने अपने संरक्षण में अंतर-सरकारी वन पैनल की स्थापना की, जिसका व्यापक जनादेश सभी प्रकार के वनों के संरक्षण, सतत विकास और प्रबंधन से संबंधित विषयों को शामिल करता था। सरकारों द्वारा वार्षिक रूप से प्रस्तुत की गई रिपोर्टें प्रगति की निगरानी और देशों द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं की पहचान के मुख्य आधार के रूप में कार्य करती थीं। 1996 के मध्य तक, लगभग 100 सरकारों ने राष्ट्रीय सतत विकास परिषदें या अन्य समन्वयकारी निकाय स्थापित कर लिए थे। 2,000 से अधिक नगरपालिका और नगर सरकारों ने अपने स्वयं के स्थानीय एजेंडा 21 (Local Agenda 21) तैयार किए थे।कई देशों ने सतत विकास योजनाओं के लिए विधायी स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयास किया, और गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) की भागीदारी का स्तर भी अत्यधिक उच्च बना रहा।

- **मानक निर्धारण (Setting of Standards)** विश्वभर में सतत विकास प्राप्त करना मुख्यतः उत्पादन और उपभोग के पैटर्न में परिवर्तन पर निर्भर करता है कि हम क्या उत्पादन करते हैं, कैसे उत्पादन करते हैं, और कितना उपभोग करते हैं, विशेष रूप से विकसित देशों में। इस क्षेत्र में CSD का कार्य कार्यक्रम निम्नलिखित बिंदुओं पर केंद्रित है: उपभोग और उत्पादन की संभावित प्रवृत्तियाँ, विकासशील देशों पर उनके प्रभाव (जिसमें व्यापारिक अवसर शामिल हैं), नीतिगत उपकरणों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन (जिसमें नए और नवाचारी उपकरण भी शामिल हैं), देशों द्वारा समयबद्ध स्वैच्छिक प्रतिबद्धताओं के माध्यम से हुई प्रगति, और संयुक्त राष्ट्र उपभोक्ता संरक्षण दिशा-निर्देशों का विस्तार और संशोधन। 1995 में, आयोग ने पर्यावरण-अनुकूल प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण, सहयोग और क्षमता निर्माण पर एक कार्य कार्यक्रम भी अपनाया। इस कार्यक्रम में तीन परस्पर संबंधित प्राथमिक क्षेत्रों पर बल दिया गया: सूचना तक पहुँच और उसका प्रसार, प्रौद्योगिकी परिवर्तन के प्रबंधन के लिए क्षमता निर्माण, वित्तीय और साझेदारी व्यवस्था। आयोग विश्व व्यापार संगठन, संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलन तथा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण

कार्यक्रम के साथ मिलकर यह सुनिश्चित करने के लिए कार्य कर रहा है कि व्यापार, पर्यावरण और सतत विकास के मुद्दे परस्पर एक-दूसरे को सुदृढ़ करें।

- **सतत विकास का वित्तपोषण (Financing Sustainable Development):** रियो सम्मेलन में यह सहमति हुई कि एजेंडा 21 के लिए अधिकांश वित्तपोषण किसी देश के अपने सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों से आएगा। हालाँकि, यह भी माना गया कि यदि विकासशील देशों को सतत विकास प्रथाएँ अपनानी हैं, तो नए और अतिरिक्त बाहरी धन आवश्यक होंगे। विकासशील देशों द्वारा एजेंडा 21 को लागू करने के लिए अनुमानित 600 अरब अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष की आवश्यकता थी, जिसमें से 475 अरब डॉलर उन देशों की आंतरिक आर्थिक गतिविधियों से आने थे। शेष 125 अरब डॉलर बाहरी स्रोतों से नए और अतिरिक्त निधियों के रूप में आवश्यक थे जो उस समय की आधिकारिक विकास सहायता के स्तर से लगभग 70 अरब डॉलर अधिक था। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के अनुसार, 1992 से 1995 के बीच ओडीए (ODA) स्तर लगभग 60.8 अरब डॉलर से घटकर 59.2 अरब डॉलर रह गया, हालाँकि रियो में दाता देशों से अपनी आधिकारिक सहायता को दोगुने से अधिक बढ़ाने का आग्रह किया गया था। अन्य धनराशि भी एजेंडा 21 के कार्यान्वयन के लिए उपलब्ध थी। वैश्विक पर्यावरण सुविधा की स्थापना 1991 में की गई थी। इसे विश्व बैंक (World Bank), संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा लागू किया गया। जीइएफ़ (GEF) चार प्रमुख क्षेत्रों में वैश्विक पर्यावरणीय लाभों को प्राप्त करने के लिए वित्त प्रदान करता है: जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि, अंतरराष्ट्रीय जल प्रदूषण, ओज़ोन परत का क्षय। रियो सम्मेलन में, इस सुविधा को संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन रूपरेखा अभिसमय और जैव विविधता अभिसमय के तहत गतिविधियों के वित्तीय तंत्र के रूप में अपनाया गया। 1994 में, जीइएफ़ (GEF) के वित्त पोषण का दायरा बढ़ाकर भूमि क्षरण (Land Degradation), विशेष रूप से मरुस्थलीकरण (Desertification) और वनों की कटाई (Deforestation) को भी शामिल किया गया, जब यह ऊपर बताए गए चार प्रमुख क्षेत्रों से संबंधित हो।

1992 के बाद से, लगभग 2 अरब डॉलर GEF द्वारा समर्थित गतिविधियों के लिए प्रतिबद्ध किए गए हैं। पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बाद के वर्षों में, कई विकासशील देशों में प्रत्यक्ष निजी निवेश (Direct Private Investment) के रूप में धनराशि का प्रवाह उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है, जो अब आधिकारिक प्रवाहों (Official Flows) से कहीं अधिक है। 1995 में, यह लगभग 95 अरब डॉलर तक पहुँच गया था। प्रयास किए जा रहे हैं कि इन निधियों से समर्थित सभी गतिविधियाँ पर्यावरणीय रूप से भी सतत (environmentally sustainable) हों।

**सम्मेलन के अन्य प्रमुख निष्कर्ष**

- 1992 का संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन (यूएनसीईडी), जिसे आमतौर पर "रियो पृथ्वी सम्मेलन (Rio Earth Summit)" कहा जाता है, बिगड़ती पर्यावरणीय परिस्थितियों के बीच वैश्विक एकजुटता का प्रतीक था, जब प्रकृति सतत विकास के लिए पुकार रही थी।
- इस शिखर सम्मेलन से कई महत्वपूर्ण निर्णय निकले, जिनमें एजेंडा 21, पर्यावरण और विकास पर रियो घोषणा, वन सिद्धांतों पर वक्तव्य, संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन रूपरेखा कन्वेंशन, और जैव विविधता पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन शामिल हैं।

- रियो+20 सम्मेलन (2012) में दो प्रमुख विषय तय किए गए "सतत विकास और गरीबी उन्मूलन के संदर्भ में हरित अर्थव्यवस्था", तथा "सतत विकास के लिए संस्थागत ढांचा। ये दोनों विषय सम्मेलन में अपनाई गई आधिकारिक भाषा और दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।
- भारत, एक विकासशील देश होने के नाते, लंबे समय से इस बात की वकालत करता रहा है कि कानूनी दायित्व बाध्यकारी न हों, और यह भी मानता है कि सतत विकास के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त संसाधनों का समुचित उपयोग और प्रबंधन जरूरी है।
- एजेंडा 21, 14 जून 1992 को संयुक्त राष्ट्र के इस सम्मेलन में औपचारिक रूप से अपनाया गया। यह एक व्यापक कार्य योजना है जिसे वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर लागू किया जाना था।
- सतत विकास को प्राप्त करने के लिए, पर्यावरण संरक्षण को विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाना अनिवार्य है इसे अलग-थलग करके नहीं देखा जा सकता।
- पर्यावरण की रक्षा के लिए, सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण को अपनाना सभी देशों के लिए आवश्यक है, उनकी क्षमताओं के अनुसार।
- पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन एक राष्ट्रीय साधन के रूप में किया जाना चाहिए, उन प्रस्तावित गतिविधियों के लिए जो पर्यावरण पर महत्वपूर्ण प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं। यह मूल्यांकन सक्षम राष्ट्रीय प्राधिकरण के निर्णय के अधीन होना चाहिए।

## 15.2.3 खाद्य एवं कृषि हेतु पादप आनुवंशिक संसाधनों पर अंतर्राष्ट्रीय संधि

- इसे आमतौर पर "अंतर्राष्ट्रीय बीज संधि" के नाम से जाना जाता है। यह संधि भूख और गरीबी के खिलाफ लड़ाई में एक महत्वपूर्ण क़दम मानी जाती है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है, जो कई पहलुओं को कवर करता है और इस सिद्धांत पर आधारित है कि आनुवंशिक संसाधन पूरी मानवता की संपत्ति हैं। यह संधि 2004 में लागू हुई, और भारत भी इसका हस्ताक्षरकर्ता है। इस संधि के उद्देश्य:
- खाद्य सुरक्षा की गारंटी देना दुनिया के पादप आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण, आदान-प्रदान और सतत उपयोग के माध्यम से।
- लाभों का न्यायसंगत और समान वितरण सुनिश्चित करना पादप आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से जो भी लाभ हो, उसे न्यायसंगत और समान रूप से सभी लोगों के साथ साझा किया जाए।
- किसानों के अधिकारों को मान्यता देना किसानों को बिना बौद्धिक संपदा अधिकार की रोक के आनुवंशिक संसाधनों तक मुक्त पहुँच, नीतिगत चर्चाओं और जैव विविधता से जुड़े निर्णयों में भागीदारी, बीजों का उपयोग, भंडारण, बिक्री और आदान-प्रदान करने की आज़ादी (देश के क़ानूनों के अनुसार) अधिकार देना ।
- जैव विविधता से संबंधित नीतिगत चर्चाओं और निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में भाग लेना; तथा राष्ट्रीय कानूनों के अधीन रहते हुए बीजों का उपयोग करना, संरक्षित रखना, बेचना और उनका आदान-प्रदान करना।

- पारंपरिक ज्ञान के क्षेत्र में क्षमता निर्माण, प्रौद्योगिकी हस्तांतर और सूचना के आदान-प्रदान से संबंधित गतिविधियों को करना / संचालित करना।
- बहुपक्षीय प्रणाली- इस संधि के तहत, एक बहुपक्षीय प्रणाली (MLS) लागू की गई है, जिसके माध्यम से इस संधि की पुष्टि करने वाले देश 64 सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसलों (जिन पर वैश्विक खाद्य सुरक्षा निर्भर है) के उपयोग और लाभों को साझा कर सकते हैं। यदि कोई देश या संगठन इन संसाधनों का व्यावसायिक उपयोग करता है, तो उसके द्वारा होने वाले लाभों को अनिवार्य रूप से साझा करना होगा। यह संधि इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि विश्व स्तर पर कैसे जिम्मेदारी के साथ शासन किया जा सकता है, ताकि पादप आनुवंशिक संसाधन वर्तमान और भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए सुरक्षित रहें, सभी किसानों की पहुँच में रहें, और सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध बने रहें।

## 15.2.4 खेतिहर पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रबंधन हेतु वैश्विक रणनीति

- खाद्य और कृषि संगठन (FAO) ने 1993 में खेतिहर पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक वैश्विक रणनीति तैयार करना शुरू किया। यह पहल इसलिए शुरू की गई क्योंकि पशु आनुवंशिक संसाधन वैश्विक खाद्य सुरक्षा और सामुदायिक पहचान में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं, लेकिन ये संसाधन तेज़ी से घट रहे थे और उचित रूप से प्रबंधित नहीं किए जा रहे थे।
- FAO की वैश्विक रणनीति के अनुसार पशु आनुवंशिक संसाधनों की भूमिका और महत्त्व को लेकर जागरूकता बढ़ाना, यह रणनीति इस बात पर ज़ोर देती है कि इन संसाधनों के संरक्षण और उपयोग के लिए वैश्विक स्तर पर प्रभावी प्रतिक्रिया दी जानी चाहिए। स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर एक ढांचा प्रदान करना, यह रणनीति एक नीति-आधारित रूपरेखा देती है, जिसके अंतर्गत विभिन्न स्तरों पर इन संसाधनों का बेहतर उपयोग, उनका विकास और संरक्षण किया जा सके। आवश्यक वित्तीय सहायता जुटाना इस रणनीति के विकास और क्रियान्वयन के लिए वित्तीय संसाधनों को एकत्र करने में मदद करती है। संगठनों के बीच समन्वय स्थापित करना, यह विभिन्न स्वतंत्र संस्थाओं और संगठनों की गतिविधियों का समन्वय करती है, जो सतत कृषि और ग्रामीण विकास के लिए कार्य कर रहे हैं।

**खेतिहर पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रबंधन हेतु वैश्विक रणनीति का उद्देश्य है:**

- उन विशिष्ट आनुवंशिक संसाधनों की पहचान करना और उन्हें समझना जो खाद्य और कृषि में उपयोग होने वाली महत्वपूर्ण घरेलू पशु प्रजातियों के वैश्विक जीन पूल का हिस्सा हैं।
- उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने, सतत कृषि प्रणाली प्राप्त करने और विशिष्ट उत्पाद प्रकारों की मांग को पूरा करने के लिए संबंधित विविधता को विकसित करना और उसका उचित उपयोग करना।
- सभी आनुवंशिक संसाधनों की निगरानी करना, विशेष रूप से उन संसाधनों की जो वर्तमान में कम पशु जनसंख्या द्वारा प्रतिनिधित्व करते हैं या जिन्हें किसी अन्य नस्ल प्रतिस्थापन रणनीति द्वारा विस्थापित किया जा रहा है।

- उन विशिष्ट संसाधनों को संरक्षित करना जिनकी वर्तमान में पर्याप्त मांग नहीं है। लोगों को इन संसाधनों के प्रबंधन, उनके सर्वोत्तम उपयोग और विकास तथा विविधता के संरक्षण में प्रशिक्षित करना और उन्हें शामिल करना।
- विश्व समुदाय को इसके घरेलू पशु आनुवंशिक संसाधनों और संबंधित विविधता, उनके वर्तमान नुकसान के जोखिम और इस तथ्य के बारे में जानकारी देना कि इन्हें पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता।
- आनुवंशिक संसाधनों का सर्वेक्षण और विवरण तैयार करना।
- मौजूदा पशु आनुवंशिक विविधता और हानि की विश्वसनीय दरों का महत्त्व स्थापित करना।
- एक बार जब आनुवंशिक संसाधनों की पहचान और विशेषता निर्धारित हो जाती है, तो दो मूल संरक्षण गतिविधियाँ अपनाई जाती हैं अर्थात् इन-सिटू (in situ) और एक्स-सिटू (ex situ)

## 15.2.5 साइट्स (CITES)

साइट्स (CITES) अर्थात् वन्य जीव और वनस्पतियों की संकटापन्न प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर कन्वेंशन सरकारों के बीच एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है, जो 1 जुलाई 1975 को प्रभाव में आया। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वन्य पशुओं और पौधों की प्रजातियों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उनके अस्तित्व के लिए खतरा न बने।

आज यह आम जानकारी है कि बाघ और हाथी जैसे कई प्रमुख प्रजातियाँ संकटग्रस्त हैं, जिससे इस प्रकार के समझौते की आवश्यकता स्पष्ट प्रतीत होती है। लेकिन 1960 के दशक में, जब CITES का विचार पहली बार सामने आया, तब संरक्षण के उद्देश्य से वन्य जीवन व्यापार को विनियमित करने पर अंतर्राष्ट्रीय चर्चा एक नया विषय था। एक वर्ष में, अंतर्राष्ट्रीय वन्य जीवन व्यापार का मूल्य अरबों डॉलर में होता है और इसमें सैकड़ों मिलियन पौधों और जानवरों के नमूने शामिल होते हैं। यह व्यापार जीवित जानवरों और पौधों से लेकर उनसे प्राप्त विभिन्न वन्यजीव उत्पादों तक फैला होता है जैसे कि खाद्य उत्पाद, विदेशी चमड़े से बनी वस्तुएँ, लकड़ी के संगीत वाद्ययंत्र, लकड़ी, पर्यटक स्मृति-चिन्ह और औषधियाँ।

कुछ पशु और पौधों की प्रजातियों का अत्यधिक दोहन किया जाता है और इनका व्यापार, आवास की हानि जैसे अन्य कारकों के साथ मिलकर, उनकी जनसंख्या को इतना घटा सकता है कि वे विलुप्त होने के कगार पर पहुँच जाएँ। व्यापार में शामिल कई वन्यजीव प्रजातियाँ संकटग्रस्त नहीं हैं, लेकिन यदि हम भविष्य के लिए इन संसाधनों की सुरक्षा करना चाहते हैं, तो व्यापार की स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए एक समझौते का होना आवश्यक है।

क्योंकि वन्य पशुओं और पौधों का व्यापार देशों के बीच सीमाओं को पार करता है, इसलिए इसे विनियमित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक होता है। CITES को ऐसे ही सहयोग की भावना में तैयार किया गया था। आज, CITES 30,000 से अधिक पशु और पौधों की प्रजातियों की सुरक्षा करता है, चाहे वे जीवित नमूनों के रूप में व्यापार में हों, फर के कोट के रूप में, या सूखी हुई जड़ी-बूटियों के रूप में। CITES एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जिसमें देश स्वेच्छा से सम्मिलित होते हैं। जो देश इस कन्वेंशन को स्वीकार कर चुके हैं (अर्थात् CITES में 'शामिल' हुए हैं), उन्हें 'पार्टियाँ' कहा जाता है।

हालाँकि CITES पार्टियों पर कानूनी रूप से बाध्यकारी होता है जिसका अर्थ है कि उन्हें इस कन्वेंशन को लागू करना ही होगा यह राष्ट्रीय कानूनों का स्थान नहीं लेता। इसके बजाय, यह एक ऐसा ढाँचा प्रदान करता है जिसका प्रत्येक पार्टी को सम्मान करना होता है, और उन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए अपना घरेलू कानून अपनाना पड़ता है कि CITES को राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी रूप से लागू किया जा सके।

### 15.2.6 रामसर आर्द्रभूमि सम्मेलन

अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियों पर सम्मेलन, जिसे रामसर सम्मेलन कहा जाता है, को 1971 में ईरान के शहर रामसर में अपनाया गया था और 1975 में यह प्रभाव में आया। यह एक सरकारी अंतर्राष्ट्रीय संधि है जो आर्द्रभूमियों और उनके संसाधनों के संरक्षण और विवेकपूर्ण उपयोग के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्रवाई और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए रूपरेखा प्रदान करती है। यह एकमात्र वैश्विक पर्यावरणीय संधि है जो किसी विशिष्ट पारिस्थितिकी तंत्र से संबंधित है, और इस सम्मेलन के सदस्य देश पूरे ग्रह के अधिकांश हिस्से को कवर करते हैं।

### 15.2.7 क्योटो घोषणा (1995)

क्योटो घोषणा, खाद्य सुरक्षा में मत्स्यिकी के सतत योगदान पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (International Conference on the Sustainable Contribution of Fisheries to Food Security) का परिणाम है, जो 1995 में जापान के क्योटो शहर में आयोजित किया गया था। इस घोषणा में निम्नलिखित मुद्दों पर ज़ोर दिया गया है:

- राज्यों (देशों) को जैविक विविधता और उसके घटकों का जलीय पर्यावरण में संरक्षण करना चाहिए और सतत रूप से उपयोग करना चाहिए।
- ऐसे कार्यों को रोकना चाहिए जो अपूरणीय परिवर्तनों की ओर ले जाते हैं, जैसे कि जीन और प्रजातियों का विलुप्त होना, आवासों का विनाश।
- मत्स्य क्षेत्र में सतत विकास के लिए नीतियाँ, रणनीतियाँ और संसाधनों का प्रबंधन तथा उपयोग पारिस्थितिकी प्रणालियों के संरक्षण और उपलब्ध सर्वोत्तम वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए।
- तटीय, समुद्री और अंतर्देशीय जलों में सतत और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित जलकृषि और रैंचिंग के उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए।

## 15.3 राष्ट्रीय जैव विविधता के सतत उपयोग पर भारत की पहलें

### 15.3.1 भारतीय वन अधिनियम, 1927

**अधिनियम का उद्देश्य और क्षेत्राधिकार**

भारतीय वन अधिनियम [जिसे आगे 'अधिनियम' कहा गया है] का उद्देश्य भारत में वनों से संबंधित कानून को एकीकृत करना और उसका पुनर्गठन करना था। यह वन अधिकारियों की विभिन्न प्रथाओं और

गतिविधियों के संहिताकरण की दिशा में पहला कदम था। यह अधिनियम विभिन्न समूहों के लोगों के वन भूमि और संसाधनों पर अधिकारों को विनियमित करने की दिशा में भी लक्षित था। वनों के विभिन्न वर्गीकरण किए गए और प्रावधानों के क्षेत्राधिकार को विस्तृत किया गया ताकि राज्य का वनों और संसाधनों पर नियंत्रण सुनिश्चित किया जा सके। 1878 के अधिनियम के विपरीत, इस अधिनियम में समुदायों के वनों पर अधिकारों का उल्लेख नहीं किया गया था और लोगों से अपेक्षा की गई कि वे वन भूमि पर अपने दावे प्रस्तुत करें। इसके अतिरिक्त, अधिनियम ने वन उत्पादों के परिवहन और इन पर लगने वाले शुल्क को नियंत्रित करने का प्रयास किया। इस प्रकार, अधिनियम से यह स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक शासकों के मन में वनों को राजस्व अर्जन के साधन के रूप में देखा गया था।

**अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ:**

- अधिनियम में कुल 86 धाराएँ हैं, और यह वनों को चार श्रेणियों में विभाजित करता है: आरक्षित वन (Reserved Forest), ग्राम वन (Village Forest), संरक्षित वन (Protected Forest), गैर-सरकारी वन (Non-government Forest).
- नियामक उपाय लागू किए गए ताकि निम्नलिखित गतिविधियों को प्रतिबंधित या नियंत्रित किया जा सके, पत्थरों की खुदाई (quarrying), चूना या कोयला जलाना, किसी भी निर्माण प्रक्रिया के लिए संग्रहण, किसी भी वन उत्पाद को हटाना, खेती, निर्माण, या मवेशियों के लिए भूमि की सफाई
- निरीक्षकों को वारंट के बिना गिरफ्तारी का अधिकार दिया गया यदि कोई व्यक्ति अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करता है।
- 1878 अधिनियम के विपरीत, 1927 का अधिनियम विभिन्न समुदायों के वनों पर अधिकारों का उल्लेख नहीं करता। इसके बजाय, समुदायों/व्यक्तियों से अपेक्षा की गई कि वे वन निपटान अधिकारी (Forest Settlement Officer) के समक्ष अपने अधिकारों का दावा प्रस्तुत करें। अधिकारी उन दावों की जांच कर सकते हैं।
- स्थानांतरित खेती (shifting cultivation) को नियंत्रित करने के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए गए हैं। यह अभ्यास वन निपटान अधिकारी की संतुष्टि पर आधारित है, जो दावों को दर्ज करने के बाद राज्य सरकार को इसकी अनुमति के बारे में सूचित करता है।

## 15.3.2 वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972

जीवित प्राकृतिक संसाधनों जैसे पौधे, जानवर, सूक्ष्मजीव और उन निर्जीव तत्वों का संरक्षण जिन पर ये निर्भर हैं, विकास और प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक है। वन्य जीव संसाधन मानव जाति के अस्तित्व की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं, क्योंकि हममें से हर कोई अपनी भलाई के सभी आवश्यक घटकों के लिए पौधों और जानवरों पर निर्भर करता है। पूरा पर्यावरण खाद्य श्रृंखला के रूप में संचालित होता है और सभी प्रजातियों का अस्तित्व और एक-दूसरे पर निर्भरता अत्यंत महत्वपूर्ण और आपस में जुड़ी हुई है। माननीय न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू ने भी कहा है कि "वन्य जीवों का संरक्षण पर्यावरण में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और पारिस्थितिक श्रृंखला को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। यह समझा जाना चाहिए कि प्रकृति में सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ है।" वर्तमान समाज में, जो चुनौती विश्व के सामने है, वह संरक्षण का विचार नहीं है,

बल्कि यह है कि क्या संरक्षण को राष्ट्रीय हित में और प्रत्येक देश के उपलब्ध संसाधनों के भीतर लागू किया जा सकता है।

सामान्य धारणा यह है कि "वन्यजीव" शब्द केवल खतरनाक, स्थलीय या जलीय जानवरों को संदर्भित करता है, जैसे कि शेर, बाघ आदि जो जंगलों में रहते हैं। लेकिन वास्तव में, यह शब्द उन सभी जीवित जीवों को शामिल करता है सभी पौधे, सभी जानवर, सभी सूक्ष्मजीव, जो अपनी प्राकृतिक स्थिति में, जंगली अवस्था में रहते हैं। इसमें खेती किए गए पौधे और पालतू जानवर शामिल नहीं होते हैं। वन्यजीवों का संरक्षण मानव जाति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि वन्यजीवों का विनाश होता है, तो अंततः इसका परिणाम मानव प्रजाति के अंत में हो सकता है। यदि वन्यजीवों को कोई क्षति पहुँचती है, तो प्राकृतिक पारिस्थितिक संतुलन बाधित हो जाता है।

**भारत में वन्यजीव कानूनों का विधायी इतिहास**

- वन्यजीवों की सुरक्षा को लेकर सबसे प्रारंभिक चिंता तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में देखने को मिलती है, जब सम्राट अशोक ने वन्यजीवों और पर्यावरण के संरक्षण के लिए कानून बनाया था।
- भारतीय दंड संहिता, 1860 के अंतर्गत "पशु" शब्द को परिभाषित किया गया है और इसमें पशुओं को घायल करने या मारने को अपराध घोषित किया गया है, जो विभिन्न धाराओं के तहत दंडनीय है।
- ब्रिटिश सरकार ने 1879 में हाथियों का संरक्षण अधिनियम (Elephants Preservation Act, 1879) पारित किया, जो हाथियों की हत्या, उन्हें घायल करने, पकड़ने या इसके प्रयास को प्रतिबंधित करता था।
- वन्यजीव संरक्षण हेतु पहला प्रत्यक्ष संहिताबद्ध कानून ब्रिटिश सरकार द्वारा "जंगली पक्षियों का संरक्षण अधिनियम, 1887" (Wild Birds Protection Act, 1887) के रूप में पारित किया गया, जिसमें कुछ विशेष पक्षियों के स्वामित्व या बिक्री पर प्रतिबंध लगाया गया।
- 1912 में, 1887 के अधिनियम की कमियों को पूरा करने के लिए "जंगली पक्षियों और जानवरों का संरक्षण अधिनियम" (Wild Birds and Animal Protection Act, 1912) पारित किया गया।
- "भारतीय वन अधिनियम, 1927" (Indian Forest Act, 1927) ने इसके बाद वन और वन उत्पादों के परिवहन से संबंधित कानूनों को संहिताबद्ध और समेकित किया।
- "वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980" (Forest Conservation Act, 1980) को वनों की कटाई को रोकने के लिए पारित किया गया।
- "पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960" (Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960) और "वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972" (Wildlife Protection Act, 1972) को वन्यजीवों के संरक्षण, रक्षा और संवर्धन के उद्देश्य से पारित किया गया।

**वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972**

यह अधिनियम संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद 252 के अंतर्गत ग्यारह राज्यों के अनुरोध पर पारित किया गया था। इसका उद्देश्य वन्यजीवों के संरक्षण हेतु एक व्यापक राष्ट्रीय ढांचा प्रदान करना, विशिष्ट संकटग्रस्त

प्रजातियों के लिए एक संरक्षण रणनीति अपनाना तथा निर्दिष्ट क्षेत्रों में सभी प्रजातियों की रक्षा सुनिश्चित करना था।

अधिनियम की उद्देशिका के अनुसार "यह एक अधिनियम है जो जंगली जानवरों, पक्षियों और पौधों के संरक्षण और उनसे संबंधित या सहायक अथवा गौण विषयों के लिए बनाया गया है, जिससे देश की पारिस्थितिक और पर्यावरणीय सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।"

यह अधिनियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48A और अनुच्छेद 51A(g) में उल्लिखित संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है, क्योंकि यह कुछ सीमित परिस्थितियों को छोड़कर वन्यजीवों के शिकार को प्रतिबंधित करता है। न्यायालय ने यह घोषित किया है कि वन्यजीव अधिनियम के प्रावधान उपकारी हैं और पारिस्थितिक श्रृंखला और संतुलन बनाए रखने के लिए इन्हें लागू किया जाना आवश्यक है। इस अधिनियम के अंतर्गत प्रावधान शामिल हैं:

- संरक्षित पौधों और जानवरों की प्रजातियों की अनुसूचियां बनाना;
- इन प्रजातियों के शिकार या कटाई पर प्रतिबंध लगाना;
- जंगली जानवरों, पक्षियों और पौधों की रक्षा करना;
- पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण संरक्षित क्षेत्रों का एक नेटवर्क स्थापित करना;
- केंद्र और राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे किसी भी क्षेत्र को निम्न रूपों में घोषित कर सकती हैं, वन्यजीव अभयारण्य (धारा 18), राष्ट्रीय उद्यान (धारा 35), संरक्षण रिज़र्व (धारा 36A), समुदाय रिज़र्व (धारा 36C), या अधिनियम के अध्याय IV के तहत बंद क्षेत्र
- अभयारण्यों, राष्ट्रीय उद्यानों और बंद क्षेत्रों को नियंत्रित करना;
- इन संरक्षित क्षेत्रों में किसी भी औद्योगिक गतिविधि पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना;
- जानवरों का शिकार केवल उस स्थिति में अनुमति के साथ करना, जब जानवर मानव जीवन या संपत्ति के लिए खतरा बन गया हो, या वह अपंग या गंभीर रूप से बीमार हो और उसकी स्थिति असुधार्य हो;
- यह अधिनियम पूरे भारत में लागू होता है, सिवाय जम्मू और कश्मीर राज्य के, जहाँ का स्वयं का वन्यजीव अधिनियम है।

वन्यजीव संरक्षण से जुड़े कुछ अन्य तथ्य:

- वन्यजीव संसाधन मानव जाति के अस्तित्व की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं, क्योंकि हम सभी अपने कल्याण के सभी आवश्यक घटकों के लिए पौधों और जानवरों पर निर्भर हैं। पूरा पर्यावरण भोजन श्रृंखला के रूप में संचालित होता है, और सभी प्रजातियों का अस्तित्व और परस्पर निर्भरता अत्यावश्यक है।
- भारत विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा देश है और एशिया का दूसरा सबसे बड़ा राष्ट्र है, जिसकी कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किमी, राष्ट्रीय सीमा 15,200 किमी, और तटरेखा 7,516 किमी है।
- वन्यजीव संरक्षण की प्रारंभिक चिंता तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में दिखाई देती है जब सम्राट अशोक ने वन्यजीवों और पर्यावरण के संरक्षण के लिए कानून बनाए।

- वन्यजीव संरक्षण के लिए पहला प्रत्यक्ष संहिताबद्ध कानून ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित "जंगली पक्षियों का संरक्षण अधिनियम, 1887" था, जो कुछ विशेष पक्षियों के स्वामित्व या बिक्री को प्रतिबंधित करता था।
- देश में संकटग्रस्त बाघों के संरक्षण के लिए "प्रोजेक्ट टाइगर"14 अप्रैल 1973 को शुरू किया गया। प्रारंभ में इसमें 9 टाइगर रिज़र्व शामिल किए गए थे, जो अब बढ़कर 17 राज्यों में फैले 28 रिज़र्व हो चुके हैं।

**वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980**

वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 वनों की कटाई पर रोक लगाने और उसे नियंत्रित करने के लिए बनाया गया था। यह कानून ऐसी कई धाराओं को लागू करता है जो सभी प्रकार के वनों पर लागू होती हैं, चाहे वे किसी भी श्रेणी में हों। इस अधिनियम के तहत राज्य सरकार की वन भूमि के उपयोग और वन संसाधनों के संरक्षण से संबंधित शक्तियों को भी सीमित किया गया है।

धारा 2 के अनुसार, राज्य सरकार कोई भी संशोधन केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना नहीं कर सकती। यह अधिनियम यह भी निर्देश देता है कि किसी भी वन क्षेत्र में यदि कोई गैर-वन गतिविधि बिना केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के चल रही है, तो उसे बंद कर दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, इस अधिनियम के तहत एक सलाहकार समिति गठित की जाएगी, जो केंद्र सरकार को धारा 2 के अंतर्गत अनुमति देने या वनों के संरक्षण से संबंधित किसी भी अन्य विषय पर जो केंद्र सरकार द्वारा उसे सौंपा गया हो, उस पर सलाह देगी (धारा 3 के अनुसार)।

## 15.3.4 वन (संरक्षण) अधिनियम और भारत की वन नीतियाँ (1952, 1988)

वन संरक्षण अधिनियम को 1988 में संशोधित किया गया था ताकि वनों और उनके संसाधनों के संरक्षण के लिए आवश्यक कानूनी ढांचा और मजबूत किया जा सके। संशोधित अधिनियम यह स्पष्ट करता है कि इस अधिनियम का उद्देश्य पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखना है। इसलिए, पर्यावरण से किसी भी प्रकार का आर्थिक लाभ प्राप्त करना गौण (द्वितीयक) उद्देश्य माना गया है। यह अधिनियम संयुक्त वन प्रबंधन का समर्थन करता है और वनों की रक्षा के लिए उपयोग अधिकार (usufruct rights) प्रदान करता है। अगर कोई व्यक्ति इस अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, तो उसे 15 दिन तक की कैद हो सकती है (धारा 3A के अनुसार)। यह अधिनियम सरकारी अधिकारियों और विभागों द्वारा किए गए अपराधों को भी मान्यता देता है (धारा 3B)।

वन कार्बन डाइऑक्साइड के अवशोषक होते हैं और ये हमें आवश्यक ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, जो पृथ्वी पर जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा, वनों का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी बहुत महत्व है। इसलिए, वनों की रक्षा और संरक्षण किसी भी कल्याणकारी सरकार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण विषय होता है, और इसी के अनुसार प्रत्येक देश अपनी नीतियाँ बनाता है जो राष्ट्रीय लक्ष्यों और देश की परिस्थिति के अनुसार होती हैं।

भारत में वनों का संरक्षण प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक परंपरा (300 ईसा पूर्व) में वनों को पूज्य माना गया था क्योंकि वे हमें ईंधन, भोजन और अन्य आवश्यक संसाधन प्रदान करते थे। मौर्य साम्राज्य में भी वनों के महत्व को पहचाना गया। चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में वनों की देखभाल के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी (K.S. Shobajasmin, 2013)। इसलिए, भारत में वनों का संरक्षण और उनका सतत उपयोग प्राचीन काल से ही एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। वन नीति वह सिद्धांतों और दिशानिर्देशों का समूह है, जिसे प्रत्येक देश अपने आर्थिक, पारिस्थितिकीय, सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए तैयार करता है। इसका उद्देश्य वनों के संरक्षण, विकास, उपयोग और सतत दोहन को सुनिश्चित करना होता है।

वन नीति लक्ष्य तय करती है और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यकारी, नीतिगत और कानूनी उपायों को दिशा देती है। यह कोई स्थिर दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि एक भागीदारी प्रक्रिया होती है, जिसमें स्पष्ट उद्देश्य होते हैं। यह एक दीर्घकालिक प्रक्रिया होती है जिसमें कई तत्व शामिल होते हैं जैसे कि देश की नीतियाँ, कानूनी ढाँचा, भागीदारी की विधियाँ और क्षमता निर्माण की पहल (Aditya Kumar Joshi et al, 2010)। वन नीति एक जटिल संतुलन है जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों के बीच बनाया जाता है, खासकर उस परिस्थिति में जब वन और उनसे जुड़ी संस्थाएँ लगातार बदल रही होती हैं (Kant, 2003)। वन नीति न केवल विकास, संरक्षण और सुरक्षा से जुड़ी होती है, बल्कि यह वन संसाधनों के उपयोग और दोहन से संबंधित लक्ष्यों को भी निर्धारित करती है। इसमें लकड़ी की जरूरतें, मूल्य निर्धारण, व्यापार, विकास की आवश्यकताएँ, संपत्ति के अधिकार, वनवासियों के अधिकार, वन प्रबंधन आदि जैसे विषय शामिल होते हैं।

**भारत में राष्ट्रीय वन नीति (National Forest Policy - NFP) का विकास**

राष्ट्रीय वन नीति (NFP) एक गतिशील दस्तावेज है, जो समय के साथ सरकार के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप बदलता रहता है। भारत की राष्ट्रीय वन नीति में भी इसके प्रारंभ से लेकर अब तक कई परिवर्तन हुए हैं। इस अनुभाग में, राष्ट्रीय वन नीति की उत्पत्ति, उसके उद्देश्य, लक्ष्य और कमियों को समझने का प्रयास किया जाएगा।

राष्ट्रीय वन नीति की शुरुआत 1854 में मानी जाती है, जब मैक्लेलैंड (McClelland) ने भारत सरकार को एक रिपोर्ट सौंपी थी, जिसमें उन्होंने सुझाव दिया था कि व्यक्तिगत लोगों द्वारा वनों के दोहन (exploitation) पर रोक लगाई जानी चाहिए। यह रिपोर्ट बाद में लॉर्ड डलहौज़ी (Lord Dalhousie) द्वारा 1855 में "चार्टर ऑफ इंडियन फॉरेस्ट्स" (Charter of the Indian Forests) तैयार करने का आधार बनी (L. Ravi Shankar, 2008)। इस चार्टर में वन संरक्षण की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी।

इसके बाद, 1865 में "भारतीय वन अधिनियम" (Indian Forests Act) लागू किया गया, जिसने भारतीय वनों पर राज्य का एकाधिकार (State Monopoly) स्थापित किया। 1864 में वन विभाग (Forest Department) की स्थापना हुई और संगठित वन प्रबंधन की शुरुआत इसी वर्ष से मानी जाती है।

उसी समय, सरकार ने जर्मन वन विशेषज्ञ डाईट्रिच ब्रैंडिस (Dietrich Brandis) की मदद ली, जिन्हें भारत में वन संसाधनों के प्रबंधन की प्रक्रिया देखने के लिए बुलाया गया (Mishra, 1999)। ब्रैंडिस ने वनों का जलवायु, वर्षा और सिंचाई स्रोतों पर प्रभाव को रेखांकित किया और इस आधार पर वनों पर राज्य नियंत्रण की आवश्यकता को बताया। 1865 का वन अधिनियम, बाद में 1878 के वन अधिनियम से प्रतिस्थापित

किया गया। 1878 के अधिनियम ने वनों को तीन वर्गों में विभाजित किया आरक्षित वन (Reserved Forests), संरक्षित वन (Protected Forests), ग्राम वन (Village Forests)
इस अधिनियम के तहत, सरकार ने सभी बंजर भूमि (wastelands) पर भी अधिकार कर लिया। इस अधिनियम ने स्थानीय समुदायों और वनवासियों के पारंपरिक अधिकारों को खत्म कर दिया, खासकर संरक्षित वनों के मामले में। इस अधिनियम में दंडात्मक प्रावधान भी जोड़े गए, जैसे जेल और जुर्माना। इस प्रकार, वनों पर राज्य का नियंत्रण पहले से कहीं अधिक मजबूत हो गया।

**वन नीति, 1894**

भारतीय कृषि में सुधार पर एक रिपोर्ट 1893 में जे. ए. वोएलकर (J.A. Voelekar), जो उस समय के वन अधीक्षक (Superintendent of Forests) थे, द्वारा प्रस्तुत की गई थी। यही रिपोर्ट वन नीति, 1894 का आधार बनी। इसके अनुसार, भारत की पहली वन नीति 19 अक्टूबर 1894 को घोषित की गई। 1894 से पहले, वन ज़मींदारों और रियासतों की संपत्ति माने जाते थे और वनों के प्रबंधन के लिए कोई एक समान नीति नहीं थी। 1894 की नीति ने वनों के व्यावसायिक दोहन (commercial exploitation) पर ज़ोर दिया और कृषि के लिए भूमि उपयोग को बढ़ावा दिया। इस नीति ने वनों को एक व्यावसायिक संसाधन के रूप में देखा, न कि मानव समाज के लिए आवश्यक जीवन रक्षक तत्व के रूप में, जिसकी सुरक्षा और संरक्षण ज़रूरी है।
वनों को इस नीति के तहत चार वर्गों में बांटा गया, पहली श्रेणी ऐसे वन जो पहाड़ियों की ढलानों पर स्थित थे और जिन्हें भूस्खलन से मैदानी कृषि क्षेत्रों की रक्षा के लिए संरक्षित किया जाना आवश्यक था। ये वन संरक्षण का कार्य करते थे और राज्य के लिए राजस्व सुनिश्चित करते थे। दूसरी श्रेणी ऐसे वन जिनमें कीमती लकड़ी वाले वृक्ष होते थे, जैसे कि देवदार, साल, सागवान (टीक) आदि। इन वनों में व्यावसायिक दोहन के लिए पुनरुत्पादन (regeneration) को बढ़ावा दिया गया। तीसरी श्रेणी वे वन जो ईंधन की लकड़ी और लघु वनोपज (minor forest produce) प्रदान करते थे, जिनकी स्थानीय समुदायों और वनवासियों को आवश्यकता होती थी। चौथी श्रेणी चरागाह भूमि (grazing lands) जो स्थानीय लोगों को पशुओं के चरने के लिए चाहिए होती थी। (स्रोत: K.S. Shobajasmin, 2013)
वन नीति, 1894 पहला औपचारिक दस्तावेज था, जिसमें वनों के एक समान प्रबंधन की बात की गई थी और जिसे वन विभाग के नियंत्रण में लाया गया, लेकिन फिर भी इसमें कई कमियाँ थीं, यह नीति सरकारी स्वामित्व वाले वनों पर लागू नहीं होती थी। इसका मुख्य उद्देश्य वनों का व्यावसायिक दोहन था, संरक्षण नहीं। इस नीति ने वन भूमि को कृषि भूमि में बदलने को बढ़ावा दिया। झूम खेती (shifting cultivation) पर रोक नहीं लगाई गई। वन्य जीवों की रक्षा के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए, जबकि वे वनों का अहम हिस्सा होते हैं।

**राष्ट्रीय वन नीति, 1952**

वन नीति, 1894 का निर्माण भारत की स्वतंत्रता से पहले उस समय हुआ था जब भारत औपनिवेशिक शासन के अधीन था। उस नीति का मुख्य उद्देश्य संरक्षण और सुरक्षा न होकर, वनों का व्यावसायिक दोहन था। इसलिए, यह स्वाभाविक था कि स्वतंत्रता के बाद इस नीति में बदलाव किया जाए। भारत की स्वतंत्रता और उसके बाद भारतीय संविधान के निर्माण ने एक ऐसी समग्र वन नीति की नींव रखी जो जनसामान्य के सामाजिक-आर्थिक कल्याण के अनुरूप हो। इसी पृष्ठभूमि में, 12 मई 1952 को एक नई राष्ट्रीय वन नीति

बनाई गई, जिसका उद्देश्य स्वतंत्र भारत के लक्ष्यों, उद्देश्यों और नीतियों के अनुरूप वन नीति को बनाना था। इसमें वनों के संरक्षण, सुरक्षा और सतत उपयोग को प्राथमिकता दी गई। राष्ट्रीय वन नीति, 1952 ने यह लक्ष्य निर्धारित किया कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का कम से कम एक-तिहाई (1/3) हिस्सा वनों और वृक्षों से आच्छादित होना चाहिए। इस नीति ने यह स्पष्ट किया कि आर्थिक दोहन के साथ-साथ वनों का सतत उपयोग भी आवश्यक है। औद्योगीकरण, रक्षा, रेलवे, और अन्य राष्ट्रीय आवश्यकताओं के कारण वन उत्पादों की माँग लगातार बढ़ रही थी। इसी कारण वनों पर दबाव भी बढ़ता जा रहा था। इस परिप्रेक्ष्य में, NFP 1952 को इस उद्देश्य से तैयार किया गया कि वनों का संरक्षण हो और देश के 1/3 हिस्से पर वन आच्छादन सुनिश्चित किया जा सके, साथ ही वनों का उपयोग राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी हो। नीति में विशेष रूप से ज़ोर दिया गया, पहाड़ी क्षेत्रों में वनस्पति क्षरण  पर नियंत्रण, नदी किनारों का कटाव रोकना, रेतीले टीलों को स्थिर करना

वनों का वर्गीकरण (NFP 1952 के अनुसार):

- राष्ट्रीय वन (National Forests)
- संरक्षित वन (Protected Forests)
- ग्राम वन (Village Forests)

संरक्षित वनों को संरक्षित करने पर ज़ोर दिया गया क्योंकि वे पहाड़ियों की ढलानों पर स्थित होते हैं और मिट्टी के कटाव तथा बाढ़ से मैदानी क्षेत्रों की रक्षा करते हैं। राष्ट्रीय वन, जिनमें कीमती लकड़ी होती है, देश के विकास के लिए आवश्यक माने गए और इनके लिए सतत प्रबंधन की आवश्यकता बताई गई। ग्राम वनों का उद्देश्य स्थानीय समुदायों की ईंधन की लकड़ी और लघु वनोपज की आवश्यकताओं को पूरा करना था। इसके एक साल बाद, ज़मींदारों के अधीन वनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

राष्ट्रीय वन नीति, 1952 में कुछ कमियाँ भी थी जैसे यह नीति 1894 की नीति का ही विस्तारित रूप थी, जिसका मुख्य ज़ोर बस 1/3 क्षेत्र को वनाच्छादित बनाए रखने पर था। इस नीति में भी औपनिवेशिक सोच दिखाई दी, जहाँ वनों को राजस्व स्रोत की तरह देखा गया। इस सोच के कारण वनों पर अत्यधिक दबाव और अत्यधिक उपयोग हुआ, जिससे वनावरण में कमी आई। इन कारणों से, आगे चलकर वन नीति में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई।

### राष्ट्रीय वन नीति, 1988

राष्ट्रीय वन नीति, 1952, काफी हद तक वन नीति, 1894 से प्रभावित थी। शुरू में, भारत के संविधान में वनों, वानिकी आदि से संबंधित कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं थे। हालाँकि, संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 48A जोड़ा गया, जिसमें वनों और वन्य जीवन के संरक्षण की बात कही गई। इसके अतिरिक्त, संविधान में संवर्ती सूची के अंतर्गत प्रविष्टियाँ 17A और 17B जोड़ी गईं; जिससे वनों और वन्य पशु-पक्षियों के संरक्षण संबंधी कानून बनाने का अधिकार केंद्र और राज्य दोनों सरकारों को प्राप्त हुआ। इस प्रकार, दोनों स्तर की सरकारें वनों के संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण हेतु कानून बना सकती हैं। हालांकि, 'वन' का कार्यान्वयन राज्य सरकारों के जिम्मे सौंपा गया।

इन संवैधानिक परिवर्तनों और 1952 की वन नीति की विफलता को देखते हुए, बदलते हालातों से निपटने के लिए नई राष्ट्रीय वन नीति 1988 को अपनाना आवश्यक हो गया। इसकी घोषणा 7 दिसंबर 1988 को की गई

तथा इसके मुख्य उद्देश्य पर्यावरणीय स्थिरता बनाए रखना तथा पारिस्थितिक संतुलन की पुनःस्थापना करना थे। यह नीति तीन दशकों से अधिक समय तक देश में वनों को स्थिर बनाए रखने में सहायक रही, जबकि बढ़ती जनसंख्या और तेजी से होते औद्योगिकीकरण के कारण वनों पर भारी दबाव था। राष्ट्रीय वन नीति 1988 के उद्देश्य:

- पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना
- वनों के संरक्षण को बढ़ावा देना
- नदियों, झीलों और जलाशयों के कैचमेंट क्षेत्रों में मिट्टी कटाव और वनस्पति क्षरण को रोकना
- राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों और तटीय इलाकों में रेतीले टीलों का विस्तार रोकना
- देश में वन/वृक्ष आवरण में पर्याप्त वृद्धि करना
- ग्रामीण और आदिवासी आबादी की ईंधन लकड़ी, चारा, लघु वनोपज और छोटी लकड़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना
- वनों की उत्पादकता को बढ़ाकर राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति
- वन उत्पादों का सक्षम उपयोग और लकड़ी के प्रत्यावर्तन (substitution) को बढ़ावा देना
- महिलाओं की भागीदारी के साथ जन आंदोलन खड़ा करना

वन प्रबंधन के प्रमुख तत्व (NFP 1988 के अनुसार):

- मौजूदा वनों की रक्षा करना
- पहाड़ी ढलानों, नदी कैचमेंट क्षेत्रों में वन और हरियाली को बढ़ाना
- अच्छी कृषि भूमि को वनों में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना
- राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, बायोस्फीयर रिज़र्व और अन्य संरक्षित क्षेत्रों का जाल तैयार करना और मज़बूत करना
- ईंधन, चारा और पशु चराई की सुविधाएँ सीमावर्ती वनों में उपलब्ध कराना
- सघन वृक्षारोपण (Afforestation) को प्राथमिकता देना
- लघु वनोपज की उत्पादकता बढ़ाना

वन आच्छादन के लक्ष्य के रूप में देश के कम से कम 1/3 भौगोलिक क्षेत्र को वनों और वृक्षों से आच्छादित करना तथा पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्रों में 2/3 क्षेत्र में वनों और वृक्षों का आवरण सुनिश्चित करना था विशेष रूप से पहाड़ी ढलानों में क्षरण को रोकना ताकि मैदानी इलाकों को बाढ़ से बचाया जा सके। वृक्षारोपण रणनीति के अंतर्गत निम्न कार्यक्रम शामिल थे:

- व्यापक वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाना
- सड़कों, रेलवे लाइनों, नदियों, नालों और नहरों के किनारे पेड़ लगाना
- राज्य/निजी/कॉरपोरेट/संस्थागत अप्रयुक्त भूमि पर वृक्षारोपण

- शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में हरित पट्टियाँ (Green Belts) विकसित करना
- गांवों की सामुदायिक भूमि पर वृक्ष और चारा संसाधनों का विकास
- निजी ज़मीनों पर पेड़ों की कटाई को विनियमित करना इत्यादिI

**राज्य वनों का प्रबंधन**

राज्य वनों का प्रबंधन वन नीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। परंपरागत रूप से, राज्य वनों का उपयोग वनों में रहने वाली स्थानीय समुदायों द्वारा किया जाता रहा है। लेकिन, उपनिवेशकालीन नीतियों और स्वतंत्रता के बाद की नीतियों ने उनके अधिकारों को सीमित किया है। इस संदर्भ में, राज्य वनों का प्रबंधन राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप होना चाहिए, साथ ही वनों में रहने वाले स्थानीय लोगों के अधिकारों को भी मान्यता देनी चाहिए।

- राष्ट्रीय वन नीति (NFP) ने राज्य वनों के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित रणनीति बनाई है:
- पहाड़ी ढलानों, नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों आदि में वनों को प्रभावित करने वाली विकास योजनाओं को नियंत्रित और प्रतिबंधित करना।
- वनों के प्रबंधन योजनाओं को मंजूरी देना।
- केंद्र सरकार द्वारा प्रबंधन योजनाओं के क्रियान्वयन और निगरानी को सुनिश्चित करना।
- वन आवरण और वन उत्पादकता में वृद्धि करना।
- ईंधन लकड़ी की मांग और आपूर्ति के बीच अंतर को कम करना।

**अधिकार और सुविधाएं**

जैसा पहले कहा गया, राज्य वनों का उपयोग स्थानीय समुदाय अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते आए हैं। इसलिए राज्य वनों के प्रबंधन में स्थानीय समुदायों के सीमित अधिकारों को मान्यता दी गई है। अधिकार और सुविधाएँ:

- चराई के अधिकार वन की वहन क्षमता के अनुसार निर्धारित होंगे।
- पशुओं के लिए खलिहान में चारा देने को प्रोत्साहित करना।
- वनों के आस-पास रहने वाले समुदायों के अधिकार और कर्तव्य।
- अनुसूचित जनजातियों और वनवासी समुदायों को ईंधन लकड़ी, लघु वनोपज आदि उचित कीमतों पर उपलब्ध कराना।
- उद्योगों में लकड़ी के विकल्प का प्रोत्साहन।
- ईंधन लकड़ी के विकल्प के रूप में बायोगैस, LPG और सौर ऊर्जा जैसे वैकल्पिक स्रोतों को प्रोत्साहित करना।

**वन भूमि का वन के अलावा अन्य उपयोग के लिए हस्तांतरण (Diversion)**

सामान्यतः वन भूमि को गैर-वन उद्देश्यों के लिए हस्तांतरित करने से बचना चाहिए। इस संदर्भ में निम्न रणनीति अपनाई गई है:

- वन भूमि को राष्ट्रीय संपदा माना जाए, इसलिए गैर-वन उपयोग के लिए इसके हस्तांतरण पर सख्त नियंत्रण हो।
- विकास गतिविधियाँ ऐसे हों जो वृक्षों और वनों के संरक्षण की आवश्यकता के साथ सामंजस्यपूर्ण हों।
- खनन या पत्थर खनन करने वाली एजेंसियों को प्रभावित क्षेत्र का पुनः वनरोपण करना आवश्यक हो।
- खनन की योजना लाभार्थियों से ली जाए और वह राष्ट्रीय वन नीति के अनुरूप हो।

**जनजातीय लोग और वन**

जनजातीय लोगों का वनों से ऐतिहासिक और पारंपरिक जुड़ाव रहा है। वे सदियों से वन भूमि के उपयोग के अधिकार रखते हैं और इसलिए वन के सतत उपयोग में उनकी हिस्सेदारी अधिक है। इसीलिए, राष्ट्रीय वन नीति में जनजातीय लोगों को वन प्रबंधन में शामिल करने की रणनीति बनाई गई है। इस संदर्भ में निम्नलिखित कदम सुझाए गए हैं:

- जनजातीय लोगों को वन संरक्षण, पुनर्यजन और विकास में शामिल करना।
- ठेकेदारों की जगह जनजातीय सहकारी समितियाँ, श्रम सहकारी समितियाँ, सरकारी निगम आदि को देना।
- वन गांवों का विकास राजस्व गांवों के समान स्तर पर सुनिश्चित करना।
- जनजातीय लाभार्थियों की स्थिति सुधारने के लिए परिवार-केंद्रित योजनाएँ लागू करना।
- वन क्षेत्रों के आसपास की जनजातीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समेकित क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम शुरू करना।

**स्थानांतरित खेती (Shifting Cultivation)**

उपनिवेशी शासन ने अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए कृषि के उद्देश्य से वन भूमि के हस्तांतरण को बढ़ावा दिया। वनों को केवल राजस्व स्रोत के रूप में देखा गया और उनका दोहन किया गया। कृषि पर बढ़ते जोर के कारण स्थानांतरित खेती प्रचलित हो गई, जिसमें जमीन को कृषि के लिए इस्तेमाल करने के बाद कुछ समय के लिए छोड़ दिया जाता है ताकि वह पुनः उपजाऊ हो सके, और फिर खेती को किसी अन्य जमीन (अक्सर वन भूमि) पर स्थानांतरित कर दिया जाता है। इससे वनों की कटाई और उनका कृषि भूमि में परिवर्तन हुआ। राष्ट्रीय वन नीति ने स्थानांतरित खेती की समस्या को रोकने की आवश्यकता को स्वीकार किया और इसे नियंत्रित करने के लिए निम्न रणनीति अपनाई है:

- स्थानांतरित खेती के विकल्पों को अपनाना और प्रोत्साहित करना चाहिए।

सामाजिक वन और ऊर्जा वनीकरण के माध्यम से पहले से प्रभावित क्षेत्रों का पुनर्वास करना चाहिए।

**अतिक्रमण, आग और चराई से वन को होने वाला नुकसान**

समय के साथ, वन भूमि पर अतिक्रमण एक गंभीर समस्या बन गया है, जिसने वन प्रबंधन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। NFP, 1988 ने इसे स्वीकार किया और अतिक्रमण की बढ़ती घटनाओं को रोकने की आवश्यकता बताई। इसके अलावा, वन में आग लगने की घटनाओं ने सरकार के संरक्षण प्रयासों को बाधित किया है। इस संदर्भ में, NFP ने वन आग को कम करने और नियंत्रित करने की मांग की है। वन में बिना नियम के चराई से पौधों को नुकसान होता है और यह दीर्घकालिक रूप से हानिकारक है। इसलिए, NFP ने चराई को नियंत्रित और सीमित करने को अनिवार्य माना है। भारत में गैर-आवश्यक पशुओं की बड़ी संख्या में रखवाली वन पर दबाव डालती है, इसलिए NFP ने ऐसे बड़े पशु झुंडों को रखने से रोकने का प्रयास किया है।

**वन आधारित उद्योग**

NFP, 1988 ने वन आधारित उद्योगों के लिए निम्न रणनीति बनाई है:

- कच्चे माल की आत्मनिर्भरता के लिए क्षेत्र का पुनः विकास और हरियाली बढ़ाना।
- उद्योगों को संचालन से पहले सावधानीपूर्वक जांच के अधीन रखना।
- स्थानीय लोगों को पेड़ लगाने और कच्चे माल की खेती में रोजगार प्रदान करना।
- किसानों को हाशिए की/क्षतिग्रस्त जमीन पर लकड़ी उगाने के लिए प्रोत्साहित करना।
- प्राकृतिक वनों को उद्योगों के लिए पौधारोपण या अन्य गतिविधियों हेतु उपलब्ध न कराना।
- उद्योगों को वैकल्पिक कच्चे माल के उपयोग के लिए प्रोत्साहित करना।

**वन विस्तार**

NFP का उद्देश्य कम से कम 1/3 कुल भौगोलिक क्षेत्र को वन आवरण के अंतर्गत लाना है। इसके लिए निम्न रणनीति प्रस्तावित की गई है:

- कृषि विज्ञान केंद्रों, प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण केंद्रों में वृक्षारोपण और कृषि-वृक्षारोपण तकनीकों का प्रशिक्षण।
- किसानों को शिक्षित करना।
- वानिकी शिक्षा को बढ़ावा देना।
- सतत वानिकी प्रबंधन तभी संभव है जब वानिकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए। इस संदर्भ में NFP ने निम्नलिखित कदम सुझाए हैं:
- वानिकी को एक वैज्ञानिक अनुशासन और व्यवसाय के रूप में विकसित करना।
- कृषि विश्वविद्यालयों में अनुसंधान को बढ़ावा देना।
- भारतीय वन सेवा और राज्य वन सेवा के लिए उच्च वानिकी शिक्षा को योग्यता बनाना।

### 15.3.5 अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासियों का अधिकार अधिनियम, 2006

इस अधिनियम (Forest Rights Act - FRA) की धारा 4 में माना गया है कि पूर्व की वन नीतियों ने वनवासियों के अधिकारों को सही रूप से पहचानने में विफलता दिखाई, जिससे उनके साथ भेदभाव हुआ। इस अधिनियम के माध्यम से इतिहास में वनवासियों और जनजातीय लोगों के साथ हुए अन्याय को पलटना कोशिश की गई। यह पहली बार था जब भारतीय वन नीति में वनवासियों के अधिकारों को औपचारिक रूप से मान्यता मिली। परंपरागत रूप से, वनवासियों को केवल वन उत्पाद इकट्ठा करने और उपयोग करने का अधिकार था, लेकिन 2006 के अधिनियम ने उन्हें वन भूमि पर रहने, कब्जा करने और उपयोग करने के अधिकार भी दिए हैं (धारा 3 के तहत)।

इसके साथ ही, अधिनियम वनवासियों की कुछ जिम्मेदारियाँ भी निर्धारित करता है, जैसे वन्यजीवों और वन विविधता की सुरक्षा करना और पारिस्थितिक स्थिरता को बढ़ावा देना। धारा 6 ग्राम सभा को सामुदायिक और व्यक्तिगत अधिकारों पर निर्णय लेने का अधिकार देती है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जो वन क्षेत्र घोषित हैं। इस तरह, वन संरक्षण नीति में वन समुदायों को शामिल करने से वन शासन और प्रबंधन में एक बड़ा बदलाव आया है।

### 15.3.6 वन अधिकार अधिनियम, संशोधन नियम, 2012

इस कल्याणकारी विधेयक के उद्देश्यों के अनुरूप लाभ पात्र वनवासी समुदायों) तक पहुँचें और वन अधिकार अधिनियम को सशक्त करने के लिए, मंत्रालय ने अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासियों (वन अधिकारों की मान्यता) संशोधन नियम, 2012 [The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Amendment Rules, 2012] को 6 सितंबर 2012 को अधिसूचित किया।

ग्राम सभा का कोरम (quorum) दो-तिहाई (⅔) से घटाकर आधा (½) कर दिया गया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कम से कम पचास प्रतिशत दावेदार बैठक में उपस्थित हों।

किसी भी दावे को पारित करने का प्रस्ताव इन्हीं दावेदारों की उपस्थिति में किया जाएगा ताकि अधिकारों के पक्ष में मतदान करने वालों में बहुमत सुनिश्चित हो सके।

दावों के अस्वीकरण या संशोधन की सूचना दावेदारों को दी जाएगी, और यदि कोई दावेदार निर्णय के विरुद्ध याचिका दायर करना चाहता है, तो उसे उचित समय प्रदान किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, ग्राम वन की पहचान हेतु एक प्रक्रिया निर्धारित की जाएगी तथा उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए समान प्रकार के कानून बनाए जाएँगे। वन अधिकार समिति में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व पहले की तुलना में बढ़ाया गया है अब यह एक-तिहाई (⅓) के स्थान पर दो-तिहाई (⅔) होगा।

इसके अलावा, लघु वनोपज (Minor Forest Produce - MFP) के परिवहन के दौरान ट्रांजिट परमिट में संशोधन किया जाएगा। ऐसे संशोधन केवल ग्राम सभा द्वारा गठित समिति या ग्राम सभा द्वारा अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही किए जा सकेंगे। रॉयल्टी और अन्य लघु वनोपज से संबंधित राजस्व इन्हीं समितियों द्वारा संग्रहित किया जाएगा। इस व्यवस्था के पीछे मुख्य विचार यह है कि वनवासियों के अधिकारों को मान्यता दी जाए

और कानूनों के स्थानीयकरण के माध्यम से सतत विकास सुनिश्चित किया जाए। वनवासियों के अधिकारों को सभी ग्राम सभाओं द्वारा मान्यता दी जाएगी।

### 15.3.7 जैव विविधता अधिनियम, 2002 (The Biological Diversity Act, 2002)

विस्तृत और गहन परामर्श प्रक्रिया के बाद, जिसमें विभिन्न हितधारकों की भागीदारी थी, केंद्र सरकार ने जैव विविधता अधिनियम लागू किया, जिसे साल 2002 में अधिनियमित किया गया। इस कानून की उत्पत्ति जैव विविधता अभिसमय  से की जा सकती है, जिसे रियो सम्मेलन, 1992 में हस्ताक्षरित किया गया था। यह अधिनियम संरक्षण, सतत उपयोग और जैविक संसाधनों एवं संबंधित ज्ञान के उपयोग से उत्पन्न लाभों के समान वितरण- इन तीनों उद्देश्यों के कार्यान्वयन हेतु एक संस्थागत ढांचा प्रदान करता है।

**अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ :**

- देश के जैविक संसाधनों तक पहुँच को नियंत्रित करना, ताकि उनके उपयोग से उत्पन्न लाभों में समान भागीदारी सुनिश्चित की जा सके, और जैविक संसाधनों से संबंधित पारंपरिक ज्ञान की रक्षा की जा सके।
- जैव विविधता का संरक्षण और उसका सतत उपयोग करना।
- जैव विविधता से संबंधित स्थानीय समुदायों के ज्ञान का सम्मान और संरक्षण करना।
- स्थानीय लोगों के साथ लाभों का साझा करना, जो जैविक संसाधनों के संरक्षक और उनके उपयोग से संबंधित ज्ञान व सूचना के धारक हैं।
- जैव विविधता के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण क्षेत्रों का संरक्षण और विकास, उन्हें "जैव विविधता धरोहर स्थल" के रूप में घोषित करके।
- संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण और पुनर्वास करना।